Baba Krishna Das

॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

श्री चैतन्यभागवत

मूल बंगला लिपि के रचनाकार—

श्रीलवृन्दावनदास ठाकुर महाशय

अर्थ सहायक—

स्वर्गीय लाला श्रीराधाकृष्ण जी अग्रवाल, ग्राम-भूरेका तहसील मांट (मथुरा) की धर्मपत्नी श्रीमती नारायणीदेवी ने अपने गुरुदेव भगवान् माध्वगौड़ेश्वर संप्रदायाचार्य, विद्यावारिधि, संकीर्तनप्रचारक, महामण्डलेश्वर, सख्यरस उपासक श्रील श्री १००८ श्री स्वामी कृष्णानन्ददास जी महाराज की पावन-स्मृति में प्रकाशित किया।

सम्पादक व प्रकाशक—

बाबा कृष्णदास जी

मूल्य
नित्य पाठ की प्रतिज्ञा

श्रीचैतन्यभागवत ग्रन्थ के रचयिता

श्रीलठाकुर वृन्दावनदास

जिनकी अमृतमयी लेखनी से निःसृत भगवान् श्रीगौरांग महाप्रभु के चरित्र की अमृतधारा जगत् विशेष करके वंगभूमि के पापी, तापी जीवों की ज्वाला यन्त्रणा को निर्वापित करके महान् आनन्दसागर डुबा देती है, उन श्रीलठाकुर वृन्दावनदास महोदय को वैष्णव समाज कौन नहीं जानता है ? वंगदेश के हित्य कानन के कलकंठ कोकिल स्वरूप, चैतन्यभागवत के रचयिता, आदिकवि, श्रीव्यासावतार, श्री-प्रभुवर नित्यानन्द के प्रेमोन्मत्त, श्रीवृन्दावनदास ठाकुर गौड़ीय वैष्णव समाज में विशेष परिचित हैं।

इस चैतन्य भागवत के पदों से जाना जाता है कि श्रीवासपण्डित तथा उनके भ्राता श्रीरामपंडित हट्ट (पूर्व वंग में) से किसी समय विद्याध्ययन अथवा गङ्गातटवास के लिये श्रीधाम नवद्वीप में आकर वास करने लगे थे। आजकल वाराणसी क्षेत्र जिस प्रकार संस्कृत साहित्य के पठन-पाठन में भारतवर्ष में ान केन्द्र बना हुआ है, ठीक उसी प्रकार उस समय श्रीधाम नवद्वीप समस्त भारतवर्ष के विद्या का प्रधान द्र था। पश्चात् श्रीवासपण्डित के श्रीपति तथा श्रीनिधि नामक दो सहोदर भी श्रीहट्ट छोड़कर नवद्वीप में ने भ्राता के साथ निवास करने लगे। श्रीवास एवं श्रीराम दोनों बड़े भारी पण्डित थे। दोनों ने महाप्रभु द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्म्म का आचार्य्यत्व लाभ किया। महाप्रभु के साथ श्रीवासपण्डित की समग्र भूमि में बड़ी मान्यता है। पञ्चतत्वस्वरूप में एक श्रीवासपण्डित भी हैं। आज भी वङ्गदेश में वैष्णव माज के द्वारा घर-घर में पञ्चतत्वस्वरूप की पूजा प्रचलित है। आप श्रीदेवर्षि मुनिराज नारदजी के अवतार ने जाते हैं, उन श्रीवासपण्डित को एक भ्रातृकन्या थी, जिसका नाम नारायणी था। वह नितान्त बाल्य वस्था से ही श्रीहट्ट त्याग कर नवद्वीप में श्रीवासपण्डित के घर पर एक साथ रहने लगी। नारायणी एक ामान्य नारी नहीं थी, वह गौरांगदेव के परिकर में एक अग्रगन्या के रूप में मानी जाती थी। श्रीकवि-र्णपुर महोदय ने श्रीगौरगणोद्देशदीपिका ग्रन्थ में महाप्रभु लीला के परिकरों के पूर्वावतार का परिचय ते हुए नारायणीदेवी के पूर्व जन्म का इस प्रकार निर्णय दिया है कि--

"अम्बिकायाः स्वसा यासीन्नाम्ना श्रीलकिलिम्बिका। कृष्णोच्छिष्टं प्रभुञ्जाना सेयं नारायणी मता ॥"

अर्थात् ब्रजलीला में अम्बिका की भगिनी किलिम्बिका प्रसिद्धा थीं, वह सर्वदा श्रीकृष्ण के धरामृत का भोजन करती थी। अब गौरांगलीला में वह नारायनी मानी गई है एवं पूर्वलीला की भाँति लीला में भी महाप्रभु के अधरामृत का भोजन किया करती थी। इस ग्रन्थ में स्वयं वृन्दावनदास ठाकुर लिखा है कि--

सर्वभूत अन्तर्यामी श्री गौरांग चाँद। आज्ञा कैल नारायणि ! कृष्ण बलि काँद ॥
चारिवत्सरेर सेइ उन्मत्त चरित। हा कृष्ण बलिया मात्र पड़िल भूमित ॥
अङ्ग वहि पड़े धारा पृथिवीर तले। परिपूर्ण हैल स्थल नयनेर जले ॥

अर्थात् सर्वभूत में निवास करने वाले अन्तर्यामी प्रभु ने नारायणी को आज्ञा की कि नारायणि ! कृष्ण कहकर रोओ, उस समय उसकी अवस्था चार वर्ष की थी। वह बालिका "हा कृष्ण" कहती हुई उन्मत्त होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, उसके नयनों से अश्रुधाराएँ बहने लगीं जो समस्त शरीर को भिगाकर पृथ्वी पर बहने लगी। वह स्थल नयन जल से परिपूर्ण हो गया।

वृन्दावनदास ठाकुर ने इस ग्रन्थ में और भी लिखा है कि—

भोजनेर अवशेष जतेक आछिल। नारायणी पुण्यवती ताहा से पाइल॥
श्रीवासेर भ्रातृ सुता बालिका अज्ञान। ताहारे भोजन शेष प्रभु करे दान॥

महाप्रभु ने महाप्रकाश के उपरान्त नारायणी को जब अपना अधरामृत प्रसाद अर्पण किया उस समय वह चार वर्ष की बालिका है। उस समय महाप्रभु यौवनलीला में प्रवृत्त थे तथा उनकी अवस्था प्रायः अठारह वर्ष की होगी। महाप्रभु ने जब सन्यास लिया तब उस समय नारायणी की अवस्था दस वर्ष की होगी। नारायणी का किस समय कौन के साथ किस ग्राम में विवाह हुआ इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है, महाप्रभु के सन्यास के पश्चात् नारायणी का विवाह हुआ था, ऐसा स्वाभाविक अनुमान किया जाता है। महाप्रभु के सन्यास लेने के पश्चात् श्रीवास तथा श्रीराम दोनों कुमारहट्ट में जाकर रहने लगे एवं श्रीपति, श्रीनिधि ने नवद्वीप में ही निवास किया। श्रीजान्हवा ठकुरानी जिस समय ठाकुर नरोत्तम महाशय के द्वारा निमन्त्रित होकर नवद्वीप से खेतरि महोत्सव में उपस्थित हुई थी, उस समय सङ्ग में श्रीपति-श्रीनिधि दोनों भ्राता उनके साथ गये थे। अनुमान किया जाता है कि श्रीवासपण्डित के नवद्वीप छोड़ने के समय नारायणी के विवाह का समय आ गया था एवं उसका मामगाछी के निकटवर्त्ती किसी ग्राम में विवाह हुआ था। यह मामगाछी ग्राम नवद्वीप के अन्तर्गत, गङ्गा के पश्चिम तट पर मौजूद है। भक्तिरत्नाकर में इसे मोद द्रुमद्वीप नाम करके कहा गया है, उस ग्राम में बासुदेवदत्त की एक विग्रह सेवा है। कहा जाता है नारायणी देवी ने उस सेवा का भार ग्रहण किया था तथा उस ग्राम में बहुत दिन निवास करने लगी थी। आपाततः वह सेवा नारायणी नाम से चली। जब नारायणी गर्भवती रही, उस समय वह विधवा हो गई तथा आपने सुविधा के लिये बासुदेवदत्त की ठाकुरवाड़ी में प्रबन्ध कार्य में नियुक्ता हुई। बासुदेवदत्त का निवास स्थान काँचडापाड़ा था, जो शिवानन्द की घर के समीप है, प्रभु की नवद्वीप लीला के समय उनके समीप रहने के लिये बासुदेवदत्त ने मामगाछी ग्राम में उस सेवा को प्रकट किया था। पश्चात् नवद्वीप में रहने की सुविधा न देखकर श्रीवासपण्डित के साथ बन्धुता होने के कारण उनकी भ्रातृतनया नारायणी को सेवा का भार समर्पण किया।

उन श्रीनारायणीदेवी के पवित्र गर्भ में इस चैतन्य भागवत के रचयिता श्रीलवृन्दावनदास ठाकुर ने जन्म ग्रहण किया था। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी चैतन्यचरितामृत में कहा है कि--

नारायणी चैतन्येर उच्छिष्टभाजन। तार गर्भे जन्मिला श्रीदास वृन्दावन॥

मामगाछी में श्रीनारायणी देवी का सेवापाट प्रत्यक्ष विराजमान है, वहाँ से पाँच छः कोस दूर में पश्चिम देनुड ग्राम में वृन्दावनदासजी की पाटवाडी मौजूद है।

बाल्यकाल में वृन्दावनदास ठाकुर उनकी जननी नारायणी के साथ मामगाछी के ठाकुरवाडी में अवस्थान करते थे। वहाँ ही आपने प्रारम्भिक विद्या के पठन पाठन के उपरान्त संस्कृत-विद्या का अध्ययन किया। मामगाछी नवद्वीप का अंश विशेष होने के कारण वहाँ संस्कृतविद्या का पठन-पाठन अत्यधिक रूप में होता था तथा वहाँ बड़े-बड़े विद्वान ब्राह्मण निवास करते थे। यह ग्राम विशारदभट्टाचार्य्य एवं देवानन्द पण्डितादि के निवास ग्राम के निकट है।

वृन्दावनदासजी जब विद्वान हुए उस समय महाप्रभु के अप्रकट होने का समय उपस्थित हो गया था। महाप्रभु के सन्यास लेने के तीन-चार वष के पीछे वृन्दावनदास ठाकुर का जन्म है अतएव महाप्रभु के

लीलासंवरण के समय उनकी अवस्था बीस वर्ष से अधिक नहीं थी। उस समय महाप्रभु के आदेशानुसार श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु गौडदेश में प्रेम प्रचारकार्य में तत्पर थे। इस ग्रन्थ से जाना जाता है कि श्री नित्यानन्दप्रभु ने महाप्रभु के निकट नीलाचल से विदा होकर अपने पार्षदगण के साथ पहले पानीहाटी ग्राम में पश्चात् सप्तग्राम में कुछ दिन प्रेम प्रचार करके उपरान्त नवद्वीप में आकर हिरण्यगोवर्द्धन के गृह में निवास करने लगे। वहाँ निवास करते हुए नाना स्थान में प्रेम प्रचार किया तथा शचीमाता को आश्वासन दिया। उनका प्रचार कार्य्य इस प्रकार वर्णित है—

तवे नित्यानन्द सर्व पार्षदेर संगे। प्रति ग्रामे ग्रामे भ्रमे कीर्त्तनेर रंगे॥
खाना चौता वडगाछि आर दोगाछिया। गंगार ओपार कभु जायेन कुलिया॥
विशेष सुकृति अति वडगाछि ग्राम। नित्यानन्द स्वरूपेर विहारेर स्थान॥

श्रीधाम नवद्वीप में रहकर नित्यानन्दप्रभु के प्रत्येक ग्राम में मनोहर प्रेम प्रचार के शेष दिनों में कविवर वृन्दाबनदास ने उनका संग लाभ किया। वह भी अधिक दिवस नहीं रहा क्यों कि महाप्रभु के लीलीसंवरण के अल्पदिन उपरान्त श्रीनित्यानन्दप्रभु एवं श्रीअद्वैतप्रभु दोनों अन्तर्द्धान होगये। वृन्दाबनदासजी नित्यानन्द-प्रभु के अन्तिम कृपापात्र रहे।

"सर्वशेष भृत्य तान वृन्दाबनदास। अवशेष पात्र नारायणी गर्भजात॥"

(चैतन्यभागवत पञ्चम अध्याय शेष में)

नित्यानन्दप्रभु के अन्तर्द्धान के पश्चात् ठाकुर वृन्दाबनदास बहुत दिनों तक पृथ्वी पर प्रकट रहे। क्यों कि वे जान्हवागोस्वामिनी के साथ निमन्त्रित होकर ठाकुर नरोत्तम महाशय के द्वारा आयोजित खेतरी उत्सव में गये थे।

वृन्दावनदासठाकुर सर्वशास्त्र पण्डित एवं महान् कविश्रेष्ठ थे यह उनके द्वारा विरचित इस चैतन्य भागवत से जाना जाता है। कविराजगोस्वामी ने अपने चैतन्यचरितामृत ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर लिखा है कि –

कृष्णलीला भागवते कहे वेदव्यास। चैतन्यलीलार व्यास वृन्दावनदास॥
वृन्दावनदास कैल चैतन्यमंगल। जाहार श्रवणे नाशे सर्व अमंगल॥
चैतन्य निताइर याते जानिये महिमा। जाते जानि कृष्णभक्ति सिद्धान्तेर सीमा॥
भागवते जत भक्ति सिद्धान्तेर सार। लिखियाछेन इहा जानि करिया उद्गार॥
मनुष्य रचिते नारे ऐछे ग्रन्थ धन्य। वृन्दावनदास मुखे वक्ता श्रीचैतन्य॥
वृन्दावनदास पदे कोटि नमस्कार। ऐछे ग्रन्थ करि तिंहो तारिला संसार॥

अन्यत्र भी कहा है—

वृन्दावनदासेर पादपद्म करि ध्यान। ताँर आज्ञा लैया लिखि जाहाते कल्याण॥
चैतन्य लीलाते व्यास वृन्दावनदास। ताँर कृपा विने अन्ये ना हय प्रकाश॥

अन्यत्र लिखा है—

वृन्दावनदास प्रथम जे लीला वलिल। सेइ सब लीलार आमि सूत्रपात कैल॥
ताँर त्यक्त अवशेष संक्षेपे कहिल। लीलार वाहुल्ये ग्रन्थ तथापि वाढ़िल॥
नित्यानन्द कृपापात्र वृन्दावनदास। चैतन्य लीलाय तेंहो हय आदिव्यास॥

कविकर्णपूर महोदय ने अपने "गौरगणोद्देशदीपिका" में इनके वारे में ऐसा कहा है—

वेदव्यासो य एवासीद्दासवृन्दावनोऽधुना । सखा यः कुसुमापीडः कार्यतस्तं समाविशत् ॥
अर्थात् जो द्वापर में वेदव्यास थे वे गौरांगलीला में वृन्दाबनदास होकर प्रकट हुए एवं ब्रज में जो कुसुमापीड नामक श्रीकृष्ण के सखा रहे अब वे ही गौरांगलीला में किसी कार्य वश वृन्दाबनदासजी में आविष्ट हुए हैं। वृन्दाबनदास ठाकुर ने पहले अपने चैतन्यभागवत नामक इस ग्रन्थ का चैतन्यमंगल नाम रक्खा था, कविराजगोस्वामी के चैतन्यचरितामृत की रचना के समय वह चैतन्यमंगल नाम से प्रसिद्ध था, पहले चैतन्यमंगल में उस समय के प्रचलित अन्यान्य कवियों के अन्यान्य गीतिकाव्य के गीतों का समावेश था। पश्चात् वृन्दाबन के पण्डित वैष्णव समाज ने इस ग्रन्थ को अपने पाठ के योग्य बनाने के लिये उन सब अन्यान्य गीति काव्यों को इससे पृथक कर दिया तथा इसको चैतन्यभागवत नाम से प्रसिद्ध किया। ऐसा भी कहा जाता है कि लोचनदासठाकुर के द्वारा विरचित "चैतन्यमंगल" को देखकर स्वयं वृन्दाबनदासठाकुर ने अपने चैतन्यमंगल ग्रन्थ के नाम को परिवर्त्तन कर चैतन्यभागवत नाम रखा। "चैतन्यभागवत" के शेषांश की रचना के समय वे नित्यानन्द प्रभु में इस प्रकार भावावेश में डूबे हुए थे कि-महाप्रभु की लीला अधिक न लिख सकें वरं श्रीनित्यानन्द प्रभु की लीला महिमा वर्णन में ही अत्यधिक यत्नशील हुए। नके विवाह होने का किसी ग्रन्थ में उल्लेख नहीं है। इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे ठाकुर नरोत्तमदासजी की भाँति आकुमार ब्रह्मचारी थे तथा अल्पवयस से वे "मामुगाछी" में निवास करते थे। वहाँ सारंग-मुरारी के संग बल से उनको नित्यानन्द प्रभु के संग का सुख मिला तथा उनके कृपापात्र बने थे। कुछ दिन नित्यानन्द प्रभु के साथ वे भक्ति प्रचार में प्रवृत्त रहे, एवं अन्त में किसी कायस्थ भक्त की सहायता से देनुड ग्राम में शेषजीवन पर्य्यन्त निवास किया, वहाँ ही उनकी पाटवाडी थी, जिसे कि वहाँ के महन्तगण बहुत दिनों से सुरक्षित रूप में परिचालित करते आ रहे हैं। वहाँ वृन्दावनदासठाकुर के द्वारा स्वहस्तलिखित चैतन्यभागवत की मूल पोथी मौजूद है। उनके द्वारा विरचित चैतन्य भागवत के अतिरिक्त कुछ पृथक् रचित पद भी मिलते हैं। इसके अतिरिक्त उनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिलता है। उनके ग्रन्थ का रचनाकाल निश्चय रूप से निर्द्धारित करना असम्भव है। इस में नाना मत भेद हैं। किसी के मत में ग्रन्थ का रचनाकाल १४७० शक तथा किसी के मत में १४५७ शक एवं अन्य किसी के मत में १४६७ शक है। रामगति न्यायरत्न, अच्युत एवं दिनेश बाबू दोनों, अम्बिकाचरण ने क्रम से इस प्रकार रचनाकाल का उल्लेख किया है। वृन्दावनदासजी के तिरोभाव का निश्चय समय भी निर्णीत नहीं हो सकता है। अच्युत बाबू एवं दिनेश बाबू कहते हैं कि १५११ शक कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा तिथि उनके तिरोभाव का दिवस है।

इन महानुभाव ने गौडेश्वर सम्प्रदाय तथा समस्त महाप्रभु चैतन्यदेव के चरित्र के ज्ञातेच्छु प्रेमी सज्जनों को इस अमूल्य चैतन्य भागवत नामक ग्रन्थ महारत्न का अर्पण कर जो महान् उपकार किया उस से भक्त समाज उनका चिर ऋणि रहेगा। अलमति विस्तरेण।

निवेदक—

प्रकाशक—**कृष्णदास,**

कुसुम सरोवर वाले।

महाप्रभु के अवतीर्ण होने का

★★ उपक्रम ★★

अखिलेश, लीला पुरुषोत्तम, गोलोक विहारी श्रीहरि निज नित्य धाम गोलोक में अपने माता-पिता-सखा-प्रेयसी आदि परिकरों के साथ अनादि काल से लीला करते हुए भी वहाँ किसी अभिलषित वस्तु की अपूर्त्ति के वश अतृप्त हो उसकी पूर्ति तथा साथ ही साथ ब्रह्माण्ड जीवों को निज दर्शनामृत दान के द्वारा कृतार्थ करने के लिये इच्छुक हो निज अचिन्त्य महाशक्ति के द्वारा इस ब्रह्माण्ड में निज परम प्रिय व्रजभूमि को प्राकट्य करा कर उन्हीं परिकरों के साथ जन्मादि नाना लीलाओं से अपने चिर अभिलषित उस वाञ्छ की पूर्त्ति करने लगे। यह तो ऐश्वर्य-गौरवादि गन्ध रहित केवल शुद्ध माधुर्य्य का खेल था, जो कि शुद्ध-माधुर्य्य की आधार रूप व्रजभूमि में ही पूर्ति हो सकती थी। इस सरस व्रज समुद्र के लीला-तरंग विलासों में आकर भगवान् श्रीगोविन्द भी अपने को खो देते थे अर्थात् उनकी भगवत्ता "वर्षाकालीन घन-घटा में विलीन सूर्य्य किरणावली की भाँति, त्रिवेणी प्रवाह में गुप्ता सरस्वती की भाँति, अज्ञ निरक्षर पत्नी के निकट निरुत्तर षड्दर्शन के महान् पण्डित की भाँति, निज सुकुमारी पत्नी के आगे निस्तेज महा धनुर्द्धारी योद्धा की भाँति, कमलकोष में काष्ठादि भेदन कारी शक्तिहीन भ्रमर की भाँति, अपने माता के समक्ष अवनत मस्तक महा साम्राज्य का अधीश्वर की भाँति" व्रज माधुर्य्य सागर में डूब जाती थी। कभी आप विशुद्ध वात्सल्यमयी माता श्रीयशोदा के भय से भीत होकर हा हा खाते, कभी भागते, कभी काँपते वा रो जाते थे। कभी क्रीडा प्रसंग में श्रीदाम-सुदामादि सखा गण से हार कर उन सबको कन्धे पर चढ़ाते थे, कभी प्रियतमा श्रीराधिका के विरह में आकर रोते, हँसते, वा खम्भ के समान जड हो जाते थे और अपने को प्रलयकालीन कोटि सूर्य्य किरणों से भी अधिक तपायमान समझते थे। भगवान् राम भी अपनी सर्व ज्ञता को भूल कर श्री सीतादेवी के विरह में अज्ञ की तरह ढूढ़ते हुए वन-वन फिरे थे। ब्रह्माजी के द्वारा गोवत्सादि हरण के समय श्रीकृष्ण ने भी अज्ञ की तरह उन्हें ढूढ़ा था। व्रजलीला में आकर सर्व सामर्थ-वान् भगवान् की ऐश्वर्य्यादिक विभूतियाँ ढक जाती थीं, केवल शुद्ध माधुर्य ही रह जाता। उस समय उनकी समस्त चेष्टाएं शुद्ध माधुर्य्यमयी होती। वे सर्वज्ञ होने पर भी अज्ञ की तरह, व्यापक होते हुए भी परिच्छिन्न हो जाते थे।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम श्रीगोविन्द ने व्रजभूमि में प्रकट होकर विविध लीलाऐं की थीं किन्तु वहाँ भी वाञ्छापूर्त्ति का कोई अभाव पुनः प्रतीत होने लगा, वह यह था कि राधाप्रेम का सरस आस्वादन किस प्रकार हो? आप व्रजभूमि में यथेष्ट विहार के द्वारा जीव जगत् को कृतार्थ करते हुए जन दृष्टि से पुनः अदृश्य हो उस इच्छा के साथ गोलोक में पधारे। कुछ समय पश्चात् आपने एक दिन मन में यह सोचा कि-लीला पुरुषोत्तम स्वयं मैंने व्रज में परिकरों के साथ अवतीर्ण होकर नाना लीलाओं के द्वारा प्रेमरस का आस्वादन किया तथा आनुषंगिक से अचिन्त्य शक्ति के द्वारा मुझ में विद्यमान नाना विष्णु आदिक स्वरूप के द्वारा युगधर्म्म रक्षादि का समाधान भी किया है। जिससे त्रिजगत् कृतार्थ होकर माधुर्य्यरस का सरस पात्र बने। परन्तु वहाँ भी मेरी किसी स्वकीय महान् अभिलषनीय वस्तु की पूर्त्ति न हो सकी। यह राधिका का निःसीम महान् भावरत्न मुझे भिखारी बनाकर व्याकुल कर रहा। श्रीराधा का प्रेम कैसा है? इसमें कैसा माधुर्य्य है?, तथा मुझे देखकर श्रीराधिका किस प्रकार सुख में विभोर हो जाती है? मेरी तीन प्रकार की यह इच्छाऐं व्रज में पूर्त्ति न हो सकी। इसलिये अव्यवधान इस कलि के

पहिले चरण में मेरा करुणामय, पीतवर्ण, सरस, महान् अवतार होगा जिससे मैं राधा प्रेम का आस्वादन करने में समर्थ होऊँगा तथा जीव मात्र में परम दुर्लभ महान् प्रेमधन का वितरण भी करूँगा; अतः अब की बार इस दुर्लभ प्रेमरस का आस्वादन सबको कराऊँगा। किशोरी प्रेम भंडार को उघाड़कर जिसे किसी ने किसी भी अवतार में नहीं दिया था उसे पात्र-अपात्र-देय-अदेय आदिक विचार न करता हुआ बिना मूल्य वितरण करुँगा। अब के बार अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा मारने के बदले मार खा कर प्रेम दूँगा, प्रेमवन्या में जगत् को बहा दूँगा। एक बात और भी है कि युगधर्म्म रक्षादि तो युगावतार से हो सकता है, क्यों कि यह युगावतार का समय है। नाम संकीर्त्तन के द्वारा भक्ति प्रवर्त्तन इस कलिकाल का धर्म है। यह तो युगावतार के द्वारा भी हो सकता है, परन्तु हम को तो दुर्ल्लभ प्रेमधन भी वितरण करना है जो युगावतार की शक्ति में नहीं है तथा दोनों अवतार एक ही समय में प्रकट भी नहीं हो सकते। अतः युगावतार को अपने में लेकर मैं नन्दनन्दन श्यामसुन्दर वाहिर राधाकान्ति से अपने को ढक कर तथा भीतर राधा भाव विभावित होकर मनोहर गौरांग रूप से सुरधुनी तट श्रीनवद्वीप धाम में सपरिकर अवतीर्ण होऊँगा। स्वयं राधाभाव चाखूँगा व सबको प्रेमधन चखाऊँगा तथा सर्वत्र नाम संकीर्त्तन प्रचार द्वारा भक्ति का प्रवर्त्तन करूँगा।

महाप्रभु श्रीगौरांगदेव के अवतीर्ण होने का कथासार (प्रथमोपक्रम) श्रीचैतन्यमंगलग्रन्थ तथा 'जैमिनीभारत' के आधार परः-द्वापर युग की बात है,एक समय देवर्षि नारद पृथ्वी भ्रमण करते हुए द्वारका पधारे। कराल कलिकालरूप विषम व्याल से डँसे हुए जीवों की दशा देख मुनिराज का कोमल हृदय व्याकुल होने लगा। आपने सोचा कि हाय ! करुणा के सागर, कमल-नयन कंसारि श्रीकृष्ण के करुणा के पात्र प्रिय जीव गण अपने कर्त्तव्य रूप प्रभु कैंकर्य्य को भूल कर माया के लपट में पड़ कर काम क्रोधादि के कवल में आकर प्राकृत रूप रस गन्धादि में उन्मत्त हो रहे हैं। जिससे सदा सर्वदा चौरासी लक्षयोनि रूप भवरंग के मञ्च में आकर सुख दुःख रूप स्वर्ग नरक के क्लेशों को भोग रहे हैं। अहो ! वर्णाश्रमादिक धर्म्म समूह कलुषित होते जा रहे हैं। ब्राह्मणगण तो नाम मात्र से ही केवल सूत्रधारी रह गये। वीर्य्य शून्य होकर क्षत्रियों ने केवल कामिनी कला को ही परम सुख रूप मान लिया, वैश्यगण तो बौद्ध प्राय हो कर स्त्री-पुत्र उदर भरण को ही परम श्रेयः रूप मानने लगे, शूद्र विद्या के अभिमान में आकर तीनों वर्णों की सेवा छोड़ गुरू बन कर उपदेश करने लगे। सर्वत्र पाखण्डियों की डंके की चोट विजय प्राप्त हो रही है। लोग समूह तो प्रभु का भजन छोड़ कर वर्हिमुख हो कामिनी काञ्चन का ही भजन करने लगे।

अहो ! मनुष्य कमलनयन भगवान् कमलाकान्त के मनोहर चरण कमल की कोमल अतसी पुष्प कलिकाओं की सरस पूजा छोड़ भयंकर रूपधारी भूत, प्रेत, पिशाच, दैत्य, दानवादि तथा तमः रजोगुणी देवताओं की अनेक प्रकार अमेध्य अस्पृश्य रजः तमः गुण द्रव्यों से पूजा करते हैं, शान्ति निकेतन देवस्थान पशुओं की शोणितधारा से भरा जा रहा है। जग पवित्रकारी भगवान् की कोमल मधुर नामावली का गान छोड़ अनेक प्रकार के प्रहसन, नाटक वारांगना नृत्य-गानादि में उन्मत्त हो रहे हैं। अहो सब कोई-सुधासागर तुलसी मिश्रित भगवद् निवेदित महाप्रसाद ग्रहण के सुख को छोड़ नाना प्रकार दुर्मेध्य, अशुचि, आमिषादि भोजी हो गये। परद्रोह,परनिन्दा,परवञ्चकता,पर स्त्री हरणादि विधर्म्म समूह मनुष्यों में पराकाष्ठा पर्य्यन्त पहुँच गये हैं। अहो ! भगवद् प्रसन्नकारी पर गति को देने वाली रामनवमी, कृष्णाष्टमी, एकादशी आदि व्रतों को छोड़ तामसिक व्रतों का प्रवर्त्तन हो रहा है। हाय ! सर्वत्र दंभ का एकच्छत्र राज्य हो रहा है।

पापियों के पापों मे,धरा देवी तो क्षीणकाया,पलितकशा होगई है। सर्वत्र अधर्मादि मंत्रियों के साथ कलिमहाराज की विजयध्वजा फहरी रही है। (यह सब चंद्रोदयनाटक में वर्णित है)। हे करुणा वरुणालय प्रभो! इस विकराल कलिकाल के कठिन पंजों से जीवों की उन्मुक्ति के लिये आप ही एक मात्र परम अवलम्ब हैं,क्यों कि आप ही तो असहाय जीवों के एक मात्र गतिदायक हैं, अन्धे की लकड़ी है, रंक के धन हैं, रोगी की दिव्यौषधि हैं, प्यासे को दिव्यामृत हैं, भूखे को दिव्य भोजन हैं। मुनि-ऋषियों ने इस अथाह भवसागर में आप के चरण कमल को ही नावरूप माना है तथा आप के दिव्यातिदिव्य नामामृत को ही परम कल्याण रूप कहा है। यदि आप कहें कि "मैंने तो जीवों के हितार्थ विविध अवतारों में विविध चेष्टाओं के द्वारा कर्म्म-योग, ज्ञान-योग, भक्ति-योग आदि नाना धर्म्मों को सिखाया, उससे यदि जीवों की दशा न सुधरी तो मैं लाचार हूँ। तो भी हे करुणामय प्रभु! करुणा परवश आप को इस प्रकार कहना क्या उचित है? क्यों कि आपकी अघटन-घटना पटीयसी निज शक्ति सब कुछ करने में समर्था है। आपने अब तक अपने प्रिय जीवों को "माता बालक" न्याय से वाह्य वस्तुओं से ही भुला कर निज निर्भयतर गोद सुख के सरस अनुभव तथा ब्रह्म दुर्ल्लभ निज प्रेम रूप दुग्धामृत पान से वञ्चित रक्खा है।

जब तक जीव प्रेम धन से धनी नहीं है अर्थात् उससे वञ्चित है तब तक वह रंक है भयभीत है, दुःखी है, आवागमन पर है तथा माया का किंकर है। यद्यपि आपने कृष्णावतार में राधिकादि प्रेयसीवर्ग, पिता मातादि गुरु वर्ग व श्रीदाम-सुदामादि सखावर्गों को लेकर निज परमप्रिय ब्रजभूमि में विविध प्रकार की लीला विलास द्वारा प्रेम का सरस आस्वादन किया साथ ही ब्रज के पशु, पक्षी, वृक्ष लतादि को भी निज सौन्दर्य, माधुर्य्य, लावण्यादि से हुलसाया था तथापि यह सब एक सीमा के भीतर ही था। ब्रज परकोटा के बाहिर न था। हे प्रभो अब तो ब्रज परकोटा के बाहिर उस महाप्रेम धन को उघाड़ कर जगत में बाँटना होगा। करुणा के महास्रोत को जीव जगत् में बहाना होगा, प्रेम महासागर में जगत् को डुबाना होगा। हे प्रभु श्रीकृष्ण! उस कारुण्याधिक्य के कारण आपको सब कोई महाप्रभु नाम से पुकारेंगे। अब तक तो आपने जीवों के विविध प्रकार के नृत्य गीत तमाशा देखे तथा स्वयं विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से दुष्टों को दमन करके उन्हें मोक्ष प्रदान किया किन्तु अब की बार तो आपको सब के आगे नाचना गाना होगा। शस्त्रास्त्र धारण के स्थान पर हाथ जोड़कर विनीत हो प्रेम महाधन वितरण करना होगा। अधिक तो क्या मार देने के बदले कहीं कहीं मार भी खाना होगी। इस प्रकार विविध चिन्ताऐं करते हुए करुणा भाराक्रान्त श्रीनारदजी वीणा झँकार करते करते द्वारका के लिये चल दिये। उधर श्रीद्वारिकानाथ निज परमप्रिया सत्यमाभाजू के महल में रात्रि बिताकर प्रभात समय श्रीरुक्मिणी देवी के भवन में पधारे वहाँ श्रीदेवीजी ने मित्रवृन्दा, नग्नजिता, सुशीला, सुवलादि सहचरी गणों के साथ प्राणनाथ के मंगलार्थ नाना प्रकार के पूर्णघट, घृतप्रदीपों की स्थापना पहिले से ही कर रखी थीं। अब विविध सुगंधि युक्त शीतल जल से प्राणनाथ के पाद प्रक्षालन कर पुष्पों से सज्जित शय्या पर बैठा कर प्रियतम के मनोहर चरण युगलों को अपने हृदय पर धारण कर अनुराग से देखती हुई रोने लगीं। जब प्रियतम ने विस्मित होकर उसका निगूढ़ कारण पूछा तो देवीजी ने रोते हुए कहा कि हे प्राणनाथ! आपका शुभागमन से मैं कृतार्थ हो गयी। आप मेरे परमप्रिय तथा प्राणों से भी अधिक हैं। किन्तु हे हृदयेश! आप के इन श्रीचरणों को मैं आप से भी अधिक समझती हूँ केवल इन चरणकमलों के मकरन्द रस पानार्थ ही ब्रह्मादिक देवता भी सब कुछ परित्याग कर भलोभित रहते हैं।

तथा इन मनोहर चरण कमलों की प्राप्ति के लिये सर्वस्व परित्याग कर नारदादि मुनिगण पथ के भिखारी बने हुए हैं। इन चरणकमलों के मकरन्द रस के आस्वादन के लिये स्वयं आप भी तो चाहते हैं। सुना है कि बाल्यकाल में आप इन चरणों को करारविन्द से मुखारविन्द में रख कर "इसमें क्या स्वाद है—मुनिगण पीयूषरस को छोड़ किस कारण से इन चरणकमल के मकरन्द रस के पानार्थ चाहते हैं,—मैं भी यह जानना चाहता हूँ" एतदर्थ इन्हें चूसते थे। इस जगत् में जो कुछ वस्तु विद्यमान है सो सब आपके गोचर हैं परन्तु केवल आप अपने चरण-कमलों के प्रेमरस को नहीं ही जानते, इस प्रकार से सरस मनोहर श्रीरुक्मिणी जी की यह अभूतपूर्व बातों को सुन कर प्रियतम अति विस्मिय होते हुए "फिर कहो आगे कहो" यह बारम्बार कहने लगे। श्रीदेवी फिर कहने लगीं कि हे प्रियतम! मैं जिस लिये रो रही हूँ सो आप नहीं जानते हैं। आपके श्रीचरणकमलों में क्या बल है उनमें क्या शक्ति है उनका क्या अनुभव है सो सब आप जानने में असमर्थ हैं।

क्योंकि जिसका चरण है वह उसे नहीं जानता है। आपके यह चरणकमल अन्यत्र उदय होंगे इसी कारण से मैं रोदन कर रही हूँ। हे प्रिय! आपके इन चरणकमलों का गंध जिस दिशा की सीमा पर्य्यन्त जाता है वहाँ के समस्त जीव जरा मृत्यु को प्राप्त नहीं होते। जो आपके पदकमल मकरन्दरस को पान करता है, उसका दिवानिशि परमानन्द से बीतता है। जो आपके चरण-कमलों में निरन्तर अनुराग के साथ मग्न रहता है, उसका चरण भी बड़ा भाग्य से उदय होता है। आप तो सबके ठाकुर हैं। इस संसार में आपका ठाकुर कौन हो सकता है। इन सब बातों को केवल एक मात्र राधिकाजी ही जानती हैं। आप का प्रेम कैसा है और उसमें क्या बल है तथा किस प्रकार उसका आस्वादन होता है उस आस्वादन में क्या सुख है, इन बातों को आप नहीं जान सकते हैं। उस प्रेम का आस्वादन सर्वतोरूपेण श्रीराधिकाजी ही करती हैं। भक्तगण उस परम मनोहर राधाभाव के यत् किंचित् आनुगत्य से आप आनन्दसागर को जानने में समर्थ होते हैं। ब्रह्मादिक देवता जिन लक्ष्मी के चरण-कमलों की कृपा को प्राप्त नहीं होते हैं, वह लक्ष्मीदेवी तो परम अनुराग के साथ निरन्तर आपकी चरण-कमल सेवा को चाहती है। लक्ष्मी में तो स्वसुख ही देखने में आता है। परन्तु श्रीराधा प्रेम सदा सर्वदा आपके ही सुख को चाहता है। इस प्रेम का चरम अनुभव एक मात्र राधिकाजी ही करती हैं। अहो! राधा सौभाग्य की कोई सीमा नहीं है, जगत् वशकारी आप राधा प्रेम में बँधे हुए हैं। अभी भी आप राधानाम का निरन्तर जाप करते हैं। शयन के समय स्वप्न में भी आप राधा-राधा रटते हैं, इसका हमने यथेष्ट अनुभव किया है। अभी भी देखिये राधिका नाम लेने से आपका नेत्र कमल छल-छल हो रहा है। यह उस राधा प्रेम का पराक्रम है। हे प्राणाधार! उस चरण-कमलों के विच्छेद के भय से मेरा प्राण व्याकुल हो रहा है। इस प्रकार प्रिया के वचन सुनकर श्रीद्वारकेन्द्र ने कुछ लज्जित होकर उनके मुख कमल देखते हुए तथा उनके चिबुक धारण कर कहा कि हे जीवनाधारे मेरा ऐसा ही विचार है। बलवान् राधा प्रेम ने मुझे उन्मत्त कर रखा है, मैं उस प्रेम का चिर ऋणी हूँ। उस ऋण को (लघु) हलका करने के लिये (अथवा उस राधा प्रेम को चाखने के लिये) मेरा एक मधुर अवतार होगा। जिससे मैं उस राधा प्रेम का क्या बल है उसे समझ सकूँ। ब्रज में उसका आस्वादन नहीं हो सका था। क्योंकि मैं तो प्रेम का विषय था। जिसका प्रेम वह स्वयं किस प्रकार आस्वादन करे। देवि! रोदन मत करो। मेरे उस मधुर अवतार में आप सबका भी प्रवेश होगा।

अब के अवतार में प्रेमधन आस्वादन कराने में किसी को वंचित नहीं करूँगा। आप तो मेरी साक्षात् हृदयेश्वरी हो। आप सब से मैं एक क्षण के लिये भी अलग नहीं हूँ। अनन्तर उसी समय में मुनि-

राज नारद जी का आगमन हुआ। वे कुछ चिन्तित थे। प्रभु ने चिन्ता का कारण पूछा। तब मुनिराज ने कहा प्रभो आप तो सब ही जानते हैं मैं अधिक क्या कहूँ। जीवों की दशा बहुत शोचनीय हो रही है। उन का उद्धार किस प्रकार होगा। अब श्रीकृष्ण ने हँस कर कहा कि हे मुनिराज ! क्या तुम समस्त बातों को भूल गये हो ? हाँ मैं भी आज रुक्मिणीजी के समक्ष प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि मैं एक मधुर अवतार धारण कर प्रेमसुख का आस्वादन करूँगा एवं सबको कराऊँगा। इस प्रकार कथोपकथन के उपरान्त श्रीनारद जी प्रसन्न होकर अपने गन्तव्य स्थान के लिये चल दिये।

दूसरा उपक्रम-चैतन्यचरितामृतादिक ग्रन्थ के आधार पर--

(२) हरिर्दृष्ट्वा गोष्ठे मुकुरगतमात्मानमतुलं, स्वमाधुर्य्यं राधाप्रियतरसखीवाप्तुमभितः ॥
अहो गौडे जातः प्रभुरपरगौरैकतनुभाग्, शचीसूनुः किं मे नयनसरणीं यास्यति पुनः ॥
(श्री श्रीरघुनाथदासगोस्वामिपाद)

एक दिवस ब्रजगोष्ठ के आँगन में वात्सल्यमयी माता श्रीयशोदाजी के विविध लालन से लालित, तथा उनके द्वारा विविध माला, चन्दन, गन्ध, वनोचित विविध अलंकारों से सुसज्जित लाल श्रीकृष्ण भोजन के उपरान्त गोचारण के लिये श्रीदाम, सुदाम, वसुदाम, रक्तक, पत्रकादि सखा-दास गणों के साथ वन को जा रहे थे। आप अनेक प्रकार की वनमाला पहिरे हुए थे। अलकावली में जुही की माला लिपटी हुई थी। जमुना की कोमल मृत्तिका और हरिचन्दन के तिलक से मस्तक सुशोभित था। मुखचन्द्र कोटि शरत् पूर्णचन्द्र की शोभा को तिरस्कार करता था। नयन युगल-प्रेयसीगण के अनुराग से ईषत् लालिमा एवं चञ्चलायमान थे, मानो लावण्य सुधा सागर में अनुराग पवन से चंचल दो नीलकमल खिले हों। जवा-कुसुम लालिमा को तुच्छ करने वाले होठ ताम्बूल राग से रञ्जित थे। अधर, बिम्बफल रक्तिमा की निन्दा करते हुए शोभायमान थे। वात्सल्यमयी माता किन्तु कोटि, अनन्त, अर्व्बुद प्राणों से भी प्रिय निज-पुत्र धन के कल्याणार्थ अनेकानेक मङ्गलचेष्टा करती रहती थीं। उस आँगन में चरुचन्द्रमा नामक कृष्ण का प्रियदर्पण भी रखा था। माता के द्वारा गोचारण वेश से सुसज्जित आपने उस दर्पण में अपना मुखार-विन्द देखा तथा परम विस्मय को प्राप्त हुए। केवल बिस्मय को ही प्राप्त नहीं हुए अपितु विचार सागर की नाना तरंगों में गोता खाने लगे। आपने मन में विचार किया कि मैं तो सौन्दर्य्य का पारावार रहित सागर हूँ, माधुर्य्य का असीम धूर्य्य हूँ, लावण्य की विशाल परिधि हूँ, शोभा का सार साम्राज्य हूँ। गुण समूह की गंभीर खान हूँ। मेरी सुन्दरता से चराचर त्रिजगत क्षुब्ध है-मुग्ध है, प्रकृति भावापन्न है। अधिकतु मेरी ही विलास रूप वासुदेव मूर्त्ति भी हृदय में क्षुब्ध है। मैं स्वयं भी अपने रूप पर मुग्ध हूँ। क्या मेरे रूप की कोई सीमा है ? यद्यपि मैं त्रिजगत् आकर्षण कारी कृष्ण हूँ तो भी राधिका के गुणों से आकर्षित हूँ। मैं तो रसराज हूँ परन्तु राधिका के महाभाव से जड़ा हुआ हूँ। मैं श्यामतमाल हूँ किन्तु राधिका कनकवेली से लिपटा हुआ हूँ। मैं सौन्दर्य्य का सागर हूँ श्रीराधिका किन्तु मेरे मन के विविध भाव तरङ्गों को उछालने के लिये सुधा परिपूर्ण पूर्णिमा का दिव्य चन्द्र है। मैं दिव्यकिशोर हूँ श्रीराधा दिव्य किशोरी है, मैं शक्तिमान हूँ परन्तु आल्हादिनी शक्ति राधिका की भाव-शक्ति समूह से निरन्तर आल्हादित हूँ। मैं दिव्यरत्नराशि हूँ किन्तु राधा कि भाव कसौटी से कसा हुआ हूँ। मैं श्याममेघ हूँ परन्तु विद्युत् रूप राधिका की अङ्ग कान्ति से ढका हुआ हूँ। हाय ! मैं तो निरन्तर राधा भाव से भावित हृदय हूँ। मेरे आगे, पीछे, दाऐं, बाऐं, ऊपर, नीचे सर्वत्र श्रीराधिका ही स्फूर्ति हो रही है। मेरा वनगमन तो केवल राधा के दर्शनार्थ ही होता है। अहो राधा का यह विशाल भाव मुझे पद पद में मोहित कर रहा है। मैं उससे अस-

मर्थ हो जाता हूँ । मैं इस विषय में लाचार हूँ । यदि मैं अनन्त स्वरूप हो अनन्त मुख से अनन्तवाणी द्वारा भी उस महान् राधा भाव का वर्णन करने बैठूँ तो भी उस का पार नहीं पाता । आस्वादन की बात तो दूर रही । अहो ! राधिका नवीनतमाल को देख कर मेरे भ्रम से आलिंगन करने को दौड़ती है । आकाश में नवीन मेघ को देख मेरा भ्रम से आलिंगन करने के लिये भुजा उठाकर उड़ने को चाहती है । क्षण काल में मेघ के अन्यत्र चलायमान हो जाने पर मेरे अन्यत्र गमन की शंका से मूर्च्छित हो धरती में गिरती है। मेरे दर्शन के समय पलकपात को देख विधाता को निन्दा करती हुई उससे पलक पात रहित मछली बनने के लिये प्रार्थना करती है । मेरे अदर्शन से क्षण काल भी उसके लिये कोटि कल्प के बराबर तथा मेरे दर्शन से परार्द्ध काल भी निमेश बराबर हो जाता है । उस महान राधाप्रेम का आस्वादन करने के लिये मैं निरन्तर लालायित हूँ, उस महान भाव-धन की प्राप्ति के लिये मैं भिखारी हूँ । उस महान् अनुराग सुधासागर के परम सुख को अनुभव करने के लिये मैं आतुर हूँ । हाय ! उस परम राधाप्रेम को मैं किस प्रकार आस्वादन करूँगा ?

वह परम राधाप्रेम किस प्रकार का है ? तथा उस में क्या माधुर्य्य है तथा उस प्रेम में आकर श्रीराधिका किस प्रकार सुख में विभोर हो जाती है—यह सब जानने के लिये व अनुभव का विषय करने के लिये मैं इच्छुक हूँ । हाय ! किन्तु यह सब तो मेरे लिये असम्भव है कारण मैं तो उस प्रेम का विषय हूँ और श्रीराधिका आश्रय है । विषय होकर आश्रय जातीय का आस्वादन करना अत्यन्त असम्भव है क्यों कि रस सिद्धान्त में दोनों विरोध धर्म्मी हैं । यदि मैं आश्रय जातिय का भाव लेता हूँ तो मैं विषय कहाँ ठहरुँगा ? यद्यपि मैं अघटन घटना पटीयसी निज परमा शक्ति से सब कुछ करने में समर्थ हूँ किन्तु यहाँ पर असमर्थ हूँ इसकी पूर्त्ति के लिये किसी अनिर्वचनीय उपाय का अवलम्बन करना होगा । श्रीराधा की भाव-कान्ति का आश्रय ही यहाँ एक मात्र परम उपाय है । श्रीराधा के भाव से मुझे भावित होना होगा, उसकी कान्ति से अपने को ढकना भी होगा । तब तो मैं गौरवर्ण का हो जाऊँगा तब उसमें क्या आपत्ति है क्योंकि राधा भाव आस्वादन के लिये मेरा जो गौरवर्ण अवतार होगा यह तो सर्वोपरि परम मधुर होगा । उससे ही मेरी अभिलषित तीनों वस्तुओं की पूर्त्ति होगी जो व्रज में न हो सकी । अहो मैं नन्दनन्दन राधिका भाव कान्ति को ले राधा बन कर अपने ही आप को आस्वादन करुँगा, आप ही अपने लिये रोऊँगा, हँसूगा, नाचूँगा, गाऊँगा, जिस प्रकार श्रीराधा मेरे आस्वादन के लिये करता है ठीक उसी प्रकार ऐसा विचार निश्चय कर भाव-समुद्र श्रीव्रजराजकुमार धैर्य्य धारण कर हस्तारविन्द में मुरली ले गोचारणार्थ बन को चल दिये ।

तीसरा उपक्रम—कापिलतन्त्र व स्वप्नविलास ग्रन्थ के आधार पर—

एक दिन निधुवन में रात्रि के शेष भाग में कृष्ण-प्राणा श्रीराधिका ने एक अनिर्वचनीय स्वप्न देखा तथा चौंकि भी उठी । आपका अधरविम्ब काँपने लगा । आप प्राण कोटि से भी अत्यन्त प्रिय प्राणाधार श्रीकृष्ण को मृदु मन्द स्वर से जगाने लगीं । श्रीकृष्ण भी अपने पीताम्बर को संभाल कर धीरे-धीरे अपने भुजों को प्रिया के गले में लपटाय कर मन्दहास्य करते हुए बैठ गये । अनन्तर श्रीराधिका कहने लगीं कि हे प्रियतम हे प्राणवल्लभ, हे प्राणाधार ! आज मैंने एक अद्भुत स्वप्न देखा है । हृदय उल्लासकारिणी कालिन्दी के तुल्य एक मनोहर नदी देखी है । वहाँ भी जमुना के बराबर पुलिन मौजूद था । जिस प्रकार इस वृन्दाबन के जमुना पुलिन में गोपांगनागण के साथ आपका हमारा नाना प्रकार रासादि नृत्यविलास हुआ करता है ठीक उसी प्रकार वहाँ भी अद्भुत नृत्य-विलास होते देखा । किन्तु उस नृत्य-विलास में कुछ विचित्रता थी । जिसमें मृदङ्गादि वाद्य समूह बजते थे । हे प्राणनाथ ! और भी अद्भुत देखा कि विद्युत् के

बराबर एक गौरवर्ण द्विजराज सुन्दर युवक अपने परिकरों में नृत्य करते हुए पृथिवी को प्रेम सागर में डुबा रहा था। कभी तो वह मनोहर युवक हा कृष्ण ! हा चितचोर ! हा हृदयेश्वर ! हा व्रजविहारि ! इस प्रकार पुकारता हुआ प्रलाप, रोदनादिक करता था। अश्रुओं की धारा से उसका मुख कमल भीग जाता था। पृथिवी भी कीचड़ रूप हो जाती थी और कभी हा राधे ! हा प्राणवल्लभे ! हा वृषभानुनन्दिनि ! हा वृन्दावनेश्वरि ! इस प्रकार कहकर दीर्घश्वास लेते हुए मूर्च्छित हो जाता था। कभी तो धैर्य्य धारण कर अपने प्रिय पार्षदों के बीच परम उल्लास से नृत्य करने लगता जिससे तृण से भी लेकर ब्रह्मा पर्य्यन्त समस्त जगत रोने लगते थे। प्रेम के वेग में श्रीअंग कभी तो तपायमान सुवर्ण पिंड के न्याय हो जाता था और कभी अंगों के सन्धिस्थल समूह खुल जाने से दीर्घाकार हो जाता था। अथवा कभी हस्त पदों के संकोचन हो जाने के कारण कूर्म्माकृति हो जाती थी। नेत्रों से अश्रुओं की धारा जलयंत्र (पिचकारि) के समान चलती थी। उस आश्चर्य स्वप्न को देख कर मेरी बुद्धि भ्रान्त हो गई, मैं सोचने लगी कि वह मनोहर युवक कौन है ? क्या प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण ही मेरे प्रेम में आकर मेरा नाम लेते हुए इस प्रकार रोदन कर रहे हैं। किम्वा प्रियभावापन्ना स्वयं राधिका मैं हूँ। यदि मैं ही हूँ तो मेरे प्राणाधार श्रीकृष्ण कहाँ हैं। यदि प्रियतम श्रीकृष्ण हैं तो मैं कहाँ हूँ। इस प्रकार विस्मय के साथ विचार करती हुई मैं फिर निद्रा को प्राप्त होगई। अनन्तर प्राणवल्लभ मन्द-मन्द मुसकराते हुए कहने लगे कि हे प्रिये ! आपके कौतुक के लिये मैंने रमेशादि अनेक मूर्त्तियाँ धारण कीं किन्तु वह सब आपके विस्मय का विषय न हो सकीं, मैं यह तो नहीं जानता कि किस कारण उस विप्र ने तुम को विस्मृत किया अथवा उस रूप को देख कर तुम्हारी इस प्रकार की भ्रांति क्यों हुई ? वह पुरुष कौन था ? तब प्राणवल्लभा श्रीराधिका कहने लगीं कि नहीं ! नहीं ! आप सब कुछ जानते हैं। नहीं तो मुसकाते नहीं। यह युवक आप ही हैं,क्योंकि त्रिजगत् में आपके बिना ऐसा कौन है ? जो मुझको मुग्ध कर सकता है। आप सत्य कहिये गोपन मत कीजिये। तब श्रीराधा के आग्रह से आप अपने विशाल वक्षस्थल में विराजित कौस्तुभमणि को प्रदीप्त कर उसमें स्वप्न के समस्त विषय प्रतिविम्बित कर दिखाये। अब श्रीराधिका उल्लसित होकर प्रिय से कहने लगीं कि प्रियतम ! आपकी बाल्यावस्था में नाम करण के समय मुनिराज, वेदज्ञ, गर्गमहोदय ने आकर आप के पिता व्रजराज जी के समक्ष कहा भी था कि आपके इस बालक का किसी समय एक महान् पीतवर्ण अवतार होगा। यह सत्य था इसमें रंचकमात्र भी सन्देह नहीं है। इसलिये यह स्वप्न सत्य भी था। इसमें मेरी कोई भ्रान्ति नहीं थी। वह पुरुष साक्षात् आप ही हैं।

अनन्तर श्रीकृष्ण ने कहा कि हे प्रिये ! ऐसा ही होगा, मैं तुम्हारी भावकान्ति को लेकर इस मधुर गौरांग रूप से सुरधुनी के तट पर नवद्वीप में सपरिकर अवतार लूँगा। बहुत दिन से अभिलषित आपके प्रेमसुख का अनुभव स्वयं करूँगा। आपका प्रेम कैसा है ? उसमें क्या माधुर्य्य है ? उस प्रेम में आकर आप किस प्रकार सुखी होती हो ? इन तीनों अपूर्त्त वाञ्छाओं को (जो व्रज में नहीं हो सकीं थी) पूर्त्ति करूँगा साथ ही चिरकाल से वञ्चित जीव जगत् को निज अनर्पितचरी प्रेम जिसे किसी ने किसी भी अवतार में अब तक नहीं दिया उसे प्रदान कर परम कृतार्थ करूँगा। इस प्रकार कह कर श्रीकृष्ण ने श्री-राधा को सरस आलिंगन दिया॥

इधर प्रेम पुजारी, प्रेम-परायण, ईश्वरावतार (महारुद्रावतार) शान्तिपुरनाथ, सीतापति श्री-अद्वैत प्रभु अपने भक्त परिकरों के साथ शान्तिपुर में गोपन रूप में विराजमान थे। वे जीवों के दुःख से दुःखी होकर निरन्तर प्रभु से प्रार्थना करते थे कि—हे प्रभो ! इन वहिर्मुख जीवों की क्या दशा होगी ?

आप कब अवतार लोगे ? गुरुदेव माधवेन्द्रपुरी पादने "शीघ्र ही आपके प्राकट्य होने की सूचना" दी थी। वह समय कब आवेगा ? इस प्रकार प्रार्थना करते हुए निरन्तर गंगाजल-तुलसीदल का प्रदान करते थे; कभी कभी "शीघ्र ही कृष्ण को लाकर तुम सबको गोचरीभूत कराता हूँ" इस प्रकार हुङ्कार करते हुए भक्तों को सान्त्वना देते थे, अथवा कभी करुणस्वर से रोदन करते थे। इधर गोलोकविहारी ब्रजनाथ उनके हुङ्कार से कम्पित होने लगे। उनके सुदृढ़ सिंहासन डुलायमान होने लगा। वे अब स्थिर न रह सके, क्यों कि लीला विलास के साथी परिकरगण तो यत्र तत्र धरा में अवतीर्ण हो गये थे। राधा भाव से विभावित आप राधिका कान्ति से ढक कर राधा के गौरांग रूप हो गये। गोलोक व ब्रजभूमि छोड़कर आप नवद्वीप धाम में शीघ्र ही प्रगट हुए। श्रीहरि का गौराङ्ग स्वरूप में अवतीर्ण होना एक महान् अद्भुत बात थी। इस विषय में महानुभावों ने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है--

राइ अङ्ग छटाय उदित भेल दश दिश श्याम भेल गौर आकार।
गौर भेल सखीगण गौर निकुंज वन राई रूपे चौदिके पाथार॥
गौर भेल सुक सारी गौर भ्रमर भ्रमरी गौर पाखि डाके डाले डाले।
गौर कोकिलगण गौर भेल वृंदावन गौर तरु गौर फल फुले॥
गौर जमुनाजल गौर भेल जलचर गौर सरस चक्रवाक।
गौर आकाश देखि गोरा चाँद तार साखी गौर तारा वेडि लाख लाख॥
गौर अवनी हैल गौरमय सब भेल राई रूपे चौदिक झाँपित।
नरोत्तमदास कय, अपरूप रूप नय दुहुँ तनु एकइ मिलित॥

अस्तु जिन महापुरुष की प्रेरणा से यह श्रीचैतन्य भागवत का प्रकाशन करने में हम प्रवृत्त हुए हैं, उन करुण हृदय, प्रेममय स्वरूप, संकीर्त्तन प्रचारक, श्रीगुरुदेव बाबाजि महाराज के साक्षात् विद्यमान में इस ग्रन्थ को उनके हस्त-कमलों में अर्पित नहीं करने पाये। तो भी नित्यधाम में विराजमान उन महापुरुष के उद्देश्य में इस ग्रन्थरत्न का समर्पण करके हम अपने को कृत्य-कृत्य समझते हैं। खेद की बात यह है कि जिन महोदय के ऊपर इस चैतन्यभागवत को हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित कराने के लिये श्रीगुरुदेव बाबाजी महाराज के द्वारा सौंपा गया था, वे महोदय हमारे बड़े गुरु-भ्राता, सर्वदा ब्रजभाव में विभोर, श्रीवृन्दावनशतक की अनुपम सरस व्याख्या करने वाले, श्रीयुक्त गौरांगदासजी महाराज भी गुरुदेव बाबाजी महाराज के साथ ही अपने नित्यधाम को पधार गये।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की प्रेरणा से तथा पूज्य श्रीगौरांगदास जी महाराज के उपदेश-शिक्षा अनुसार उन्हीं के अनुगत नन्दग्राम के निकटस्थ गिड़ोह ग्राम निवासी पण्डित रामलालजी ने इस "चैतन्यभागवत" का समग्र अनुवाद कर बहुत दिन पूर्व ही रक्खा था। श्रीगुरुगौरांग की पुनीत कृपा से इसके प्रकाशन में हम अब समर्थ हुए हैं।

कृष्णदास,
(कुसुमसरोवर वाले)
मथुरा।

रथयात्रा दिवस
सं०-२०१५

* श्री श्री कृष्णचैतन्यचन्द्रो जयति *

* श्री श्री नित्यानन्दचन्द्रो जयति *

श्री चैतन्य-भागवत

आदि खण्ड (प्रथम अध्याय)

आजानुलम्बितभुजौ कनकावदातौ, सङ्कीर्त्तनैकपितरौ कमलायताक्षौ ।
विश्वम्भरौ द्विजवरौ युगधर्मपालौ, वन्दे जगत्प्रियकरौ करुणावतारौ ॥१॥
नमस्त्रिकालसत्याय जगन्नाथसुताय च ।
सभृत्याय स-पुत्राय सकलत्राय ते नमः ॥ २ ॥

(श्री मुरारि गुप्तस्य श्लोकाः)

अवतीर्णौ स्वकारुण्यौ परिच्छिन्नौ सदीश्वरौ ।
श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्दौ द्वौ भ्रातरौ भजे ॥ ३ ॥
स जयति विशुद्धविक्रमः कनकाभः कमलायतेक्षणः ।
वरजानुविलम्बि-सद्भुजो वहुधा-भक्ति-रसाभि-नर्त्तकः ॥ ४ ॥
जयति जयति देवः कृष्णचैतन्यचन्द्रो, जयति जयति कीर्त्तिस्तस्य नित्या पवित्रा ।
जयति जयति भृत्यस्तस्य विश्वेशमूर्त्ते, जयति जयति नृत्यं तस्य सर्व-प्रियाणाम् ॥५॥
आद्ये श्रीचैतन्य-प्रिय-गोष्ठीर चरणे । अशेष प्रकारे मोर दण्ड-परणामे ॥१॥
तवे वन्दों श्रीकृष्ण-चैतन्य महेश्वर । नवद्वीपे अवतार नाम बिश्वम्भर ॥२॥

अनुवाद--जिनकी भुज युग आजानुलम्बित, जिनका श्री अङ्ग सुवर्ण सदृश उज्ज्वल और कमनीय, जिनके नयन-द्वय कमलदल सदृश विस्तीर्ण, जो श्री हरिनाम संकीर्त्तन के एक मात्र पिता (जन्म दाता), विश्व संसार के भरण पोषण कर्त्ता, युग धर्म पालक, जगत् के प्रियकारी, ब्राह्मणों के मुकुटमणि एवं करुणावतार हैं,मैं इन दोनों श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु की वन्दना करता हूँ ॥१॥हे नाथ विश्वम्भर ! आप त्रिकाल सत्य हैं,श्रीजगन्नाथ मिश्र के पुत्र हैं। मैं भृत्य, पुत्र (वात्सल्य पात्र)एवं कलत्र के सहित आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ करुणा उपादान से देह संगठित होने के कारण कारुण्य ही जिनका एक मात्र स्वरूप है, परिच्छिन्न से प्रतीयमान होकर भी जो दोनों सत् स्वरूप एवं ईश्वर हैं, मैं जगत् में अवतीर्ण उन श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु दोनों भ्राताओं के भजन करता हूँ ॥ ३ ॥ इस तृतीय श्लोक के आगे छापे के ग्रन्थ में एक श्लोक और अधिक मिलता है। जो अपरिमित विशुद्ध विक्रमशाली, स्वर्णकान्ति विशिष्ट, कमल दल लोचन, अति सुन्दर आजानुलम्बित षड्भुज युक्त एवं जो भक्तिरस मग्न होकर अभिनव नृत्य करते हैं, उन श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की जय हो ॥ ४ ॥ लीलामय श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र की जय हो, उनकी नित्य पवित्र कीर्त्ति की जय हो, जय हो, उस निखिल विश्व के ईश्वर के भृत्य वर्ग की जय हो, जय हो और उन प्रिय वर्ग के नृत्य की जय हो, जय हो ॥ ५ ॥ अनुवाद--प्रथम श्रीकृष्णचैतन्य प्रिय-परिवार के चरणों में मेरी अशेष प्रकार से दण्डवत् प्रणाम है ॥१॥ तदनन्तर श्रीकृष्णचैतन्य महेश्वर की बन्दना करता

'आमार भक्तेर पूजा आमा हैते बड़' । सेइ प्रभु वेदे भागवते कैला दढ़ ॥३॥

तथाहि–भा० ११।१६।२१ 'मद्भक्त पूजाभ्यधिका' ॥

एतेके करिल आगे भक्तेर बन्दन । अतएव आछे कार्य सिद्धिर लक्षण ॥४॥
इष्ट देव बन्दों मोर नित्यानन्द राय । चैतन्य-कीर्त्तन स्फुरे जाँहार कृपाय ॥५॥
सहस्र-वदन बन्दों प्रभु बलराम । जाँहार सहस्रमुख कृष्ण-जशो धाम ॥६॥
जे प्रभु चैतन्य-जश सहस्रेक मुखे । गाइते आछेन प्रभु संकर्षण रूपे ॥७॥
महा रत्न थुइ जेन महाप्रिय स्थाने । जशो रत्न भाण्डार श्री अनन्त वदने ॥८॥
अतएव आगे बलरामेर स्तवन । करिले से मुखे स्फुरे चैतन्य कीर्त्तन ॥९॥
सहस्रेक फणाधर प्रभु बलराम । जतेक करये प्रभु सकल उद्दाम ॥१०॥
हलधर महाप्रभु प्रकाण्ड शरीर । चैतन्य चन्द्रेर रसे मत्त महा धीर ॥११॥
ततोधिक चैतन्येर प्रिय नाहि आर । निरवधि सेइ देहे करेन विहार ॥१२॥
ताँहान चरित्र जेवा जने शुने गाय । श्रीकृष्ण चैतन्य ताँरे परम सहाय ॥१३॥
महा प्रीत हन ताँने महेश पार्वती । जिह्वाय स्फुरये ताँर शुद्धा सरस्वती ॥१४॥
पार्वती-प्रभृति नवार्बुद नारी लैया । सङ्कर्षण पूजे शिव उपासक हइया ॥१५॥
पञ्चम स्कन्धेर एइ भागवत कथा । सर्व वैष्णवेर वन्द्य बलराम गाथा ॥१६॥

हूँ जोकि श्रीविश्वम्भर नाम धारण से श्रीनवद्वीप में अवतीर्ण हुए ॥२॥ 'मेरे भक्त की पूजा मुझसे बड़ी है' यह बात प्रभु ने वेद एवं भागवत में दृढ़ की है ॥ ३ ॥ 'मेरे भक्त की पूजा मुझ से अधिक है' ॥ इसलिये पहले भक्त की वन्दना की है,अतएव यह कार्य-सिद्धि का लक्षण है ॥४॥ पश्चात् अपने इष्टदेव श्रीनित्यानन्द-राय प्रभु की बन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा से श्रीचैतन्यचन्द्र के नाम,रूप, गुण एवं लीला कीर्त्तन की स्फूर्ति होती है ॥ ५ ॥ (अभिन्न नित्यानन्द) सहस्र वदन प्रभु बलराम की वन्दना करता हूँ, जिनके सहस्रों मुख श्रीकृष्ण-यश के निवास स्थान हैं । अतएव भाण्डार स्वरूप हैं ॥६॥ जो प्रभू श्रीसंकर्षण रूप धारण कर अपने सहस्र मुख से श्रीचैतन्यचन्द्र का यश गा रहे हैं ॥ ७ ॥ जिस प्रकार महारत्नों को अपने प्रिय के पास रक्खा जाता है उसी प्रकार से यश रत्न-भाण्डार श्रीअनन्त के वदन में रक्खा है ॥ ८ ॥ अतएव प्रथम प्रभु बलराम का स्तव करने से स्तवनकारी के मुख में श्रीचैतन्यचन्द्र की स्फूर्ति होती है ॥ ९ ॥ सहस्र फणधारी प्रभु बलराम हैं,श्रीअनन्त रूप में आप जो कुछ करते हैं,सब प्रेमोन्मद से पूर्ण हैं अतएव वे विधि-निषेध के अतीत हैं ॥ १० ॥ श्री हलधर महाप्रभु विशाल स्वरूप हैं, श्रीचैतन्यचन्द्र के रस में मत्त एवं महाधीर हैं ॥ ११ ॥ उनसे अधिक श्रीचैतन्यचन्द्र का और कोई प्रिय नहीं है, आप निरन्तर उस देह में विहार करते हैं ॥ १२ ॥ जो कोई उनके चरित्र श्रवण एवं गान करते हैं,उनकी श्रीकृष्णचैतन्य परम सहायता करते हैं ॥१३॥ उनके प्रति महेश पार्वती जी महान् प्रीति करते हैं एवं उसकी जिह्वा पर श्रीसरस्वतीजी की स्फूर्ति होती है॥१४॥ श्रीशिव-जी भी पार्वती आदि नौ अरब नारियों के साथ भक्ति-पूर्वक श्रीसङ्कर्षणजी की पूजा करते हैं ॥१५॥ यह कथा श्रीभागवत के पञ्चम स्कन्ध में वर्णित है । श्रीबलरामजी की कथा सर्व वैष्णववृन्द द्वारा वन्दनीय है ॥१६॥

तॉंन रास-क्रीड़ा-कथा परम-उदार। वृन्दावने गोपी सने करिला विहार ॥१७॥
दुइ मास बसन्त माधव-मधु-नामे। बलराम रास-क्रीड़ा कहये पुराणे ॥१८॥
सेइ सकल श्लोक एइ शुन भागवते। श्री शुक कहेन शुने राजा परीक्षिते ॥१९॥

तथाहि (भा० १०।६५।१७-१८-२१-२२)

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च। रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन् ॥२०॥
पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदी-गन्ध-वायुना। यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥ २१ ॥
उपगीयमानो गन्धर्वैर्वनिताशोभिमण्डले। रेमे करेणुयूथेशो माहेन्द्र इव वारणः ॥ २२ ॥
नेदुर्दुन्दुभयो व्योम्नि ववृषुः कुसुमैर्मुदा। गन्धर्वा मुनयो रामं तद्वीर्यैरीडिरे तदा ॥ २३ ॥

जे स्त्री सङ्ग मुनिगणे करेन निन्दन। तानाओ रामेर रासे करेन स्तवन ॥२४॥
जाँर रासे देवे आसि पुष्प वृष्टि करे। देवे जाने भेद नाहि कृष्ण हलधरे ॥२५॥
चारि वेदे गुप्त बलरामेर चरित। आमि कि बलिब सब पुराणे विदित ॥२६॥
मूर्ख दोषे केहो केहो ना देखि पुराण। बलराम रासक्रीड़ा करे अप्रमाण ॥२७॥
एक ठाँइ दुइ भाइ गोपिका-समाजे। करिलेन रास-क्रीड़ा वृन्दावन माँझे ॥२८॥

(तथाहि भा० १०।३४।२० से २३)

कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः। विजह्रतुर्व्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रज-योषिताम् ॥२९॥

उनकी परम सुन्दर रास-क्रीड़ा है जिसमें कि जिन्होंने श्रीवृन्दावन में गोपियों के साथ विहार किया है ॥१७॥ बसन्त ऋतु के मधु-माधव (चैत्र-वैशाख) नामक दो महीने में रासक्रीड़ा हुई। बलरामजी की उस रास-क्रीड़ा का पुराण वर्णन करते हैं ॥१८॥ (प्रमाण के लिये) श्रीमद्भागवत पुराण में से उस विहार के ये श्लोक सुनिये, जिनको श्रीशुकदेव जी ने वर्णन किया है और राजा परीक्षित ने सुना है ॥ १९ ॥ भगवान् श्रीराम (बलराम) निशा-काल में गोपीजन के सङ्ग रति-केलि का विस्तार करते हुए, चैत्र व वैशाख दोनों महीनें श्रीवृन्दावन में निवास करने लगे ॥२०॥ श्री बलराम पूर्णचन्द्र की किरण जाल से और कुमुद गंधयुक्त वायु सेवित श्रीयमुनाजी के उपवन में स्त्रीगणों से परिवृत होकर रमण करने लगे ॥२१॥ हस्तिनी दलपति इन्द्रहस्ती ऐरावत जैसे अनुरागवती युवतीगणों से सुशोभित मण्डल के बीच में अवस्थित होकर रमण करने लगे। उस समय गन्धर्व समूह उनके गुणगान में प्रवृत्त हुए ॥ २२ ॥ उस समय आकाश में ध्वनि होने लगी, गन्धर्वगण आनंदित होकर पुष्प वर्षा करने लगे, मुनिजन पराक्रम माहात्म्य कीर्त्तन करते हुए श्रीराम के स्तव करने लगे ॥२३॥ जो मुनिजन जिस स्त्री सङ्ग करने वाली की निन्दा करते हैं, वही मुनिजन बलरामजी के उसी (वनिताओं से शोभा प्राप्त) विहार की स्तुति करते हैं ॥ २४ ॥ देवताओं की दृष्टि में कृष्ण और बलराम में कोई भेद नहीं है, जिनके रास में देवतागण आकर पुष्प वृष्टि करते हैं ॥ २५ ॥ श्री बलराम जी का चरित्र चारों वेदों का गुप्त धन है, इसको मैं ही क्या कहता हूँ, सब पुराणों में प्रसिद्ध है ॥ २६ ॥ परन्तु मूर्खता दोष के कारण कोई-कोई मनुष्य पुराण अध्ययन न करके बलरामजी की रास-क्रीड़ा को असत्य मानते हैं ॥२७॥ दोनों भाई (कृष्ण-बलराम) श्रीवृन्दावन के एक ही स्थान पर गोपवनिताओं के मण्डल में रास-विहार करते हैं ॥ २८ ॥ हे राजन्! एक समय महान् विक्रमी श्रीकृष्ण एवं श्री बलराम उन वनिताओं के मध्यगत होकर

उपगीयमानौ ललितं स्त्रीरत्नैर्बद्धसौहृदैः । स्वलंकृतानुलिप्ताङ्गौ स्रग्विणौ विरजोऽम्बरौ ॥३०॥
निशामुखं मानयन्तावुदितोडुप-तारकम् । मल्लिका-गन्ध-मत्तालि-जुष्टं कुमुद-वायुना ॥३१॥
जगतुः सर्व्वभूतानां मनः श्रवण-मङ्गलं । तौ कल्पयन्तौ युगपत् स्वर-मण्डल-मूर्च्छितम् ॥३२॥

भागवत शुनि जार रामे नहे प्रीत । विष्णु वैष्णवेर पथे से जन वर्ज्जित ॥ ३३ ॥
भागवत जे ना माने से जवन सम । तार शास्ता आछे जन्मे जन्मे प्रभु जम ॥३४॥
एवे केहो केहो नपुंसक वेशे नाचे । बले बलराम रास कौन शास्त्रे आछे ॥ ३५ ॥
कोनो पापी शास्त्र देखिलेओ नाहि माने । एक अर्थ अन्य अर्थ करिया बाखाने ॥३६॥
चैतन्य चन्द्रेर प्रिय-विग्रह बलाइ । तान-स्थाने अपराधे मरे सर्व ठाँइ ॥ ३७ ॥
मूर्त्ति भेद आपने हयेन प्रभु दास । से सब लक्षण अवतारेइ प्रकाश ॥ ३८ ॥
सखा, भाइ, व्यजन, शयन, आवाहन । गृह, छत्र, बस्त्र, जत भूषण आसन ॥३९॥
आपने सकल रूपे सेवेन आपने । जारे अनुग्रह करे, पाइ सेइ जने ॥ ४० ॥

तथाहि यामुनमुनि-विरचितस्तोत्रे (४० नम्बर) अथवा अनन्तसंहितायां धरणीशेषसम्वादे--
"निवास-शय्यासनपादुकांशुकोपधानवर्षातपवारणादिभिः ।
शरीरभेदैस्तव शेषतां गतै, र्यथोचितं शेष इतीरितो जनैः ॥"

निशा काल में वन में विहार करते हैं ॥ २९ ॥ वे सब स्त्री-रत्न, बद्ध सौहृद होकर, ललित स्वर से, उन दोनों के गुण-गान करने लगीं । वे दोनों भाई सुन्दर रूप से अलंकृत एवं दोनों के बाहु चन्दन से अनुलिप्त थे और गलदेश में माला एवं कटितट में निर्मल वसन पहने हुए थे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! उसी निशा के प्रारम्भ में चन्द्र एवं तारका निकर उदित हुए थे, मल्लिका पुष्प के सौरभ से अलिकुल मत्त होकर मँड़राते थे और कुमुद संसर्गी पवन मन्द-मन्द प्रवाहित होती थी, अतएव राम एवं कृष्ण निज मङ्गल विहार से उन सभी के सत्कार करने लगे ॥ ३१ ॥ तत्पश्चात् दोनों मिलकर अन्य जनों के असाध्य होने पर भी, एक बार में ही स्वर मण्डल मूर्च्छना रचना कर जिस प्रकार से मन और श्रवण का मङ्गल होता है उसी प्रकार से गाने लगते हैं ॥३२॥ जो व्यक्ति भागवत सुनकर भी श्रीबलरामजी के प्रति प्रीति-भाव न रक्खे वह विष्णु एवं वैष्णवों के पथ से भ्रष्ट है ॥ ३३ ॥ और जो भागवत को नहीं मानता है, वह यवन सदृश है जन्म-जन्म में उसका दण्ड विधान उसके प्रभु यमराज द्वारा होता है ॥ ३३ ॥ अब भी कोई-कोई व्यक्ति हिजड़े के वेश से नाचता है (हिजड़ा जिस तरह रति-रस को न जानकर भी लोगों के मुख से सुनकर भाव प्रदर्शित करता है, उसी प्रकार वह आदमी भी शास्त्र मर्म को न जानकर कहता फिरता है कि बलराम की रास-क्रीड़ा तो कहीं नहीं लिखी इत्यादि) और कहता है कि "बलराम का रास किस शास्त्र में है ?" ॥ ३४ ॥ कोई-कोई पापीजन तो शास्त्र देखकर भी नहीं मानते हैं, वे एक अर्थ का दूसरा अर्थ करके वर्णन करते हैं ॥ ३५ ॥ श्री बलरामजी (श्री नित्यानन्द) श्रीचैतन्यचन्द्रजी की प्रिय-विग्रह हैं, इनके निकट अपराधी होकर ,वे सर्वत्र ही दुःख पाकर मरते हैं ॥ ३६-३७ ॥ प्रभु (श्रीचैतन्यचन्द्र) दूसरी मूर्त्ति धारण कर आपही दास बन गये हैं, इस (दास-मूर्त्ति) के सब लक्षण अवतार में ही प्रकाश पा रहे हैं ॥ ३८ ॥ आप (श्रीनित्यानन्द) सखा, भाई, व्यजन, शय्या, वाहन, गृह, छत्र, वस्त्र, सम्पूर्ण भूषण, आसन इन सब रूपों से अपनी (श्रीचैतन्य-चन्द्र की) सेवा करते हैं, आप (श्रीनित्यानन्द) जिसके ऊपर अनुग्रह करते हैं वही इस (तत्त्व) को समझ सकता है ॥ ३९-४० ॥

अनन्तेर अंशे श्रीगरुड़ महावली । लीलाय वहेन कृष्ण हइ कुतुहली ॥ ४१ ॥
कि ब्रह्मा, कि शिव, कि सनकादि-कुमार । व्यास, शुक, नारदादि 'भक्त'नाम जाँर ॥४२॥
सभार पूजित श्रीअनन्त महाशय । सहस्र-वदन प्रभु भक्ति-रसमय ॥ ४३ ॥
आदिदेव महायोगी ईश्वर वैष्णव । महिमार अन्त इहा ना जानये सब ॥ ४४ ॥
सेवन शुनिला एवे शुनो ठाकुराल । आत्म-तन्त्रे जेन मते वैसेन पाताल ॥ ४५ ॥
श्रीनारद गोसाञि तुम्बुरु करि संगे । जे यश गायेन ब्रह्मा स्थाने श्लोक बन्धे ॥४६॥

तथाहि (भा० ५-२५ । ६ से १३)

उत्पत्ति-स्थिति-लय-हेतवोऽस्य कल्पाः, सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयासन् ।
यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन् , नानाधात् कथमुह वेद तस्य वर्त्म ॥ ४७ ॥
मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं, सं शुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ।
यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्यामादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्य्यः ॥ ४८ ॥
यन्नाम श्रुतमनुकीर्त्तयेदकस्मात् , आर्त्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ।
हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं, कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥ ४९ ॥

हे श्रीशेषजी ! आपको शेष नाम से पुकारना यथोचित ही है, क्योंकि आपने वास-स्थान, शय्या, आसन, पादुका, वस्त्र, तकिया एवं छत्र आदि रूप से दूसरा शरीर धारण कर, प्रभु की सेवा के समस्त उपकरणों का शेष (अन्त) कर दिया है ॥४०॥ श्री अनन्तदेव (शेष) जी के अंश महावली श्रीगरुड़ भी आनन्दयुक्त होकर अनायास (खेल) में ही श्रीकृष्ण को यत्र-तत्र वहन करते हैं ॥ ४१ ॥ क्या ब्रह्मा, क्या शिव, क्या सनकादि चारों कुमार, क्या व्यास, क्या शुकदेव, क्या नारद आदि जो 'भक्त' नामधारी हैं ॥ ४२ ॥ भक्ति-रसमय महाशय, सहस्र वदनयुक्त प्रभु श्रीअनन्तदेव उन (ब्रह्मा-शिवादि) सबके पूजित हैं ॥ ४३ ॥ आप आदिदेव हैं, महायोगी हैं, ईश्वर हैं, विष्णुभक्त हैं और महिमा की पराबधि हैं। इन सब बातों को सब लोग नहीं जानते हैं ॥ ४४ ॥ हे श्रोतागण ! आपने अब तक श्रीअनन्तदेव का सेवकत्व सुना, अब प्रभुत्व सुनिये (जिसके द्वारा आपको मालूम पड़ेगा कि) आप कैसे आत्म-तन्त्र भाव से पाताल में विराज रहे हैं ॥ ४५ ॥ जिनके यश को श्रीनारद गोस्वामी श्लोकों द्वारा तुम्बुरु नामक गन्धर्व पति को साथ लेकर श्रीब्रह्मा जी की सभामें गाते हैं ॥ ४६ ॥ यथा— इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारण स्वरूप सत्त्वादि गुन त्रय, जिनके कटाक्ष मात्र से अपने-अपने कार्य में समर्थ हुए हैं, जिनका स्वरूप अनादि एवं अनन्त है। जो एक मात्र वस्तु स्वरूप होकर भी अपने में नाना कार्य प्रपञ्च को विधान किये हैं उन ब्रह्मरूपी भगवान का तत्त्वको लोग कैसे जान सकते हैं ॥ ॥ ४७ ॥ और जिनमें सत् असत् वस्तु समूह प्रकाश पाते हैं, जो उदार वीर्य प्रभु अस्मदादि भक्तजन के प्रति अतिशय कृपाको प्रकाश कर, शुद्ध सत्व मूर्त्ति को धारण किये हैं, निज आत्मीय-जनों के मन को वश करने के लिये, जिनसे सर्व मङ्गलमय लीला पराक्रम महा बलवान् सिंह भी पढ़ा है ॥ ४८ ॥ और जिनके मङ्गलमय स्वरूप नाम,दूसरों के मुख से श्रवण कर, पीड़ित एवं पतित-जन भी, यदि अकस्मात् अथवा परिहास क्रम से भी एक बार उच्चारण करें, तो उस व्यक्ति से भी अन्य प्राणियों के अशेष कलुष सद्य विनष्ट होते हैं और उच्चारण करने वाले मनुष्य जो स्वयं शुद्ध होते हैं, इसके बारे में और कहना ही क्या है ? अतएव मुमुक्षु जन उस भगवान् को छोड़कर और किसका आश्रय ग्रहण

मूर्द्धन्यर्पितमणुवत् सहस्र मूर्द्धनो, भूगोलं सगिरि-सरित्-समुद्र सत्त्वम् ।
आनन्त्यादविमित-विक्रमस्य भूम्नः, को वीर्य्याण्यपि गणयेत् सहस्रजिह्वः ॥ ५० ॥
एवं प्रभावो भगवाननन्तो, दुरन्तवीर्य्योरुगुणानुभावः ।
मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो, यो लीलया क्ष्मां स्थितये विभर्त्ति ॥ ५१ ॥

सृष्टि, स्थिति, प्रलय सत्त्वादि जत गुन । जाँर दृष्टिपाते हय, जाय पुनः पुन ॥ ५२ ॥
अद्वितीय रूप, सत्य, अनादि, महत्त्व । तथापि अनन्त हये, के बुझे से तत्त्व ॥ ५३ ॥
शुद्ध-सत्त्व-मूर्ति प्रभु धरे करुणाये । जे विग्रहे सभार प्रकाश सुलीलाये ॥ ५४ ॥
जाँहार तरङ्ग शिखि सिंह महाबली । निज-जन मनोरञ्जे हइ कुतुहली ॥ ५५ ॥
जे अनन्त नामेर श्रवण-सङ्कीर्त्तने । जे ते मते केने नाहि बोले जेते जने ॥ ५६ ॥
अशेष जन्मेर वन्ध छिण्डे सेइ क्षणे । अनएव वैष्णव ना छाड़े कभू ताने ॥ ५७ ॥
शेष वइ संसारेर गति नाहि आर । अनन्तेर नामे सर्व्व जीवेर उद्धार ॥ ५८ ॥
अनन्ता पृथिवी, गिरि-समुद्र-सहिते । जे प्रभु धरये शिरे, पालन करिते ॥ ५९ ॥
सहस्र फणार एक फणे विन्दु जेन । अनन्त विक्रम, ना जानये आछे हेन ॥ ६० ॥

करेंगे ॥ ४९ ॥ अहो ! जिनके सहस्र मस्तक हैं और उनमें से एक मस्तक के ऊपर नदी, सागर, गिरि एवं प्राणियों के सहित यह निखिल भूमण्डल स्थित है और अनन्त वीर्य होने से तो प्रभु अपरिमित हैं, ऐसा कौन व्यक्ति है जो सहस्र जिह्वा लाभ करके भी उस महाकाय, बहुरूप, महावीर्य परमेश्वर के वीर्य की गणना कर सके ? ॥५०॥ अहो ! भगवान् अनन्तदेव का ऐसा प्रभाव है कि उनके बल और अनुभव का अन्त नहीं है, किन्तु आप ऐसे होकर भी इस पृथ्वी के नीचे अवस्थित होकर, लोक स्थिति के लिये इसको धारण किये हुए हैं, उनका आधार कोई भी नहीं है, आप ही अपने आधार स्वरूप हैं ॥ ५१ ॥ जिनकी दृष्टिपात मात्र से बारम्बार सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय होती है,सत्त्व आदि सर्व गुण, कार्य-कारिता एवं विराम को प्राप्त होते हैं तथा जो अद्वितीय रूप, सत्य, अनादि और सर्व महत्ता के आधार हैं, फिर वही प्रभु अनन्त रूप को क्यों धारण किये हुए हैं ? इस तत्त्व को कौन जानता है ?॥५२-५३॥वह प्रभु करुणा करके शुद्ध सत्त्व मूर्त्तिको धारण किये हुए हैं और सुलीलावश उनके शरीर में सत्-असत् वस्तु समूह प्रकाश पाते हैं ॥ ५४ ॥ महा बलवान सिंह भी जिनकी लीला-तरङ्ग को सीखकर आनन्द पूर्वक आत्मीय जनों का मनोरञ्जन करता है ॥५५॥ जिन श्रीअनन्तदेव का नाम (दूसरों के मुख से) श्रवण कर, कीर्त्तन (उच्चारण) करने से, चाहे उसे कैसा भी (रोगी व पतित आदि) मनुष्य किसी भी प्रकार (अकस्मात् व परिहासादि से) क्यों न उच्चारण करे ॥ ५६ ॥ उच्चारण करने वाले के द्वारा अन्य जनों के भी अशेष जन्मों के बन्धन सद्य विनष्ट होते हैं। इसीलिये वैष्णव जन श्रीअनन्तदेव का आश्रय नहीं त्यागते हैं ॥ ५७ ॥ श्री 'शेष' जी के सिवाय इस संसार का और कोई रक्षक नहीं है । श्री 'शेष' जी के नाम से सब जीवों का उद्धार होता है ॥५८॥ वे प्रभु अपने सहस्र फणों में से एक फण के ऊपर गिरि एवं समुद्र सहित यह निखिल भूमण्डल, पालन करने के लिये धारण किये हुए हैं ॥ ५९ ॥ अनन्त विक्रम प्रभु (शेषजी) सहस्र फणों में एक फण के ऊपर धारण कर उसको विन्दु की तरह भी अनुभव नहीं करते हैं ॥ ६० ॥ वे आदिदेव, महीधर श्रीशेषजी अपने सहस्रों मुखों

सहस्र बदने कृष्ण-जश निरन्तर । गाइते आछेन आदि-देव, महीधर ।। ६१ ।।

* श्रीरागः *

कि आरे राम गोपाले वाद लागियाछे ।

ब्रह्मा रुद्र सुर सिद्ध, मुनीश्वर, आनन्दे देखिछे ।। ध्रु० ।।

गायेन अनन्त, श्रीजशेर नाहि अन्त । जय भंग कारु नाहि दोंहे वलवन्त ।। ६२ ।।

अद्यापिह शेष-देव सहस्र-श्रीमुखे । गायेन चैतन्य-जश अन्त नाहि देखे ।। ६३ ।।

लाग वलि जाय वेगे सिन्धु तरिवारे । जशेर सिन्धु नादेय कूल अधिक अधिक बाढ़े ।६४।

तथाहि (भा० २।७।४०) नारदं प्रति ब्रह्म-वाक्यं--

नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते, मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽवरें ये ।
गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ।।६५।।

पालन निमित्त हेन प्रभु रसातले । आछे महाशक्ति-धर निज कुतूहले ।।६६।।

ब्रह्मार सभाय गिया नारद आपने । एइ गुण गायेन तुम्बुरु-वीणा-सने ।.६७।।

ब्रह्मादि विह्वल एइ जशेर श्रवणे । इहा गाइ नारद पूजित सर्वं स्थाने ।।६८।।

कहिलाङ एइ किछु अनन्त प्रभाव । हेन प्रभु नित्यानन्दे कर अनुराग ।।६९।।

से निरन्तर कृष्ण-यश गा रहे हैं ।। ६१ ।। अरे भाई देखो ! अनन्तदेव से अभिन्न श्रीवलराम और श्रीगोपालजी में कैसी होड़ा-होड़ी लग रही है.जिसको ब्रह्मा व शिवादि देवगण एवं सिद्ध, मुनीश्वर आनन्द पूर्वक देखते हैं । (यहाँ दो पक्ष हैं प्रथम पक्ष-श्रीअनन्तदेव, द्वितीय पक्ष-श्रीप्रभु का अनन्त यश) श्रीअनन्तदेव गान करते है, उधर प्रभु के श्रीयश का अन्त नहीं है, दोनों पक्ष ही बलशाली हैं, किसी की हार एवं जीत नहीं होती है ।।६२।।आज तक भी श्रीशेषदेव अपने सहस्रों मुख से श्रीचैतन्य-यश गाते हैं,लेकिन अन्त होता हुआ नहीं देखते हैं ।।६३।। शेषजी श्रीचैतन्यचन्द्र के यश सिन्धु को पार करने के लिये वेग पूर्वक चलते हैं, परन्तु यशसिन्धु अधिकाधिक वढ़ता ही जाता है और पार वालों को किनारे पर नहीं आने देता है ।। ६४ ।। हे नारद ! उस पुरुष की माया के वल का अन्त मैं नहीं जानता हूँ और तुम्हारे अग्रज सनकादि मुनिगण भी नहीं जानते हैं एवं आदिदेव 'शेष' जी सहस्र वदनों से उनके गुण-गान करते हुए आज पर्यन्त भी पार नहीं पाते हैं । तव फिर अन्य की तो बात ही क्या है ।। ६५ ।। परम शक्तिशाली ऐसे प्रभु (शेषजी) जगत की रक्षा के लिये आनन्द पूर्वक रसातल में विराजित हैं ।। ६६ ।। इसी गुण को स्वयं नारदजी ने ब्रह्मा की सभा में जाकर तुम्वुरु एवं वीणायन्त्र के साथ गान किया है ।। ६७ ।। इस (श्रीबलराम मूल स्वरूप के तत्त्व श्रीअनन्तदेव के) यश को गाने के कारण ही श्रीनारदजी सब जगह पूजे जाते हैं और इस यश को श्रवण करके ब्रह्मादि भी विभोर रहते हैं ।। ६८ ।। यह श्रीअनन्तदेव का कुछ प्रभाव (यश) कहा, हे भाइयो ! ऐसे श्रीनित्यानन्द प्रभु से अनुराग कीजिये ।। ६९ ।। जो संसार से पार होकर, भक्ति-सागर में डूबना चाहे उसको अवश्य श्रीनित्यानन्द चन्द्र का भजन करना चाहिए ।। ७० ।। श्रीग्रन्थकार कहते हैं--श्रीवैष्णवों के चरणों में मेरा यही निवेदन है कि मुझको प्रत्येक जन्म में (सर्वदा) श्रीबलराम (श्रीनित्यानन्द) प्रभु (स्वामी) मिलें ।। ७१ ।। जिस प्रकार द्विज, विप्र, ब्राह्मण में नाम मात्र का भेद है, उसी प्रकार श्रीनित्यानन्द, श्रीअन-

संसारेर पार हइ भक्तिर सागरे । जे डूबिब से भजुक निताइ चाँद रे ॥७०॥
वैष्णवेर पाये मोर एइ मनस्काम । जन्मे जन्मे प्रभु मोर हउ बलराम ॥७१॥
द्विज, विप्र, ब्राह्मण जेहेन नाम भेद । एइ मत नित्यानन्द, अनन्त, बलदेव ॥७२॥
अन्तर्जामी नित्यानन्द बलिला कौतुके । चैतन्य-चरित्र किछु लिखिते पुस्तके ॥७३॥
चैतन्य-चरित स्फुरे शेषेर कृपाय । जशेर भाण्डार वैसे शेषेर जिह्वाय ॥७४॥
अतएव जशोमय-विग्रह अनन्त । गाइल ताहान किछु पाद पद्म द्वन्द्व ॥७५॥
चैतन्य चन्द्रेर पुण्य श्रवण चरित । भक्त प्रसादे से स्फुरे जानिह निश्चित ॥७६॥
वेद-गुह्य चैतन्य-चरित केवा जाने । ताहा लिखि, जाहा शुनियाछि भक्त-स्थाने ॥७७॥
चैतन्य कथार आदि अन्त नाहि देखि । ताहान कृपाय जे बोलायेन ताहा लेखि ॥७८॥
काष्ठेर पुतली जेन कुहके नाचाय । एइमत गौरचन्द्र मोरे जे बोलाय ॥ ७९ ॥
सर्व वैष्णवेर पाये मोर नमस्कार । इथे अपराध किछु नहुक आमार ॥ ८० ॥
मन दिया शुन भाइ श्रीचैतन्य कथा । भक्त संगे जे जे लीला कैला जथा जथा ॥८१॥
त्रिविध चैतन्य लीला आनन्देर धाम । आदिखण्ड, मध्यखंड, शेषखंड नाम ॥८२॥
आदिखंडे प्रधानतः विद्यार विलास । मध्यखंडे चैतन्येर कीर्त्तन प्रकाश ॥ ८३ ॥
शेषखंडे सन्यासी रूपे नीलाचले स्थिति । नित्यानन्द-स्थाने समर्पिया गौड़-क्षिति ॥८४॥

न्तदेव और श्रीबलराम में नाम मात्र का भेद है॥ ७२ ॥ श्रीग्रन्थकार कहते हैं--अन्तर्यामी श्रीनित्यानन्द प्रभु कौतुक पूर्वक मुझ से, कुछ 'चैतन्य-चरित्र' पुस्तक में लिखने के लिये बोले ॥ ७३ ॥ श्रीशेषजी की कृपा से 'चैतन्य-चरित्र' स्फूर्त्ति पाता है क्योंकि 'चैतन्य-चरित्र' का भाण्डार श्रीशेषजी की जिह्वा पर अधिष्ठित है ॥ ७४ ॥ और इसी से आप श्रीअनन्तदेव 'चैतन्य-चरित्र' के यश की मूर्त्ति (शरीर) हैं । इसीलिये (चैतन्य-चरित्र गाने के लिये) मैंने प्रथम उनके चरणारविन्द युगल की थोड़ी सी महिमा गान की है ॥७५॥ पुण्य-श्रवण स्वरूप श्री 'चैतन्य-चरित्र' भक्त की कृपा से ही स्फुरित होता है, यह निश्चय समझिये ॥७६॥ 'चैतन्य-चरित्र' जो वेद गुह्य है उसको कौन जानता है । मैंने जो कुछ भक्तों से सुना है वह लिखता हूँ॥७७॥ श्री 'चैतन्य-चरित्र' का आदि, अन्त कुछ नहीं मुझे सूझ रहा है वे कृपा करके जो कहलवा रहे हैं वही लिखता हूँ ॥ ७८ ॥ जिस प्रकार परवश होकर काठ की पुतली जादू से नाचती है उसी प्रकार श्रीगौरचन्द्र या श्रीनित्यानन्द मेरे द्वारा जो बुलवाते हैं उसी को मैं लिखता हूँ ॥ ७९ ॥ इस उक्ति को कोई 'गर्वमयी' न समझे । इसलिये श्रीग्रन्थकार प्रसंग के बीच में ही कहते हैं-मैं सर्व वैष्णववृन्द के चरणों में प्रणाम करता हूँ, इसमें मेरा कुछ अपराध न लीजिये ॥ ८० ॥ वह श्री 'चैतन्य-चरित्र' मन देकर सुनिये, जिसमें प्रभु ने जहाँ-जहाँ भक्तों के संग जो-जो लीला की हैं ॥ ८१ ॥ वह आनन्द-धाम श्री चैतन्य-चरित्र तीन भागों में विभक्त है, यथा—आदिखण्ड, मध्यखण्ड और शेषखण्ड ॥८२॥ आदिखण्ड में प्रधानतया श्रीगौरचन्द्र का विद्या-विलास और मध्यखण्ड में 'कीर्त्तन-प्रकाश' का वर्णन है॥८३॥शेषखण्ड में नित्यानन्दजी को गौड़-देश समर्पण करके प्रभु (श्रीगौरचन्द्र) की सन्यासी रूप से नीलाचल (जगन्नाथपुरी) में अवस्थिति है ॥८४॥

नवद्वीपे आछे जगन्नाथ मिश्रवर । बसुदेव प्राय तेहों स्वधर्मे तत्पर ।। ८५ ।।
तान पत्नी शची-नाम महा पतिव्रता । द्वितीय देवकी जेन सेइ जगन्माता ।। ८६ ।।
तान गर्भे अवतीर्ण हैला नारायण । श्रीकृष्णचैतन्य नाम संसार-भूषण ।। ८७ ।।
आदिखण्डे फाल्गुनी पूर्णिमा शुभ दिने । अवतीर्ण हैला प्रभु निशाय ग्रहणे । ८८।।
हरि-नाम मंगल उठिल चतुर्दिगे । जन्मिला ईश्वर सङ्कीर्त्तन करि आगे ।। ८९ ।।
आदिखण्डे शिशुरूपे अनेक प्रकाश । पिता माता प्रति देखाइला गुप्त वास ।। ९० ।।
आदिखंडे ध्वज, बज्र अंकुश, पताका । गृह माझे अपूर्व देखिला पिता-माता ।।९१।।
आदिखंडे प्रभुरे हरियाछिला चोरे । चोर भाण्डाइया प्रभु आइलेन घरे ।। ९२ ।।
आदिखण्डे जगदीश हिरण्येर घरे । नैवेद्य खाइला प्रभु श्रीहरिवासरे ।। ९३ ।।
आदिखण्डे शिशु छले करिया क्रन्दन । बोलाइला सर्व्व मुखे श्रीहरि-कीर्त्तन ।। ९४ ।।
आदिखण्डे लोक वर्ज्य हाण्डीर आसने । वसिया मायेरे तत्त्व कहिला आख्याने ।।९५।।
आदिखण्डे गौरांगेर चाञ्चल्य अपार । शिशु-गण संगे जेन गोकुलविहार ।। ९६ ।।
आदिखण्डे करिलेन आरम्भ पढ़िते । अल्पे अध्यापक हैला सकल शास्त्रेते ।' ९७ ।।
आदिखंडे जगन्नाथ मिश्र-परलोक । विश्वरूप-सन्यास शचीर दुइ शोक ।। ९८ ।।
आदिखंडे विद्या विलासेर महारम्भ । पाषण्डी देखये जेन मूर्त्ति मन्त दम्भ ।। ९९ ।।

(आदिखण्ड की कथा में) श्रीनवद्वीप में 'श्रीजगन्नाथ मिश्र' नाम के एक विप्रवर हैं, जो श्रीबसुदेव की तरह स्वधर्म परायण हैं ।। ८५ ।। उनकी 'शची' नाम की पत्नी है जो महापति-व्रता हैं । वह जगत् माता श्री-देवकी का मानो दूसरा शरीर है ।। ८६ ।। उनके गर्भ से संसार के भूषण श्रीकृष्णचैतन्य नाम से 'नारायण' प्रकट हुए ।। ८७ ।। जो फाल्गुनी पूर्णिमा के शुभ दिन की रात्रि के ग्रहण समय में अवतीर्ण हुए ।। ८८ ।। ईश्वर (श्रीगौरचन्द्र) सङ्कीर्त्तन को सामने कर अवतीर्ण हुए इसलिये पहिले चारों दिशाओं में 'हरि' नाम की मङ्गल ध्वनि हुई ।। ८९ ।। आदिखण्ड में प्रभु के शिशु रूप से अनेक प्रकाश हैं, आपने जिसमें माता-पिता को अपने अप्रकट धाम भी दिखाये ।। ९० ।। आदिखण्ड में पिता-माता ने घर में अपूर्व ध्वज, वज्र, अंकुश और पताका के चिह्न देखे ।। ९१ ।। आदिखण्ड में चोर प्रभु को हरण करके ले जाते हैं, परन्तु प्रभु चोरों को भुलावा देकर घर ही लौट आते हैं ।। ९२ ।। आदिखण्ड में प्रभु ने 'जगदीश' एवं 'हिरण्य' नामक भक्तों के घर श्रीहरिवासर (श्रीएकादशी) के दिन नैवेद्य भोजन किये हैं ।। ९३ ।। आदिखण्ड में बालको-चित रुदन का छल करके प्रभु ने सबके मुख में 'श्रीहरि' नाम कीर्त्तन कराया ।।९४।। आदिखण्ड में लोक-वर्ज्य (सदाचार-विरुद्ध) हाण्डी के आसन पर बैठकर माताजी को प्रसङ्ग विस्तार पूर्वक तत्त्व कहा ।।९५।। आदिखण्ड में शिशुओं के साथ श्रीकृष्ण के गोकुलबिहारी की भाँति श्रीगौरचन्द्र की अपार, चाञ्चल्यमयी लीला का वर्णन है ।। ९६ ।। आदिखंडमें प्रभु ने विद्या-पढ़ना आरम्भ किये हैं, जिससे अल्पकाल में ही सर्व शास्त्रों के अध्यापक हो जाते हैं ।। ९७ ।। आदिखण्ड में 'जगन्नाथ मिश्र का परलोक गमन' एवं 'विश्वरूप का सन्यास लेना' शची मा के इन दोनों शोकोंका वर्णन है।।९८।।आदिखण्ड में जब कि प्रभुने विद्या-विलास का

आदिखण्डे सकल पढ़ुयागन मेलि । जाह्नवीर तरंगे निर्भर जल केलि ॥ १०० ॥
आदिखण्डे गौरांगेर सर्व शास्त्रे जय । त्रिभुवने हेन नाहि जे सन्मुख हय ॥ १०१ ॥
आदिखण्डे वङ्गदेशे प्रभुर गमन । प्राच्य-भूमि तीर्थ हैल पाइ श्रीचरण ॥ १०२ ॥
आदिखण्डे पूर्व-परिग्रहेर विजय । शेषे राज पण्डितेर कन्या परिणय ॥ १०३ ॥
आदिखण्डे वायु-देह-मान्द्य करि छल । प्रकाशिला प्रेम भक्ति-विकार सकल ॥ १०४ ॥
आदिखण्डे सकल भक्तेरे शान्ति दिया । आपने भ्रमेन महा पण्डित हइया ॥ १०५ ॥
आदिखण्डे दिव्य-परिधान-दिव्य-सुख । आनन्दे भासेन शची देखि चाँद मुख ॥१०६॥
आदिखण्डे गौरांगेर दिग्विजयि जय । शेषे करिलेन तार सर्व-बन्धक्षय ॥ १०७ ॥
आदिखण्डे सकल भक्तेरे मोह दिया । सेइ खाने प्रभु भ्रमे सबारे भाण्डिया ॥१०८॥
आदि खण्डे गया गेला विश्वम्भरराय । ईश्वर पुरीरे कृपा करिला जथाय ॥ १०९ ॥
आदि खण्डे आछे कत अनन्त विलास । किछु शेषे वर्णिवेन महामुनि व्यास ॥११०॥
वाल्य-लीला आदि करि जतेक प्रकाश । गयार अवधि आदि-खण्डेर विलास ॥१११॥
मध्यखण्डे विदित हइला गौर सिंह । चिनिलेन जत सब चरणेर भृङ्ग ॥ ११२ ॥

महारम्भ किया है उस समय पाखण्डी लोग आपको इस प्रकार देखते हैं, जैसे साक्षात् दम्भ की मूर्ति हो ॥ ९९ ॥ आदिखण्ड में प्रभु ने सब विद्यार्थियों के साथ मत्त होकर श्रीजाह्नवी की तरङ्गों में क्रीड़ा की हैं ॥ १०० ॥ आदिखण्ड में प्रभु ने सर्व शास्त्रों में विजय पाई है, उस समय कोई भी ऐसा नहीं था जो (शास्त्रार्थ करने के लिये) प्रभु के सामने आसके ॥ १०१ ॥ आदिखण्ड में प्रभु वंगदेश गये है, उन श्रीचरणों को पाकर वह पूर्व देश तीर्थ बन गया ॥ १०२ ॥ आदिखण्ड में प्रथम परिणिता पत्नी के विजय (नित्य-धाम-गमन) एवं तत्पश्चात् श्री 'सनातन राज-पण्डित' की कन्या के साथ परिणय है ॥ १०३ ॥ आदिखण्ड में प्रभु ने अपनी देह में वायु-प्रकोप का छल करके प्रेम-भक्ति के सम्पूर्ण विकारों का प्रकाश किया है॥१०४॥ आदिखण्ड में सब भक्तों को शान्ति देकर आप महापण्डित होकर भ्रमण (विचरण) करते हैं ॥ १०५ ॥ आदिखण्ड में प्रभु के दिव्य वस्त्रादिक परिधान व दिव्य-सुख भोग एवं प्रभु के चन्द्र मुख को देखकर शची मा का आनन्द में बह जाना वर्णित है ॥ १०६ ॥ आदिखण्ड में श्रीगौर सुन्दर ने दिग्विजयी को जीत कर पश्चात् उसके सर्व बन्धन नष्ट किये हैं ॥ १०७ ॥ आदिखण्ड में प्रभु ने सम्पूर्ण भक्तों को मोह में डालकर उन्हें भुलावा देकर उनके पास ही भ्रमण किया है ॥ १०८ ॥ आदिखण्डमें 'श्रीविश्वम्भरराय' गया गये हैं जहाँ पर कि ईश्वरपुरी के प्रति कृपा की है ॥ १०९ ॥ आदिखण्ड में और कितने ही अनन्त विलास हैं, कुछ समय पश्चात् उनको महामुनि-व्यास-शक्ति-सम्पन्न (श्रीकृष्णदास कविराज आदि महात्मागण) वर्णन करेंगे ॥ ११३ ॥ प्रभु ने बाल्य-लीला से प्रारम्भ करके गया से प्रत्यागमन पर्यन्त जितने चरित्र प्रकाशित किये हैं, वह सब 'आदिखण्ड विलास' (चरित्र) हैं ॥ १११ ॥ अब मध्यखण्ड के सूत्र बतलाते हैं—मध्यखण्ड में श्रीगौरसिंह ने अपना स्वरूप प्रकाशित किया और आपके चरण-कमल के जितने भृङ्गरूपी भक्त थे, उन

मध्यखण्डे अद्वैतादि-श्रीवासेर घरे । व्यक्तहैला वसि विष्णु-खट्टार उपरे ॥ ११३
मध्यखण्डे नित्यानन्द सङ्गे दरशन । एक ठाञि दुइभाइ करिला कीर्त्तन ॥ ११४ ॥
मध्यखण्डे षड्भुज देखिला नित्यानन्द । मध्यखण्डे अद्वैत देखिला विश्व-अङ्ग ॥ ११५ ॥
नित्यानन्द व्यास पूजा कहि मध्यखण्डे । जे प्रभुरे निन्दा करे पापिष्ठ पाषण्डे ॥११६॥
मध्यखण्डे हलधर हैला गौर चन्द्र । हस्ते हल मुसल दिलेन नित्यानन्द ॥ ११७ ॥
मध्यखण्डे दुइ-अति-पातकि- मोचन । 'जगाइ' 'माधाइ' नाम विख्यात भुवन ॥ ११८ ॥
मध्यखण्डे कृष्ण-राम, चैतन्य-निताइ । श्याम शुक्ल रूप देखिलेन शची 'आइ' ॥११९॥
मध्यखण्डे चैतन्येर महा परकाश । सात प्रहरिया भाव ऐश्वर्य्य-विलास ॥ १२० ॥
सेइ दिन अमायाय कहिलेन कथा । जे जे सेवकेर जन्म छिल जथा जथा ॥ १२१ ॥
मध्यखण्डे वैकुण्ठेर नाथ नारायण । नगरे नगरे कैला आपने कीर्त्तन ॥ १२२ ॥
मध्यखण्डे काजिर भाङ्गिया घर द्वार । निज शक्ति प्रकाशिया कीर्त्तन अपार ॥ १२३ ॥
पलाइल काजि प्रभु गौराङ्गेर डरे । स्वच्छन्दे कीर्त्तन करे नगरे नगरे ॥ १२४ ॥
मध्यखण्डे महाप्रभु वराह हइया । निज तत्त्व मुरारिरे कहिला गर्ज्जिया ॥ १२५ ॥
मध्यखंडे मुरारि स्कन्धे आरोहण । चतुर्भुज हैया कैला अंगने भ्रमण ॥१२६॥

सबने आपको पहिचाना ॥ ११२ ॥ मध्यखण्ड में प्रभु ने श्रीवास पण्डित के घर में विष्णु सिंहासन पर बैठकर श्रीअद्वैत आचार्य आदि भक्तों को अपना ऐश्वर्य्य दिखलाया है ॥ ११३ ॥ मध्यखण्ड में श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ मिलन हुआ है और दोनों भाइयों ने एक साथ कीर्त्तन किया है ॥ ११४ ॥ मध्यखण्ड में श्रीनित्यानन्द ने श्री गौरचन्द्र को षड्भुज रूप में देखा है और श्रीअद्वैत आचार्य ने प्रभु को विराट् रूपमें देखा है ॥ ११५ ॥ मध्यखण्डमें श्रीनित्यानन्द की व्यास-पूजा कही है । पापी व पाखण्डी-जन जिन प्रभु की निन्दा करते हैं उनके वर्णन है ॥११६॥मध्यखण्ड में जब श्रीगौरचन्द्र श्रीबलराम-भाव में भावित हुए हैं, तब श्रीनित्यानन्द प्रभु ने उनको हाथ में हल व मूषल दिये हैं ॥११७॥ मध्यखण्ड में भुवन-विख्यात 'जगाइ' 'माधाइ' नामक दो अति पातकियों का उद्धार हुआ है ॥ ११८ ॥ मध्यखण्ड में श्रीशचीमा ने कृष्ण व बलराम रूपसे गौरचन्द्र व नित्यानन्द देखे हैं,फिर श्याम (राम) एवं शुक्ल (लक्ष्मण) रूप से देखे हैं॥११९॥ मध्यखण्ड में श्रीगौरचन्द्र का महा प्रकाश है उस ऐश्वर्य-विलास को सात प्रहरिया (जो सात पहर तक रहा) से भी बोलते हैं ॥ १२० ॥ उसी दिन प्रभु ने जिस-जिस सेवक का जहाँ-जहाँ जन्म स्थान था उन सबको उन (स्थानों) का स्पष्ट रूप से कहकर अनुभव कराया है ॥१२१॥ मध्यखण्ड में बैकुण्ठनाथ श्रीनारायण (श्रीगौरचन्द्र) ने स्वयं नवद्वीप के घर-घर में कीर्त्तन कराया है ॥ १२२ ॥ मध्यखण्ड में प्रभुके भक्तों ने काजी का घर-द्वार नष्ट किया है एवं प्रभु ने अपनी शक्ति का प्रकाशन करते हुए अपार कीर्त्तन कराया है ॥१२३॥ श्रीगौरचन्द्र प्रभु के डर से काजी भाग जाता है और फिर स्वतन्त्रता पूर्वक मुहल्ले में कीर्त्तन होने लगा है ॥ १२४ ॥ मध्यखण्ड में महाप्रभु जी श्रीवराह रूप धारण कर गर्ज्जना करते हुए अपना तत्त्व मुरारि गुप्त से कहते हैं ॥ १२५ ॥ मध्यखण्ड में श्रीगौरचन्द्र ने चतुर्भुज रूप से श्रीमुरारि गुप्त के कन्धे पर आरोहन

मध्यखंडे शुक्लाम्बरेर तन्डुल भोजन। मध्यखंडे नाना काच हैला नारायण ॥१२७॥
मध्यखंडे गौरचन्द्र रुक्मिणीर वेशे। नाचिलेन स्तन पिले जत सब दासे ॥१२८॥
मध्यखण्डे मुकुन्देर दण्ड संग दोषे। शेषे अनुग्रह कैला परम सन्तोषे ॥१२९॥
मध्यखण्डे महाप्रभु निशाये कीर्त्तन। वत्सरेक नवद्वीपे कैला अणुक्षण ॥ १३० ॥
मध्यखण्डे नित्यानन्द-अद्वैते कौतुक। अज्ञजने बुझे जेन कलह-स्वरूप ॥१३१ ॥
मध्यखण्डे जननीर लक्ष्ये भगवान्। वैष्णवापराध कराइला सावधान ॥१३२॥
मध्यखण्डे सकल वैष्णव जने जने। सभे वर पाइलेन करिया स्तवने ॥१३३॥
मध्यखण्डे प्रसाद पाइला हरिदास। श्रीधरेर जलपान कारुण्यप्रकाश ॥१३४॥
मध्यखण्डे सकल वैष्णव करि संगे। प्रति निशा जाह्ववीते जलकेलि रंगे ॥१३५॥
मध्यखण्डे गौरचन्द्र नित्यानन्द संगे। अद्वैतेर गृहे गियाछिला कौनरंगे ॥१३६॥
मध्यखण्डे-अद्वैतेरे करि बहु-दण्ड। शेषे अनुग्रह कैला परम प्रचण्ड ॥१३७॥
मध्यखण्डे चैतन्य निताइ कृष्ण-राम। जानिला मुरारि गुप्त महा भाग्यवान् ॥१३८॥
मध्यखण्डे दुइ भाइ चैतन्य-निताइ। नाचिलेन श्रीवास अंगने एक ठाँइ ॥१३९॥
मध्यखण्डे श्रीवासेर-मृत-पुत्र मुखे। जीव तत्त्व कहाइया घुचाइल दुःखे ॥१४०॥

कर आँगन में भ्रमण किया है ॥ १२६ ॥ मध्यखण्ड में प्रभु ने शुक्लाम्बर भक्त के चाँवल भोजन किये हैं और प्रभु ने भक्तों के साथ कौन-कौनसा पहनाव पहनेगा इसकी व्यवस्था की है ॥ १२७ ॥ मध्यखण्ड में श्री-गौरचन्द्र ने श्रीरुक्मिणी वेश से नृत्य किया है और श्रीविश्वम्भर जी ने मातृ-भाव से सब दासों को स्तन पिलाये हैं ॥ १२८ ॥ मध्यखण्ड में प्रभु ने मुकुन्द को सङ्ग-दोष के कारण दण्ड दिया है, पश्चात् परम सन्तुष्ट होकर अनुग्रह किया है ॥ १२९ ॥ मध्यखण्ड में श्रीमहाप्रभु जी ने एक वर्ष तक निरन्तर रात्रिको भक्तोंके साथ कीर्त्तन किया है ॥ १३० ॥ मध्यखण्ड में श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैत प्रभु का आनन्दमय कलह वर्णित है, जिसको मूर्ख मनुष्य केवल कलह स्वरूप समझते हैं ॥ १३१ ॥ मध्यखण्ड में भगवान् श्रीविश्वम्भर निज जननी को लक्ष्य करके सबको वैष्णव अपराध से सावधान करते हैं ॥ १३२ ॥ मध्यखण्ड में सब वैष्णववृन्द प्रभु की पृथक् २ स्तुति करके वर प्राप्त किये हैं ॥ १३३ ॥ मध्यखण्ड में श्रीहरिदास-ठाकुर ने कृपा लाभ की है। श्रीधर के जल-पान प्रसंग में प्रभू का कारुण्य प्रकाश वर्णित है ॥१३४॥मध्यखंड में श्रीगौरचन्द्र के सब वैष्णवों को साथ लेकर प्रति रात्रि जलकेलि रंग वर्णित है ॥ १३५ ॥ मध्यखण्ड में श्रीगौरचन्द्र श्रीनित्यानन्द को साथ लेकर कोई एक रंग दिखलाने के लिये श्रीअद्वैत आचार्य के घर गये ॥१३६॥मध्यखण्डमें श्रीविश्वम्भर ने श्रीअद्वैत को बहुत दण्ड देकर पश्चात् अत्यन्त अनुग्रह किया है१३७ मध्यखण्ड में महा भाग्यवान् मुरारिगुप्त ने श्रीचैतन्यचन्द्र व श्रीनिताइ को श्रीकृष्ण व श्रीबलराम जाना ॥१३८॥मध्यखण्ड में श्रीचैतन्य व श्रीनिताइ दोनों भाइयों ने एक साथ श्रीवास आँगन में नृत्य किया है।१३९। मध्यखंड में प्रभु ने श्रीवास के मृत-पुत्र के मुख से जीवतत्त्व कहलवाकर सबके दुःखों को दूर किया है॥१४०॥

चैतन्येर अनुग्रहे श्रीवास पण्डित । पासरिला पुत्र-शोक सभारे विदित ॥ १४१ ॥
मध्यखण्डे गङ्गाये पड़िला क्रुद्ध हैया । नित्यानन्द हरिदास आनिला तुलिया ॥ १४२ ॥
मध्यखण्डे चैतन्येर अवशेष पात्र । ब्रह्मार दुर्लभ नारायणी पाइला मात्र ॥ १४३ ॥
मध्यखण्डे सब जीव उद्धार कारणे । सन्यास करिते प्रभु करिला गमने ॥ १४४ ॥
कीर्त्तन करिया आदि, अवधि सन्यास । एइ हैते कहि मध्यखण्डेर विलास ॥ १४५ ॥
मध्यखण्डे आछे आर कत कोटि लीला । वेद व्यास वर्णिबेन से सकल खेला ॥१४६॥
शेषखण्डे विश्वम्भर करिला सन्यास । 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम तवे परकाश ॥ १४७ ॥
शेषखण्डे शुनि प्रभुर शिखार मुण्डन । बिस्तर करिला प्रभु अद्वैत क्रन्दन ॥ १४८ ॥
शेषखण्डे शची-दुःख अकथ्य कथन । चैतन्य प्रभावे सभार रहिल जीवन ॥ १४९ ॥
शेषखण्डे सन्यास करिया गौरचन्द्र । चलिलेन नीलाचले भक्त-गोष्ठी सङ्ग ॥ १५० ॥
शेषखण्डे नित्यानंद चैतन्येर दण्ड । भाङ्गिलेन मत्तसिंह परम प्रचण्ड ॥ १५१ ॥
शेषखण्डे गौरचंद्र गिया नीलाचले । आपने लुकाइ रहिलेन कुतूहले ॥ १५२ ॥
सार्वभौम प्रति आगे करि परिहास । शेषे सार्वभौमेरे षड्भुज प्रकाश ॥ १५३ ॥
शेषखण्डे प्रतापरुद्रेरे परित्राण । काशी मिश्र गृहेते करिला अधिष्ठान ॥ १५४ ॥
दामोदर स्वरूप, परमानंद पुरी । शेषखण्डे एइ दुइ संगे अधिकारी ॥ १५५ ॥

सबके सामने श्रीवास पण्डित श्रीगौरचन्द्र की कृपा से पुत्र-शोक को भूल गये हैं ॥ १४१ ॥ मध्यखण्डमें प्रभु क्रोधित होकर श्रीगङ्गा में पड़ जाते हैं और श्रीनित्यानन्द व श्रीहरिदास उठाकर लाये हैं ॥ १४२ ॥ मध्य-खण्ड में श्रीचैतन्यचन्द्र के अधरामृत का पात्र जो कि ब्रह्मा को भी दुर्लभ है, केवल नारायणी ने पाया है ॥१४३॥ मध्यखण्ड में प्रभु ने सब जीवों के उद्धार करने के लिये सन्यास लेने के लिये गमन किया है ।१४४। कीर्त्तन से प्रारम्भ करके सन्यास हेतु गमन तक मध्यखण्ड के विलास हैं ॥ १४५ ॥ मध्यखण्ड में और कितनी ही कोटि लीला हैं, वह सब खेल (लीला) वेद व्यास-शक्ति-सम्पन्न (महत्पुरुष) वर्णन करेंगे ॥१४६॥ शेषखण्ड में विश्वम्भर ने सन्यास लिया है, उस समय आपका 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम हुआ है ॥ १४७ ॥ शेषखण्ड में अद्वैत प्रभु ने श्रीविश्वम्भर प्रभु के शिखा-मुण्डन को सुनकर प्रचुर क्रन्दन किया है ॥ १४८ ॥ शेषखंड में श्रीशची मा का अकथनीय दुःख वर्णित है,उन सब के जीवन की रक्षा केवल श्रीचैतन्य के प्रभाव से हुई थी ॥१४९॥ शेषखण्ड में श्रीगौरचन्द्र सन्यासी बनकर भक्त-गोष्ठी के साथ नीलाचल गये हैं ॥१५०॥ शेषखण्ड में सिंह सदृश अत्यन्त मत्त श्रीनित्यानन्द ने श्रीचैतन्य का दण्ड (डण्डा) तोड़ा है ॥ १५१ ॥ शेषखण्ड में श्रीगौरचन्द्र नीलाचल (श्रीजगन्नाथपुरी) में जाकर कौतूहल करने के लिये अपने को छिपाकर रखते हैं ॥ १५२ ॥ प्रभु ने प्रथम सार्वभौम प्रति परिहास किया है; पश्चात् उसको षड्भुज रूप दिखलाया है ॥१५३॥ शेषखण्ड में प्रभु ने 'प्रतापरुद्र का उद्धार' एवं 'काशी मिश्र के घर में अधिष्ठान' किया है ।१५४। शेषखण्ड में श्रीस्वरूप दामोदर व श्रीपरमानन्दपुरी यह दोनों अधिकारी प्रभु के साथ रहे हैं ॥ १५५ ॥ शेष-

शेषखण्डे प्रभु पुन आइला गौड़देशे। मथुरा देखिब करि आनंद विशेषे ॥ १५६ ॥
आसिया रहिला विद्या वाचस्पतिर घरे। तबे आइलेन प्रभु कुलिया नगेर ॥ १५७ ॥
अनंत अर्ब्बुद लोक गेला देखिबारे। शेषखण्डे सर्वं जीव पाइला उद्धारे ॥ १५८ ॥
शेषखण्डे मधुपुरी देखिते चलिला। कथोदूर गिया प्रभु निवृत्त हइला ॥१५६॥
शेषखण्डे पुन आइलेन नीलाचले। निरंतर भक्त संगे कृष्ण कोलाहले ॥ १६० ॥
गौड़देशे नित्यानंद स्वरूपे पाठाञा। रहिलेन नीलाचले कथो जन लैया ॥१६१॥
शेषखण्डे रथेर सन्मुखे भक्त-संगे। आपने करिला नृत्य आपनार रंगे ॥ १६२ ॥
शेषखण्डे सेतुबंधे गेला गौरराय। झारिखण्ड दिया पुन गेला मथुराय ॥ १६३ ॥
शेषखण्डे रामानंदरायेर उद्धार। शेषखण्डे मथुराय अनेक विहार ॥ १६४ ॥
शेषखंडे श्रीगौर सुंदर महाशय। दबीर खासेरे प्रभु दिला परिचय ॥ १६५ ॥
प्रभु चिनि दुइ भाइर बंध विमोचन। शेषे नाम थुइलेन 'रूप' 'सनातन' ॥ १६६ ॥
शेषखण्डे गौरचंद्र गेला वाराणसी। ना पाइल देखा जत निंदुक सन्यासी ॥ १६७ ॥
शेषखण्डे पुन नीलाचले आगमन। अहर्निश करिलेन हरि सङ्कीर्त्तन ॥ १६८ ॥
शेषखंडे नित्यानंद कथोक दिवसे। करिलेन पृथिवीर पर्य्यटन रसे ॥ १६६ ।
अनंत चरित्र केहो बुझिते ना पारे। चरणे नूपुर सर्व्व-मथुरा विहरे ॥ १७० ॥

खण्ड में प्रभु ने मथुरा दर्शन करने की इच्छा करके विशेष आनन्दित होकर फिर गौड़ देश (नवद्वीप) में आगमन किया है ॥ १५६ ॥ वहाँ आकर विद्या-वाचस्पति के घर रहे हैं, फिर वहाँ से प्रभु कुलिया नगर आये हैं ॥ १५७ ॥ वहाँ आपके दर्शन करने के लिये अनन्त अर्ब लोग गये हैं,इसी प्रकार शेषखण्ड में अन्य सब जीवों ने भी उद्धार पाये हैं ॥ १५८ ॥ शेषखण्ड में फिर वहाँ से मथुरा दर्शन करने चले हैं, परन्तु कुछ दूर जाकर लौट आये हैं ॥ १५६ ॥ शेषखण्ड में फिर लौटकर नीलाचल में आये हैं, जिसमें 'कृष्ण' कोलाहल (कथा-कीर्त्तन-आनन्द) के साथ निरन्तर भक्तसङ्ग रहा है ॥ १६० ॥ प्रभु श्रीनित्यानन्द स्वरूप को गौड़देश में भेजकर आप कुछ जन लेकर नीलाचल में रहे हैं ॥ १६१ ॥ शेषखण्ड में स्वयं प्रभु ने भक्तवृन्द के साथ रथ के सामने अपने ही रङ्ग का (निराला) नृत्य किया है ॥ १६२ ॥ शेषखण्ड में श्रीगौरचन्द्र सेतुबन्ध गये हैं और झारिखण्ड (वन-पथ) के रास्ते से फिर मथुरा गये हैं ॥ १६३ ॥ शेषखण्ड में 'रामानन्द 'राय' का उद्धार' है और 'मथुरा के अनेक विहार हैं ॥ १६४ ॥ शेषखण्ड में प्रभु श्रीगौरसुन्दर महाशयजी 'दबीर-खास' श्रीरूप को अपना परिचय दिया है ॥१६५॥ अपने प्रभु को पहिचानकर दोनों ('रूप' व 'शांकर मल्लिक') भाइयों के बन्धन नष्ट हुए हैं, पश्चात् प्रभु ने उनके 'रूप', 'सनातन' नाम रक्खे हैं ॥ १६६ ॥ शेषखण्ड में श्रीगौरचन्द्र वाराणसी (काशी) गये हैं, परन्तु जितने निन्दक सन्यासी थे, उन्होंने आपके दर्शन नहीं पाये हैं ॥ १६७ ॥ शेषखण्ड में प्रभु फिर नीलाचल आये हैं, जहाँ पर कि आपने अहर्निशि हरि-संकीर्त्तन किये हैं ॥ १६८ ॥ शेषखण्ड में श्रीनित्यानन्द ने कुछ दिन आनन्द पूर्वक पृथ्वी का पर्यटन किया

शेषखण्डे नित्यानन्द 'पाणि-हाटी'-ग्रामे । चैतन्य आज्ञाय भक्ति करिलेन दाने ॥१७१॥
शेषखण्डे नित्यानन्द महामल्ल-राय । वणिकादि उद्धारिला परम-कृपाय ॥ १७२ ॥
शेषखण्डे गौरचंद्र महा-महेश्वर । नीलाचले वास अष्टादश संवत्सर ॥ १७३ ॥
शेषखण्डे चैतन्येर अनंत विलास । विस्तरिया वर्णिते आछेन वेदव्यास ॥ १७४ ॥
जे ते मते चैतन्येर गाइते महिमा । नित्यानंद-प्रीत बड़ तार नाहि सीमा ॥ १७५ ॥
धरणीधरेन्द्र नित्यानंदेर चरण । देह प्रभु गौरचंद्र आमारे शरण ॥ १७६ ॥
एइ जे कहिल सूत्र संक्षेप करिया । तीनखण्ड आरम्भिव इहाइ गाइया ॥ १७७ ॥
आदिखण्ड कथा भाइ ! शुन एक चिते । श्रीचैतन्य अवतीर्ण हैल जेन मते ॥ १७८ ॥
चिंतिया चैतन्य चाँदेर चरण कमल । वृन्दावनदास गान श्रीचैतन्य-मङ्गल ॥१७९॥

द्वितीय अध्याय

जय जय महाप्रभु श्रीगौर सुन्दर । जय जगन्नाथ-पुत्र महामहेश्वर ॥ १ ॥
जय नित्यानन्द गदाधरेर जीवन । जय जय अद्वैतादि-भक्तेर शरण ॥ २ ॥
भक्त-गोष्ठी सहित गौराङ्ग जय जय । शुनिले चैतन्य-कथा भक्ति लभ्य हय ॥ ३ ॥

है ॥ १६९ ॥ श्रीअनन्तदेव (श्रीनित्यानन्द प्रभु) के चरित्रों को कोई नहीं समझ सकता । आपने चरणों में नूपुर धारण करके सम्पूर्ण मथुरा में विहार (विचरण) किया, लेकिन तब भी कोई देख न पाया ॥१७०॥ शेषखण्ड में श्रीनित्यानन्द ने श्रीचैतन्य की आज्ञा से 'पानिहाटी' ग्राम में भक्ति प्रदान की है ॥ १७१ ॥ शेषखण्ड में महामल्ल शिरोमणि श्रीनित्यानन्द ने परम कृपा पूर्वक वणिक आदि का उद्धार किया है ॥ १७२ ॥ शेषखण्ड में महा महेश्वर श्रीगौरचन्द्र ने अठारह वर्ष नीलाचल में वास किया है ॥ १७३ ॥ शेषखण्ड में श्रीचैतन्यचन्द्र के अनन्त विलास हैं, जिनको विस्तृत रूप से वेद-व्यास जी (लीला की नित्यता हेतु) नित्य ही वर्णन कर रहे हैं ॥ १७४ ॥ जिस प्रकार से भी हो श्रीचैतन्यचन्द्र की महिमा गान करने से, गाने वाले के ऊपर श्रीनित्यानंद बड़ी प्रीति करते हैं, जिसकी कोई सीमा नहीं है ॥ १७५ ॥ हे श्रीगौरचंद्र ! मुझको धरणी धरेन्द्र श्रीनित्यानंद के चरणों की शरण प्रदान कीजिये ॥ १७६ ॥ यह जो मैंने संक्षेप से 'सूत्र' कहे हैं, इन्हीं के आधार पर इनको विस्तृत करके तीनों खण्डों की लीला आरम्भ करूँगा ॥ १७७ ॥ हे भाइयो ! अब आदिखण्ड की कथा प्रारम्भ करता हूँ, जिसमें कि जिस प्रकार से श्रीचैतन्यचंद्र अवतीर्ण हुए हैं, वह एकाग्र चित्त से सुनिये ॥१७८॥श्रीचैतन्यचंद्र के चरण-कमल चिंतवन करके वृन्दावनदास श्रीचैतन्य-मङ्गल गाते हैं।

इति श्रीचैतन्य-भागवत आदिखण्डे लीला सूत्र वर्णनं नाम प्रथमोऽध्याय ॥ १७९ ॥

हे महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर ! आपकी जय हो, जय हो । हे महामहेश्वर ! हे जगन्नाथ-पुत्र आपकी जय हो, जय हो ॥ १ ॥ हे श्रीनित्यानन्द और गदाधर के जीवन आधार ! आपकी जय हो जय हो, हे अद्वैत आदि भक्तों को शरण-दायक प्रभु आपकी जय हो, जय हो ॥ २ ॥ हे श्रीगौरचन्द्र ! भक्त-गोष्ठी के सहित

पुनः भक्त-संगे प्रभुपदे नमस्कार । स्फुरुक जिह्वाय गौरचन्द्र अवतार ॥ ४ ॥
जय जय श्रीकरुणासिन्धु गौरचन्द्र । जय जय श्रीसेवा-विग्रह नित्यानन्द ॥ ५ ॥
अविज्ञात दुइ भाइ आर जत भक्त । तथापि कृपाय तत्त्व करेन सुव्यक्त ॥ ६ ॥
ब्रह्मादिर स्फूर्त्ति हय कृष्णेर कृपाय । सर्व शास्त्रे, वेदे, भागवते एइ गाय ॥ ७ ॥

तथाहि (भा० २।४।२२)—

"प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि ।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम्" ॥ ८ ॥

पूर्व्वे ब्रह्मा जन्मिलेन नाभि पद्म हैते । तथापिह शक्ति नाहि किछुइ देखिते ॥ ९ ॥
तबे जबे सर्व्व-भावे लइला शरण । तबे प्रभू कृपाय दिलेन दरशन ॥ १० ॥
तबे कृष्णकृपाय स्फुरिला सरस्वती । तबे से जानिला सर्व्व-तत्त्व तार स्थिति ॥११॥
हेन कृष्णचन्द्र दुर्ज्ञेय अवतार । तान कृपा बिने कार शक्ति जानिवार ॥ १२ ॥
अचिन्त्य अगम्य कृष्ण-अवतार-लीला । सेइ ब्रह्मा भागवते आपने कहिला ॥ १३ ॥

तथाहि (भा० १०।१४।२१)—

"को वेत्ति भूमन् ! भगवन् ! परात्मन् ! योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम ।
क्वाहं कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीड़सि योगमायाम्" ॥ १४ ॥

आपकी जय हो, जय हो । श्रीचैतन्यदेव की कथा सुनने से भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ हे प्रभु ! भक्तों के सहित आपको नमस्कार करता हूँ ! ताकि सब की कृपा से मेरी जिह्वा से श्रीगौरचन्द्र अवतार की लीला स्फुरित हो ॥ ४ ॥ हे करुणासिन्धु श्रीगौरचन्द्र ! आपकी जय हो । हे सेवा-विग्रह श्रीनित्यानन्द ! आपकी जय हो, जय हो ॥ ५ ॥ यद्यपि दोनों भाई (श्रीचैतन्य व श्रीनिताइ) और सम्पूर्ण भक्तों का 'तत्त्व' गुह्य है तब भी वे कृपा करके अपने तत्त्व को सुप्रकाशित कर देते हैं ॥ ६ ॥ 'श्रीकृष्ण की कृपा से ही ब्रह्मादि को स्फूर्ति होती है' यही (तत्त्व) सर्व शास्त्र, वेद एवं श्रीमद्‌भागवत गाती हैं ॥ ७ ॥ कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्मा जी के हृदय में, सृष्टि-विषया-स्मृति का विस्तार करते हुए, जिन्होंने निज प्रेरिता वेदरूपा सरस्वती को, ब्रह्मा जी के बदन से प्रादुर्भूत कराया (प्रसंग में इतना ही प्रयोजन है) वह ज्ञान प्रदाताओं में श्रेष्ट भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ८ ॥ सृष्टि के प्रारम्भ में श्रीब्रह्माजो श्रीमन्नारायण के नाभि-कमल से प्रकट हुए तब भी वह अपने में किञ्चित मात्र, देखने की शक्ति नहीं पाते हैं ॥ ९ ॥ तब उन्होंने जब सर्व-भाव से प्रभु की शरण ली तो प्रभु ने कृपा करके उनको दर्शन दिये ॥ १० ॥ तत्पश्चात् श्रीकृष्ण की कृपा से सरस्वतीजी स्फूर्ति होती हैं तब उन्होंने सर्व तत्त्व एवं उनकी स्थिति जानी ॥ ११ ॥ ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र को अवतार के चरित्रों का समझ में आना परम दुष्कर है, उनकी कृपा के बिना जानने की किसकी शक्ति है ? ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण-अवतार की लीला अचिन्त्य एवं अगम्य हैं, यही बात 'ब्रह्माजी स्वयं' श्रीमद्‌भागवत में कहते हैं ॥ १३ ॥ अहो ! हे अपरिच्छिन्न ! हे सर्वैश्वर्य युक्त ! हे परमात्मन् ! हे सर्वान्तरयामिन् ! हे योगेश्वर ! इस त्रिलोकी के बीच में ऐसा कौन है जोकि आपकी लीला को समझ सकता है ? कौन जानता है कि आप कहाँ किस प्रकार

कौन हेतु कृष्णचन्द्र करे अवतार। कार शक्ति आछे तत्त्व जानिते ताँहार ॥ १५ ॥

तथापि श्रीभागवते गीताय जे कहे। ताहा लिखि, जे निमित्ते अवतार हये ॥ १६ ॥

तथाहि (गी० ४।७।८) अर्जुनं प्रति भगवद्वाक्यं–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत ! अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम ॥१७॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्म्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥१८॥

धर्म्म-पराभव हय जखने जखने। अधर्म्मेर प्रबलता बाढ़े दिने दिने ॥ १९ ॥

साधु जन रक्षा, दुष्ट विनाश कारणे। ब्रह्मा आदि प्रभुर पाय करेन विज्ञापने ॥ २० ॥

तवे प्रभु युग-धर्म्म स्थापन करिते। साङ्गोपांगे अवतीर्ण हन पृथिवीते ॥ २१ ॥

कलिजुगे धर्म्म हय हरि-सङ्कीर्त्तन। एतदर्थे अवतीर्ण श्रीशचीनन्दन ॥ २२ ॥

एइ कहे भागवते सर्व तत्त्व-सार। कीर्त्तन निमित्त गौरचन्द्र अवतार ॥ २३ ॥

तथाहि (भा० ११।५।३१ व ३२)

इति द्वापर उर्व्वीश ! स्तुवन्ति जगदीश्वरम्। नाना तन्त्र विधानेन कलावपि तथा शृणु ॥२४॥

कृष्ण वर्णंत्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्। यज्ञैः सङ्कीर्त्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥२५॥

कलिजुगे सर्व-धर्म्म हरि सङ्कीर्त्तन। सब प्रकाशिलेन श्रीचैतन्य-नारायण ॥ २६ ॥

कलिजुगे सङ्कीर्त्तन धर्म पालिबारे। अवतीर्ण हैला प्रभु सर्व परिकरे ॥ २७ ॥

से कितनी एवं कब अपनी योगमाया को विस्तार कर क्रीड़ा करते हो ? ॥ १४ ॥ 'श्रीकृष्णचन्द्र किस लिये अवतार लेते हैं' ? इस बात का तत्त्व जानने की शक्ति किसमें है ? ॥ १५ ॥ तब भी श्रीमद्‌भागवत एवं श्री गीताजी जो कहती हैं, वह लिखता हूँ। जिस कारण से कि अवतार होता है ॥ १६ ॥ हे अर्जुन ! जब-जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब तब मैं अपने को सृजन करता हूँ ॥ १७ ॥ साधुओं के परित्राण, असाधुओं के विनाश एवं धर्म संस्थापन के लिये मैं युग-युग में आविर्भूत होता हूँ ॥ १८ ॥ जब-जब धर्म की अवनति होती है और दिन प्रतिदिन अधर्म की प्रबलता होती है ॥ १९ ॥ उस समय ब्रह्मा जी आदि देवगण साधुओं की रक्षा और दुष्टों के विनाश करने के लिये प्रभु के चरणों में निवेदन करते हैं ॥ २० ॥ तब प्रभु युग-धर्म स्थापन करने के लिये अङ्ग, उपाङ्ग सहित पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं ॥ २१ ॥ (युग-धर्म के नियम से) कलियुग में हरि-संकीर्त्तन धर्म है, इसी को स्थापन करने के लिये श्रीशचीनन्दन अवतीर्ण हुए ॥२२॥ श्रीमद्‌भागवत् भी सर्व तत्त्व-सार यही तत्त्व वर्णन करती हैं, कि श्रीगौरचन्द्र कीर्त्तन-धर्म संस्थापन के लिये अवतीर्ण होते हैं ॥ २३ ॥ (जैसे) श्रीकरभाजनजी कहते हैं कि–हे राजन् ! द्वापर युग के मनुष्य इस प्रकार से श्री भगवान् का स्तव करते हैं और कलियुग में अवतीर्ण होकर जिस प्रकार नाना तन्त्र विधान से आप पूजित होते हैं वह सुनिये ॥ २४ ॥ जिस द्वापर युग में भगवान् श्रीमन् नन्द-नन्दन कृष्ण अवतार लेते हैं उसके परवर्त्ती कलियुग में भगवान् श्रीगौरसुन्दर भी अवतार लेते हैं, जो निरन्तर 'कृष्ण' 'कृष्ण' दो वर्ण उच्चारण करते हैं एवं गौर कान्ति, अङ्ग, उपाङ्ग अस्त्र पार्षद से युक्त होते हैं (उस समय) सुमेधा जन जिनकी अर्च्चना श्रीसङ्कीर्त्तन प्रधान यज्ञ द्वारा किया करते हैं ॥ २५ ॥ कलियुग में उसके 'सब धर्म एवं (सबका सार) श्रीहरि सङ्कीर्त्तन' ये सब श्रीचैतन्य-नारायण ने प्रकाशित किये ॥२६॥

प्रभुर आज्ञाय आगे सर्व्व-परिकर। जन्म लभिलेन सभे मानुष भितर ॥ २८ ॥
कि अनन्त कि शिव विरिञ्चि ऋषिगण। जत अवतारेर पारिषद् आप्तगण ॥ २६ ॥
भागवत रूपे जन्म हइल सभार। कृष्ण से जानेन जार अंशे जन्म जार ॥ ३० ॥
कारो जन्म नवद्वीपे, कारो चाटि ग्रामे। केहो राढ़े, ओड्रदेशे, श्रीहट्टे पश्चिमे ॥ ३१ ॥
नाना स्थाने अवतीर्ण हैला भक्त गण। नवद्वीपे आसि हैल सभार मिलन ॥ ३२ ॥
नवद्वीपे हइब प्रभुर अवतार। अतएव नवद्वीपे मिलन सभार ॥ ३३ ॥
नवद्वीप हेन ग्राम त्रिभुवने नाञि। जँहि अवतीर्ण हैला चैतन्य गोसाञि ॥ ३४ ॥
सर्व वैष्णवेर जन्म नवद्वीप ग्रामे। कोनो महाप्रियेर से जन्म अन्य स्थाने ॥ ३५ ॥
श्रीवास पण्डित आर श्रीराम पण्डित। श्रीचन्द्रशेखर देव त्रैलोक्य पूजित ॥ ३६ ॥
भव-रोग वैद्य श्री मुरारि नाम जाँर। श्रीहट्टे एसब वैष्णवेर अवतार ॥ ३७ ॥
पुण्डरीक विद्यानिधि वैष्णव-प्रधान। चैतन्य वल्लभ दत्त वासुदेव नाम ॥ ३८ ॥
चाटि ग्रामे हैल इहा सभार प्रकाश। बुढ़ने हैला अवतीर्ण हरिदास ॥ ३६ ॥
राढ़ माझे एकचाका नामे आछे ग्राम। तहिं अवतीर्ण नित्यानन्द भगवान ॥ ४० ॥
हाडाइ पण्डित नाम शुद्ध विप्रराज। मूले सर्वपिता, ताने करि पिता व्याज ॥ ४१ ॥
कृपासिन्धु भक्तिदाता श्रीवैष्णव-धाम। राढ़े अवतीर्ण हैला नित्यानन्द राम ॥ ४२ ॥

कलियुग में 'सङ्कीर्त्तन धर्म' पालन करके दिखाने के लिये प्रभु सर्व परिकर के साथ अवतीर्ण हुए ॥ २७ ॥ प्रभुकी आज्ञा से पहले सर्व परिकर ने मनुष्यों के बीच जन्म धारण किया ॥ २८ ॥ क्या अनन्त देव क्या शिवजी और क्या ब्रह्माजी एवं अन्य-अन्य ऋषिगण और प्रभु के अवतार के जितने पार्षद व आत्मीय जन हैं ॥ २६ ॥ उन सबने भागवत (वैष्णव व भक्त) रूप से जन्म धारण किये। जिसके अंश से जिसका जन्म हुआ उसको श्रीकृष्णचैतन्य जानते थे ॥ ३० ॥ किसी का जन्म नवद्वीप में, किसी का चट गाँव में, किसी का राढ़ देश में, किसी का उड़ीसा में, किसी का श्रीहट्ट में और किसी का पश्चिम में हुआ ॥ ३१ ॥ इसी प्रकार नाना स्थानों पर भक्तों ने जन्म लिये और नवद्वीप में आकर सब मिले ॥ ३२ ॥ वे सब जानते थे कि प्रभुका नवद्वीप में अवतार होगा इसीलिये (केन्द्र स्थान) नवद्वीप में सब आकर मिले ॥ ३३ ॥ नवद्वीप जैसा ग्राम तीनों भुवनों में नहीं है जहाँ पर कि श्रीचैतन्य प्रभु अवतीर्ण हुए ॥ ३४ ॥ सब वैष्णवों का जन्म नवद्वीप ग्राम में हुआ, परन्तु किसी किसी महा प्रिय वैष्णव का जन्म अन्य स्थान में हुआ ॥ ३५ ॥ जैसे कि श्रीवास पण्डित व श्रीराम पण्डित त्रिलोक पूजित श्रीचन्द्रशेखर देव ॥ ३६ ॥ और भव-रोगके वैद्य श्री मुरारिगुप्त इन सब वैष्णवों ने श्रीहट्ट में जन्म लिया ॥ ३७ ॥ वैष्णवों में प्रधान श्रीपुण्डरीक विद्या निधि और श्रीचैतन्यचन्द्र के अत्यन्त प्रिय श्रीवासुदेव दत्त ॥ ३८ ॥ इन सबने चटगाँव में जन्म लिया और श्रीहरिदास ठाकुर ने बुढ़न ग्राम में जन्म लिया ॥ ३६ ॥ राढ़ देश में 'एक चक्रा' नाम का एक ग्राम है; वहीं पर श्रीनित्यानन्द भगवान् अवतीर्ण हुए ॥४०॥ आप मूल में सबके पिता हैं तब भी शुद्ध विप्रराज श्रीहाडाइ पण्डित को पिता रूप में अङ्गीकार करके ॥ ४१ ॥ कृपा-सिन्धु, भक्ति-दाता एवं श्री वैष्णवधाम श्रीनित्यानन्द

महा जय जय ध्वनि पुष्प वरिषण। संगोपे देवतागणे कैलेन तखन ॥ ४३ ॥
सेइ दिन हैते राढ़-मण्डल सकल। पुनः पुन बाढ़िते लागिल सुमंगल ॥ ४४ ॥
तिरोते परमानन्द पुरीर प्रकाश। नीलाचले जाँर संगे एकत्रे विलास ॥ ४५ ॥
गङ्गातीर पुण्यस्थान सकल थाकिते। वैष्णव जन्मये केन शोच्य देशेते ? ॥ ४६ ॥
आपने हइला अवतीर्ण गङ्गातीरे। सङ्गेर पार्षद केने जन्मायेन दूरे ? ॥ ४७ ॥
जे जे देश गंगा हरिनाम विवर्ज्जित। जे देशे पाण्डव नाहि गेला कदाचित ॥ ४८ ॥
से सब जीवेरे कृष्ण वत्सल हइया। महा भक्त सब जन्मायेन आज्ञा दिया ॥ ४९ ॥
संसार तारिते श्रीचैतन्य अवतार। आपने श्रीमुखे करियाछेन अङ्गीकार ॥ ५० ॥
शोच्यदेशे, शोच्य कुले, आपन समान। जन्माइया वैष्णव सभारे करे त्राण ॥ ५१ ॥
जे देशे जे कुले वैष्णव अवतरे। ताहार प्रभावे लक्ष जोजन निस्तरे ॥ ५२ ॥
जे स्थाने वैष्णवगण करेन विजय। सेइ स्थान हय अति पुण्यतीर्थमय ॥ ५३ ॥
अतएव सर्व्व देशे निजभक्त गण। अवतीर्ण कैला श्रीचैतन्य-नारायण ॥ ५४ ॥
नाना स्थाने अवतीर्ण हैला भक्त गण। नवद्वीपे आसि सभार हइल मिलन ॥ ५५ ॥
नवद्वीपे हइब प्रभुर अवतार। अतएव नवद्वीपे मिलन सभार ॥ ५६ ॥
नवद्वीप हेन ग्राम त्रिभुवने नाञि। जाँहि अवतीर्ण हैला चैतन्य गोसाञि ॥ ५७ ॥

राम राढ़देश में अवतीर्ण हुए ॥ ४२ ॥ उस समय, देव-गण ने अलक्षित होकर महान् जय जय ध्वनि एवं पुष्प वर्षा की ॥ ४३ ॥ उसी दिन से सकल राढ़देश में दिन प्रतिदिन सुमङ्गल वृद्धि पाने लगा था ॥ ४४ ॥ तिरहुत में श्री परमानन्दपुरी ने जन्म लिया जिसके साथ प्रभु का नीलाचल में एकान्त विलास रहा ॥ ४५ ॥ यहाँ पर श्रीग्रन्थकार स्वयं प्रश्न उठाते हैं कि–गंगातीर व अन्य सकल पुण्य स्थान रहते हुए भी वैष्णवों ने अपवित्र देशों में क्यों जन्म लिये ? ॥ ४६ ॥ जबकि प्रभु स्वयं गंगा किनारे में अवतीर्ण हुए तो फिर अपने संग के पार्षद क्यों दूर देशों में जन्माये ? ॥ ४७ ॥ अब स्वयं ही उत्तर देते हैं-जो देश गंगा एवं 'श्रीहरि' नाम से वञ्चित थे एवं जिन देशों में पाण्डव कभी नहीं गये थे ॥ ४८ ॥ उन देशों के सब जीवों पर करुणा करके प्रभु ने आज्ञा देकर अपने सब प्रिय भक्त वहाँ जन्माये ॥ ४९ ॥ 'श्रीचैतन्य अवतार संसार का उद्धार करने के लिये हुआ है'। यह बात प्रभुने स्वयं अपने श्रीमुख से अङ्गीकार की है ॥ ५० ॥ अपवित्र देश और अपवित्र कुल में अपने समान वैष्णवों का जन्म कराके आप उन देशों के सब जीवों का उद्धार करते हैं ।५१। जिस देश में एवं जिस कुल में वैष्णव जन्म लेता है उसके प्रभाव से लाख योजन तक के जीवों का उद्धार हो जाता है ॥ ५२ ॥ वैष्णवगण जिस स्थान पर गमन करते हैं वह स्थान अति पुण्यमय तीर्थ बन जाता है ॥ ५३ ॥ इसीलिये श्रीचैतन्य-नारायण ने अपने भक्त-वृन्द उन सब देशों में अवतीर्ण किये ॥ ५४ ॥ भक्तगण नाना स्थानों पर अवतीर्ण हुए और सब का नवद्वीप में आकर मिलन हुआ ॥ ५५ ॥ वे सब भक्तवृन्द जानते हैं कि नवद्वीप में प्रभु का अवतार होगा इसलिये सब का सम्मिलन नवद्वीप में हुआ ॥ ५६ ॥ श्री नवद्वीप

अवतरिबेन प्रभु जानिया विधाता । सकल सम्पूर्ण करि थुइलेन तथा ॥ ५८ ॥
नवद्वीपेर संपत्ति के वर्णिवारे पारे । एक गंगा घाटे लक्ष लोक स्नान करे ॥ ५९ ॥
बिबिध वयसे एक जाति लक्ष लक्ष । सरस्वती दृष्टिपाते सभे महा दक्ष ॥ ६० ॥
सभे महा-अध्यापक करि गर्व्व धरे । बालकेओ भट्टाचार्य-सने कक्षा करे ॥ ६१ ॥
नानादेश हइते लोक नवद्वीपे जाय । नवद्वीपे पढ़िले से विद्या-रस पाय ॥ ६२ ॥
अतएव पढ़ुयार नाहिं समुच्चय । लक्ष कोटि अध्यापक नाहिक निर्णय ॥ ६३ ॥
रमा-दृष्टिपाते सर्व लोक सुखे वसे । व्यर्थ काल जाय मात्र व्यवहार-रसे ॥ ६४ ॥
कृष्णनाम भक्ति शून्य सकल संसार । प्रथम कलिते हैल भविष्य आचार ॥ ६५ ॥
धर्म्म कर्म्म लोक सभे एइ मात्र जाने । मङ्गल चण्डीर गीते करे जागरणे ॥ ६६ ॥
दम्भ करि विषहरि पूजे कोन जने । पुत्तलि करये केहो दिया बहुधने ॥ ६७ ॥
धन नष्ट करे पुत्र कन्यार विभाय । एइमत जगतेर व्यर्थ काल जाय ॥ ६८ ॥
जेवा भट्टाचार्य्य, चक्रवर्ती, मिश्रसब । ताहाराओ ना जानये ग्रन्थ अनुभव ॥ ६९ ॥
शास्त्र पढ़ाइया सभे एइ कर्म करे । श्रोतार सहिते जम-पाशे बन्धि मरे ॥ ७० ॥
ना वाखाने जुग-धर्म कृष्णेर कीर्त्तन । दोष वहि गुण कारो ना करे कथन ॥ ७१ ॥

जैसा ग्राम त्रिभुवन में नहीं है जहाँ पर कि श्रीचैतन्य प्रभु प्रकट हुए ॥ ५७ ॥ विधाता ने यह जानकर कि 'नवद्वीप में प्रभु अवतार लेंगे' उसको सब प्रकार से भरपूर कर दिया था ॥ ५८ ॥ नवद्वीप की (अतुल-अनन्त) सम्पत्ति का कौन वर्णन कर सकता है जहाँ पर कि एक-एक घाट पर लाख-लाख मनुष्य स्नान करते हैं ॥ ५९ ॥ एक-एक जाति में विविध (बाल्य, कौमार, पौगण्ड, कैशोर आदि) आयुओं के लाखों-लाखों मनुष्य हैं जो सरस्वतीजी की कृपा से शास्त्रों में महा निपुण हैं ॥ ६० ॥ सभी अध्यापक होने का दावा रखते हैं और तो क्या बालक भी (अन्य जगह) भट्टाचार्य से मुकाबिला करने को तैयार रहता है ६१। लोग नाना देशों से पढ़ने के लिये नवद्वीप में जाते हैं। जो नवद्वीप में पढ़ लेता है, वह परम विद्या-रस को पा लेता है ॥ ६२ ॥ इसी कारण से छात्रों की यहाँ कोई संख्या नहीं है अध्यापक ही लाखों एवं करोड़ों हैं यह भी कोई निर्णित संख्या नहीं है ॥ ६३ ॥ श्रीलक्ष्मीजी की कृपा से सब लोग सुख पूर्वक रहते हैं, परन्तु उनका समय केवल व्यवहार-रस में ही व्यतीत होता है ॥ ६४ ॥ सम्पूर्ण लोग कृष्ण नाम एवं कृष्ण-भक्ति से शून्य हैं यहाँ तक कि कलियुग के मध्य और अन्त में होने वाला अनाचार प्रथम कलि में ही फैल गया है ॥ ६५ ॥ सब लोग इसी को धर्म एवं कर्म जानते हैं कि—मंगल चण्डी के गीत गाते हुए रात्रि-जागरण हो ॥ ६६ ॥ कोई २ आदमी दम्भपूर्वक मनसा देवी की पूजा करते हैं और कोई २ बहुतसा धन लगाकर उसकी पुत्तलि (मूर्त्ति) बनवाते हैं ॥ ६७ ॥ (प्रायः सभी) पुत्र एवं कन्या के विवाह में धन नष्ट करते हैं, इसी प्रकार जगत के सब लोगों का समय व्यर्थ जाता है ॥ ६८ ॥ जो भट्टाचार्य, चक्रवर्त्ती एवं मिश्र उपाधिधारी हैं वह भी ग्रन्थ का अनुभव नहीं जानते हैं ॥ ६९ ॥ वह शास्त्र पढ़ने वाले होकर भी वही (उपर्युक्त) कर्म करते हैं, जिससे वह श्रोताओं के साथ यम पाश में बँधकर मरते हैं ॥७०॥ वह लोग ' कलियुग में 'श्रीकृष्ण-

जेवा सब विरक्त तपस्वी अभिमानी । ता सभार मुखेओ नाहिक हरि-ध्वनि ॥ ७२ ॥
अति बड़ सुकृति से स्नानेर समय । 'गोविंद' 'पुण्डरीकाक्ष' नाम उच्चारय ॥७३॥
गीता भागवत जे जे जने वा पढ़ाय । भक्तिर व्याख्यान नाहि ताहार जिह्वाय ॥७४॥
एइमत विष्णु माया मोहित संसार । देखि भक्त सब दुःख भावेन अपार ॥ ७५ ॥
केमते ए सब जीव पाइब उद्धार । विषय सुखेते सब मजिल संसार ॥ ७६ ॥
वलिलेओ केहो नाहि लय कृष्ण-नाम । निरवधि विद्या कुल करये व्याख्यान ॥७७॥
स्व कार्ज करेन सब भागवत गण । कृष्णपूजा, गंगा स्नान, कृष्णेर कथन ॥७८॥
सभे मेलि जगतेरे करे आशीर्वाद । शीघ्र कृष्ण-चन्द्र कर सभारे प्रसाद ॥ ७९ ॥
सेइ नवद्वीपे वैसे वैष्णवाग्रगण्य । अद्वैत आचार्ज नाम सर्व लोके धन्य ॥ ८० ॥
ज्ञान भक्ति वैराग्येर गुरु मुख्यतर । कृष्ण भक्ति बखानिते जे हेन शङ्कर ॥ ८१ ॥
त्रिभुवने आछे जत शास्त्र परचार । सर्वत्र वाखाने कृष्ण-पद-भक्ति सार ॥ ८२ ॥
तुलसी मञ्जरी सहित गंगा जले । निरवधि सेवे कृष्ण महा कुतूहले ॥ ८३ ॥
हुङ्कार करये कृष्ण आवेशेर तेजे । जे ध्वनि ब्रह्माण्ड भेदि वैकुण्ठेते वाजे ॥ ८४ ॥
जे प्रेमेर हुङ्कार शुनिञा कृष्ण नाथ । भक्ति वशे आपनेइ हइला साक्षात ॥ ८५ ॥
अतएव अद्वैत वैष्णव अग्र-गण्य । निखिल ब्रह्माण्डे जाँर भक्ति जोग धन्य ॥ ८६ ॥

कीर्त्तन करना' धर्म है" यह वर्णन नहीं करते हैं और किसी के दोषों के सिवाय गुण वर्णन नहीं करते हैं ॥ ७१ ॥ और जो लोग विरक्त एवं तपस्वी होने का दावा रखते हैं उन के मुख पर भी 'श्रीहरि' नाम की नहीं रटन देखी जाती है ॥ ७२ ॥ कोई २ जो अत्यन्त पुण्यवान् हैं वह केवल स्नान करते समय 'गोविन्द' 'पुण्डरीकाक्ष' आदि नाम उच्चारण करते हैं ॥ ७३ ॥ और जो आदमी गीता एवं श्रीभागवत पढ़ाते हैं, उनकी भी वाणी से भक्ति की व्याख्या सुनने में नहीं आती है ॥ ७४ ॥ इस प्रकार संसार को विष्णु माया से मोहित देखकर सब भक्तगण मन में अपार दुःखी होकर सोचते हैं कि– ॥ ७५ ॥ इन सब जीवों का उद्धार किस प्रकार होगा ? सब संसार विषय-सुख में लिप्त हो रहा है ॥ ७६ ॥ कहने से भी कोई 'कृष्ण' नाम नहीं लेता है, निरन्तर यह लोग विद्या एवं कुल की ही चर्चा करते रहते हैं ॥ ७७ ॥ सब भक्तगण स्व-कार्य कृष्ण पूजा, गङ्गा स्नान और कृष्ण-कथा-कीर्तन आदि करते हैं ॥ ७८ ॥ वह सब मिलकर जगत के प्रति आशीर्वाद करते हुए कहते हैं कि–हे कृष्णचन्द्र ! इन सबके ऊपर शीघ्र कृपा कीजिये ॥ ७९ ॥ उसी नवद्वीप में वैष्णवों में अग्रगण्य, सर्व लोक पूजित, ज्ञान-भक्ति एवं वैराग्य के मुख्यतर गुरु, कृष्ण-भक्ति की व्याख्या करने में जैसे शङ्कर श्रीअद्वैत आचार्यजी रहते हैं ॥ ८०–८१ ॥ त्रिभुवन में जितने शास्त्र प्रचारित हैं उन सब में से वह सर्वत्र यह व्याख्या करते हैं कि–"कृष्ण-पद-भक्ति सार है" ॥ ८२ ॥ वे निरन्तर महा आनन्द पूर्वक गंगा जल के साथ तुलसी मञ्जरी से श्रीकृष्ण पूजा करते हैं ॥ ८३ ॥ जो श्रीकृष्ण–आवेश के तेज से हुङ्कार करते हैं तो उसकी ध्वनि ब्रह्माण्ड को चीरती हुई वैकुण्ठ तक बजती हैं ॥ ८४ ॥ जिस प्रेम की हुङ्कार को सुनकर भक्ति के वश होकर प्रभु श्रीकृष्ण स्वयं अवतीर्ण हुए ॥ ८५ ॥ इसी कारण से श्रीअ-

एइमत अद्वैत वैसेन नदीयाय । भक्ति-शून्य सब लोक देखि दुःख पाय ॥८७॥
सकल संसार मत्त व्यवहार रसे । कृष्णपूजा, कृष्ण भक्ति कारो नाहि वासे ॥ ८८ ॥
वाशुली पूजये केहो नाना उपहारे । मद्य माँस दिया केहो यज्ञ पूजा करे ॥ ८९ ॥
निरवधि नृत्य गीत वाद्य-कोलाहले । ना शुने कृष्णेर नाम परम मङ्गले ॥ ९० ॥
कृष्ण-शून्य मङ्गले देवेर नाहि सुख । विशेषे अद्वैत बड़ पाय मने दुःख ॥ ९१ ॥
स्वभावे अद्वैत बड़ कारुण्य हृदय । जीवेर निस्तार चिन्ते हइया सदय ॥ ९२ ॥
मोर प्रभु आसि जदि करे अवतार । तबे हय ए सकल जीवेर उद्धार ॥ ९३ ॥
तबे त 'अद्वैतसिंह' आमार बडाञि । वैकुण्ठ वल्लभ जदि देखाङ् एथाञि ॥ ९४ ॥
आनिञा वैकुण्ठनाथ साक्षात् करिया । नाचिब गाइब सर्व्व जीव उद्धारिया ॥ ९५ ॥
निरवधि एइमत संकल्प करिया । सेवेन श्रीकृष्णचन्द्र एक चित्त हइया ॥ ९६ ॥
अद्वैतेर कारणे चैतन्य अवतार । सेइ प्रभु कहिया आछेन बार बार ॥ ९७ ॥
सेइ नवद्वीपे वैसे पण्डित श्रीवास । जाँहार मन्दिरे हैल चैतन्य-विलास ॥ ९८ ॥
सर्व काल चारि-भाइ गाय कृष्ण नाम । त्रिकाल करये कृष्ण-पूजा गङ्गा-स्नान ॥९९॥
निगूढ़े आर अनेक वैसे नदीयाय । पूर्व्वेइ जन्मिला सभे ईश्वर-आज्ञाय ॥ १०० ॥

-द्वैताचार्य वैष्णवों में प्रथम गणनीय हैं कि जिनका भक्ति योग सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में धन्य (सराहनीय, कृष्ण प्रकटकारी) है ॥ ८६ ॥ इस प्रकार श्रीअद्वैत नवद्वीप में रहते हैं और संसार को भक्ति-शून्य देखकर दुःखी रहते हैं ॥ ८७ ॥ सब संसार व्यवहार रस में मत्त हो रहा है, कृष्ण-पूजा और कृष्ण-भक्ति से कोई प्रेम नहीं करता है ॥ ८८ ॥ कोई नाना उपहारों द्वारा वाशुली (विशालाक्षी देवी) की पूजा करता है और कोई मद्य व माँस देकर यक्ष की पूजा करता है ॥ ८९ ॥ निरन्तर नाच, गान और बाजों के कोलाहल के आगे परम-मङ्गलकारी 'श्रीकृष्ण' नाम को कोई नहीं सुनता है ॥ ९० ॥ श्रीकृष्ण विरहित उत्सवों में देवताओं को सुख नहीं होता है और विशेषकर श्रीअद्वैत आचार्य तो मन में बड़ा दुःख पाते हैं ॥ ९१ ॥ श्रीअद्वैताचार्य स्वभाव से ही बड़े करुण (दयावान्) हृदय हैं । आप दयायुक्त होकर जीवों के उद्धार के लिये उपाय सोचते हैं कि– ॥ ९२ ॥ यदि मेरे प्रभु आकर अवतार लें तो इन सब जीवों का उद्धार हो जाय ॥ ९३ ॥ मेरे अद्वैत-सिंह नाम की गौरव-रक्षा भी है जबकि मैं वैकुण्ठ वल्लभ श्रीकृष्ण को यहीं दिखाऊँ ॥ ९४ ॥ मैं वैकुंठ-नाथ को वहाँ से यहाँ प्रकट कराके सब जीवों का उद्धार करके (उल्लास से) नाचूँगा और गाऊँगा ॥९५॥ इस प्रकार श्रीअद्वैताचार्य संकल्प करके एकाग्र चित्त से निरन्तर श्रीकृष्णचन्द्र की सेवा करते हैं ॥ ९६ ॥ और 'श्रीअद्वैत ने ही श्रीचैतन्य अवतीर्ण कराये हैं' यही बात प्रभु (श्रीगौरचन्द्र) ने भी अपने मुख से बारम्बार कही है ॥ ९७ ॥ उसी नवद्वीप में श्रीवास पण्डित रहते हैं,जिन के घर में श्रीचैतन्य-विलास हुआ ॥ ९८ ॥ श्रीवास पण्डित अपने और तीन भाइयों के साथ दिन रात 'कृष्ण' नाम गाते हैं और प्रातःकाल मध्याह्न व सन्ध्या को श्रीगङ्गा स्नान एवं श्रीकृष्ण पूजा करते हैं ॥ ९९ ॥ और अनेक छिपे हुए, नवद्वीप में रहते हैं जो श्रीकृष्ण की आज्ञा से श्रीगौरचन्द्र से पहिले ही अवतीर्ण हुए ॥ १०० ॥ जैसे श्रीचन्द्रशेखर, श्री-

श्रीचन्द्रशेखर, जगदीश, गोपीनाथ। श्रीमान्, मुरारि, श्रीगरुड़, गङ्गादास ॥१०१॥
एके एके बलिते हय पुस्तक-बिस्तार। कथार प्रस्तावे नाम लइब जानि जार ॥१०२॥
सभेइ स्वधर्म्म-पर सभेइ उदार। कृष्णभक्ति बहि ना जानये आर ॥ १०३ ॥
सभे करे सभारे बान्धवे व्यवहार। केहो कारो ना जानेन निज अवतार ॥ १०४ ॥
विष्णु भक्ति-शून्य देखि सकल संसार। अन्तरे दहये बड़ चित्त सभाकार ॥ १०५ ॥
कृष्ण कथा शुनिवेक हेन नाहि जन। आपना आपनि सभे करेन कीर्त्तन ॥ १०६ ॥
दुइ चारि दण्ड थाकि अद्वैत-सभाय। कृष्ण कथा प्रसंगे सभार दुःख जाय ॥ १०७ ॥
दग्ध देखे सकल संसार भक्त गण। आलापेर स्थान नाहि करेन क्रन्दन ॥ १०८ ॥
सकल वैष्णव मेलि आपनि अद्वैते। प्राणी मात्र कारे केहो नारे बुझाइते ॥ १०९ ॥
दुःख भावि अद्वैत करेन उपवास। सकल वैष्णव गण छाड़े दीर्घश्वास ॥ ११० ॥
केने वा कृष्णेर नृत्य केने वा कीर्त्तन। कारे वा वैष्णव बलि, किवा सङ्कीर्त्तन ॥१११॥
किछु नाहि जाने लोक धन पुत्र रसे। सकल पाषण्ड मेलि वैष्णवेरे हासे ॥ ११२॥
चारि भाइ श्रीवास मिलिया निजघरे। निशा हइले हरिनाम गाय उच्च स्वरे ॥११३॥
शुनिञा पाषण्डी बले हइल प्रमाद। ए ब्राह्मण करिवेक ग्रामेर-उत्साद ॥ ११४ ॥
महा तीव्र नरपति जवन इहार। ए आख्यान शुनिले प्रमाद नदीयार ॥ ११५ ॥

जगदीश पण्डित, श्रीगोपीनाथाचार्य, श्रीमान् पण्डित, श्रीमुरारि गुप्त, श्रीगरुड़ पण्डित और श्रीगङ्गादास पण्डित आदि ॥ १०१ ॥ प्रत्येक के नाम लिखने से पुस्तक बहुत बढ़ जायगी। इसलिये आगे कथा के प्रसंगों पर, जिनके नाम मैं जानता हूँ, लिखूँगा ॥ १०२ ॥ यह सब स्वधर्म-परायण हैं, उदार हैं और कृष्ण-भक्ति के सिवाय और कुछ नहीं जानते हैं ॥ १०३ ॥ सब परस्पर बन्धु-भाव से व्यवहार करते हैं, परन्तु उनमें से कोई अपने एवं दूसरे के अवतार-तत्त्व को नहीं जानते हैं ॥ १०४ ॥ उन सब का अन्तर-हृदय सब संसार को विष्णु-भक्ति-रहित देखकर बड़ा जलता है ॥ १०५ ॥ उनको बाहर ऐसा कोई नहीं मिलता है जिसके पास जाकर कृष्ण-कथा सुनें, इसलिये वह भक्तगण आप ही कीर्त्तन करते हैं ॥ १०६ ॥ उनका जब दो-चार दण्ड समय श्रीअद्वैताचार्य की सभा में श्रीकृष्ण कथा-प्रसङ्ग में जाता है तब उनका सब दुःख दूर होता है।१०७। भक्तगण सब संसार को दग्ध देखते हैं, वार्त्तालाप करने का भी कोई स्थान न देखकर (आन्तरिक दुःख से) रोते हैं ॥ १०८ ॥ आप श्रीअद्वैत प्रभु सब वैष्णवों के संग मिलकर भी उन सब बहिर्मुख प्राणियों को समझाने में असमर्थ होते हैं ॥ १०९ ॥ तब श्रीअद्वैत दुःखी होकर उपवास करते हैं और सब वैष्णवगण लम्बी स्वाँसें (स्वासें) भरते हैं ॥ ११० ॥ लोग धन, पुत्र आदि के क्षणिक सुख में मस्त होकर वह कुछ भी नहीं जानते हैं कि–प्रेमोल्लास में नृत्य कैसा होता है, कीर्त्तन कैसा होता है, वैष्णव किसे कहते हैं और सङ्कीर्त्तन क्या है ॥ बल्कि सब पाखण्डी मिलकर वैष्णवों की हँसी और उड़ाते हैं ॥ १११–११२ ॥ श्री-श्रीवासादि चारों भाई मिलकर रात्रि होने पर अपने घर में उच्च कण्ठ से श्री 'हरि' नाम गान करते हैं ॥११३॥ उसको सुनकर पाखण्डी लोग कहते हैं कि 'अनर्थ होगया' यह ब्राह्मण गाँव का नाश करेगा ।११४।

केहो वले "ए वामने एइग्राम हैते । घर भाङ्गि घुचाइ फेलाइ निञा स्रोते ॥११६॥
ए वामने घुचाइले ग्रामेर मङ्गल । अन्यथा जवने ग्राम करिवे कवल" ॥ ११७ ॥
एइ मत वले जत पाषण्डीर गण । शुनि कृष्ण वलि कान्दे भागवत गण ॥ ११८ ॥
शुनिञा अद्वैत क्रोधे अग्नि हेन ज्वले । दिगम्बर हइ सर्व वैष्णवेरे बोले ॥ ११९ ॥
शुन श्रीनिवास, गंगादास, शुक्लाम्बर । कराइव कृष्ण सर्व नयन-गोचर ॥ १२० ॥
सभा उद्धारिब कृष्ण, आपने आसिया । बुझाइव कृष्ण-भक्ति तोमा सभा लैया ॥१२१॥
जवे नाहि पारों तवे एइ देह हैते । प्रकाशिया चारिभुज, चक्र लइमु हाते ॥ १२२ ॥
पाषण्डीरे काटिया करिमु स्कन्ध नाश । तवे कृष्ण प्रभु मोर, मुञितार दास ॥१२३॥
एइ मत अद्वैत वलेन अनुक्षण । सङ्कल्प करिया पूजे श्रीकृष्ण चरण ॥१२४॥
भक्त सब निरवधि एक चित्त हैया । पूजे कृष्ण पाद-पद्म क्रन्दन करिया ॥ १२५ ॥
सर्व्व नवद्वीपे भ्रमे भागवत-गण । कोथाओ ना शुने भक्ति-जोगेर कथन ॥ १२६ ॥
केहो दुःखे चाहे निज शरीर रगड़िते । केहो कृष्ण वलि श्वास छाड़ये कान्दिते ॥१२७॥
अन्न भालमते कारो ना रुचये मुखे । जगतेर व्यवहार देखि पाय दुःखे ॥ १२८ ॥
छाड़िलेन भक्त गण सर्व्व उपभोग । अवतरिवारे प्रभु करिला उद्योग ॥ १२९ ॥

यहाँ का राजा यवन महा तीव्र है इस प्रसंग के सुनने पर नवद्वीप का अनर्थ है ॥ ११५ ॥ कोई कहता है कि इन वामनों को इस ग्राम में से निकाल दें और इनका घर तोड़-फोड़कर लेकर स्रोत में फिकवादें ॥११६॥ इन वामनों को निकाल देने से ही गाँव कुशल है नहीं तो यवन राजा गाँव को खा जायगा ॥ ११७ ॥ सब पाखण्डी लोग इसी प्रकार कहते हैं और भक्तगण सुनकर 'हा कृष्ण !' कह कर रोते हैं ॥ ११८ ॥ और सुनकर अद्वैताचार्यजी तो अग्नि की तरह जलने लगे और दिगम्बर होकर सब वैष्णवों के प्रति कहते हैं कि—॥११९॥ हे श्रीवास ! हे गंगादास ! हे शुक्लाम्बर ! सुनिये, मैं सबको श्रीकृष्ण के दर्शन कराऊँगा ॥ १२० ॥ वे आप आकर सबका उद्धार करेंगे और तुम सब को साथ लेकर कृष्ण-भक्ति प्रचार (उपदेश) करेंगे ॥ १२१ ॥ यदि मैं कृष्ण को सर्व-नयन-गोचर नहीं करा सकूँगा तो अपनी इसी देह में से चार भुजा प्रकाशित करके उनमें चक्र धारण करूँगा ॥ १२२ ॥ और पाखण्डियों के कन्धे काट-काट कर उनका नाश करूँगा तभी (ऐसा करने पर ही मैं समझूँगा कि) श्रीकृष्ण मेरे प्रभु और मैं उनका दास ॥ १२३ ॥ श्रीअद्वैत निरन्तर इसी प्रकार कहते हैं और इसी सङ्कल्प से श्रीकृष्ण चरण पूजते हैं ॥ १२४ ॥ सब भक्त-वृन्द भी एकाग्र चित्त से, क्रन्दन करते हुए निरन्तर श्रीकृष्ण चरण-कमलों की पूजा करते हैं ॥ १२५ ॥ भक्त-गण सर्व नवद्वीप में घूमते हैं परन्तु कहीं भी भक्ति-योग की चर्चा सुनने में नहीं आती है ॥ १२६ ॥ इसी कारण से दुःखी होकर कोई भक्त तो अपना शरीर छोड़ना चाहता है और कोई 'हा कृष्ण !' कहता और रोता हुआ लम्बी स्वाँस लेता है ॥१२७॥ और किसी के भी मुख में भले प्रकार अन्न नहीं चलता है । सब भक्तगण जगत का व्यवहार देखकर दुःख पाते हैं ॥ १२८ ॥ सब भक्तों ने सब भोग छोड़ दिये । यह देख प्रभु प्रकट होने की

ईश्वर-आज्ञाय आगे श्रीअनन्तधाम। राढ़े अवतीर्ण हैला नित्यानन्द राम ॥ १३० ॥
माघ मासे शुक्ला त्रयोदशी शुभ दिने। पद्मावती गर्भे एकचाका नामे ग्रामे ॥१३१॥
हाड़ाइ पण्डित नामे शुद्ध विप्रराज। मूले सर्व्व पिता ताने करि पिता व्याज ॥१३२॥
कृपासिन्धु भक्तिदाता प्रभु बलराम। अवतीर्ण हैला धरि नित्यानन्द नाम ॥ १३३ ॥
महा जय जय ध्वनि पुष्प वरिषण। सङ्गोपे देवता-गण करिला तखन ॥ १३४ ॥
सेइ दिन हैते राढ़-मण्डल सकल। वाढ़िते लागिल पुनः पुन सुमङ्गल ॥ १३५ ॥
जे प्रभु पतित जन निस्तार करिते। अवधूत वेश-धरि भ्रमिला जगते ॥ १३६ ॥
अनन्तेर प्रकाश हइला हेन मते। एबे शुन कृष्ण अवतरिला जे मते ॥ १३७ ॥
नवद्वीपे आछे जगन्नाथ 'मिश्रवर'। बसुदेव-प्राय तेहों स्वधर्म्मे तत्पर ॥ १३८ ॥
उदार चरित्र तेहों ब्रह्मण्येर सीमा। हेन नाहि जाहा दिया करिब उपमा ॥ १३९ ॥
कि कश्यप, दशरथ, बसुदेव, नन्द। सर्व्वमय-तत्त्व जगन्नाथ मिश्र चन्द्र ॥१४०॥
तान पत्नी शची नाम महा पतिव्रता। मूर्त्तिमयी विष्णु भक्ति सेइ जगन्माता ॥१४१॥
बहु कन्या पुत्रेर हइल तिरोभाव। सभे एक पुत्र विश्व रूप महा भाग ॥ १४२ ॥
विश्वरूप मूर्त्ति जेन अभिन्न मदन। देखि हरषित दुइ ब्राह्मणी-ब्राह्मण ॥ १४३ ॥
जन्म हैते विश्वरूपेर हैला विरक्ति। शैशवेइ सकल शास्त्रेते हैल स्फूर्त्ति ॥ १४४ ॥

तैयारी करते हैं।१२९॥प्रभु की आज्ञा से पहले श्री अनन्तरूपधारी श्रीबलराम श्रीनित्यानन्द रूप से राढ़ देश में जन्म लेते हैं।१३०। माघ मास की शुक्ला त्रयोदशी के शुभ दिन में,श्रीपद्मावती के गर्भ से, एकचक्रा ग्राम में ॥१३१॥ आप सब के पिता होते हुए भी शुद्ध विप्रराज हाडाइ पण्डित को पिता बनाकर, कृपासिन्धु एवं भक्तिदाता प्रभु बलराम 'नित्यानन्द' नाम धारण कर,अवतीर्ण हुए॥१३२-१३३॥उस समय देवगणने अलक्षित रूप से महा जय जय ध्वनि एवं फूलों की वर्षा की थी ॥१३४॥ उसी दिन से सम्पूर्ण राढ़ देश में दिनोदिन सुमङ्गल की वृद्धि होने लगी थी ॥ १३५ ॥ जिन प्रभु ने पतित जनों का उद्धार करने के लिये अवधूत वेश धारण करके जगत में भ्रमण किया ॥ १३६ ॥ उन श्रीनित्यानन्द प्रभु का इस प्रकार अवतार हुआ, अब जिस प्रकार से श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुए, वह सुनिये ॥१३७॥ नवद्वीप में श्रीजगन्नाथ 'मिश्रवर' नाम की एक महापुरुष रहते हैं जोकि कृष्ण-पिता (बसुदेव) की भाँति स्वधर्म परायण हैं ॥१३८॥ और उदार-चरित्र एवं ब्राह्मणोचित सम्पूर्ण गुणों की सीमा स्वरूपहैं,ऐसा कोई एक पुरुष नहीं है जिसको उनकी उपमा में ला सकूँ ॥ १३९ ॥ श्रीजगन्नाथ मिश्र तत्त्व से (भगवान् अवतार के पितृकोटि) श्रीकश्यप, श्रीदशरथ, श्रीबसुदेव, श्रीनन्द आदि सर्वमय हैं ॥ १४० ॥ उसकी महा पतिव्रता 'शची' नाम की पत्नी हैं, वे ही जगन्माता एवं मूर्त्तिमती विष्णुभक्ति हैं ॥ १४१ ॥ आपके कई कन्या एवं पुत्र अप्रकट हो गये हैं इस समय केवल एक महा भगवान् पुत्र श्रीविश्वरूप हैं ॥ १४२ ॥ श्रीविश्वरूप कैसी सुन्दर मूर्त्ति हैं मानों मदनदेव ही शोभित हैं, आपको देखकर दोनों ब्राह्मणी, ब्राह्मण (माता, पिता) प्रसन्न हो रहे हैं ॥ १४३ ॥ श्रीविश्वरूप को जन्म से ही विरक्ति हो गई थी और बालकपन में ही सब शास्त्र स्फूर्त्ति होने लगे थे ॥ १४४ ॥ इधर सब

विष्णुभक्ति शून्य हैल सकल संसार। प्रथम कलिते हैल भविष्य आचार ॥ १४५ ॥
धर्म्म तिरोभाव हैले प्रभु अवतरे। भक्त सब दुःख पाय जानिआ अन्तरे ॥ १४६ ॥
तबे महा-प्रभु गौरचन्द्र भगवान्। शची जगन्नाथ देहे हैला अधिष्ठान ॥ १४७ ॥
जय जय ध्वनि हैल अनन्त बदने। स्वप्न प्राय जगन्नाथ-मिश्र शची शुने ॥ १४८ ॥
महातेज-मूर्त्ति हइलेन दुइ जने। तथापिह लखिते ना पारे अन्य जने ॥ १४९ ॥
अवतीर्ण हइबेन ईश्वर जानिआ। ब्रह्मा शिव आदि स्तुति करेन आसिया ॥ १५० ॥
अति महा वेद-गोप्य ए सकल कथा। इहाते सन्देह किछु नाहिक सर्व्वथा ॥ १५१ ॥
भक्ति करि ब्रह्मादि देवेर शुन स्तुति। जे गोप्य श्रवणे हय कृष्णे रति मति ॥ १५२ ॥
जय जय महाप्रभु जनक सभार। जय जय सङ्कीर्त्तन हेतु अवतार ॥ १५३ ॥
जय जय वेद-धर्म-साधु-विप्र पाल। जय जय अभक्त मर्दन महा काल ॥ १५४ ॥
जय जय सर्व्व सत्य-मय कलेवर। जय जय इच्छा मय महा महेश्वर ॥ १५५ ॥
जे तुमि अनन्त कोटि ब्रह्माण्डेर वास। ते तुमि श्रीशची-गर्भे करिला प्रकाश ॥ १५६ ॥
तोमार जे इच्छा, के बुझिते तार पात्र। सृष्टि, स्थिति, प्रलय तोमार लीला मात्र ॥१५७॥
सकल संसार जाँर इच्छाय संहरे। सेकि कंस-रावण बधिते वाक्ये नारे ॥ १५८ ॥

संसार विष्णुभक्ति से शून्य हो रहा है और कलि के प्रारम्भ में ही भविष्य (कलि के मध्य व अन्त भाग) के अनाचार फैलने लगे हैं ॥ १४५ ॥ धर्म का लोप होने पर प्रभु मन में यह जानकर कि मेरे भक्त दुःख पाते हैं, अवतार लेते हैं ॥१४६॥ उसी समय भगवान् श्रीगौरचन्द्र महाप्रभु श्रीशची एवं श्रीजगन्नाथ मिश्र की देह में अधिष्ठित होते हैं ॥ १४७ ॥ कभी श्रीअनन्तदेव के मुखों से 'जय-जय' ध्वनि होने लगती है, जिसको श्रीजगन्नाथ मिश्र एवं श्रीशची देवी स्वप्न की सी दशा में सुनते हैं ॥ १४८ ॥ दोनों जनों की मूर्त्ति महातेजमयी हो जाती है फिर भी अन्य लोग इस बात को लक्ष्य नहीं कर पाते हैं ॥ १४९ ॥ ब्रह्मा, शिव आदि, ईश्वर को प्रकट होने वाले समझ कर (श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर) आकर (प्रभु की) स्तुति करते हैं ॥ १५० ॥ इसमें किसी प्रकार का कोई सन्देह नहीं है कि यह सब चरित्र अत्यन्त से भी वेद-गोप्य हैं ॥ १५१ ॥ ब्रह्मा आदि देवगण गुप्त रूप से प्रभु की जो स्तुति करते हैं वह भक्ति-पूर्वक सुनिये, जिसके सुनने से श्रीकृष्ण के प्रति निष्ठा-बुद्धि हो जाती है ॥ १५२ ॥ हे महाप्रभु ! हे सबके पिता ! आपकी जय हो जय हो, हे सङ्कीर्त्तन हेतु अवतारधारी ! आपकी जय हो जय हो ॥ १५३ ॥ हे वेद, धर्म, साधु एवं विप्रों के पालक ! आपकी जय हो जय हो। हे अभक्तों के मर्दन करने के लिये महाकाल स्वरूप आपकी जय हो जय हो ॥ १५४ ॥ हे सत्य-मय सर्व अङ्ग ! आपकी जय हो जय हो, हे इच्छामय ! हे महा महेश्वर आपकी जय हो जय हो ॥ १५५ ॥ जो आप अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के भाण्डार स्थान हो वही आप श्रीशची के गर्भ में अधिष्ठित हो ॥ १५६ ॥ आपकी जो इच्छा है उसे कौन समझ सकता है ? सृष्टि, स्थिति, प्रलय करना तो आपके खेल मात्र हैं ॥ १५७ ॥ जिन आपकी इच्छा ही सम्पूर्ण संसार का नाश करने में समर्थ है वे आप

तथापिह दशरथ बसुदेव-घरे । अवतीर्ण हइया-वधिला ता सभारे ॥ १५६ ॥
एतेके के बुझे प्रभु तोमार कारण । आपनि से जान तुमि आपनार मन ॥ १६० ॥
तोमार आज्ञाय एक सेवके तोमार । अनन्त ब्रह्माण्ड पारे करिते उद्धार ॥ १६१ ॥
तथापिह तुमि से आपने अवतरि । सर्व्व धर्म्म बुझाओ पृथिवी धन्य करि ॥ १६२ ॥
सत्य जुगे तुमि प्रभु शुभ्र वर्ण धरि । तपो धर्म्म बुझाओ आपने तप करि ॥ १६३ ॥
कृष्णाजिन, दण्ड, कमण्डलु, जटा धरि । धर्म्म स्थाप ब्रह्मचारि रूपे अवतरि ॥ १६४ ॥
त्रेता जुगे हइया सुन्दर रक्त वर्ण । हइ जज्ञ पुरुष बुझाओ जज्ञ-धर्म्म ॥ १६५ ॥
स्रुक स्रुव हस्ते जज्ञ आपने करिया । सभारे लओयाओ जज्ञ जाज्ञिक हइया ॥१६६॥
दिव्य मेघ श्याम वर्ण हइया द्वापरे । पूजा धर्म्म बुझाओ आपने घरे घरे ॥१६७॥
पीत वास श्रीवत्सादि निज चिह्न धरि । पूजा कर महाराज रूपे अवतरि ॥ १६८ ॥
कलिजुगे विप्ररूपे धरि पीत वर्ण । बुझावारे वेद गोप्य सङ्कीर्त्तन-धर्म ॥ १६६ ॥
कतेक वा तोमार अनन्त अवतार । कार शक्ति आछे इहा संख्या करिवार ॥ १७० ॥
मत्स्य रूपे तुमि जले प्रलये विहर । कूर्म रूपे तुमि सब जीवेर आधार ॥ १७१ ॥
हयग्रीव रूपे कर वेदेर उद्धार । आदि दैत्य दुइ मधु कैटभ संहार ॥ १७२ ॥
श्रीवराह रूपे कर पृथिवी उद्धार । नरसिंह रूपे कर हिरण्य विदार ॥ १७३ ॥

क्या कंस व रावण का वाक्य द्वारा वध नहीं कर सकते थे ? ॥ १५८ ॥ फिर भी आपने श्रीबसुदेव व श्री-दशरथ के घर में जन्म लेकर उसका वध किया ॥ १५६ ॥ हे प्रभो ! आपके ऐसा करने का क्या कारण है ? इसे कौन जान सकता है ? अपने मन की बात केवल आप ही जानते हैं ॥१६०॥ आपकी आज्ञा से आपका एक ही सेवक अनन्त ब्रह्माण्डों का उद्धार कर सकता है ॥ १६१ ॥ फिर भी आप स्वयं हीं अवतार लेकर पृथ्वी को धन्य करते हुए सब धर्मों का प्रचार करते हो ॥ १६२ ॥ हे प्रभो ! आप सत्य युग में शुक्ल वर्ण धारण करके स्वयं तप करते हुए इस युग के तप धर्म का प्रचार करते हो ॥ १६३ ॥ और ब्रह्मचारी रूप से अवतीर्ण होकर मृग चर्म्म, दण्ड, कमण्डल एवं जटाधारी होकर धर्म की स्थापना करते हो ॥ १६४ ॥ और त्रेता युग में सुन्दर रक्तवर्ण श्रीयज्ञ पुरुष नाम से आप यज्ञ-धर्म का प्रचार करते हो ॥ १६५ ॥ आप स्वयं याज्ञिक बनकर स्रुक्, स्रुवा (यज्ञ कुण्ड में घी प्रक्षेपन के पात्र विशेष) हाथ में लेकर यज्ञ करके सबसे यज्ञ कराते हो ॥ १६६ ॥ और द्वापर युग में आप दिव्य-श्याम-घन वर्ण से घर-घर में पूजा-धर्म का उपदेश करते हो ॥ १६७ ॥ और महाराज रूप से अवतीर्ण हुए पीताम्बर, श्रीवत्स आदि निज चिह्नों को धारण कर पूजा भी करते हो ॥ १६८ ॥ एवं कलियुग में आप वेदों के गुप्तधन श्रीहरिनाम संकीर्त्तन धर्म का प्रचार करने के लिये, पीतवर्ण धारण कर ब्राह्मण रूप से अवतीर्ण होते हो ॥ १६६ ॥ आपके कितने ही अनन्त अवतार हैं इनकी गणना करने की शक्ति किसमें है ? ॥ १७० ॥ आप प्रलय काल में मत्स्य रूप से जल में विचरण करते हो और कूर्म्म रूप से आपही सब जीवों के आधार हो ॥ १७१ ॥ आप श्रीहयग्रीव रूप से वेदों का उद्धार करते हैं तथा दोनों आदिदैत्य मधु एवं कैटभ का संहार करते हैं ॥ १७२ ॥ श्रीवराह रूप से

बलि छल अपूर्व्व वामन रूप हइ । परशुराम रूपे कर निःक्षत्रिया मही ॥ १७४ ॥
रामचन्द्र रूपे कर रावण संहार । हलधर रूपे कर अनन्त विहार ॥ १७५ ॥
बुद्ध रूपे दया-धर्म करह प्रकाश । कल्की रूपे कर म्लेच्छ गणेर विनाश ॥ १७६ ॥
धन्वन्तरि रूपे कर अमृत प्रदान । हंस रूपे ब्रह्मादिरे कह तत्त्व ज्ञान ॥ १७७ ॥
श्रीनारद रूपे बीणा धरि कर गान । व्यास रूपे कर निज तत्त्वेर व्याख्यान ॥१७८॥
सर्व्व-लीला-लावण्य वैदग्धी करि सङ्गे । कृष्णरूपे गोकुले करिला बहु रङ्गे ॥१७९॥
एइ अवतारे भागवत रूप धरि । कीर्त्तन करिया सर्व्व भक्ति पर चारि ॥ १८० ॥
सङ्कीर्त्तने पूर्ण हैव सकल संसार । घरे घरे हैव प्रेम भक्ति परचार ॥ १८१ ॥
कि कहिव पृथिवीर आनन्द प्रकाश । तुमि नृत्य करिबे मिलिया सर्वदास ॥ १८२ ॥
जे तोमार पाद पद्म ध्यान नित्य करे । ता सभार प्रभावेइ अमङ्गल हरे ॥ १८३ ॥
पदताले खण्डे पृथिवीर अमङ्गल । दृष्टि मात्रे दश दिन हय सुनिर्मल ॥ १८४ ॥
बाहु तुलि नाचिते स्वर्गेर विघ्न नाश । हेन जश हेन नृत्य, हेन तोर दास ॥१८५॥

तथाहि पद्मपुराणे— पद्भ्यां भूमेर्दिशो दृग्भ्यां, दोर्भ्याञ्चामङ्गलं दिवः ।
बहुधोत्सार्य्यते राजन् कृष्णभक्तस्य नृत्यतः ॥ १८६ ॥

आप पृथ्वी का उद्धार करते हो और नृसिंह रूप से हिरण्यकश्यप दैत्य के विदीर्ण करते हो ॥ १७३ ॥ आप अपूर्व श्रीवामन रूप धारण करके राजा 'बलि', को छलते हो और श्रीपरशुराम रूप से पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित करते हो ॥ १७४ ॥ और 'श्रीरामचन्द्र' रूप से रावण का वध करते हो एवं श्रीबलराम रूप से अनन्त-विहार करते हो ॥ १७५ ॥ श्री 'बुद्ध' रूप से आप 'दया' के धर्म का प्रचार करते हो और श्री 'कल्की' रूप से म्लेच्छगण का विनाश करते हो ॥ १७६ ॥ श्री 'धन्वन्तरि' रूप से आप अमृत प्रदान करते हो और श्रीहंस रूप से ब्रह्मा आदि को तत्त्व-ज्ञान का उपदेश करते हो ॥ १७७ ॥ श्रीनारद रूप से आप वीणा धारण करके अपने गुण आदि गान करते हो और श्रीव्यास रूप से अपने तत्त्व की व्याख्या करते हो ॥ १७८ ॥ समस्त लीला-माधुरी एवं रस-चातुरी साथ लेकर श्रीकृष्ण रूप से आपने गोकुल (व्रज) में अनेक लीलाएँ की हैं ॥ १७९ ॥ अब इस अवतार में आप भक्त रूप से भक्ति के अङ्ग-प्रत्यंग का प्रचार करते हुए कीर्त्तन करेंगे ॥ १८० ॥ उस समय संसार संकीर्त्तन से भरपूर होगा और घर-घर में प्रेम-भक्ति देखने में आवेगी ॥ १८१ ॥ और जब आप अपने भक्तों के साथ नृत्य करेंगे, उस समय पृथ्वी जितनी आनन्द, उल्लासमयी होगी उसको हम क्या कहें ? ॥ १८२ ॥ जो जन आपके चरण-कमलों का नित्य ध्यान करते हैं, उन सबके प्रभाव से ही (संसार के) अमंगल दूर हो जाते हैं ॥ १८३ ॥ उनका पद-ताल से पृथ्वी का अमङ्गल नष्ट होता है और उनकी दृष्टि मात्र से दशों दिशाएँ पवित्र होती हैं ॥ १८४ ॥ उनके नृत्य अवसर में भुजा उठाने से स्वर्ग के विघ्न नाश होते हैं, हे प्रभो ! ऐसा उनका नृत्य है, ऐसी उनकी महिमा है एवं ऐसे आपके दास हैं ॥ १८५ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्ण-भक्त जिस समय नृत्य करते हैं, उस समय बहु प्रकार से जगत् के अमंगल नष्ट होते हैं । उनके चरण पृथ्वी के, दोनों नेत्र सब दिशाओं के एवं दोनों भुजायें स्वर्ग के अमङ्गल नाश करती हैं, इस प्रकार पद्मपुराण में कहा गया है ॥ १८६ ॥

से प्रभु आपने तुमि साक्षात् हइया । करिबा कीर्त्तन प्रेम भक्त-गोष्ठी लैया ॥ १८७ ॥
ए महिमा प्रभु बलिबारे कार शक्ति । तुमि बिलाइबा वेद-गोप्य विष्णु भक्ति ॥ १८८ ॥
मुक्ति दिया जे भक्ति राखह गोप्य करि । आमि सब जे निमित्ते अभिलाष करि ॥१८९॥
जगतेरे प्रभु तुमि दिबा हेन धन । तोमार कारुण्य सबे इहार कारण ॥ १९० ॥
जे तोमार नामे प्रभु सर्व्व जज्ञ पूर्ण । से तुमि हइबे नवद्वीपे अवतीर्ण ॥ १९१ ॥
एइ कृपा कर प्रभु हइया सदय । जेन आमा सभार देखिते भाग्य हय ॥ १९२ ॥
एत दिने गङ्गार पूरिल मनोरथ । तुमि कृपा करिबे जे चिर अभिमत ॥१९३॥
जे तोमारे जोगेश्वर सभे देखे ध्याने । से तुमि विदित हैबा नवद्वीप ग्रामे ॥१९४॥
नवद्वीप प्रतिओ थाकुक नमस्कार । शची-जगन्नाथ-गृहे जथा अवतार ॥ १९५ ॥
एइ मत ब्रह्मादि देवता प्रति दिने । गुप्त रहि ईश्वरेर करेन स्तवने ॥ १९६ ॥
शची गर्भे वैसे सर्व भुवनेरवास । फाल्गुनी पूर्णिमा आसि हइला प्रकाश ॥ १९७ ॥
अनन्त ब्रह्माण्डे जत आछे सुमङ्गल । सेइ पूर्णिमाय आसि मिलिला सकल ॥ १९८ ॥
सङ्कीर्त्तन सहित प्रभुर अवतार । ग्रहणेर छले ताहा करेन प्रचार ॥ १९९ ॥
ईश्वरेर कर्म्म बुझिबार शक्ति काय । चन्द्र आच्छादिल राहु ईश्वर-इच्छाय ॥ २०० ॥
सर्व नवद्वीपे देखे हइल ग्रहण । उठिल मङ्गल ध्वनि श्री हरि कीर्त्तन ॥ २०१ ॥

नाश करती हैं ॥ १८६ ॥ उनके प्रभु आप जब स्वयं प्रकट होकर अपनी प्रिय भक्त-मण्डली को साथ लेकर कीर्त्तन करोगे ॥ १८७ ॥ तो हे प्रभो ! उसकी महिमा कौन वर्णन कर सकेगा और उस समय आप वेद-गोप्य श्रीकृष्ण-भक्ति वितरण करेंगे ॥ १८८ ॥ जिस भक्ति को आप मुक्ति देकर छिपाये रखते हो और जिसकी हम सब अभिलाषा करते हैं ॥ १८९ ॥ ऐसा वह भक्ति-धन आप केवल करुणा के वशीभूत होकर जन साधारण को देंगे ॥ १९० ॥ हे प्रभो ! जिन आपके नाम से सर्व यज्ञ पूर्ण होते हैं वही आप स्वयं श्री-नवद्वीप में अवतीर्ण होंगे ॥ १९१ ॥ हे प्रभो ! आप सदय होकर ऐसी कृपा कीजिये कि हम सबको दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो । ॥ १९२ ॥ इतने दिनों में श्रीगङ्गादेवी का मनोरथ पूर्ण हुआ है, जिस कृपा की श्रीगङ्गा-देवी को चिरकाल से अभिलाषा थी वह कृपा (क्रीड़ा) आप अब करेंगे ॥ १९३ ॥ जिन आपको समस्त योगेश्वर ध्यान से देखते हैं वही आप नवद्वीप ग्राम में प्रकट होंगे ॥ १९४ ॥ हमारा श्रीनवद्वीप धाम को भी नमस्कार है, जहाँ पर कि आप श्रीशची-जगन्नाथ के घर में अवतार ले रहे हो ॥ १९५ ॥ इसी प्रकार श्री-ब्रह्मा आदि देवगण प्रति दिन अलक्षित रूप से भगवान् की स्तुति करते हैं ॥ १९६ ॥ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के भाण्डार स्थान प्रभु श्रीशचीदेवी के गर्भ में विराजमान हैं और फाल्गुन मास की पूर्णिमा भी आई हुई है ॥ १९७ ॥ अनन्त ब्रह्माण्डों में जितने सुमंगल हैं वे सब पूर्णतः इसी पूर्णिमा में आकर मिल गये हैं ॥ १९८ ॥ प्रभु 'संकीर्त्तन' को साथ लेकर अवतीर्ण होते हैं और ग्रहण के बहाने से उसका प्रचार करते हैं ॥ १९९ ॥ ईश्वर के कर्मों (लीलाओं) के समझने की कौन में शक्ति है ? उन्हीं प्रभु की इच्छा से राहू ने चन्द्रमा को ढक लिया है ॥ २०० ॥ इसीलिये समस्त नवद्वीप में ग्रहण पड़ता हुआ दिखलाई देता है और

अनन्त अर्व्बुदलोक गङ्गा स्नाने जाय । 'हरि बोल' 'हरि बोल' बलि सभे धाय ।। २०२

हेन हरि ध्वनि हैल सर्व्व नदीयाय । ब्रह्माण्ड पूरिया ध्वनि स्थान नाहि पाय ।। २०३ ।।

अपूर्व्व शुनिञा सब भागवत गण । सभे बोले "निरन्तर हउक ग्रहण" ।। २०४ ।।

सभे बोले "आजि बड़ बासिये उल्लास । हेन बुझि किबा कृष्ण करिला प्रकाश!' ।। २०५ ।।

गंगा स्नाने चलिलेन सकल भक्तगण । निरवधि चतुर्द्दिगे हरि- सङ्कीर्त्तन ।। २०६ ।।

किबा शिशु, बृद्ध, नारी, सज्जन दुर्ज्जन । सभे 'हरि' 'हरि' बोले देखिया ग्रहण ।। २०७

'हरि बोल' 'हरि बोल' सभे एइ शुनि । सकल ब्रह्माण्डे व्यापिलेक हरिध्वनि ।। २०८ ।।

चतुर्द्दिगे पुष्प बृष्टि करे देवगण । जय शब्दे दुन्दुभि बाजये अनुक्षण ।। २०९ ।।

हेनइ समये सर्व्व जगत जीवन । अवतीर्ण हइलेन श्री शची नन्दन ।। २१० ।।

धानशी ।

राहु-कवल-इन्दु, परकाश नाम सिन्धु, कलि मर्द्दन बाँधे बाना ।
पहुँ मेल प्रकाश, भुवन चतुर्द्दश, जय जय पड़िल घोषणा ।। १ ।।
हे माइ । हे माइ ! देखत गौराङ्गचन्द ।
नदीयाक लोक, शोक सब नाशल, दिने दिने बाढ़ल आनन्द ।। २ ।।
दुन्दुभि बाजे, शत शंख गाजे, बाजये वेणु विषाणा ।
श्रीचैतन्यचन्द्र, नित्यानन्द ठाकुर, वृन्दावनदास रस (गुण) गाना ।। ३ ।।

'श्रीहरि कीर्त्तन' की मंगल ध्वनि सुनने में आती है ।। २०१ ।। अनन्त अरब लोग गंगा स्नान करने जाते हैं जोकि 'हरि बोल' 'हरि बोल' गाते हुए चले जाते हैं ।।२०२।। आज समस्त नवद्वीप में ऐसी (उच्च) हरि नाम की ध्वनि हो रही है कि वह ध्वनि ब्रह्माण्ड को भरपूर करके स्थान न पाकर आगे तक पहुँच रही है ।।२०३।। सब भक्तगण इस अपूर्व हरि-ध्वनि को सुनकर आनंद से कहते हैं कि (इस प्रकार के)'ग्रहण निरन्तर होते रहें' ।। २०४ ।। फिर सब बोले कि–'आज चित्त में बड़ा उल्लास होता है ऐसा विदित होता है कि कहीं श्रीकृष्ण ने जन्म तो नहीं ले लिया है ?' ।। २०५ ।। (कहते हुए) सब भक्तगण श्रीगङ्गा स्नान को जा रहे हैं और चारों ओर निरन्तर हरि संकीर्त्तन चल रहा है ।। २०६ ।। उसमें क्या बालक, क्या बृद्ध, क्या स्त्री, क्या सज्जन और क्या दुर्जन सभी ग्रहण को देखकर 'हरि' 'हरि' बोल रहे हैं ।। २०७ ।। केवल 'हरि बोल' 'हरि बोल' मात्र ही सुना जा रहा है, 'हरि' ध्वनि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो रही है ।। २०८ ।। चारों ओर देवगण पुष्पवृष्टि कर रहे हैं और निरन्तर जय घोषणा के साथ दुन्दुभि बज रही है ।। २०९ ।। उसी समय ही सर्व जगत जीवन श्रीशचीनन्दन अवतीर्ण होते हैं ।। २१० ।। राहू ने चन्द्रमा को ग्रास कर लिया है,कलि को मर्द्दन करने वाला बाना (वेश) धारण कर 'हरि' नाम-सिन्धु उमड़ पड़ा है । प्रभु अवतीर्ण हुए हैं । चतुर्दश भुवनों में 'जय' 'जय' की घोषणा हो रही है ।। १ ।। हे मा ! हे मा ! श्रीगौरचन्द्र को देखो तो, इनको देखकर सब नवद्वीप के लोग अपने सब शोकों को भूलकर दिन-दिन अधिकाधिक आनन्दित हो रहे हैं ।।२।। दुन्दुभि बज रही है, सैंकड़ों शंख गाज रहे हैं और वेणु व विषाण (सींग का बाजा) बज रहे हैं । श्रीवृन्दावनदास,जिनके ठाकुर श्रीनित्यानन्द हैं,श्रीचैतन्यचन्द्र के गुण-गान करते हैं ।।३।। आपका श्रीअङ्ग मनो-

धानश्री

जिनिञा रविकर, अंग-मनोहर, नयने हेरइ ना पारि।
आयत लोचन, ईषत् बङ्किम, उपमा नाहिक विचारि ॥ध्रु० ॥
(आजु) विजये गौरांग, अवनी मण्डले, चौदिगे शुनिञा उल्लास।
एक 'हरि-ध्वनि' आ ब्रह्म भरि शुनि, गौरांग चाँदेर परकाश ॥ १ ॥
चन्दने उज्ज्वल, वक्ष परिसर, दोलये ताँहा वनमाल।
चाँद सु शीतल, श्रीमुख मण्डल, आजानु बाहु विशाल ॥ २ ॥
देखिया चैतन्य, भुवने धन्य धन्य, उठये जय जय नाद।
कोइ नाचत आनन्दे गायत, कलि हैला हरिषे-विषाद ॥ ३ ॥
चारि वेद-शिर-मुकुट चैतन्य, पामर मूढ़ नाहि जाने।
श्रीचैतन्यचन्द्र, निताइ ठाकुर वृन्दावनदास (तछु पदे) गाने ॥ ४ ॥

पठमञ्जरी

प्रकाश हइला गौरचन्द्र। दश दिगे उठिल आनन्द ॥ध्रु०॥
रूप कोटि मदन जिनिञा। हासे निज कीर्त्तन शुनिया ॥ १ ॥
अति सुमधुर मुख आँखि। महाराज-चिन्ह सब देखि ॥ २ ॥
श्रीचरणे ध्वज वज्र शोभे। सब अंगे जन-मन लोभे ॥ ३ ॥
दूरे गेल सकल आपद। व्यक्त हैल सकल सम्पद ॥ ४ ॥
श्रीचैतन्य नित्यानन्द जान। वृन्दावनदास गुण गान ॥ ५ ॥

नट मङ्गल

चैतन्य अवतार, शुनिञा देवगणे, उठिल परम मङ्गलरे।

हर एवं (प्रभा द्वारा) सूर्य की किरणों को जीतने वाला है जो प्रभा की चकाचौंध के कारण भले प्रकार दिखलाई नहीं देता है। आपके नयन आयत (बड़े-बड़े) एवं किञ्चित् बङ्किम (तिरछे) हैं। (आपके रूप की) उपमा विचार करने से भी नहीं मिलती है। आज श्रीगौरचन्द्र अवनी मण्डल पर पधारे हैं, चारों ओर हर्षध्वनि सुनी जाती है, ब्रह्माण्ड भर में केवल एक 'हरि ध्वनि' गूँज रही है, अहो ! आज श्रीगौरचन्द्र प्रकाशित हुए हैं ॥ १ ॥ आपका वक्षस्थल विशाल एवं चन्दन लेपन द्वारा उज्ज्वलित है और वहीं वनमाल झूम रही है। श्रीमुख-मण्डल चन्द्रमा से भी अधिक सुशीतल है और आपके बाहु जानु पर्यन्त एवं विशाल हैं ॥ २ ॥ श्रीगौरचन्द्र को देखकर भुवन में 'धन्य हो' 'धन्य हो' 'जय हो' 'जय हो' की ध्वनि गूँज रही है, कोई नाच रहा है, कोई आनन्द से गान कर रहा है। 'कलि' हर्षित-विषादित हो रहा है ॥३॥ श्रीचैतन्यचन्द्र चारों वेदों के सिर-मुकुट (सिर-ताज) हैं, इस बात को पामर व मूर्ख जन नहीं जानते हैं। श्रीवृन्दावनदास श्रीचैतन्यचन्द्र व श्रीनित्यानन्द–ठाकुर के श्रीचरणों में उन्हीं के गुण-गान करते हैं ॥ ४ ॥ श्रीगौरचन्द्र प्रकट हुए हैं और दशों दिशाओं में आनन्द उमड़ पड़ा है, आपका रूप कोटि कामदेवों को जीतने वाला है, आप अपने नाम कीर्त्तन को सुन-सुन कर हँस रहे हैं ॥ १ ॥ आपका मुख एवं आँखें अत्यन्त सुन्दर व मधुर हैं, आपके श्रीअङ्ग में 'महाराज' के सब लक्षण दिखलाई देते हैं ॥१॥ श्रीचरणों में ध्वज और वज्र आदि के चिह्न सुशोभित हैं,आपका सम्पूर्ण अङ्ग ही भक्तों के मन को लुभा रहा है॥३॥उस समय सब विपत्ति दूर चली गईं और सब सम्पत्ति उमड़ पड़ी हैं ॥ ४ ॥ श्रीवृन्दावनदास श्रीचैतन्य व श्रीनित्यानन्द को जानकर उनके गुण-गान करते हैं ॥ ५ ॥ देवगण श्रीचैतन्य-अवतार का मंगल समाचार सुनकर परम मंगलमयी

सकल-ताप-हर, श्री मुख चन्द्र देखि, आनन्दे हइला विह्वलरे ॥ ध्रु० ॥
अनन्त, ब्रह्मा, शिव, आदि कर जतदेव, सभेइ नर रूप धरिरे ।
गायेन 'हरि' 'हरि', ग्रहण छल करि, लखिते केहो नाहि पारिरे ॥ १ ॥
दश दिगे धाय, लोक नदीयाय, वलिया उच्च हरि' 'हरि' रे ।
मानुष देव मेलि, एक ठाञि केलि, आनन्दे नवद्वीप पूरि रे ॥ २ ॥
शचीर अङ्गने, सकल देवगणे, प्रणाम हइया पड़िला रे ।
ग्रहण अन्धकारे, लखिते केहो नोर, दुर्ज्ञेय चैतन्येर खेलारे ॥ ३ ॥
केहो पढ़े स्तुति, काहारो हाते छाति, केहो चामर ढुलायरे ।
परम हरिषे, केहो पुष्प वरिषे, केहो नाचे गाय वाय रे ॥ ४ ॥
सकल शक्ति संगे, आइला गौरचन्द्र, पाषण्डी किछुइ ना जाने रे ।
श्रीकृष्णचैतन्य, प्रभु नित्यानन्द, वृन्दावनदास (रस) गान रे ॥ ५ ॥

मंगल (पंचम राग)

दुन्दुभि डिण्डिम, मंगल-जय-ध्वनि, गाय मधुर रसाल रे ।
वेदेर अगोचर, आजु भेटब, विलम्बे नाहिक काज रे ॥ ध्रु० ॥
आनन्दे इन्द्रपुर, मंगल कोलाहल, साज साज वलि साज रे ।
वहुत पुण्य भाग्ये, चैतन्य परकाश, पाओल नवद्वीप माझ रे ॥१॥
अन्योन्ये आलिङ्गन, चुम्बन घनेघन, लाज केहो नाहि मान रे ।
नदीया-पुरन्दर, जन्म-उल्लासे, आपन पर नाहि जान रे ॥ २ ॥

विशाल ध्वनि कर रहे हैं और सर्व-ताप-हारी प्रभु का श्रीमुखचन्द्र देख कर आनन्द से विह्वल हो रहे हैं। अनन्त, ब्रह्मा और शिव आदि जितने देवता हैं वे सभी मनुष्य रूप धारण करके ग्रहण के बहाने में 'हरि' 'हरि' गा रहे हैं। परन्तु उनको कोई नहीं पहिचान सकता है ॥ १ ॥ लोग नवद्वीप में उच्च-कण्ठ से 'हरि' बोलते हुए दशों दिशाओं में दौड़ा-दौड़ी कर रहे हैं, एवं मनुष्य व देवता मिलकर एक स्थान पर केलि कर रहे हैं, इस प्रकार नवद्वीप आनन्द से भर गया है ॥ २ ॥ सब देवता श्रीशचीदेवी के आँगन में दण्डवत् प्रणाम कर रहे हैं, परन्तु ग्रहण के अन्धकार में किसी को दिखलाई नहीं दे रहे हैं। ऐसी श्रीचैतन्य प्रभु की लीला दुर्ज्ञेय है (जानी नहीं जाती) ॥ ३ ॥ उनमें से कोई तो स्तुति कर रहा है, कोई हाथ में छत्र धारण कर रहा है, कोई चँवर ढुला रहा है, कोई परम हर्षित होकर पुष्प-वृष्टि कर रहा है, कोई नाच रहा है, कोई गाता है और कोई बजाता है ॥ ४ ॥ श्रीगौरचन्द्र अपनी सर्व शक्तियों के सहित आये हुए हैं, इस बारे में पाखण्डियों को कुछ भी खबर नहीं है। श्रीवृन्दावनदास जिनके प्रभु श्रीनित्यानन्द हैं श्रीकृष्णचैतन्य के गुण-गान करते हैं ॥ ५ ॥ देवगण दुन्दुभि और डिण्डिम बजा रहे हैं और मंगल-जय ध्वनि दे रहे हैं एवं मधुर और रसीले स्वर से गान गा रहे हैं। परस्पर कहते हैं कि—वेदों के भी अगोचर प्रभु से चलो आज भेंट करेंगे, देर करने की आवश्यकता नहीं है। इन्द्रपुर में आनन्द से मंगल कोलाहल हो रहा है। देवगण सजो सजो कह कर सज रहे हैं और कहते जाते हैं कि अनेक पुण्य-जनित सौभाग्य से नवद्वीप में श्रीचैतन्यचन्द्र चन्द्र का जन्म देखने को मिला है ॥ १ ॥ ये परस्पर बिना किसी लज्जा के बारम्बार आलिङ्गन एवं चुम्बन कर रहे हैं तथा नवद्वीप-पुरन्दर (श्रीगौरचन्द्र) के जन्म उल्लास में अपने पराये को भूल गये हैं ॥ २ ॥

(गौराङ्ग सुन्दर)

ऐछन कौतुके, आइला नवद्वीपे, चौदिगे शुनि हरि नाम रे ।
पाइया गोरा रस विह्वोल परवश, चैतन्य जय जय गान रे ॥३॥
देखिल शची-गृहे, गौराङ्ग-सुन्दरे, एकत्र जैछे कोटि चाँद रे ।
मानुष रूप धरि, ग्रहण छल करि, बोलये उच्च हरि नाम रे ॥४॥
सकल शक्ति-संगे, आइला गौरचन्द्र, पाषण्डो किछुइ ना जान रे ।
श्रीचैतन्य नित्यानन्द, चाँद प्रभु जान, वृन्दावनदास रस गान रे ॥५॥

(एक पदी)

(प्रेम-धन-रतन पसार । देख गोरा चाँदेर बाजार ॥१॥)

हेन मते प्रभुर हइल अवतार । आगे हरि-सङ्कीर्त्तन करिया प्रचार ॥ २११ ॥
चतुर्दिगे धाय लोक ग्रहण देखिया । गङ्गा स्नाने 'हरि' बलि जायेन धाइया ॥ २१२ ॥
जार मुखे ए जन्मेओ नाहिक हरिनाम । से हो 'हरि' बलि धाय, करि गंगा-स्नान ॥२१३॥
दश दिगे पूर्ण हइ उठे हरि ध्वनि । अवतीर्ण हइ शुनि हासे द्विज मणि ॥ २१४ ॥
शची जगन्नाथ देखि पुत्रेर श्री मुख । दुइ जन हइलेन आनन्द-स्वरूप ॥ २१५ ॥
कि विधि करिब इहा किछुइ ना स्फुरे । आथे-व्यथे नारीगण जय कार पूरे ॥२१६॥
धाइया आइला सभे जत आप्त गण । आनन्द हइल जगन्नाथेर भवन ॥ २१७ ॥
शचीर जनक चक्रवर्त्ती नीलाम्बर । प्रति लग्ने अद्भुत देखेन बिप्रबर ॥ २१८ ॥

इसी आनन्द से नवद्वीप में आते हैं जहाँ कि चारों ओर'हरि-नाम'सुनाई दे रहा है । इस श्रीगौर प्रेम-रस को पाकर विह्वलता के वश हो जाते हैं और'श्रीचैतन्यचन्द्र की जय हो' 'श्रीचैतन्यचन्द्र की जय हो'गाते हैं॥३॥ और श्रीशचीदेवी के घर में आकर श्रीगौराङ्ग सुन्दर को,जैसे कोटि-चन्द्रमा एकत्र हुए हैं उस प्रकार देखते हैं एवं आप सब मनुष्य रूप धारण करके ग्रहण को निमित्त-मात्र बनाकर उच्च 'हरि-नाम' बोल रहे हैं ॥ ४ ॥ श्रीगौरचन्द्र सम्पूर्ण शक्तियों को लेकर आये हुए हैं, लेकिन पाखण्डियों को इसकी कुछ भी खबर नहीं है । श्रीवृन्दावनदास श्रीचैतन्य व श्रीनित्यानन्द प्रभु का सेवक, लीला-रस गान करता है ॥ ५ ॥ श्रीगौरचन्द्र का बाजार देखिये जिसमें प्रेम-धन रूपी रत्न प्रसारित हैं ॥१॥इस प्रकार आगे हरि-सङ्कीर्त्तन का प्रचार करते हुए अवतीर्ण हुए॥ २११ ॥ ग्रहण को देखकर लोग चारों ओर दौड़ा-दौड़ी कर रहे हैं और 'हरि' 'हरि' बोलते हुए गङ्गा-स्नान करने जा रहे हैं ॥२१२॥ पूर्व जन्मों की बात ही क्या—जिसने इस जन्म में भी कभी 'हरि-नाम' नहीं लिया है आज वह भी गङ्गा-स्नान करके 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहता हुआ, दौड़ा हुआ चला जाता है ॥ २१३ ॥ श्रीहरि नाम की ध्वनि दशों दिशाओं से उमड़ी पड़ती है, जिसको अवतीर्ण हुए द्विज-मणि (श्रीगौरचन्द्र) सुन-सुन कर हँस रहे हैं ॥ २१४ ॥ पुत्र का श्रीमुख देखकर श्रीशची व श्रीजगन्नाथ 'मिश्र' दोनों जने आनन्द-स्वरूप बन गये हैं ॥ २१५ ॥ उनको 'इस समय हम क्या विधान करें' कुछ भी स्फूर्त्ति नहीं होरही है वहाँ एकत्रित स्त्रियाँ सब अस्त-व्यस्त होकर जय-जय कार की भरमार कर रही हैं।२१६। उसी समय श्रीजगन्नाथ मिश्र के जितने आत्मीय जन हैं वे सब शीघ्र गति से आते हैं, श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर आनन्द हो रहा है ॥ २१७ ॥ श्रीशची के पिता विप्रवर नीलाम्बर चक्रवर्त्ती (ज्योतिष शास्त्र अनुयायी)

महाराज लक्षण सकल लग्ने कहे । रूपदेखि चक्रवर्त्ती हइला विस्मये ॥ २१६ ॥
'विप्र-राजा गौड़े हइवेक' हेन आछे । विप्र बोले "सेइवा जानिव ताहा पाछे" ॥ २२०
महा ज्योतिर्वित् विप्र सभार अग्र ते । लग्न अनुरूप कथा लागिला कहिते ॥ २२१ ॥
"लग्ने जत देखि एइ बालक महिमा । राजा हेन, वाक्ये ताँरे दिते नारि सीमा ॥२२२॥
बृहस्पति जिनिञा हइब विद्यावान् । अल्पेइ हइब सर्व्व गुणेर निधान" ॥ २२३ ॥
सेइ खाने विप्र रूपे एक महा जन । प्रभुर भविष्य कर्म्म करये कथन ॥ २२४ ॥
विप्रबोले "ए शिशु साक्षात् नारायण । इहा हैते सर्व्व धर्म्म हइब स्थापन ॥ २२५ ॥
इहा हैते हइवेक अपूर्व्व प्रचार । ए शिशु करिव सर्व्व जगत्-उद्धार ॥ २२६ ॥
ब्रह्मा, शिव, शुक जाहा वाञ्छे अनुक्षण । इहा हैते ताहा पाइवेक सर्व्व-जन ॥ २२७ ॥
सर्व्व भूत दयालु, निर्व्वेद दरशने । सर्व्व जगतेर प्रीत हइब इहाने ॥ २२८ ॥
अन्येर किदाय विष्णु-द्रोही जे जवन । ताहाराओ ए शिशुर भजिव चरण ॥ २२६ ॥
अनन्त ब्रह्माण्डे कीर्त्ति गाइव इहान । आदि विप्र ए शिशुरे करिव प्रणाम ॥ २३० ॥
भागवत धर्म्म-मय इहान शरीर । देव-द्विज-गुरु-पितृ-मातृ-भक्त धीर ॥ १३१ ॥
विष्णु जेन अवतरि लओयायेन धर्म्म । सेइ मत ए शिशु करिव सर्व्व कर्म्म ॥ २३२ ॥
लग्ने जत कहे शुभ लक्षण इहान । कार शक्ति आछे ताहा करिते आख्यान ॥ २३३ ॥

प्रति लग्न में आश्चर्य युक्त बात देखते हैं ॥ २१८ ॥ आपकी लग्नें 'महाराज' के लक्षण प्रकट करती हैं । प्रभु के रूप को देखकर चक्रवर्त्ती जी विस्मित हो रहे हैं ॥ २१६ ॥ ज्योतिष में ऐसा है कि–'गौड़ देश में विप्र राजा होगा' चक्रवर्त्ती जी विचार करते हैं "क्या यह वही है ? आगे सब मालूम पड़ जायगी" ॥ २२० ॥ ज्योतिष के महा-ज्ञाता विप्रवर श्रीनीलाम्बर चक्रवर्त्ती सबके सामने लग्न के अनुसार फल कहने लगे कि- ॥ २२१ ॥ "लग्न के अनुरूप इस बालक की जो महिमा दिखलाई देती है उसके आगे 'राजा होगा' वाक्य कह देना भी छोटा प्रतीत होता है ॥ २२२ ॥ और विद्या में वृहस्पति को भी जीतने वाला होगा एवं थोड़े ही समय में सर्व गुणों का भाण्डार होगा ॥२२३॥ उसी जगह विप्र रूपधारी एक महापुरुष प्रभु के भविष्य-कर्म वर्णन करते हैं ॥ २२४ ॥ विप्रदेव कहते हैं कि यह बालक साक्षात् नारायण है, इसके द्वारा सब धर्मों की स्थापना होगी ॥ २२५ ॥ इसके द्वारा अपूर्व प्रचार होगा, यह शिशु सब संसार का उद्धार करेगा ॥२२६॥ जिस वस्तु को श्रीब्रह्मा, श्रीशिव एवं श्रीशुकदेवजी निरन्तर इच्छा करते रहते हैं उस वस्तु को इस बालक से जन साधारण भी प्राप्ति करेंगे ॥ २२७ ॥ इनका सर्व जीवों पर दयालुपन होगा और इनको देख कर लोग विषय-विरक्त होंगे एवं सम्पूर्ण संसार के मनुष्य इनसे प्रीति करेंगे ॥ २२८ ॥ और की तो क्या चले जो विष्णु-द्रोही यवन भी होगा वह भी इस बालक के चरणों का भजन करेगा ॥२२६॥ अनन्त ब्रह्माण्ड इसकी कीर्त्ति गावेगा और ब्रह्माजी व अन्यान्य देवगण इस बालक को प्रणाम करेंगे ॥२३०॥ इसका शरीर भागवत-धर्ममय है और यह देवता, ब्राह्मण, गुरु, पिता और माता का धीर भक्त होगा॥२३१॥ जिस प्रकार श्रीविष्णु भगवान् अवतीर्ण होकर आचरण करके धर्म कराते हैं उसी प्रकार यह बालक भी वे सर्व कर्म करेगा॥२३२॥ लग्न इनके जितने शुभ लक्षण सूचित करती हैं उन सबको वर्णन करने की किसकी सामर्थ्य है ? ॥२३३॥

धन्य तुमि मिश्र-पुरन्दर भाग्यवान । जार ए नन्दन तारे रहुक प्रणाम ॥ २३४ ॥
हेन कोष्ठी गणिलाङ् आमि भाग्यवान । श्री विश्वम्भर नाम हइब इहान ॥ २३५ ॥
इहाने बलिब लोक 'नवद्वीप-चन्द्र' । ए बालक जानिह केवल परानन्द ॥ २३६ ॥
हेन रसे पाछे हय दुःखेर प्रकाश । अतएव ना कहिला प्रभुर संन्यास ॥ २३७ ॥
शुनि जगन्नाथ मिश्र पुत्रेर आख्यान । आनन्दे विह्वोल विप्रे दिते चाहे दान ॥२३८॥
किछु नाहि सुदरिद्र, तथापि आनन्दे । विप्रेर चरणधरि मिश्रचन्द्र कान्दे ॥ २३९ ॥
सेह विप्र कान्दे जगन्नाथ पाये धरि । आनन्दे सकल लोक बोले 'हरि' 'हरि' ॥२४०॥
दिब्य-कोष्ठी शुनि जत बान्धव सकल । जय जय दिया सभे करेन मङ्गल ॥ २४१ ॥
ततक्षण आइल सकल वाद्य कार । मृदङ्ग सानाञि, वंशी बाजये अपार ॥ २४२ ॥
देव स्त्रीये नर स्त्रीये नापारि चिनिते । देव नरे एकत्र हइल भालमते ॥ २४३ ॥
देवनारी सब हाते धान्य दूर्बा लैया । हासि देन प्रभु शिरे 'चिरायु' बलिया ॥२४४॥
चिरकाल पृथिवीते करह प्रकाश । अतएव चिरायु बलिया हैल हास ॥ २४५ ॥
अपूर्व्व सुन्दरी सब शचीदेवी देखे । वार्त्ता जिज्ञासिते कारो ना आइसे मुखे ॥ २४६ ॥
शचीर चरण धूलि लय देवी-गण । आनन्दे शचीर मुखे ना आइसे वचन ॥ २४७ ॥
कि आनन्द हइल से जगन्नाथ-घरे । वेदेते अनन्ते ताहा वर्णिते ना पारे ॥ २४८ ॥

हे भाग्यवान् श्रीमिश्र पुरन्दर ! आप धन्य हो, (जिन आपका यह ऐसा) पुत्र है-उन आपको मेरा प्रणाम (स्वीकार) हो ॥ २३४ ॥ मैं भी भाग्यवान् हूँ जो ऐसी जन्म-लग्न को विचारा । इनका नाम 'श्रीविश्वम्भर' होगा ॥२३५॥ इसको लोग 'नवद्वीपचन्द्र' नाम से भी पुकारेंगे, यह बालक केवल आनन्द की परावधि मूर्ति है ॥ २३६ ॥ (विप्रवर ने मन में यह सोचकर कि इनके सन्यास को सुना देने से) ऐसे आनन्द के समय में कहीं पीछे दुःख न आ जाय इस लिये प्रभु का सन्यास नहीं सुनाते हैं ॥ २३७ ॥ श्रीजगन्नाथ-मिश्र पुत्र का चरित्र सुनकर आनन्द में विभोर होकर उन विप्रदेव को दान देना चाहते हैं ॥ २३८ ॥ परन्तु घर में कुछ नहीं है । आप सुदरिद्र हैं तब भी आनन्द में मग्न हैं । मिश्रचन्द्र विप्र के चरण पकड़ कर रोते हैं॥२३९॥वह विप्र भी श्रीजगन्नाथ मिश्र के पाँव पकड़ कर रोता है । यह दृश्य देखकर सब लोग आनन्द से 'हरि बोल' 'हरि बोल' ध्वनि करते हैं ॥ २४७ ॥ एवं सब बन्धु-बान्धव भी श्रीगौरचन्द्र की दिव्य-कोष्ठी को सुनकर जय-जय कार देते हुए आनन्द मना रहे हैं ॥२४१॥ उसी समय सब बाजे वाले आते हैं और मृदङ्ग,सानाञि और बंशी आदि असंख्य बाजे बजाने लगे ॥ २४२ ॥ वहाँ पर देवस्त्री व नरस्त्री पहिचानने में नहीं आती हैं और देवता व मनुष्य भी अच्छी प्रकार से मिले हुए हैं ॥ २४३ ॥ सब देव रमणियाँ हाथ में धान व दूब लेकर 'चिरायु रहो' कहकर हँसती हुईं प्रभु के सिर पर देती हैं ॥ २४४ ॥ देव-रमणियों का मन्तव्य है कि-आप चिरकाल तक पृथ्वी पर लीला करें, इसीलिये 'चिरायु' कहकर हँसी ॥ २४५ ॥ श्रीशचीदेवी उन अपूर्व्व सुन्दरियों को देख रहीं हैं, परन्तु उनसे बात-चीत करने व पूछ ताछ करने की बात उनके एवं अन्य किसी के मुँह पर नहीं आती है ॥ २४६ ॥ देवीगण श्रीशचीदेवी की श्रीचरण-धूलि मस्तक पर धारण करती हैं तब भी श्रीशचीदेवी के मुख से आनन्द में विभोर होने के कारण किसी भी प्रकार के वाक्य

न केवल शची-गृहे, सर्व्व नदीयाय। जे आनन्द हैल, ताहा कहन ना जाय॥ २४६॥
कि नगरे कि चत्त्वरे, किवा गङ्गातीरे। निरवधि लोके 'हरि' 'हरि' ध्वनि करे॥ २५०॥
जन्म यात्रा महोत्सव निशाय ग्रहणे। आनन्दे करेन केहो मर्म्म नाहि जाने॥ २५१॥
चैतन्येर जन्म जात्रा फाल्गुनी पूर्णिमा। ब्रह्मा आदि एतिथिर करे आराधना॥ २५२॥
परम पवित्र तिथि मुक्ति स्वरूपिणी। जँहि अवतीर्ण हइलेन द्विज मणि॥ २५३॥
नित्यानन्द-जन्म माघ-शुक्ला त्रयोदशी। गौरचन्द्र-प्रकाश फाल्गुनी-पौर्णमासी॥ २५४॥
सर्व्व जात्रा-मङ्गल ए दुइ पुण्य-तिथि। सर्व शुभ लग्न अधिष्ठान हय इथि॥२५५॥
एतेके ए दुइ तिथि करिले सेवन। कृष्णभक्ति हय, खण्डे अविद्या बन्धन॥२५६॥
ईश्वरेर जन्मतिथि जेहेन पवित्र। वैष्णवेरो सेइमत तिथिर-चरित्र॥ २५७॥
गौरचन्द्र आविर्भाव शुने जेइ जने। कभो दुःख नाहि तार जन्मे वा मरणे॥२५८॥
शुनिले चैतन्य-कथा भक्ति-फल धरे। जन्मे जन्मे चैतन्येर सङ्गे अवतरे॥ २५६॥
आदि खण्ड-कथा बड़ शुनिते सुन्दर। जँहि अवतीर्ण गौरचन्द्र महेश्वर॥ २६०॥
ए सब लीलार कभो नाहि परिच्छेद। 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' मात्र कहे वेद॥२६१॥
चैतन्य कथार आदि अन्त नाहि देखि। ताहान कृपाय जे बोलाय ताहा लेखि॥ २६२॥

स्फूर्त्ति नहीं पा रहे हैं॥२४७॥ उन श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर आज क्या अपूर्व आनन्द हो रहा है कि जिसको श्रीशेषजी एवं वेद भी वर्णन करके पूर्ण नहीं कर सकते हैं॥ २४८॥ केवल श्रीशची के घर में ही नहीं, बल्कि सर्व नवद्वीप में जो आनन्द हो रहा है, वह कहा नहीं जाता॥२४६॥ क्या शहर में क्या चौराहों पर और क्या गङ्गा तीर सर्वत्र ही लोग निरन्तर 'हरि-बोल' 'हरि-बोल' ध्वनि कर रहे हैं॥ २५०॥ सब लोग आनन्द पूर्वक ग्रहण की रात्रि में प्रभु का जन्म-यात्रा महोत्सव ही मना रहे हैं, परन्तु यह मर्म कोई जानता नही है॥ २५१॥ श्रीचैतन्यचन्द्र की जन्म-यात्रा की तिथि फाल्गुन मास की पूर्णिमा है, इस तिथि को ब्रह्मा आदि देवगण भी आराधना करते हैं॥ २५२॥ यह तिथि जिसमें कि श्रीगौरचन्द्र द्विज-मणि अवतीर्ण हुए हैं, परम पवित्र एवं (सेवा संपत्ति) मोक्ष के देने वाली है॥ २५३॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु की जन्म-तिथि माघ-शुक्ला त्रयोदशी है और श्रीगौरचन्द्र की जन्म-तिथि फाल्गुनी पूर्णिमा है॥ २५४॥ यह दोनों पुण्य तिथियाँ सर्व यात्राओं की मंगल स्वरूपिणी हैं इनमें सर्व शुभ लग्न आकर निवास करते हैं॥ २५५॥ अतएव इन दोनों तिथियों का सेवन करने से कृष्ण-भक्ति प्राप्त होती है और अविद्या के बन्धन टूट जाते हैं॥ २५६॥ जिस प्रकार ईश्वर की जन्म-तिथि पवित्र है उसी प्रकार वैष्णवों की जन्म-तिथि भी महापवित्र होती है।२५७। जो आदमी गौरचन्द्र के जन्म की लीला सुनता है उसके जीवन-काल में एवं मरण-काल में कभी दुःख नहीं होता है॥२५८॥ श्रीचैतन्यचन्द्र की कथा सुनने वाला भक्ति-फल प्राप्त करता है और प्रभु के जन्म लेने पर भी जन्म धारण कर श्रीगौरचन्द्र के साथ अवतीर्ण होता है॥२५६॥ हे बन्धुओ! आदिखण्ड की कथा जिसमें कि महेश्वर श्रीगौरचन्द्र के अवतीर्ण होने का वर्णन है, सुनने में बड़ी सुन्दर (मधुर)है॥२६०। मूलतः श्रीभगवान् की इन सब लीलाओं का कभी बिराम नहीं है, केवल आविर्भाव (प्रकट रहना) और तिरोभाव (अप्रकट रहना) मात्र हो रहा है, ऐसा वेद कहते हैं॥२६१॥ श्रीचैतन्यचन्द्र की कथा का आदि एवं अन्त कुछ भी नहीं दिखलाई दे रहा है, प्रभु अपनी कृपा शक्ति द्वारा जो लिखवा रहे हैं वही लिख रहा हूँ॥२६२॥

भक्त सङ्गे गौरचन्द्र-पदे नमस्कार। इथे अपराध किछु नहुक आमार ॥२५५॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द-चान्द जान। वृन्दावन-दास तछु पदयुगे गान ॥२५६॥

इति श्रीचैतन्यभागवते आदिखण्डे श्रीगौरचन्द्रस्य कोष्ठीगणनादिवर्णनं नाम-
द्वितीयोऽध्याय: ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय

जय जय कमल-नयान गौर चन्द्र। जय जय तोमार प्रेमेर भक्त वृन्द ॥१॥
हेन शुभ दृष्टि प्रभु कर आमायाय। अहर्निश चित्त जेन वसये तोमाय ॥२।
हेन मते प्रकाश हइला गौर चन्द्र। शची गृहे दिने दिने बाढ़ये आनन्द ॥३॥
पुत्रेर श्री मुख देखि ब्राह्मणी ब्राह्मण। आनन्द सागरे दोंहे भासे अनुक्षण ॥४॥
भाइरे देखिया बिश्वरूप भगवान। हासिया करेन कोले आनन्देर धाम ॥५॥
जत आप्तवर्ग आछे सर्व्व परिकरे। अहर्निश सभे थाकि बालक आवरे ॥६॥
विष्णु रक्षा केहो, केहो देवी रक्षा पढ़े। मन्त्र पढ़ि घर केहो चारि दिग बेढ़े ॥७॥
तावत कान्देन प्रभु कमल-लोचन। हरि नाम शुनिले रहेन ततक्षण ॥८॥
परम सङ्केत एइ सभे बुझिलेन। कान्दिलेइ 'हरिनाम' सभेइ लयेन ॥९॥
सर्व्व लोके आवरिया थाके सर्व्वक्षण। कौतुक करये जे जे रसिक देवगण ॥१०॥
कोनो देव अलक्षिते गृहेते साम्भाये। छाया देखि सभे बोले "एइ चोरा जाये" ॥११॥

मैं भक्तों के सहित श्री गौरचन्द्र के चरणों में नमस्कार करता हूँ। (आप कृपा करें कि) इस लीला वर्णन में मेरा कोई अपराध न हो ॥२५५॥ श्रीकृष्णचैतन्य और श्रीनित्यानन्दचन्द्र को जानकर, वृन्दाबनदास उनके पद युगलों की महिमा गा रहे हैं। द्वितीय अर्थ—श्रीकृष्ण चैतन्य एवं श्री प्रभु नित्यानन्द जिनके जान (प्राण) है, ऐसे श्री वृन्दावनदास उनके पद युगलों की महिमा गा रहे हैं ॥२५६॥

हे कमलनयन श्री गौरचन्द्र! आपकी जय हो, जय हो। आपके प्रेममय भक्त-वृन्द की जय हो, जय हो। हे प्रभो! मेरे प्रति ऐसी निष्कपट शुभ दृष्टि कीजिये, कि मेरा चित्त जैसे निशिदिन आपमें ही बसे ॥१।२॥ इस प्रकार श्री गौरचन्द्र प्रकट हुए। श्री शची देवी के घर में दिन प्रतिदिन अधिकाधिक आनन्द बढ़ता जाता है ॥३॥ ब्राह्मणी-ब्राह्मण (श्रीशचीदेवी एवं श्री जगन्नाथ मिश्र) दोनों पुत्र का श्रीमुख देखकर, निरन्तर आनन्द समुद्र में बहते जाते हैं ॥४॥ आनन्द के धाम श्री विश्वरूप भगवान् अपने छोटे भाई को देखकर, हँसते हुए, गोदी में लेते हैं ॥५॥ सर्व परिकर में जितने निज जन हैं, वह सब दिन-रात बालक को घेरे रहते हैं ॥६॥ उनमें से कोई 'विष्णु-रक्षा' और कोई 'देवी-रक्षा' मन्त्र पढ़ते हैं, कोई दिग-बन्धन मन्त्र पढ़कर घर के चारों ओर से घेरा डालते हैं ॥७॥ श्रीकमल-लोचन-प्रभु बहुत देर तक रोते हैं, किन्तु श्री हरिनाम सुनकर उसी समय चुप पड़ जाते हैं ॥८॥ इस परम सङ्केत को सबने समझ लिया, उनके रोते ही सभी 'श्री हरि-नाम' को लेते हैं ॥९॥ सब लोग हर समय प्रभु को घेर कर रहते हैं, कभी-कभी रसिक देवगण ऐसा कौतुक करते हैं ॥१०॥ कोई देवता अलक्षित रूप से घर में घुसता है, उसकी छाया को देखकर सब लोग कहते हैं, कि (देखो) यह

'नरसिंह' 'नरसिंह' केहो करे ध्वनि । अपराजितार स्तोत्र कारो मुखे शुनि ॥१२॥
नाना मंत्रे केहो दश दिग बन्ध करे । उठिल परम कलरव शची घरे ॥१३॥
प्रभु देखि गृहेर बाहिरे देव जाय । सभे बोले "एइ जात-हारिणी पलाय" ॥१४॥
केहो बले "धर धर एइ चोरा जाय । 'नृसिंह नृसिंह' केहो डाकये सदाय ॥१५॥
कोनो ओझा बोले "आजि एडाइलि भाल । ना जानिस नृसिंहेर प्रताप विशाल"॥१६॥
सेइ खाने थाकि देव हासे अलक्षिते । परिपूर्ण हइल मासेक एइमते ॥१७॥
'बालक-उत्थान-पर्व्वे' जत नारी गण । शची सङ्गे गङ्गास्थाने करिला गमन ॥१८॥
वाद्यगीत कोला हले करि गङ्गास्नान । आगे गङ्गा पूजि तवे गेला षष्ठीस्थान ॥१९॥
यथाविधि पूजि सब देवेर-चरण । आइलेन गृहे परिपूर्ण नारी गण ॥२०॥
खइ, कला, तैल, सिन्दूर, गुया, पान । सभारे दिलेन 'आइ' करिया सम्मान ॥२१॥
वालकेरे आशिषिया सब्बं नारी गण । चलिलेन गृहे वन्दि 'आइर' चरण ॥२२॥
हेन मते वैसे प्रभु आपन लीलाय । के ताने जानिते पारे, यदि ना जानाय ॥२३॥
कराइते चाहे प्रभु आपन कीर्त्तन । एतदर्थे करे प्रभु सघने रोदन ॥२४॥
जत जत प्रबोध करये नारीगण । प्रभु पुनः पुन करि करये रोदन ॥२५॥
'हरि' 'हरि' वलि जदि डाके सर्व्व जने । तबे प्रभु हासि चान श्री चन्द्र बदने ॥२६॥
जानिञा प्रभुर चित्त सर्व्व जने मेलि । सदाइ बोलेन 'हरि' दिया करतालि ॥२७॥

शिशु-चोर जा रहा है ॥११॥ तव कोई तो नृसिंह पुकारता है, और कोई अपराजिता देवी का मंत्र स्तोत्र पढ़ता है ॥१२॥ कोई अनेक प्रकार के मंत्र पढ़कर दशों दिशाओं को बाँधता है; इस प्रकार श्री शची देवी के घर में परम कलरव होने लगा । प्रभु के दर्शन कर जव कोई देवता घर के बाहर आता है; तब सब कहते हैं, कि देखो यह 'बालक को हरने वाली (डाइन) भगी जा रही है'॥१३-१४॥सब बोलते हैं 'पकड़ो,पकड़ो,यह चोर चला जा रहा है;' और कोई लगातार 'नृसिंह नृसिंह' पुकारता है ॥१५॥ कोई सयाना (भूत प्रेत का इलाज करने वाला) देवता की छाया को भूत समझ कर कहता है कि—"आज तुम खूब बचे अरे मूढ़ ! तुम श्री नृसिंह जी के विशाल प्रताप को नहीं जानते हो" ॥१६॥ देवता यह सुन कर वहीं खड़ा हुआ अलक्षित होकर हँस रहा है; इसी प्रकार होते-होते एक महीना पूर्ण हो गया ॥ १७ ॥ बालक का उत्थान पर्व के समय सब स्त्रियाँ श्रीशची देवी के साथ गङ्गा स्नान के लिये गईं ॥ १८ ॥ वाद्य-गीत के साथ गङ्गा स्नान करके, प्रथम श्रीगङ्गाजी की पूजा कर,फिर श्रीषष्ठी देवी के स्थान पर गईं॥१९॥यथाविधि सब देवताओं के चरण-पूजन करके,सब नारीगण घर लौट आईं॥२०॥घर में आकर श्रीशची माँ सबको सम्मान कर खील,केला,तेल,सिंदूर,सुपाड़ीऔर पान देतीं हैं ॥२१॥ सर्व नारीगण बालक को आशीषें देकर और श्रीशची माँ के चरण बन्दना कर, अपने-अपने घर को जाती हैं ॥२२॥ इस प्रकार लीलामय प्रभु अपनी लीला को विस्तार करते हुए, विराजमान् हैं । वे यदि आप अपने को प्रकट न करें तो कौन जान सकता है॥२३॥श्रीप्रभु अपना नाम कीर्त्तन कराने को चाहते हैं; इसलिये बड़े जोर-जोर से प्रायशः रोदन करते हैं ॥२४॥ स्त्रीगण (चुप होने के लिये) जितना-जितना प्रबोध देती हैं प्रभु उसको न मान कर बारम्बार रोदन करते हैं ॥२५॥ यदि सर्व्वजन हरि-हरि करके बोलते हैं,तो प्रभु अपने श्री-चन्द्रमुख से हँसते हुए उनकी ओर निहारते हैं॥२६॥तब सब लोग प्रभु के मन की बात जानकर,परस्पर मिलकर

आनन्दे करेन सभे हरि-सङ्कीर्त्तन । हरि नामे पूर्ण हैल शचीर भवन ॥२८॥
एइ मते वैसे प्रभु जगन्नाथ-घरे । गुप्त भावे गोपालेर प्राय केलि करे ॥२९॥
जे समये जखन ना थाके केहो घरे । जे किछु थाकये घरे सकल विचारे ॥३०॥
बिचारिया सकल फेलाय चारि भिते । सर्व्व घर भरे तैल, दुग्ध, घोल, घृते ॥३१॥
जननी आइसे हेन जानिञा आपने । शयने आछेन प्रभु करेन रोदने ॥३२॥
'हरि हरि' बलिया सान्त्वना करे माय । घरे देखे सब द्रव्य गड़ागड़ि जाय ॥३३॥
के फेलिल सर्व्वगृहे धान्य, चालु, मुद्‌ग । भाण्डेर सहित देखे भाङ्गा दधि दुग्ध ॥३४॥
सबे चारि-मासेर बालक आछे घरे । के फेलिल हेन केहो बुझिते ना पारे ॥३५॥
सब परिजन आसि मिलिल तथाय । मनुष्येर चिन्हमात्र केहो नाहि पाय ॥३६॥
केहो बोले 'दानव आसियाछिल घरे । रक्षा लागि शिशुरे नारिल लङ्घिवारे ॥३७॥
शिशु लङ्घिवारे ना पाइया क्रोधमने । अपचय करिया पलाइल निज स्थाने' ॥३८॥
मिश्र जगन्नाथ देखि चित्ते बड़ धन्द । दैव हेन जानि, किछु ना बलिल मन्द ॥३९॥
दैव-अपचय देखि दुइ जने चाहे । बालक देखिया कोन दुःख नाहि रहे ॥४०।
एइमत प्रति दिन करेन कौतुक । 'नाम-करणेर' काल हइल सम्मुख ॥४१॥
नीलाम्बर-चक्रवर्त्ती-आदि विद्यावान । सर्व्व-बन्धु गणेर हइल उपस्थान ॥४२॥

हाथों से ताली बजाते हुए निरन्तर 'हरि-हरि' बोलते हैं। सब कोई आनन्द से हरि-सङ्कीर्त्तन करते हैं; इस प्रकार श्रीशची देवी का घर हरि-नाम से भर गया॥२७-२८॥इस प्रकार प्रभु श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर में विराजते हैं;गुप्त भाव से नन्द-गोकुल में श्रीबाल-गोपाल की सी क्रीड़ा किया करते हैं॥२९॥जिस समय घर में कोई नहीं रहता है,उस समय प्रभु घर में जो कुछ सामान होता है, भली भाँति विचार लेते हैं ॥ ३० ॥ और फिर विचार के पश्चात् सब सामान को चारों ओर बिखेर देते हैं। तेल,दूध,छाछ और घी से सब भर जाता है॥३१॥ यह समझ कर कि माताजी आ रही हैं, आप चुपचाप जाकर लोट जाते हैं और रोदन करना शुरू कर देते हैं ॥३२॥माताजी 'हरि-हरि' गाकर आपको चुप कराती हैं,पश्चात् देखती हैं कि सब सामान घर में तितर-बितर हुआ पड़ा है ॥३३॥तब माताजी सोचती हैं कि—सब सामान घर में यह धान,चावल, मूँग किसने फैलाये ? टूटे हुए बर्तनों के सङ्ग फैले हुए दही, दूध को देखती हैं। केवल चार मास का बालक घरमें है,यह सब सामान किसने बिखेर दिया ? किसी को कुछ समझ में नहीं आता ॥ ३४-३५ ॥ इतने में सब कुटुम्बी लोग आ पहुँचे हैं और देखते हैं कि यहाँ पर कहीं मनुष्य के चिह्न मात्र भी नहीं हैं ॥ ३६ ॥ तब कोई कहता है कि—"घर में दानव आया था, लेकिन मन्त्र से रक्षित होने के कारण, इस बालक का कुछ अनिष्ट नहीं कर सका ॥३७॥ जब बालक का कुछ अनिष्ट नहीं कर सका, तब क्रोध में आकर यह अपचय (नुकसान) करके, अपने स्थान को भाग गया है ॥ ३८ ॥ श्रीजगन्नाथ मिश्र ऐसा देखकर चित्त में कुछ निश्चय नहीं कर पाते हैं; पीछे यह दैवी लीला है, ऐसे जानकर कुछ आक्षेप बचन नहीं कहते ॥ ३९ ॥ दैवी-उपद्रव को देखकर दोनों जन (माता-पिता) परस्पर देखने लगे और बालक ऊपर दृष्टि पड़ते ही उनको किसी प्रकार का दुःख नहीं रहा ॥ ४० ॥ इस प्रकार के कौतुक (प्रभु) प्रति दिन करते हैं, आगे नामकरण का समय आ पहुँचा ॥ ४१ ॥ (नामकरण का समय जानकर) श्री नीलाम्बर चक्रवर्त्ती आदि सब विद्वान् बन्धुवर्ग श्री जगन्नाथ मिश्र के घर पधारे ।४२।

मिलिला विस्तर आसि पतिव्रतागण। लक्ष्मी-प्राय-दीप्त सभे सिन्दूरभूषण ॥४३॥
नाम थुइबार सभे करेन विचार। स्त्रीगण बोलये एक, अन्ये बोले आर ॥४४॥
'इहान अनेक ज्येष्ठ कन्या पुत्र नाञि। शेष ये जन्मये तार नाम से निमाञि'※ ॥४५॥
बोलेन विद्वान् सब करिया विचार। एक नाम योग्य हय थुइते इहार ॥४६॥
ए शिशु जन्मिले-मात्र सर्व्व देशे देशे। दुर्भिक्ष घुचिल, वृष्टि पाइल कृषके ॥४७॥
जगत हइल सुस्थ इहान जनमे। पूर्व्वे येन पृथिवी धरिला नारायणे ॥४८॥
अतएव इहान श्री विश्वम्भर नाम। कुलदीप कोष्ठीतेओ लिखिल इहान ॥४९॥
'निमाञि' ये बलिलेन पतिव्रता गण। सेहो नाम द्वितीय डाकिब सर्व्वजन ॥५०॥
सर्व्वशुभक्षण नामकरण-समये। गीता, भागवत, वेद, ब्राह्मण पढ़ये ॥५१॥
देवगणे नरगणे करये मङ्गल। हरिध्वनि, शङ्ख घन्टा बाजये सकल ॥५२॥
धान्य, पूँथि, खड़ि, स्वर्ण, रजतादि यत। धरिते आनिञा करिलेन उपनीत ॥५३॥
जगन्नाथ बोले शुन बाप विश्वम्भर। याहा चित्ते लय, ताहा धरह सत्वर ॥५४॥
सकल छाड़िया प्रभु श्रीशचीनन्दन। 'भागवत' धरिया दिलेन आलिङ्गन ॥५५॥
पतिव्रतागणे 'जय' देइ चारि भित। सभेई बोलेन 'बड़ हइब पण्डित' ॥५६॥

अनेक पतिव्रता स्त्रियाँ आ मिलीं वे सब लक्ष्मी जी जैसी कान्तिमती थीं और सीमन्त में सिन्दूर रेखा से आभूषिता थीं ॥ ४३ ॥ सब लोग नाम रखने का विचार करते हैं, स्त्रीगण कोई नाम बोलती हैं और अन्य लोग दूसरा नाम ॥ ४४ ॥ इनके (श्री शची माता के) इससे बड़े अनेक पुत्र कन्याओं के तिरोभाव हो गये हैं; सबसे पीछे जन्म लेने से इस बालक का नाम निमाई होय ॥ ४५ ॥ इसके पश्चात् सब विद्वान् लोग विचार कहते हैं; कि इसका एक नाम रखना ठीक होगा ॥४६॥ इस बालक के जन्म लेते ही देश-देशों से दुर्भिक्ष दूर हो गया; कृषकों के लिये वर्षा हुई; जैसे कि पूर्वकाल में श्रीमन्नारायण देव ने पृथ्वी को धारण (पोषण) किया था, इसी प्रकार इस बालक ने भी जन्म लेकर जगत् को सुखी किया है (धारण किया है)। अतएव इसका नाम है "श्रीविश्वम्भर" कुल-दीप-कोष्ठी में भी इस नाम को लिख देते हैं। इन पतिव्रतागण ने जो 'निमाई' नाम धरा है, वह भी दूसरा नाम हो; इस नाम से सब लोग इनको बोलेंगे ॥ ४७-५० ॥ सर्वशुभक्षण से पूर्ण नाम-करण के समय ब्राह्मण लोग गीता, भागवत एवं वेद-पाठ कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ देवतागण एवं मनुष्यगण मङ्गल मना रहे हैं; हरिध्वनि हो रही हैं; शङ्ख व घण्टा आदि सब बज रहे हैं ॥ ५२ ॥ उस समय प्रभु से कोई एक वस्तु उठवाने (स्पर्श) के लिये श्रीजगन्नाथ मिश्र धान, पुस्तकें, खड़ियाँ, स्वर्ण. चाँदी आदि वस्तुयें प्रभु के सामने लाकर रख दिये हैं ॥ ५३ ॥ तब श्रीजगन्नाथ मिश्र जी कहते हैं कि-"हे वत्स ! विश्वम्भर सुनो, इन वस्तुओं में से जो तुमको अच्छी लगे, वह झट से पकड़ लेओ" ॥ ५४ ॥ प्रभु श्रीशचीनन्दन ने सब वस्तुओं को छोड़कर श्रीमद्भागवत जी को पकड़ कर आलिङ्गन दिया ॥ ५५ ॥ पतिव्रतागण चारों ओर से जयकार देने लगीं; सब ही कहती हैं, कि-'यह बालक बड़ा पण्डित होगा' ॥ ५६ ॥ कोई कहते हैं, "कि यह

※ 'निमाञि'-बङ्गाल प्रदेश में स्त्रियों के विचार हैं, कि-बालक का कड़ुआ नाम रखने से यमराज उसे शीघ्र नहीं लेते हैं, अर्थात् वह चिरंजीव रहता है। इसलिये जिनके पहिले के कुछ बच्चे मर जाते हैं, वे अपने बालक का कड़वी नाम धरते हैं।

केहो बोले शिशु हैव परम वैष्णव । अल्पे सर्व्व शास्त्रेर जानिब अनुभव ॥५७॥
ये दिगे हासिया प्रभु चान विश्वम्भर । आनन्दे सिञ्चित हय तार कलेवर ॥५८॥
ये करये कोले, सेइ एड़िते ना जाने । देवेर दुर्ल्लभ कोले करे नारीगणे ॥५९॥
प्रभु येइ कान्दे, सेइ क्षणे नारीगण । हाथे तालि दिया करे हरि-सङ्कीर्त्तन ॥६०॥
शुनिआ नाचेन प्रभु कोलेर उपरे । विशेषे सकल नारी हरि-ध्वनि करे ॥६१॥
निरबधि सभार वदने हरिनाम । छले बोलायेन प्रभु, हेन इच्छा तान ॥६२॥
'तान इच्छा विना कोन कर्म्म सिद्ध नहे' । वेदे शास्त्रे भागवते एइ तत्त्व कहे ॥६३॥
एइमते कराइया निज-सङ्कीर्त्तन । दिने दिने वाढ़े प्रभु श्री शचीनन्दन ॥६४॥
जानु-गति चले प्रभु परम सुन्दर । कटिते किङ्किणी बाजे अति मनोहर ॥६५॥
परम निर्भये सर्व्व-अङ्गने विहरे । किवा अग्नि, सर्प, याहा देखे, ताहि धरे ॥६६॥
एक दिन एक सर्प वाड़ीते बेड़ाय । धरि लेन सर्प प्रभु वालक-लीलाय ॥६७॥
कुण्डली करिया सर्प रहिल बैठिया । ठाकुर थाकिला सर्प-उपरे शुइया ॥६८॥
आथे-व्यथे सभे देखि 'हाय हाय' करे । शुइया हासेन प्रभु सर्पेर उपरे ॥६९॥
'गरुड़-गरुड़' करि डाके सर्व्वजन । पिता-माता-आदि भये करये क्रन्दन ॥७०॥
प्रभुरे एड़िया सर्प पलाय तखन । पुनि धरिवारे यान श्रीशचीनन्दन ॥७१॥
धरिया आनिआ सभे करिलेन कोले । 'चिरजीवी हओ' करि नारीगण बोले ॥७२॥

बालक परम वैष्णव होगा । अल्पकाल में ही सर्व शास्त्रों के मर्म्म जानने वाला बनेगा"॥५७॥ प्रभु श्रीविश्वम्भर हँसते हुए जिसकी ओर देखते हैं, उसी का शरीर आनन्द से भीग जाता है ॥ ५८ ॥ जो कोई नारीगण श्री निमाई चाँद को गोदी में लेती हैं, वह फिर उतारना नहीं जानती; देवताओं के दुर्लभ धन को नारीगण गोदी में लेती हैं ॥५९॥ प्रभु श्री निमाई चाँद ज्योंही रोवें त्योंही, नारीगण ताली बजाती हुई श्रीहरि-सङ्कीर्त्तन ध्वनि करने लगती हैं ॥ ६० ॥ श्री हरि-सङ्कीर्त्तन को सुनकर प्रभु गोदी में ही बैठ कर नाचते हैं। (उचकते हैं) तब तो नारी-गण विशेष रूप से हरि-ध्वनि करती हैं ॥ ६१ ॥ श्री प्रभु क्रन्दन छल-से निरन्तर सबके मुख से श्री हरि-नाम लिवाते हैं, उनकी ऐसी ही इच्छा है ॥ ६२ ॥ उनकी इच्छा के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता है; वेद शास्त्र एवं श्री भागवत् जी इस तत्त्व को बखान करते हैं ॥ ६३ ॥ इस प्रकार प्रभु श्री शचीनन्दन 'निज-नाम-सङ्कीर्तन' कराते हुए, दिन-दिन बड़े होने लगे ॥ ६४ ॥ अब परम सुन्दर श्रीप्रभु घुटुवन चलने लगे हैं; और चलते समय कटि में अति मनोहर किङ्कणी बजती है ॥ ६५ ॥ परम निर्भय होकर सर्व आँगन में घूमते हैं; और वहाँ क्या अग्नि, क्या सर्प, जो कुछ देखते हैं, उसी को पकड़ लेते हैं ॥ ६६ ॥ एक दिन एक सर्प घर में डोल रहा था, प्रभु ने उसको बाल-सुलभ खेल के अनुसार पकड़ लिया ॥ ६७ ॥ पकड़ते ही सर्प ने प्रभु के हाथ के चारों ओर कुण्डली मार ली। प्रभु भी सर्प के ऊपर सो गये ॥ ६८ ॥ प्रभु को सर्प के ऊपर सोते हुए देखकर, सब लोग घबड़ा कर 'हाय-हाय' करने लगे। इधर प्रभु सर्प के ऊपर सोते हुए हँस रहे हैं। सब लोग 'गरुड़-गरुड़' कहकर पुकारते हैं; और पिता-माता भयभीत होकर रोने लगते हैं ॥ ६९-७० ॥ तब सर्प प्रभु को छोड़कर भाग जाता है; और श्रीशचीनन्दन फिर उसे पकड़ने के लिये जाते हैं ॥ ७१ ॥ सब प्रभु को वहाँ से पकड़ लाते हैं; और गोदी में लेते हैं। नारीगण 'चिरंजीव हो' आशिर्बचन बोल रही हैं ॥ ७२ ॥

केहो रक्षा बान्धे, केहो पढ़े स्वस्तिवाणी । केहो अङ्गे देइ विष्णु-पादोदक आनि ।।७३।।
केहो बोले 'बालकेर' पुनर्जन्म हैल' । केहो बोले 'जाति-सर्प तेजि ना लङ्घिल'।।७४।।
हासे प्रभु गौरचन्द्र सभारे चाहिया । पुनःपुन जाय सभे आनेन धरिया ।।७५।।
भक्ति करि जे ए सब वेद-गोप्य शुने । संसार-भुजङ्गे तारे ना करे लङ्घने ।।७६।।
एइमत दिने दिने श्री शचीनन्दन । हाँटिया करेन प्रभु अङ्गने भ्रमन ।।७७।।
जिनिञा कन्दर्प-कोटि सर्व्वाङ्गेर रूप । चान्देर लागये साध देखिते से मुख ।।७८।।
सुवलित-मस्तके चाँचर भाल केश । कमल नयान येन गोपालेर बेश ।।७९।।
आजानु-लम्बित भुज, अरुण अधर । सकल-लक्षण-युत वक्ष-परिसर ।।८०।।
सहजे अरुण-गौर देह मनोहर । विशेषे अंगुलि, कर, चरण सुन्दर ।।८१।।
बालक–स्वभावे प्रभु यबे चलि याय । रक्त पड़े हेन, देखि माये त्रास पाय ।।८२।।
देखि शची-जगन्नाथ बड़ई विस्मित । निर्धन तथापि दोंहे महा आनन्दित ।।८३।।
काणाकणि करे दोंहे निर्ज्जने बसिया । 'कोन महापुरुष वा जन्मिला आसिया ।।८४।।
हेन बुझि, संसार-दुःखेर हैल अन्त । जन्मिल आमार घरे हेन गुणवन्त ।।८५।।
एमन शिशुर रीति कभु नाहि शुनि । निरवधि नाचे हासे, शुनि हरिध्वनि ।।८६।।
तावत क्रन्दन करे, प्रवोध ना माने । बड़ करि 'हरिध्वनि' यावत ना शुने ।।८७।।

कोई प्रभु के हाथ में रक्षा-बन्धन बाँधता है, कोई स्वस्तिवाचन करने लगता है, कोई श्री विष्णु-चरणामृत लाकर श्री अङ्ग के ऊपर छिड़क रहा है । कोई कह रहा है कि–"आज इस बालक का दूसरा जन्म हुआ है।" कोई कह रहा है, "यह जाति सर्प है, इसीलिये कोई अनिष्ट नहीं किया" ।। ७३-७४ ।। प्रभु श्री गौरचन्द्र सब की ओर चाहते हुए हँसते हैं; और सर्प पकड़ने को बार-बार चलते हैं, लोक बारम्बार पकड़ लाते हैं ।। ७५ ।। जो कोई भक्ति-पूर्वक यह सब वेद-गोप्य लीला को श्रवण करते हैं, संसार रूपी काल-सर्प उनको लङ्घन नहीं करेगा ।। ७६ ।। प्रभु श्री शचीनन्दन दिन-दिन इसी प्रकार लीला करते हुए, अब पाँव-पाँव चल कर आँगन में विचरने लगे ।। ७७ ।। आपके सर्व अङ्गों की रूप-माधुरी कोटि कामदेवों को जीतने वाली है । आपका वह श्रीमुख देखने के लिये चन्द्रमा भी लालायित होता है ।। ७८ ।। सुबलि मस्तक पर घुँघराले सुन्दर केश हैं, कमल-सदृश नेत्र हैं, बेष-भूषा श्री बाल-गोपाल की जैसी है, जानुपर्यन्त लम्बी भुजायें, और अधर अरुण हैं। सर्व शुभ लक्षणों से युक्त आयत वक्षस्थल है । मनोहर गौर वर्ण शरीर, सहज में ही अरुणाई लिये हुए हैं; तिस पर अँगुली,हाथ और श्रीचरण तो विशेष रूप से सुन्दर अरुण वर्ण हैं।।७९-८०-८१।।प्रभु बालक स्वभाव से जब चलते हैं, तब चरणों की ललाई की झलक देख कर मानों रक्त निकल पड़ा हो । यह जान कर माता डर जाती हैं ।। ८२ ।। यह देखकर श्रीशचीदेवी और श्री जगन्नाथ मिश्र दोनों बड़ा ही आश्चर्य मानते हैं। निर्धन होकर भी दोनों महासुखी हैं ।। ८३ ।। दोनों एकान्त में बैठ कर चुपचाप बात करते हैं—"हमारे घर में कोई महापुरुष तो प्रकट नहीं हुए ? ।। ८४ ।। ऐसा समझ पड़ता है, कि हमारे घर में ऐसे गुणवान के जन्म लेने से संसार के दुःखों का अन्त हो गया ।।८५।। किसी बालक का ऐसा स्वभाव कभी सुनने में नहीं आया, जो कि श्री हरि-नाम की ध्वनि सुनकर निरन्तर नाचे और हँसे ।। ८६ ।। जब तक यह खूब जोर की हरि-

उषाकाल हइते यतेक नारीगण । बालक वेढ़िया सभे करे सङ्कीर्त्तन ॥८८॥
'हरि' बलि नारीगणे देइ करतालि । नाचे गौरसुन्दर बालक कुतुहली ॥८९॥
गड़ागड़ि याय प्रभु धुलाय धूसर । हासि उठे जननीर कोलेर उपर ॥९०॥
हेन अङ्गभङ्गी करि नाचे गौरचन्द्र । देखिया सभार हय अतुल आनन्द ॥९१॥
हेन मतें शिशु-भावे हरि-सङ्कीर्त्तन । करायेन प्रभु नाहि बुझे कोनो जन ॥९२॥
निरवधि धाय प्रभु कि घर बाहिरे । परम-चञ्चल-केहो धरिते ना पारे ॥९३॥
एकेश्वर बाड़ीर बाहिरे प्रभु याय । खइ, कला, सन्देश, या 'देखे ताइ' चाय ॥९४॥
देखिया प्रभुर रूप परम-मोहन । ये जने ना चिने, सेह-देइ ततक्षण ॥९५॥
सभेइ सन्देश कला देयेन प्रभुरे । पाइया सन्तोषे प्रभु आइसेन घरे ॥९६॥
ये सकल स्त्रीगणे गायेन हरि- नाम । ता सभारे आनि सब करेन प्रदान ॥९७॥
बालकेर बुद्धि देखि हासे सर्व्व जन । हाथे तालि दिया 'हरि' बोले अनुक्षण ॥९८॥
कि विहाने, कि मध्यान्हे, कि रात्रि सन्ध्याय । निरबधि बाड़ीर बाहिरे प्रभु जाय ॥९९॥
निकटे बसये यत बन्धुवर्ग घरे । प्रतिदिन कौतुके आपने चुरि करे ॥१००॥
कारो घर दुग्ध पिये,कारो भात खाय । हाण्डी भाङ्गे,यार घरे किछुइ ना पाय १०१॥
यार घरे शिशु थाके, ताहारे कान्दाय । केहो देखिलेइ मात्र उठिया पलाय ॥१०२
दैवयोगे यदि केहो पारे धरिवारे । तवे तार पाये धरि करे परिहारे ॥१०३॥

ध्वनि नहीं सुन लेता, तब तक रोता ही रहता है; प्रबोध नहीं मानता, शान्त नहीं होता ॥ ८७ ॥ उषाकाल से ही सब स्त्रियाँ बालक को घेर कर श्री हरिनाम संकीर्त्तन करती रहती हैं ॥ ८८ ॥ स्त्री सब तालियाँ बजाती हुईं, 'हरि-हरि' बोलती हैं, और बालक श्रीगौरसुन्दर आनन्दित होकर नृत्य करते हैं ॥८९॥ प्रभु धूल में लोट-पोट होकर धूसर हो जाते हैं, और फिर हँस कर माता जी की गोद में जा बिराजते हैं॥९०॥ श्रीगौरचन्द्र ऐसी अङ्ग-भंगी कर नाचते हैं, कि जिसको देखकर सब को अतुल आनन्द होता है ॥ ९१ ॥ इस प्रकार प्रभु बालक-भाव से श्री हरि-सङ्कीर्त्तन करा रहे हैं; इसको कोई नहीं समझ रहा है ॥ ९२ ॥ प्रभु क्या घर, क्या बाहर में निरन्तर दौड़ा-दौड़ी करते हैं; परम चञ्चल आपको कोई पकड़ नहीं पाता ॥ ९३ ॥ प्रभु अकेले ही घर से बाहर चले जाते हैं और खील, केला, सन्देश, (मिठाई विशेष) जो कुछ देखते हैं; वही माँगने लगते हैं ॥ ९४ ॥ प्रभु के परम मोहन रूप को देखकर, जो उन्हें नहीं पहचानता, वह भी उसी समय दे देता है ॥ ९५ ॥ सब लोग प्रभु को सन्देश, केला आदि दे देते हैं और प्रभु पाकर प्रसन्न मन से घर चले आते है ॥ ९६ ॥ जो स्त्रियाँ श्री हरिनाम गान करती हैं, उनको लाकर सब दे देते हैं ॥ ९७ ॥ बालक की ऐसी बुद्धि देखकर सब लोग हँसते हैं; और लगातार हाथ ताली बजाकर श्रीहरि-नाम बोलने लगते हैं ॥९८॥ प्रभु क्या प्रातःकाल, क्या दुपहर, क्या सन्ध्या, क्या रात्रि, सब समय ही निरन्तर घर से बाहर चले जाते हैं ॥ ९९ ॥ और आस-पास में जितने बन्धु-बान्धवों के घर हैं, उनमें प्रति दिन परम कौतुक से आप चोरी करते हैं ॥ १०० ॥ घरों में जाकर किसी का दूध पीते हैं, तो किसी का भात खाते हैं और जिसके घर में खाने को कुछ नहीं मिलता; उसकी हँड़िया फोड़ देते हैं ॥ १०१ ॥ जिसके घर में अकेला बच्चा मिलता है, उसे रुला देते हैं, यदि किसी की दृष्टि में पड़ जाते हैं, तो उसी समय झट भाग जाते हैं ॥ १०२ ॥ दैवयोग से

"ए बार छाड़ह मोरे, ना आसिव आर । आर यदि चुरि करों, दोहाइ तोमार" ॥१०४॥
देखिया शिशुर बुद्धि सभेइ विस्मित । रुष्ट नहे केहो, सभे करेन पिरीत ॥१०५॥
निजपुत्र हइतेओ सभे स्नेह करे । दरशन-मात्रे सर्व्व चित्त-वृत्ति हरे ॥१०६॥
एइमत रङ्ग करे वैकुण्ठेर राय । स्थिर नहे एक ठाञि, वुलये सदाय ॥१०७॥
एक दिन प्रभुरे देखिया दुइ चोरे । युक्ति करे, "कार शिशु वेड़ाय नगरे" ॥१०८॥
प्रभुर श्री अङ्गे देखि दिव्य अलङ्कार । हरिबारे दुइ चोरे चिन्ते परकार ॥१०९॥
'बाप ! बाप !' बलि एक चोरे लैल कोले । 'एतक्षण कोथा छिले' ? आर चोरे बोले ॥११०॥
"झाट घरे आइस बाप" ! बोले दुइ चोरे । हासि बोले प्रभु "चल चल याइ घरे" ॥१११॥
आथे-व्यथे कोले करि दुइ चोर धाय । लोके बोले "यार शिशु सेइ लइ याय" ॥११२॥
अर्व्वुद अर्व्वुद लोक, केबा कारे चिने । महातुष्ट चोर अलङ्कार-दरशने ॥११३॥
केहो मने भावे "मुञि निमु ताड़ बाला" । एइमते दुइ चोरे खाय मनकला ॥११४॥
दुइ चोर चलि याय निज-मर्म्म-स्थाने । स्कन्धेर उपरे हासि यान भगवाने ॥११५॥
एक जन प्रभुरे सन्देश देइ करे । आर जने बोले "एइ आइलाङ् घरे" ॥११६॥
एइमत भाण्डिया अनेक दूरे याय । हेथा यत आप्तगण चाहिया वेड़ाय ॥११७॥
केहो केहो बोले "आइस आइस विश्वम्भर" । केहो डाके "निमाञि" करिया उच्च स्वर ॥११८॥

यदि कोई पकड़ भी ले, तो उसके पैर पकड़ कर क्षमा माँगते हैं और कहते हैं कि—"अब की बार मुझे छोड़ दो, मैं फिर नहीं आऊँगा; यदि फिर कभी चोरी करूँ, तो तुम्हारी दोहाई (शपथ) है ॥१०३-१०४॥ बालक की ऐसी बुद्धि देखकर, सब विस्मित (आश्चर्य) हो जाते हैं। कोई भी क्रोध नहीं करता है, सभी प्रीति करते हैं ॥ १०५ ॥ सब लोग अपने पुत्र से भी अधिक स्नेह करते हैं; प्रभु दर्शन-दान मात्र से ही सर्व चित्त-वृत्ति को हर लेते हैं ॥ १०६ ॥ वैकुण्ठनाथ श्री प्रभु इस प्रकार रङ्ग-विस्तार करते हैं; एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते हैं, सर्वदा विचरते रहते हैं ॥ १०७ ॥ एक दिन दो चोर प्रभु को घूमते-फिरते देखकर; सलाह करते हैं कि—"देखो ! यह किसका बालक नगर में डोलता है" ॥ १०८ ॥ दोनों चोर प्रभु के श्री अङ्ग पर दिव्य आभूषण देखकर, चोरी करने का उपाय सोचते हैं ॥ १०९ ॥ एक चोर ने तो, "आओ वत्स !" कहकर गोदी में उठा लिया और दूसरा चोर कहता है कि—"तुम इतनी देर तक कहाँ थे ?" ॥ ११० ॥ दोनों चोर कहते हैं कि-(हाँ) चलो, चलो, घर चलें ॥ १११ ॥ घबड़ाहट के मारे अस्त-व्यस्त होकर दोनों चोर प्रभु को गोदी में लेकर भगे जाते हैं; लोग समझते हैं, कि-'जिसका बालक है, वही ले जा रहा है' ॥ ११२ ॥ नवद्वीप में कितने ही अरब (असंख्य) लोग रहते हैं; कौन किसको पहचानता है ? चोर अलङ्कारों को देख-देखकर, परम प्रसन्न हो रहे हैं ॥ ११३ ॥ एक जन मन में यह विचार कर रहा है, कि-मैं 'ताड़ और बाला लूँगा। (और दूसरा अपने मन में अन्य आभूषण लेने की सोच रहा है) इस प्रकार दोनों चोर मन के केला खाते जाते हैं ॥ ११४ ॥ दोनों चोर अपने लक्ष्य स्थान को चले जा रहे हैं; और उनके कन्धे के ऊपर बैठे हुए प्रभु हँसते जाते हैं ॥ ११५ ॥ [कुछ दूर आकर] एक चोर प्रभु के हाथ में सन्देश देता है; और दूसरा कहता है कि-"बस ! अब घर आया जाता है" ॥ ११६ ॥ इस प्रकार ठगकर बहुत दूर तक ले गये, इधर जितने प्रभु के आत्म-जन हैं, वे सब ढूढ़ते हुए फिर रहे हैं ॥११७॥ [उनमें से] कोई-कोई विश्वम्भर ! आओ, विश्वम्भर !

परम व्याकुल हइलेन सर्व्व जने । जल विना येन हय मत्स्येर जीवने ॥११९॥
सभे सर्व्व भावे गेला गोविन्द शरण । प्रभु लैया याय चोर आपन भवन ॥१२०॥
वैष्णवी-मायाय चोर पथ नाहिं चिने । जगन्नाथ-घर आइल निज घर ज्ञाने ॥१२१॥
चोर देखे आइलाङ् निज मर्म्म स्थाने । अलङ्कार हरिते हइला सावधाने॥१२२॥
चोर बोले 'नाम बाप ! आइलाङ् घर' । प्रभु बोले 'हय हय नामाओ सत्वर ॥१२३॥
येखाने सकलगणे मिश्र-जगन्नाथ । विषाद भावेन सभे माथे दिया हाथ ॥१२४॥
मायामुग्ध चोर ठाकुरेर सेइ स्थाने । स्कन्ध हैते नामाइल निज-घर-ज्ञाने ॥१२५॥
नामिलेइ मात्र प्रभु गेला पितृकोले । महानन्द करि सभे 'हरि हरि' बोले ॥१२६॥
सभार हइल अनिर्व्वचनीय रङ्ग । प्राण आसि देहेर हइल येन सङ्ग ॥१२७॥
आपनार घर नहें, देखे दुइ चोरे । कोथा आसियाछि, किछु चिनिते ना पारे ॥१२८॥
गण्डगोले के काहारे अवधान करे । चारि-दिगे चाहि चोर पलाइल डरे ॥१२९॥
'परम अद्भुत' ! दुइ चोर मने गणे । चोर बोले 'भेल्कि वा दिल कोनो जने'॥१३०॥
चण्डी राखिलेन आजि बोले दुइ चोरे । सुस्थ हइ दुइ चोर कोलाकुलि करे ॥१३१॥
परमार्थे दुई चोर महाभाग्यवान् । नारायण यार स्कन्धे करिला उत्थान ॥१३२॥
एथा सर्व्वगणे मने करेन विचार । 'के आनिल देख, बस्त्र शिरे बान्धि तार' ॥१३३॥

आओ, पुकार रहे हैं और कोई-कोई ऊँचे स्वर से 'निमाई !' 'निमाई !' बोल रहे हैं ॥ ११८ ॥ सब लोग इस प्रकार परम व्याकुल हो रहे हैं; जिस प्रकार जल बिना मछली का जीवन ॥ ११९ ॥ सब लोक सब ओर से निराश होकर, श्रीगोविन्द के शरण में आये । उधर चोर प्रभु को अपने घर ले जा रहे हैं ॥ १२० ॥ [परन्तु] चोर विष्णु-माया से मोहित होने के कारण रास्ते को भूले हुए हैं, इसलिये अपना घर जानकर, श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर आ जाते हैं । परन्तु चोर समझ रहे हैं, कि हम अपने अभीष्ट स्थान पर आ गये और विचार करते हैं कि अलंकारों को सावधानी से लेना होगा ॥ १२१-१२२ ॥ तब चोर बोले, हे वत्स ! उतरो हम घर आ गये; प्रभु ने भी कहा, 'हाँ ! हाँ !' शीघ्र उतारो ॥ १२३ ॥ श्री जगन्नाथ मिश्र सब आत्मीय जनों के साथ माथे पर हाथ धर के जिस स्थान पर शोकातुर बैठे हुए हैं; उसी स्थान पर माया मोहित चोरों ने अपना घर जान कर प्रभु को कन्धे पर से उतारा ॥ १२४-१२५ ॥ उतरते ही प्रभु पिता की गोदी में जा बैठे, सब लोग परम आनन्दित होकर 'हरि-हरि' बोलने लगे हैं ॥ १२६ ॥सबको अकथनीय आनन्द हुआ; मानों मृतक शरीर में प्राण आ गये हों ॥ १२७ ॥ (अब) दोनों चोर देखते हैं, कि–यह तो हमारा घर नहीं है । कहाँ आ गये ? कुछ समझ में नहीं आता ? ॥ १२८ ॥ हल्ला-गुल्ला में कौन किसका ध्यान रखता है । अवसर पाकर चोर चारों ओर देखकर, डर के मारे भाग गये ॥ १२९ ॥ पथ में दोनों चोर मन में विचार करते हैं, कि–"यह तो परम आश्चर्य की बात हुई", दोनों चोर फिर बोले–"किसी ने जादू तो नहीं कर दिया था" ॥ १३० ॥ दोनों चोर बोलते हैं, "आज चण्डी देवी ने हमको बचाया है"; फिर दोनों चोर प्रसन्न होकर परस्पर आलिङ्गन करते हैं ॥ १३१ ॥ परमार्थ पक्ष में दोनों चोर महाभाग्यवान हैं, जिनके कन्धों पर श्रीनारायण ने आरोहण किया है ॥ १३२ ॥ इधर सब आत्मीयजन मन में विचार करते हैं, "देखो ! बालक को कौन लेकर आया है, लाओ

केहो बोले 'देखिलाङ् लोक दुइ जन । शिशु थुइ कोन दिगे करिला गमन' ॥१३४॥
'आमि आनिञाछि' कोनो जन नाहि बोले । अद्भुत देखिया सभे पड़िलेन भोले ॥१३५॥
सभे जिज्ञासेन 'बाप ! कहत निमाञि । के तोमारे आनिल, पाइया कोन ठाञि ? ॥१३६॥
प्रभु बोले 'आमि गियाछिलाङ् गङ्गातीरे । पथ हाराइया आमि वेड़ाइ नगरे ॥१३७॥
'तवे दुइ जन आमा' कोलेत करिया । कोन पथे एइ-थाने थुइल आनिञा' ॥१३८॥
सभे कहे 'मिथ्या कभू नहे शास्त्रवाणी । दैवे राखे शिशु, वृद्ध, अनाथ आपनि' ॥१३९॥
एइ मत विचार करेन सर्व्व जने । विष्णु-माया-मोहे, केहो तत्त्व नाहि जाने ॥१४०॥
एइमत रङ्ग करे बैकुण्ठेर राय । के ताने जानिते पारे, यदि ना जानाय ॥१४१॥
वेद गोप्य ए सब आख्यान येई शुने । तार-दृढ़ भक्ति हय चैतन्य चरणे ॥१४२॥
हेन मते आछे प्रभु जगन्नाथ-घरे । अलक्षिते बहुविध स्वप्रकाश करे ॥१४३॥
एक दिन डाकि बोले मिश्र-पुरन्दर । 'आमार पुस्तक आन वाय विश्वम्भर !' ॥१४४॥
वापेर बचन सुनि घरे धाइ याये । रुनुझुनु करिये नूपुर बाजे पाये ॥१४५॥
मिश्र 'बोले कोथा शुनि नूपुरेर ध्वनि' ? चतुर्दिगे चाय दुइ ब्राह्मण ब्राह्मणि ॥१४६॥
आमार पुत्रेर पाये नाहिक नूपुर । कोथाय बाजिल वाद्य नूपुर मधुर ॥१४७॥
'कि अद्भुत !' दुइ जने मने मने गणे । वचन ना स्फुरे दुइजनेर वदने ॥१४८॥

उनके शिर पर सन्मानसूचक वस्त्र बाँध दें" ॥१३३॥ कोई-कोई कहने लगे, कि-"हमने तो दो मनुष्यों को देखा है, जो बालक को यहाँ छोड़कर न मालुम किधर चले गये ?" ॥ १३४ ॥ कोई भी यह नहीं कहता है कि-"मैं इस बालक को लाया हूँ ।" ऐसी अद्भुत बात देखकर, सब चक्कर में पड़े हुए हैं ॥१३५॥ सब लोग पूछने लगे कि-"वत्स निमाई ! कहो तो ! तुम्हें कौन लाया ? तुम उसे कहाँ मिले थे ?" ॥ १३६ ॥ प्रभु उत्तर देते हैं, कि "मैं श्री गङ्गातीर में गया था, रास्ता भूल कर नगर में फिरने लगा, उस समय दो आदमी मुझे गोदी में लेकर न मालुम किस रास्ते से यहाँ लाकर छोड़ गये हैं" ॥ १३७-१३८ ॥ यह सुनकर सब लोग कहते हैं, कि—"शास्त्र-वाणी कभी मिथ्या नहीं होती; बालक, बृद्ध और अनाथ की, स्वयं विधाता रक्षा करते हैं" ॥ १३९ ॥ सब लोग इसी भाँति तरह-तरह के विचार कर रहे हैं; श्री विष्णु माया से मोहित होने के कारण तत्त्व वस्तु को कोई नहीं जानता है ॥ १४० ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ प्रभु, इस प्रकार रङ्गमयी अनेक लीला करते हैं, यदि वे आप अपने को न जनावे, तो उन्हें कौन जान सकता है ? ॥ १४१ ॥ जो कोई प्रभु की ये सब वेद निगूढ़ लीलाओं को श्रवण करेंगे, उनकी श्रीचैतन्यचन्द्र-चरणारविन्द में दृढ़ भक्ति-लाभ होगी ॥ १४२ ॥ इस प्रकार प्रभु श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर विराजमान हैं और अलक्षित् रूप से बहुविध निज प्रकाश दिखा रहे हैं ॥ १४३ ॥ एक दिन श्रीजगन्नाथमिश्र-पुरन्दर ने श्री प्रभु को बुलाकर कहा-"वत्स विश्वम्भर ! मेरी पुस्तक तो ला दो ?" ॥ १४४ ॥ पिताजी के वचन सुनकर, प्रभु घर की ओर दौड़ कर जाते हैं और चरण-कमलों में नूपुर रुनझुन करके बजने लगे ॥ १४५ ॥ श्रीजगन्नाथ मिश्र बोले—"यह नूपुर ध्वनि कहाँ से आ रही है ?" दोनों ब्राह्मण और ब्राह्मणी ऐसे कहकर चारों ओर देखने लगे ॥ १४६ ॥ दोनों सोचते हैं कि-"हमारे पुत्र के पाँवों में तो नूपुर है नहीं, फिर यह नूपुर की मधुर ध्वनि कहाँ से आई ?" ॥ १४७ ॥ दोनों जन मन ही मन

केहो बोले 'देखिलाङ् लोक दुइ जन । शिशु थुइ कोन दिगे करिला गमन' ॥१३४॥
'आमि आनिआछि' कोनो जन नाहि बोले । अद्भुत देखिया सभे पड़िलेन भोले ॥१३५॥
सभे जिज्ञासेन 'बाप ! कहत निमाञि । के तोमारे आनिल, पाइया कोन ठाञि ? ॥१३६॥
प्रभु बोले 'आमि गियाछिलाङ् गङ्गातीरे । पथ हाराइया आमि बेड़ाइ नगरे ॥१३७॥
'तबे दुइ जन आमा' कोलेत करिया । कोन पथे एइ-थाने थुइल आनिआ' ॥१३८॥
सभे कहे 'मिथ्या कभू नहे शास्त्रवाणी । दैवे राखे शिशु, वृद्ध, अनाथ आपनि' ॥१३९॥
एइ मत विचार करेन सर्व्व जने । विष्णु-माया-मोहे, केहो तत्त्व नाहि जाने ॥१४०॥
एइमत रङ्ग करे बैकुण्ठेर राय । के ताने जानिते पारे, यदि ना जानाय ॥१४१॥
वेद-गोप्य ए सब आख्यान येई शुने । तार-दृढ़ भक्ति हय चैतन्य चरणे ॥१४२॥
हेन मते आछे प्रभु जगन्नाथ-घरे । अलक्षिते बहुविध स्वप्रकाश करे ॥१४३॥
एक दिन डाकि बोले मिश्र-पुरन्दर । 'आमार पुस्तक आन बाप विश्वम्भर !' ॥१४४॥
बापेर बचन सुनि घरे धाइ याये । रुनुझुनु करिये नूपुर बाजे पांये ॥१४५॥
मिश्र 'बोले कोथा शुनि नूपुरेर ध्वनि' ? चतुर्दिगे चाय दुइ ब्राह्मण ब्राह्मणि ॥१४६॥
आमार पुत्रेर पाये नाहिक नूपुर । कोथाय बाजिल बाद्य नूपुर मधुर ॥१४७॥
'कि अद्भुत !' दुइ जने मने मने गणे । वचन ना स्फुरे दुइजनेर वदने ॥१४८॥

उनके शिर पर सन्मानसूचक वस्त्र बाँध दें" ॥१३३॥ कोई-कोई कहने लगे, कि—"हमने तो दो मनुष्यों को देखा है, जो बालक को यहाँ छोड़कर न मालुम किधर चले गये ?" ॥ १३४ ॥ कोई भी यह नहीं कहता है कि—"मैं इस बालक को लाया हूँ।" ऐसी अद्भुत बात देखकर, सब चक्कर में पड़े हुए हैं ॥१३५॥ सब लोग पूछने लगे कि—"वत्स निमाई ! कहो तो ! तुम्हें कौन लाया ? तुम उसे कहाँ मिले थे ?" ॥ १३६ ॥ प्रभु उत्तर देते हैं, कि "मैं श्री गङ्गातीर में गया था, रास्ता भूल कर नगर में फिरने लगा, उस समय दो आदमी मुझे गोदी में लेकर न मालुम किस रास्ते से यहाँ लाकर छोड़ गये हैं" ॥ १३७-१३८ ॥ यह सुनकर सब लोग कहते हैं, कि—"शास्त्र-वाणी कभी मिथ्या नहीं होती; बालक, बृद्ध और अनाथ की, स्वयं विधाता रक्षा करते हैं" ॥ १३९ ॥ सब लोग इसी भाँति तरह-तरह के विचार कर रहे हैं; श्री विष्णु माया से मोहित होने के कारण तत्त्व वस्तु को कोई नहीं जानता है ॥ १४० ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ प्रभु, इस प्रकार रङ्गमयी अनेक लीला करते हैं, यदि वे आप अपने को न जनावे, तो उन्हें कौन जान सकता है ? ॥ १४१ ॥ जो कोई प्रभु की ये सब वेद निगूढ़ लीलाओं को श्रवण करेंगे, उनकी श्रीचैतन्यचन्द्र-चरणारविन्द में दृढ़ भक्ति-लाभ होगी ॥ १४२ ॥ इस प्रकार प्रभु श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर विराजमान हैं और अलक्षित् रूप से बहुविध निज प्रकाश दिखा रहे हैं ॥ १४३ ॥ एक दिन श्रीजगन्नाथमिश्र-पुरन्दर ने श्री प्रभु को बुलाकर कहा—"वत्स विश्वम्भर ! मेरी पुस्तक तो ला दो ?" ॥ १४४ ॥ पिताजी के वचन सुनकर, प्रभु घर की ओर दौड़ कर जाते हैं और चरण-कमलों में नूपुर रुनझुन करके बजने लगे ॥ १४५ ॥ श्रीजगन्नाथ मिश्र बोले—"यह नूपुर ध्वनि कहाँ से आ रही है ?" दोनों ब्राह्मण और ब्राह्मणी ऐसे कहकर चारों ओर देखने लगे ॥ १४६ ॥ दोनों सोचते हैं कि—"हमारे पुत्र के पाँवों में तो नूपुर है नहीं, फिर यह नूपुर की मधुर ध्वनि कहाँ से आई ?" ॥ १४७ ॥ दोनों जन मन ही मन

पूँथि दिया प्रभु चलिलेन खेलाइते। आर अद्भुत देखे (गिया) गृहेर माझेते॥१४६॥
सब-गृहे देखे अपरूप पद-चिन्ह। ध्वज, वज्र, पताका, अङ्कुश भिन्नभिन्न ॥१५०॥
आनन्दित दोँहे देखि अपूर्व्व चरण। दोँहे हैला पुलकित सजल-नयन ॥१५१॥
पाद पद्म देखि दोंहे करे नमस्कार। दोँहे बोले 'निस्तरनु, जन्म नाहि आर'॥१५२॥
मिश्र बोले 'शुन विश्वरूपेर जननि ! घृत परमान्न गिया रान्धह आपनि ॥१५३॥
घरे जे आछेन दामोदर शालग्राम। पंचगव्ये सकाले कराव ताने स्नान ॥१५४॥
बुझिलाङ तिहँ घरे बुलेन आपनि। अतएव शुनिलाङ नूपुरेर ध्वनि' ॥१५५॥
एइ मते दुइ जने परम-हरिषे। शालग्राम पूजा करे, प्रभु मने हासे ॥ १५६ ॥
आरो एक कथा शुन परम अद्भुत। ये रंग करिला प्रभु जगन्नाथ-सुत ॥१५७॥
परम सुकृत एक तैर्थिक ब्राह्मण। कृष्णेर उद्देशे करे तीर्थ-पर्य्यटन ॥१५८॥
षड़क्षर गोपाल-मन्त्रे करे उपासन। गोपाल नैवेद्य विने ना करे भोजन ॥१५६॥
दैवे भाग्यवान् तीर्थ भ्रमिते भ्रमिते। आसिया मिलिला विप्र प्रभुर वाड़ीते ॥१६०॥
कण्ठे बालगोपाल भूषण शालग्राम। परम ब्रह्मण्य तेज अति अनुपाम ॥१६१॥
निरबधि मुखे विप्र 'कृष्ण कृष्ण' बोले। अन्तरे गोविन्द-रसे दुइ चक्षु ढुले ॥१६२॥
देखि जगन्नाथ मिश्र तेज से ताँहार। सम्भ्रमे उठिया करिलेन नमस्कार ॥१६३॥

विचार करते हैं, कि—"कैसी आश्चर्य की बात है ?" और दोनों के मुख से किसी प्रकार वाक्य स्फूर्त्ति नहीं होती है ॥ १४८ ॥ प्रभु पुस्तक देकर खेलते २ चले जाते हैं। इधर माता-पिता घर के भीतर जाकर और एक आश्चर्य देखते हैं कि—सब घर में (अप्राकृत सुन्दर) पद-चिह्न बने हुए हैं और उनमें ध्वज, वज्र, अङ्कुश, पताका अलग-अलग दिखाई देते हैं ॥ १४६-१५० ॥ अपूर्व श्रीचरण-चिह्नों को देखकर दोनों जन आनन्दित हो गये—दोनों के श्री अङ्ग पुलकित हो गये एवं नयन अश्रु जल से भर गये ॥ १५१ ॥ दोनों ही श्री चरण चिह्नों को देखकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे और कहने लगे कि—"(बस अब हमारा) निस्तार हो गया व दूसरा जन्म नहीं लेना पड़ेगा" ॥ १५२ ॥ फिर श्री जगन्नाथ मिश्र श्री शचीदेवी से बोले, "हे विश्वरूप की माँ ! सुनो, तुम जाकर घी युक्त परमान्न (खीर) रसोई करो ॥ १५३ ॥ घर में जो दामोदर शालग्राम जी हैं, प्रातः ही उनको पञ्चगव्य, पञ्चामृत आदि से स्नान (अभिषेक) कराऊँगा ॥ १५४ ॥ मैंने समझ लिया कि वही शयन घर में फिरा करते हैं; इसी कारण नूपुर की ध्वनि सुनने में आई है" ॥ १५५ ॥ इस प्रकार दोनों परम प्रसन्नता से श्री शालिग्राम की पूजा करते हैं, यह देखकर प्रभु मन ही मन में हँसते हैं ॥ १५६ ॥ और एक उस परम अद्भुत कथा को सुनिये जो श्री जगन्नाथ-नन्दन ने परम विलक्षण रंग से किया ॥ १५७ ॥ एक परम पुण्यशाली तैर्थिक (तीर्थ भ्रमण करने वाला) ब्राह्मण श्री कृष्ण-प्रीति कामना कर (अथवा श्रीकृष्ण प्राप्ति के उद्देश्य से) तीर्थ पर्यटन किया करते थे ॥ १५८ ॥ आप षड़क्षर श्री गोपाल मन्त्र से श्रीभगवदुपासना करते थे व श्री गोपाल जी को निवेदित किये बिना कोई वस्तु भोजन नहीं करते थे ॥ १५६ ॥ दैवयोग से एक दिन वह भाग्यवान् ब्राह्मण तीर्थ भ्रमण करते-करते प्रभु के घर आ पहुँचे ॥ १६० ॥ आपके कण्ठ में भूषण स्वरूप श्री बाल-गोपाल शालिग्राम जी विराजमान हैं। आप परम ब्रह्मण्य तेजधारी अति अनुपम मूर्ति हैं ॥ १६१ ॥ निरन्तर मुख से 'कृष्ण-कृष्ण' बोल रहे हैं और अन्तर में गोविन्द रस से भरपूर

अतिथि-व्याभार-धर्म्म येन मत हय । सब करिलेन जगन्नाथ महाशय ॥१६४॥
आपने करिया तान पाद प्रक्षालन । वसिते दिलेन आनि उत्तम आसन ॥१६५॥
सुस्थ हइ वसिलेन यदि विप्रवर । तबे ताने मिश्र जिज्ञासिला कोथा घर ?' ॥१६६॥
विप्र बोले 'आमि उदासीन देशान्तरी । चित्तेर विक्षेपे मात्र पर्यटन करि' ॥१६७॥
प्रणति करिया मिश्र बोलेन वचन । 'जगतेर भाग्ये से तोमार पर्य्यटन ॥१६८॥
विशेषेत आजि आमार परम सौभाग्य । आज्ञा देह रन्धनेर करि गिया कार्य' ॥१६९॥
विप्र बोले कर मिश्र ! ये इच्छा तोमार । हरिषे करिला मिश्र दिव्य उपहार ॥१७०॥
रन्धनेर स्थान उपस्करि भाल-मते । दिलेन सकल सज्ज रन्धन करिते ॥१७१॥
सन्तोषे ब्राह्मण-वर करिया रन्धन । वसिलेन कृष्णेरे करिते निवेदन ॥१७२॥
सर्व्वभूत-अन्यर्यामी श्री शचीनन्दन । मने आछे, विप्रेरे दिवेन दरशन ॥१७३॥
ध्यान मात्र करिते लागिला विप्रवर । सम्मुखे आइला प्रभु श्री गौरसुन्दर ॥१७४॥
धूलामय सर्व्व-अङ्ग मूर्त्ति दिगम्बर । अरुण-नयन-कर-चरण-सुन्दर ॥१७५॥
हासिया विप्रेर अन्न लइया श्री करे । एक ग्रास खाइलेन, देखो विप्रवरे ॥१७६॥
'हाय हाय' करि भाग्यवन्त विप्र डाके । अन्न छुचि करिलेक चञ्चल बालके ॥१७७॥
आसिया देखेन जगन्नाथ मिश्रवर । भात खाय हासे प्रभु श्री गौरसुन्दर ॥१७८॥

होने के कारण दोनों नयन झर-झरित हैं ॥ १६२ ॥ श्री जगन्नाथ मिश्र आप में वह तेज देखकर आदर और मर्यादा के सङ्ग खड़े होकर पश्चात् आपको दण्डवत् प्रणाम किये ॥ १६३ ॥ और जिस प्रकार का अतिथि के साथ व्यवहार धर्म करना संगत है, श्री जगन्नाथ मिश्र उसी प्रकार से सब किया ॥ १६४ ॥ आप ही अपने हाथों से उनके पाद प्रक्षालन करके बैठने के लिये, उत्तम आसन बिछा दिया ॥१६५॥ जब विप्रवर सुस्थ होकर (सुखपूर्वक) आसन परिग्रह किये, तब श्री जगन्नाथ मिश्र आप से पूछने लगे कि—"आपका निवास-स्थान कौन सी जगह है ?" तब विप्रवर कहते हैं कि–" (मिश्रजी) मैं तो एक उदासीन परदेशी हूँ, केवल चित्त के विक्षेप से भ्रमण करता रहता हूँ" ॥ १६६-१६७ ॥ श्री जगन्नाथ मिश्र जी विप्र को नमस्कार पूर्वक कहते हैं, "जगत वासियों के भाग्य से आपका यह पर्यटन हैं । विशेष रूप से आज हमारा परम सौभाग्य है । आज्ञा दीजिये, मैं जाकर रसोई का प्रबन्ध करूँ" ॥ १६८-१६९ ॥ विप्रवर उत्तर देते हैं, "मिश्र जी ! जो तुम्हारी इच्छा हो, कीजिये ।" तब श्री जगन्नाथ मिश्र जी सब दिव्य उपहार (भोजन सामिग्री) इकट्ठे किये ॥१७०॥ रसोई का स्थान भली भाँति शोधन करके, सर्व सामिग्री रसोई तैयार करने के लिये, विप्रवर को लाकर दिये ॥ १७१ ॥ ब्राह्मण–वर, आनन्दपूर्वक रसोई तैयार करके भोजन सामिग्री श्रीकृष्णचन्द्र को निवेदन करने के बैठे हैं ॥ १७२ ॥ सर्व भूत अन्तर्यामी भगवान् श्री शचीनन्दन के मन में आई कि–'इस ब्राह्मण को दर्शन दूँ' ॥ १७३ ॥ विप्रवर बैठकर ध्यान मात्र करने लगे, कि श्री गौरसुन्दर प्रभु सम्मुख आ गये ॥ १७४ ॥ सर्व अङ्ग धूल-धूसरित,दिगम्बर मूर्त्ति,अरुण नयन,सुन्दर-कर-चरण विशिष्ट, श्रीप्रभु हँसकर, अपने कर-कमल में विप्रवर द्वारा निवेदन किये हुये अन्न-भोग में से एक ग्रास उठाकर खा लिये; विप्रवर ने यह देख लिये ॥१७५-१७६॥ 'हाय हाय ! इस चञ्चल बालक ने अन्न अशुद्ध कर दिया', ऐसा कहकर भाग्यवन्त विप्र पुकारने लगे ॥१७७॥ विप्रवर की यह पुकार सुनकर श्रीजगन्नाथ मिश्र उसी स्थान पर आकर देखते हैं, कि प्रभु गौरसुन्दर भात

क्रोधे मिश्र धाइया यायेन मारिबारे । सम्भ्रमें उठिया विप्र धरिलेन करे ।।१७९।।
विप्र बोले 'मिश्र ! तुमि बड़ देखि आर्य्य । कोन ज्ञान बालकेर मारिया कि कार्य ? । १८०।।
भाल-मन्द-ज्ञान यार थाके मारि तारे । आमार शपथ यदि मारह उहारे' ।।१८१।।
दुःखे वसिलेन मिश्र हस्त दिया शिरे । माथा नाहि तोले मिश्र बचन ना स्फुरे ।।१८२।।
विप्र बोले 'मिश्र ! दुःख ना भाविह मने । ये दिने ये हैब, ताहा ईश्वर से जाने' ।।१८३।।
फल-मूल-आदि गृहे ये थाके तोमार । आनि देह आजि सेइ करिब आहार ।।१८४।।
मिश्र बोले 'मोरे यदि थाके भृत्य-ज्ञान । आर-बार पाक कर करिदेङ् स्थान' ।।१८५।।
गृहे आछे रन्धनेर सकल सम्भार । पुन पाक कर तवे सन्तोष सभार' ।।१८६।।
वलिते लागिला तबे इष्ट-वन्धुगण । 'आमा-सभा' चाहि तबे करह रन्धन ।।१८७।।
बिप्र बोले 'येइ इच्छा तोमा' सभाकार । करिब रन्धन सर्व्वथाय पुनर्वार ।।१८८।।
हरिष हइला सभे विप्रेर वचने । स्थान उपस्करिलेन सभे ततक्षणे ।।१८९।।
रन्धनेर सज्ज आनि दिलेन तुरिते । चलिलेन विप्रवर रन्धन करिते ।।१९०।।
सभेइ बोलेन 'शिशु परमचञ्चल । आरबार पाछे नष्ट करये सकल ।।१९१।।
रन्धन भोजन विप्र करेन यावत । आर-बाड़ी लये शिशु राखह तावत' ।।१९२।।
तवे शचीदेवी पुत्र कोलेत करिया । चलिलेन आर बाड़ी प्रभुरे लइया ।।१९३।।

खा रहे हैं और हँस रहे हैं ।। १७८ ।। तब श्री जगन्नाथ मिश्र क्रुद्ध होकर बालक श्री गौरचन्द्र को मारने के लिये दौड़ते हैं, यह देखकर विप्रवर सम्भ्रम से उठकर हाथ पकड़ लेते हैं।। १७९ ।। श्री विप्रवर उनसे कहते हैं कि—"हे मिश्रवर ! आप बहुत सरल, भोला दिखाई देते हो; बालक को किस बात का ज्ञान है ? मारने को क्या काम है, जिसको भले, बुरे का ज्ञान हो, उसको मारना चाहिये । आपको मेरी शपथ है, यदि आप उसे मारो" ।। १८०-१८१ ।। विप्रवर के इतना कहने पर श्री जगन्नाथ मिश्र दुःखी होकर, शिर पर हाथ रखकर बैठ जाते हैं । आप न तो शिर ही ऊपर उठाते हैं और न कुछ बोलते ही हैं ।। १८२ ।। यह देखकर विप्रवर बोले, "हे श्री मिश्रवर ! आप मन में दुख मत कीजिये । जिस दिन जो बात होने वाली है, उसे केवल ईश्वर ही जानते हैं" ।। १८३ ।। फल मूल आदि जो कुछ तुम्हारे घर में हो,लावो, वही दे दो, आज मैं वही आहार करूँगा। मिश्रवर कहते हैं—'यदि आप मुझे अपना दास समझते हो, तो आप दुबारा रसोई कीजिये; मैं अभी स्थान संस्कार करवा देता हूँ' ।।१८४-१८५।। रसोई करने की सब सामिग्री घर में मौजूद है । आप जब दुबारा रसोई करेंगे, तब ही सबको सन्तोष होगा' ।। १८६ ।। उसी समय इष्ट-बन्धु-बान्धवगण भी कहने लगे, "इसलिये हम सब की ओर देखकर पुनर्वार रन्धन कीजिये' ।। १८७ ।। विप्रवर उत्तर देते हैं—'जैसी तुम लोगों की इच्छा है सोइ होगी । मैं निश्चय ही दुबारा रसोई करूँगा' ।। १८८ ।। विप्रवर की इस बात को सुनकर सब लोग प्रसन्न हुए और तुरन्त स्थान-संस्कार कर दिया ।। १८९ ।। शीघ्र ही रसोई करने की वस्तुयें लाकर दे दी; विप्रवर रसोई के लिये चले ।। १९० ।। सब लोग कहने लगे कि—'यह बालक परम चञ्चल है, कहीं फिर सब नष्ट न करदे, इसलिये जब तक ब्राह्मण रसोई एवं भोजन करें तब तक इसे लेकर किसी दूसरे के घर में रख दीजिये' ।। १९१-१९२ ।। यह सुनकर श्री शचीदेवी पुत्र को गोदी में लेकर, एक दूसरे के घर चली गईं

सभे नारीगण बोले 'केने रे निमाञि । एमत करिया कि विप्रेर अन्न खाइ ?' ॥१९४॥
हासिया बोलेन प्रभु श्रीचन्द्र-वदने । 'आमार कि दोष, विप्र डाकिल आपने' ॥१९५॥
सभेइ बोलेन 'अये निमाञि ढाङ्गाति । कि करिबा, एबे ये तोमार गेल जाति ॥१९६॥
कोथाकार ब्राह्मण, कोन कुल, केवा चिने । तार भात खाइ जाति राखिब केमने ?'॥१९७॥
हासिया कहेन 'प्रभु आमि ये गोयाल । ब्राह्मणेर अन्न आमि खाइ सर्ब्ब काल ॥१९८॥
ब्राह्मणेर अन्ने कि गोपेर जाति याये ? एत बलि हासिया सभारे प्रभु चाहे ॥१९९॥
छले निज तत्त्व प्रभु करेन ब्याख्यान । तथापि ना बुझे केहो, हेन माया तान ॥२००॥
सभेइ हासेन शुनि प्रभुर वचन । बक्ष हैते एड़िते काहारो नाहि मन ॥२०१॥
हासिया यायेन प्रभु ये जनार कोले । सेइ जन आनन्द-सागर-माझे-डोले ॥२०२॥
सेइ विप्र पुनर्बार करिया रन्धन । लागिलेन बसिया करिते निबेदन ॥२०३॥
ध्याने बालगोपाल भाबेन बिप्रवर । जानि लेन गौरचन्द्र चित्तेर ईश्वर ॥२०४॥
मोहिया सकल लोक अति अलक्षिते । आइलेन विप्र-स्थाने हासिते हासिते ॥२०५॥
अलक्षिते एक मुष्टि अन्न लइ करे । खाइया चलिला प्रभु देखे विप्रवरे ॥२०६॥
'हाय हाय' करिया उठिला विप्रवर । ठाकुर खाइया भात दिला एक रड़ ॥२०७॥
सम्भ्रमे उठिया मिश्र हाथे बाड़ि लैया । क्रोधे ठाकुरेर लइ याय धाओयाइया ॥२०८॥
महाभये प्रभु पलाइला एक घरे । क्रोधे मिश्र पाछे थाकि तर्ज्ज गर्ज्ज करे ॥२०९॥

॥ १९३ ॥ वहाँ सब स्त्रीगण प्रभु से कहती हैं कि–'क्यों रे निमाई ! क्या इस प्रकार से किसी दूसरे ब्राह्मण का अन्न कोई खाया करता है ?' ॥ १९४ ॥ प्रभु श्रीगौरचन्द्र मुख से हँसते हुए उत्तर देते हैं—'इसमें मेरा क्या दोष है ?' स्वयं ब्राह्मण ने ही तो मुझे बुलाया था ॥ १९५ ॥ फिर सब स्त्रियाँ कहती हैं–'अरे ढोंगी निमाई ! (बतलाओ) अब क्या करेगा ? तेरी जाति तो बिगड़ गई । कहाँ का ब्राह्मण ! किस कुल का ! कौन उन्हें पहिचाने ! (बतलाओ) ऐसे का भात खाकर, जाति रक्षा कैसे होगी ? ॥ १९६-१९७ ॥ तब प्रभु हँसकर उत्तर देते हैं–'मैं तो ग्वाला हूँ, ब्राह्मण का अन्न तो मैं सदा ही से खाता आया हूँ । क्या ब्राह्मण का अन्न खाने से गोप की जाति बिगड़ जाती है ?' इतना कहकर प्रभु हँसकर सब की ओर देखने लगे ॥ १९८-१९९ ॥ छल से प्रभु ने अपना तत्त्व वर्णन कर दिया तो भी कोई नहीं समझ सकीं। यही आपकी माया है ॥ २०० ॥ सब नारीजन प्रभु की बातें सुनकर हँसती हैं और हृदय में से उतारने को किसी का जी नहीं चाहता ॥२०१॥ प्रभु हँसते हुए जिस किसी की गोदी में चले जाते हैं, वही आनन्द सागर में बहने लगती हैं ॥२०२॥ [इधर] वह ब्राह्मण दुबारा रसोई बनाकर बैठकर वह भोग प्रभु को निवेदन करने लगे ॥ २०३ ॥ विप्रवर ! मन में बाल-गोपाल का ध्यान कर रहे हैं, अन्तर्यामी श्री गौरचन्द्र प्रभु ने उसके मन की बात जान ली ॥ २०४ ॥ आप सब लोगों को मोह में डालकर अपने को अत्यन्त छिपाते हुए हँसते-हँसते ब्राह्मण के पास आ गये ॥ २०५ ॥ अलक्षित रूप से एक मुट्ठी अन्न हाथ में ले लेते हैं और खा कर चलने लगे कि विप्रवर ने देख लिया ॥ २०६ ॥ तब तो विप्रवर 'हाय-हाय' कर उठे; इधर प्रभु ने भात खाकर एक दौड़ लगाई ॥ २०७ ॥ श्रीमिश्रचन्द्र सम्भ्रम से उठकर हाथ में एक छड़ी लेकर क्रोधाविष्ट हो श्री प्रभु को आगे-आगे भगाते ले जाते

मिश्र बोले 'आजि देख करोँ तोर कार्य्य । तोर मते परम अबुध आमि आर्य्य ॥२१०॥
हेन महाचोर शिशु कार घर आछे ?' एत वलि क्रोधे मिश्र धाय प्रभु-पाछे ॥२११॥
सभे धरिलेन यत्न करिया मिश्रेरे । मिश्र बोले 'एइ आजि मारिब उहारे' ॥२१२॥
सभेइ बोलेन 'मिश्र ! तुमित उदार । उहारे मारिया कोन साधुत्व तोमार ॥२१३॥
भाल मन्द-ज्ञान नाहि उहार शरीरे । परम अबोध, जे एमन शिशु मारे ॥२१४॥
मारि लेइ कोन वा शिखिब हेन नय । स्वभावेइ शिशुर चञ्चल-मति हय' ॥२१५॥
आथे व्यथे आसि सेइ तैर्थिक ब्राह्मण । मिश्रेर धरिया हाथे बोलेन बचन ॥२१६॥
'बालकेर नाहि दोष शुन मिश्र-राय । ये दिने ये हैब, ताहा हइबारे चाय ॥२१७॥
आजि कृष्ण अन्न नाहि लिखेन आमारे । सबे एइ मर्म्मकथा कहिलूँ तोमारे' ॥२१८॥
दुःखे जगन्नाथ-मिश्र नाहि तोले मुख । माथा हेट करिया भावेन महा-दुःख ॥२१९॥
हेनइ समये विश्वरूप भगवान् । सेइ-स्थाने आइलेन महा-ज्योतिर्धाम ॥२२०॥
सर्व्व अङ्गे निरुपम लावण्येर सीमा । चतुर्द्दश-भुवनेओ नाहिक उपमा ॥२२१॥
स्कन्धे यज्ञसूत्र, ब्रह्मतेज मूर्त्तिमन्त । मूर्त्ति भेदे जन्मिला आपने नित्यानन्द ॥२२२॥
सर्व्व-शास्त्रेर अर्थ सदा स्फुरये जिह्वाय । कृष्णभक्ति-व्याख्या-मात्र करये सदाय ॥२२३॥
देखिया अपूर्व्व मूर्त्ति तैर्थिक ब्राह्मण । मुग्ध हइ एक-दृष्टे चाहे घने घन ॥२२४॥

हैं ॥ २०८ ॥ महा भयभीत होकर श्री प्रभु भागकर एक घर में घुस गये; क्रोधाविष्ट श्री मिश्रचन्द्र पीछे रहकर तर्ज्जन-गर्ज्जन करने लगे ॥ २०९ ॥ श्री मिश्रचन्द्र कहते हैं, देख ! आज मैं तेरा काम कैसा बनाता हूँ ? तू यों जानता है कि तेरा पिता कुछ जानता ही नहीं । ऐसा महाचोर बालक किसके घर में हैं, ऐसा कहकर क्रोधाविष्ट श्री मिश्रचन्द्र प्रभु के पीछे २ दौड़ने लगे ॥ २१०-२११ ॥ सब लोग यत्नपूर्वक मिश्रचन्द्र को पकड़ लिये, मिश्रचन्द्र कहते हैं—'छोड़ दो मैं आज उसको मारूँगा' ॥ २१२ ॥ सब लोग कहते हैं, मिश्र जी ! तुम तो बहुत भोले मालुम होते हो बालक को मारने में तुम्हारी कौन सी साधुता है ? देखिये उसको तो भले-बुरे का ज्ञान नहीं है, ऐसे बालक को जो मारे वह परम अबोध (अज्ञानी) माना जाता है । मारने से ही वह कौन सा सीख जायगा; और देखो बालक तो स्वभाव से ही चञ्चल मति होते हैं ॥ २१३-२१५ ॥ इसी समय वह तैर्थिक ब्राह्मण बड़े सम्भ्रम से झटपट आकर; श्री जगन्नाथ मिश्र का हाथ पकड़ लेते हैं; और कहते हैं कि ॥ २१६ ॥ "हे मिश्रकुल के राजा ! सुनिये, इसमें बालक का कुछ भी दोष नहीं है; जिस दिन जो बात होने वाली है, यह घटेगी ही, होनी ही चाहिये । आज श्री कृष्ण ने मेरे भाग्य में अन्न नहीं लिखा है, सब की सार यह मेरी आन्तरिक बात है, मैंने आपसे कह दी" ॥ २१७-२१८ ॥ विप्रवर की यह बात सुनकर श्री जगन्नाथ मिश्र महान् दुःखी होकर मुख नहीं उठाते हैं । माथा नीचे कर अन्तर में महान् दुःख भोग कर रहे हैं ॥ २१९ ॥ ठीक ऐसे ही समय परम महातेजपुञ्ज कलेवर श्रीविश्वरूप (श्रीप्रभु के ज्येष्ठभ्राता) भगवान् उस स्थान पर आ पहुँचे ॥ २२० ॥ आपके सर्वाङ्ग में जो निरूपम लावण्य की सीमा है, उसकी उपमा चौदह भुवनों में भी नहीं है ॥ २२१ ॥ मूर्त्तिमन्त ब्रह्म तेजस्वरूप आपके स्कन्ध देश में यज्ञोपवीत शोभित है, आप श्रीप्रभु नित्यानन्द ही दूसरी मूर्त्ति धारण करके श्रीजगन्नाथ मिश्र के गृह में जन्म लिये हैं ॥ २२२ ॥ आपकी जिह्वा पर, सर्व शास्त्रों के अर्थ निरन्तर स्फूर्त्ति पाते हैं । आप सदैव केवल श्री कृष्ण-भक्ति

विप्र बोले 'कार पुत्र एइ महाशय । ?' सभेइ बोलेन 'एइ मिश्रेर तनय' ।।२२५।।
शुनिञा सन्तोषे विप्र कैला आलिङ्गन । 'धन्य पिता माता यार ए-हेन नन्दन' ।।२२६।।
बिप्रेरे करिला विश्वरूप नमस्कार । बसिया कहेन कथा अमृतेर धार ।।२२७।।
'शुभ दिन तार महाभाग्येर उदय । तुमि-हेन अतिथि याहार गृहे रय ।।२२८।।
जगत शोधिते से तोमार पर्य्यटन । आत्मानन्दे पूर्ण हइ करह भ्रमण ।।२२९।।
भाग्य बड़, तुमि-हेन अतिथि आमार । अभाग्य वा कि कहिव, उपास तोमार ।।२३०।।
तुमि उपवास वा करिबा यार घरे । सर्व्वथा ताहार अमङ्गल-फल धरे ।।२३१।।
हरिष पाइलूँ बड़ तोमार दर्शने । विषाद पाइलूँ बड़ ए सब श्रवणे' ।।२३२।।
विप्र बोले 'किछु दुःख ना भाविह मने । फल मूल किछु आमि करिब भोजने ।।२३३।।
वनवासी आमि, अन्न कोथाई बा पाइ । प्राय आमि बने फल मूल मात्र खाइ ।।२३४।।
कदाचित कोन दिवसे वा खाइ अन्न । सेहो यदि अविरोधे हय उपसन्न ।।२३५।।
ये सन्तोष पाइलाङ् तोमा दरशने । ताहातेइ कोटि कोटि करिलूँ भोजने ।।२३६।।
फल, मूल, नैवेद्य ये किछु थाके घरे । ताहा आन गिया आजि करिब आहारे' ।।२३७।।
उत्तर ना करे किछु मिश्र-जगन्नाथ । दुःख भावे मिश्र, शिरे दिया दुइ हाथ ।।२३८।।
विश्वरूप बोलेन 'बलिते वासि भय । सहजे करुणासिन्धु तुमि महाशय ! ।।२३९।।

की व्याख्या करते हैं ॥ २२३ ॥ आपकी अपूर्व मूर्त्ति को दर्शन कर, वह तैर्थिक विप्रवर मोहित होकर बार-बार टकटकी लगाकर देखते ।। २२४ ।। विप्रवर पूछते हैं कि–"यह महाशय किसके पुत्र है ?" लोग उत्तर देते है—"यह इन्हीं श्रीमिश्र जी के पुत्र हैं" ।। २२५ ।। सुनकर, विप्रवर प्रसन्न चित्त होकर, श्रीविश्वरूप का आलिङ्गन किये; और कहने लगे कि—"वह माता-पिता धन्य हैं जिनका आप जैसा पुत्र है" ।। २२६ ।। श्री विश्वरूप जी ने विप्र को नमस्कार किया और बैठकर अमृत की धारा जैसी मीठी बातें कहने लगे ।। २२७ ।। श्रीविश्वरूप जी कहते हैं कि—"महात्मन्" आप जैसे अतिथि जिसके घर आकर ठहरे, उनके शुभ दिन का उदय और महाभाग्य का उदय समझना चाहिये ।।२२८।। आप जैसे महानुभावों का पर्यटन संसार को पवित्र करने के लिये होता है, आप आत्मानन्द से पूर्ण होकर भ्रमण करते हैं ।। २२९ ।। आप जैसे हमारे अतिथि हुए, यह हमारा परम सौभाग्य है । परन्तु दुर्भाग्य को भी क्या कहूँ, कि आप निराहार रह रहे हैं ।। २३० ।। आप जिसके घर विना भोजन किये रहेंगे, उसका सर्व प्रकार से अमङ्गल फल ही लाभ होता है ।। २३१ ।। आपके दर्शन से तो मैं बड़ा आनन्दित हुआ हूँ, परन्तु यह सब बृत्तान्त सुनकर बड़ा ही दुःख पा रहा हूँ" ।। २३२ ।। अब विप्रवर कहते हैं कि–"(वत्स !) तुम मन में कुछ भी दुःख मत करो । मैं फलमूल आदि कुछ भोजन कर लूँगा ।। २३३ ।। मैं तो बनवासी हूँ, मुझे वहाँ अन्न कहाँ से मिलता है ? मैं तो बन में प्रायशः फल, मूल, मात्र ही खाया करता हूँ ।। २३४ ।। कदाचित् किसी २ दिन अन्न भी खा लेता हूँ; वह भी यदि निर्विघ्न रूप से मिल जाय तो ।। २३५ ।। तुम्हारे दर्शन करके जो आनन्द मैंने पाया है, उसी में ही मैं कोटि-कोटि भोजन कर चुका ।। २३६ ।। फल, मूल एवं नैवेद्य आदि जो कुछ घर में हो, जाकर ले आओ; आज वही भोजन करूँगा" ।। २३७ ।। श्री जगन्नाथ मिश्र कुछ बोलते नहीं हैं और आप दोनों हाथ सिर पर रख

परदुःखे कातर-स्वभावे साधुजन । परेर आनन्द से बाढ़ाय अनुक्षण ॥२४०॥
एतेके आपने यदि निरालस्य हैया । कृष्णेर नैवेद्य कर रन्धन करिया ॥२४१॥
तबे आजि आमार गोष्ठीर यत दुःख ! सकल घुचये, पाइ परानन्द सुख' ॥२४२॥
विप्र बोले 'रन्धन करिलूँ दुइबार । तथापिह कृष्ण ना दिलेन खाइबार ॥२४३॥
तेञि बुझिलाम आजि नाहिक लिखन । कृष्ण-इच्छा नाहि, केने करह यतन ॥२४४॥
कोटि भक्ष्य द्रव्य यदि थाके निज घरे । कृष्ण आज्ञा हइले से खाइबारे पारे ॥२४५॥
ये दिने कृष्णेर जारे लिखन ना हय । कोटि यत्न करि तथापित सिद्ध नय ॥२४६॥
निशाओ प्रहर डेड़ दुइओ वा याय । इहाते कि आर पाक करिते युयाय ॥२४७॥
अतएव आजि यत्न ना करिह आर । एइ मत किछु मात्र करिब आहार' ॥२४८॥
विश्वरूप बोलेने 'नाहिक किछु दोष । तुमि पाक करिले से सभार सन्तोष' ॥२४९॥
एत बलि विश्वरूप धरिला चरण । साधिते लागिला सबे करिते रन्धन ॥२५०॥
विश्वरूप देखिया मोहित विप्रवर । 'करिब रन्धन' विप्र बलिला उत्तर ॥२५१॥
सन्तोषे सभेइ 'हरि' बलिते लागिला । स्थान उपस्कार सभे करिते लागिला ॥२५२॥
आथे-व्यथे स्थान उपस्करि सर्व्व जने । रन्धनेर सामग्री आनिला सेइ क्षणे ॥२५३॥
चलिलेन विप्रवर करिते रन्धने । शिशु आवरिया रहिलेन सर्व्व जने ॥२५४॥

कर मन में विषादित हो रहे हैं ॥ २३८ ॥ अब श्री विश्वरूप भगवान् कहते हैं कि-"कहने में डर लगता है, (परन्तु) हे महाशय जी ! आप सहज में ही करुणासागर हो ॥ २३९ ॥ साधुजन स्वभाव से ही दूसरों के दुःख में दुःखी होते हैं और सदैव दूसरों का आनन्द बढ़ाया करते हैं ॥ २४० ॥ अतएव आप यदि आलस्य त्याग कर रसोई बनाकर श्रीकृष्ण भोग लगावें, तो हमारी गोष्ठी (आत्मीयजन) का सब दुःख जाता रहेगा, हम सब परानन्द सुख पायेंगे" ॥ २४१-२४२ ॥ विप्रवर उत्तर देते हैं कि—"मैंने दो बार रसोई की है, तब भी श्री कृष्ण की इच्छा से मुझको खाने को नहीं मिला ॥ २४३ ॥ इससे मालुम होता है कि आज भाग्य में भोजन नहीं लिखे हैं; जब श्री कृष्ण की इच्छा ही नहीं है, तो फिर क्यों यत्न (आग्रह) करते हो ॥२४४॥ यदि घर में खाने के करोड़ों पदार्थ भी रखे रहें, तब भी कृष्ण आज्ञा से ही कोई खा सकता है ॥ २४५ ॥ जिस दिन श्री कृष्ण ने जिसके लिये, जो बात नहीं लिखी है, फिर वह बात करोड़ों उपाय करने पर भी पूर्ण (सफल) नहीं हो सकती है ॥ २४६ ॥ रात्रि भी लगभग डेढ़ और शायद दो प्रहर चली गई है; अतएव ऐसे समय पर क्या और रसोई करना योग्य है ! इसलिये आज रसोई कराने के लिये और यत्न न कीजिये; ऐसे ही कुछ थोड़ा खा लूँगा" ॥ २४७-२४८ ॥ श्री विश्वरूप भगवान् कहते हैं—" (इस समय रसोई करने से) कोई दोष नहीं है, आपके रसोई करने से सब को सन्तोष होगा ।" इतना कहकर श्री विश्वरूप प्रभु, ब्राह्मण के चरण पकड़ लेते हैं । सब लोग भी विप्रवर से रसोई तैयार कर लेने की इच्छा प्रकट करने लगे ॥२४९-२५०॥ श्री विश्वरूप को देखकर विप्रवर मोहित हो रहे हैं, अतएव आप स्वीकार करते हैं कि-"(अच्छा) मैं रसोई बनाऊँगा" ॥ २५१ ॥ तब तो सब लोग आनन्दित होकर, हरिध्वनि करने लगे; और सब मिलकर स्थान का संस्कार करने लगे ॥ २५२ ॥ सब लोग सम्भ्रम के सङ्ग, झटपट, स्थान परिष्कार करके शीघ्र ही रसोई की

पलाइला ठाकुर आछेन येइ घरे। मिश्र बसिलेन तार माझार दुयारे ॥२५५॥
सभेइ बोलेन 'वान्ध बाहिर दुयार। बाहिर हइते येन नाहि जाय आर' ॥२५६॥
मिश्र बोले 'भाल भाल एइ युक्ति हय'। बान्धिया दुयार सभे वाहिरे आछय ॥२५७॥
घरे थाकि स्त्रीगन वोलेने 'चिन्ता नाञि। निद्रा गेला,किछु आर ना जाने निमाञि'॥२५८॥
एइ मते शिशु राखियाछे सर्व्वजन। बिप्रेरो हइल कथोक्षणेके रन्धन ॥२५६॥
अन्न उपस्कार करि सुकृति ब्राह्मण। ध्याने बसि करिते लागिला निवेदन ॥२६०॥
जानि लेन अन्तर्यामी श्रीशचीनन्दन। चित्ते आछे, विप्रे रे दिवेन दरशन ॥२६१॥
निद्रा-देवी सभारेइ ईश्वर-इच्छाय। मोहिलेन, सभेइ अचेष्ट निद्राय़ाय ॥२६२॥
ये स्थाने करेन बिप्र अन्न-निवेदन। आइलेन सेइ-स्थाने श्रीशचीनन्दन ॥२६३॥
बालक देखिया बिप्र करे 'हाय हाय'। सभे निद्रा याये, केहो शुनिते ना पाय ॥२६४॥
प्रभु बोले 'अये विप्र! तुमित उदार। तुमि आमा डाकि आन कि दोष आमार ? ॥२६५॥
मोर मन्त्र जपि मोरे करह आह्वान। रहिते ना पारि आमि, आसि तोमा-स्थान ॥२६६॥
आमारे देखिते निरबधि भाव तुमि। अतएव तोमारे दिलाञ देखा आमि' ॥२६७॥
सेइ क्षणे देखे विप्र परम अद्भुत। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म अष्टभुज-रूप ॥२६८॥
एक हस्ते नवनीत, आर हस्ते खाय। आर दुइ हस्ते प्रभु मुरली-बाजाय ॥२६९॥

सामिग्री लाकर उपस्थित कर दिये ॥ २५३ ॥ विप्रवर भी रसोई के लिये चलते हैं, उधर सब लोग बालक 'निमाई' को घेर रखे हैं ॥ २५४ ॥ जिस घर में प्रभु भागकर छिपे हैं, उसी घर के वीच दरवाजे पर श्री जगन्नाथ मिश्र जा वैठे हैं ॥ २५५ ॥ सब लोग कहने लगे—"बाहर से दरवाजा बाँध दीजिये, जिससे कि वह फिर बाहर न निकल सके" ॥ २५६ ॥ मिश्र जी कहते हैं—"ठीक है, यही युक्ति ठीक है।" फिर तो दरवाजा बाहर से बाँध के सब लोग वाहर आ गये ॥ २५७ ॥ भीतर घर में से स्त्रीगण बोलीं कि—"अब कोई चिन्ता नहीं है; निमाई तो सो गया है, अब उसे किसी बात की सुधि नहीं है" ॥ २५८ ॥ इस प्रकार सब लोग बालक की रखवाली कर रहे हैं, उधर कुछ समय में ही विप्रवर की भी रसोई बनकर तैयार हो गई है ॥ २५९ ॥ तब वह सुकृती ब्राह्मण, अन्न को सजाकर, बैठकर ध्यान द्वारा श्री कृष्ण को निवेदन करने लगे ॥२६०॥ अन्तर्यामी श्री शचीनन्दन प्रभु सब जान गये, आपके मन में आया कि इस विप्र को दर्शन दें ॥ २६१ ॥ श्री प्रभु की इच्छा से निद्रादेवी ने सब स्त्री, पुरुषों को मोहित कर दिया सबके सब अचेत नींद में सो रहे हैं ॥२६२॥ अब प्रभु श्रीशचीनन्दन जहाँ विप्र अन्न निवेदन कर रहे हैं, उसी ठौर पर आ गये ॥ २६३ ॥ बालक को देखकर विप्र "हाय हाय" कर उठता है, परन्तु वहाँ तो सब सो रहे हैं, किसी ने सुना नहीं ॥ २६४ ॥ अब प्रभु वोले, हे विप्र! तुम तो भोले हो, तुम ही तो मुझको बुलाकर लाते हो, फिर इसमें हमारा क्या दोष है ? ॥ २६५ ॥ तुम मेरा मन्त्र जप कर मुझे आवाहन करते हो,तो मुझसे रहा नहीं जाता है,तुम्हारे पास आ जाता हूँ॥२६६॥ तुम निरन्तर मेरे दरशन के लिये चिन्ता करते हो; इसीलिये मैं तुम्हें दिखाई दे गया हूँ ॥ २६७ ॥ उसी क्षण विप्रवर प्रभु को परम अद्भुत शङ्ख,चक्र,गदा,पद्म सुशोभित चारों भुजा और एक हस्त में नवनीत-पिण्ड और दूसरे हस्त में भोजन करते हुए देखते हैं। बाकी और दोनों हाथों में श्रीप्रभु मुरली वजा रहे हैं। विप्रवर इस

श्री वत्स कौस्तुभ वक्षे शोभे मणिहार । सर्व्व-अङ्गे देखे रत्नमय-अलङ्कार ॥२७०॥
नवगुञ्जा वेढ़ा शिखि-पुच्छ शोभे शिरे । चन्द्रमुखे अरुण-अधर शोभा करे ॥२७१॥
हासिया दोलाइ दुइ नयन-कमल । बैंजयन्ती-माला दोले मकर-कुण्डल ॥२७२॥
चरणारविन्दे शोभे श्री रत्न-नूपुर । नखमणि-किरणे तिमिर गेल दूर ॥२७३॥
अपूर्ब्ब कदम्ब-वृक्ष देखे सेइ-खाने । वृन्दावन देखे, नाद करे पक्षिगणे ॥२७४॥
गोप गोपी गावी गन चतुर्द्दिगे देखे । यत ध्यान करे, ताइ देखे परतेके ॥२७५॥
अपूर्ब्व ऐश्वर्य देखि सुकृति ब्राह्मण । आनन्दे मूर्च्छित हैया पड़िला तखन ॥२७६॥
करुणा-समुद्र प्रभु श्रीगौरसुन्दर । श्रीहस्ते दिलेन तान अङ्गेर उपर ॥२७७॥
श्री हस्त-परशे विप्र पाइला चेतन । आनन्दे हइला जड़ ना स्फुरे वचन ॥२७८॥
पुनःपुन मूर्च्छा विप्र याय भूमितले । पुन उठे पुन पड़े महा कुतुहले ॥२७९॥
कम्प, स्वेद, पुलके शरीर स्थिर नहे । नयनेर जल येन महानदी वहे ॥२८०॥
क्षणेके धरिया विप्र प्रभुर चरण । करिते लागिला उच्च करिया क्रन्दन ॥२८१॥
देखिया विप्रेर आर्त्ति श्रीगौरसुन्दर । हासिया विप्रेरे किछु करिला उत्तर ॥२८२॥
प्रभु बोले 'शुन शुन अये विप्रबर ! अनेक जन्मेर तुहि आमार किङ्कर ॥२८३॥
निरबधि भाव तुमि देखिते आमारे । अतएव आमि देखा दिलाज तोमारे ॥२८४॥

प्रकार श्रीप्रभु को अष्टभुज स्वरूप में देखते हैं॥२६८-२६९॥और भी देखते हैं कि–श्रीवक्षस्थलपर श्रीबत्स चिह्न, कौस्तुभ मणि एवं अन्य मणियों के हार सुशोभित हैं,अन्य सब श्रीअङ्ग में रत्नमय आभूषण हैं ॥२७०॥ नवीन गुञ्जाओं की मालाओं से परिवेष्टित-मोर-पङ्ख सिर पर शोभा दे रहा है। श्रीचन्द्रबदन में अरुण अधर ओष्ठ शोभा को विस्तार कर रहे हैं ॥ २७१ ॥ मुस्कुराते हुए दोनों नयन कमलों को चला रहे हैं। गले में बैजयन्ती माला एवं कानों में मकराकृत कुण्डल भूल रहे हैं॥ २७२ ॥ श्री चरण कमलों में श्री रत्न-नूपुर सुशोभित हैं, श्री नख रूपी मणियों से अन्धकार दूर भाग रहा है॥ २७३ ॥ उस स्थान पर अपूर्व कदम्ब वृक्ष देख रहे हैं। श्री वृन्दाबन देख रहे हैं,जहाँ पर पक्षीगण कोलाहल कर रहे हैं॥ २७४ ॥ चारों ओर गोप, गोपी एवं गाभीगण को देख रहे हैं। जो ध्यान वे नित्य प्रति किया करते हैं, आज वह सब प्रत्यक्ष देख रहे हैं॥२७५॥ अब तो वह सुकृतिवान ब्राह्मण, प्रभु के ऐसे अपूर्व ऐश्वर्य को देखकर, आनन्द से मूर्च्छित होकर धरती में गिर पड़े॥२७६॥ तब करुणासागर श्रीगौरसुन्दर प्रभु ने उनके शरीर पर अपना श्री हस्त अर्पण किया॥२७७॥ श्री हस्त स्पर्श से विप्रवर की चेतना हुई, पर आनन्द से जड़वत् बन गये हैं; कुछ बोला नहीं जाता॥ २७८ ॥ विप्रवर बारम्बार मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, महा आनन्द से विभोर होकर बारम्बार उठते हैं, और फिर गिरते हैं॥ २७९ ॥ आपका शरीर कम्प, स्वेद, एवं रोमाञ्च के कारण स्थिर नहीं है; अश्रु धारा ऐसी भर रही है कि मानो महानदी बह रही हो॥ २८० ॥ कछुक देर में विप्रवर प्रभु के श्री चरणों को पकड़ कर उच्च स्वर से रोदन करने लगे॥ २८१ ॥ श्रीगौरसुन्दर विप्र की इस प्रकार की आर्त्ति देखकर, हँस कर उनसे कुछ कहने लगे॥ २८२ ॥ श्रीप्रभु कहते हैं कि—हे विप्रवर ! सुनो-सुनो । तुम हमारे अनेक जन्म के दास हो॥ २८३ ॥ तुम निरन्तर मेरे दरशन पाने की भावना करते रहे हो; इसीलिये मैंने आज तुम्हें दरशन

आर-जन्मे एइरूपे नन्द-गृहे आमि । देखा दिलाङ तोमारे, ना स्मर ताहा तुमि ॥२८५॥
यबे आमि अवतीर्ण हैलाङ गोकुले । सेइ जन्मे तुमि तीर्थ कर कुतुहले ॥२८६॥
दैवे तुमि अतिथि हइला नन्द घरे । एइ मते तुमि अन्न निवेद आमारे ॥२८७॥
ताहा तेओ एइ मत करिया कौतुके । खाइ तोर अन्न देखाइलों एइ रूपे ॥२८८॥
एतेके आमार तुमि जन्मे जन्मे दास । दास विनु अन्य मोर ना देखे प्रकाश ॥२८९॥
कहिलाङ तोमारे सकल गोप्य कथा । कारो स्थाने इहा नाहि कहिब सर्व्वथा ॥२९०॥
यावत थाकये मोर एइ अवतार । तावत कहिले कारे करिव संहार ॥२९१॥
सङ्कीर्त्तन-आरम्भे आमार अवतार । कराइमु सर्व्वदेशे कीर्त्तन प्रचार ॥२९२॥
ब्रह्मादि ये प्रेमभक्ति-योग वाञ्छा करे । ताहा बिलाइमु सर्व्व प्रति घरे घरे ॥२९३॥
कथोदिन थाकि तुमि अनेक देखिवा । ए सब आख्यान एवे कारो ना कहिवा' ॥२९४॥
हेन मते ब्राह्मणेरे श्री गौरसुन्दर । कृपा करि आश्वासिया गेला निज घर ॥२९५॥
पूर्व्ववत् शुतिया थाकिला शिशु-भावे । योगनिद्रा-प्रभावे केहो नाहि जागे ॥२९६॥
अपूर्व्व प्रकाश देखि सेइ विप्रवर । आनन्दे पूर्णित हैल सब कलेवर ॥२९७॥
सर्व्व-अङ्गे सेइ अन्न करिया लेपन । कान्दिते कान्दिते विप्र करेन भोजन ॥२९८॥
नाचे, गाय, हासे, विप्र करये हुङ्कार । 'जय बाल-गोपाल' बोलये वार बार ॥२९९॥

दिये हैं। मैं तुम्हें दिखाई दे गया हूँ ॥ २८४ ॥ इससे पहले जन्म में मैंने तुमको श्री नन्द-गृह में इसी रूप से दर्शन दिया था, उसको तुम भूल गये हो ॥ २८५ ॥ जब मैं गोकुल में अवतीर्ण हुआ था; उस जन्म में भी तुम आनन्द पूर्वक तीर्थ पर्यटन करते थे ॥ २८६ ॥ दैवयोग से श्री नन्दबाबा के घर आकर तुम अतिथि हुए थे। वहाँ भी इसी प्रकार तुमने हमको अन्न निवेदन किया था ॥२८७॥ उस समय भी इसी प्रकार का कौतुक करके तुम्हारा अन्न हमने खाया था; और यही रूप दिखलाया था ॥ २८८ ॥ अतएव तुम हमारे जन्म-जन्म के दास हो। बिना मेरे दास के और कोई मेरा प्रकाश नहीं देख सकता ॥२८९॥ यह सब गुप्त बातें मैंने तुमसे कहीं हैं, इसको किसी भी अवस्था में किसी से मत कहना ॥ २९० ॥ जब तक मेरा यह अवतार प्रकट रहे, तब तक किसी से भी यह बात मत कहना, नहीं तो हम तुम्हारा संहार कर देंगे ॥ २९१ ॥ संकीर्त्तन आरम्भ कराने के लिये मेरा यह अवतार है। सब देशों में ही संकीर्त्तन प्रचार कराऊँगा ॥ २९२ ॥ ब्रह्मादि देववृन्द भी जिस प्रेमभक्ति-योग की कामना करते हैं, वही प्रेम-भक्ति योग पूर्णरूप से सर्व साधारण के घर-घर दान करूँगा ॥ २९३ ॥ कुछ दिन ठहरकर, तुम और भी अनेक लीलायें देखोगे। यह सब बात अभी किसी से मत कहना" ॥ २९४ ॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर विप्रवर को कृपा पूर्वक आश्वासन देकर अपने उसी घर में चले गये ॥ २९५ ॥ [और] पूर्ववत् बालक की तरह सो गये, योगनिद्रा के प्रभाव से तब तक कोई नहीं जगे ॥ २९६ ॥ उस विप्रवर के सर्वाङ्ग, प्रभु के अपूर्व्व प्रकाश को देखकर आनन्द से भर कर–परिपूर्ण हो गये ॥ २९७ ॥ आप अपने सर्व अङ्गों में वही कुछ प्रसादी अन्न-लेपन करते र रोते हुए भोजन करने लगे ॥२९८॥ विप्रवर कभी नाचने लगते हैं, कभी गाते हैं, कभी हुँकार करते हैं और बारम्बार 'जय बालगोपाल' शब्द उच्चारण कर रहे हैं ॥ २९९ ॥ विप्रवर की हुङ्कारों से सब लोग जाग पड़े; उनको जागते हुए देखकर विप्रवर

विप्रेर हुङ्कारे सभे पाइला चेतन । आपना, सम्बरि बिप्र कैला आचमन ॥३००॥
निर्व्विघ्ने भोजन करिलेन विप्रवर । देखि सभे सन्तोष हइला बहुतर ॥३०१॥
सभारे कहिते मने चिन्तये ब्राह्मण । ईश्वर चिनिञा सभे पाउक मोचन ॥३०२॥
ब्रह्मा शिव जाहार निमित्त काम्य करे । हेन प्रभु अवतरि आछे विप्र घरे ॥३०३॥
से प्रभु रे लोक सब करे शिशु ज्ञान । कथा कहि सभेइ पाउक परित्राण' ॥३०४॥
प्रभु करियाछे निवारण एइ भये । आज्ञा-भङ्ग-भये विप्र कारे नाहि कहे ॥३०५॥
चिनिञा ईश्वर विप्र सेइ नवद्वीपे । रहिलेन गुप्त भावे ईश्वर समीपे ॥३०६॥
भिक्षा करि विप्रवर प्रति स्थाने स्थाने । ईश्वरेरे आसिया देखेन प्रति-दिने ॥३०७॥
वेद-गोप्य ए सकल महाचित्र कथा । इहार श्रवणे कृष्ण मिलये सर्व्वथा ॥३०८॥
आदिखण्ड कथा येन अमृत-श्रवण । याहे शिशु-रूपे क्रीड़ा करे नारायण ॥३०९॥
सर्ब्व लोक-चूड़ामणि वैकुण्ठ-ईश्वर । लक्ष्मीकान्त सीताकान्त श्रीगौरसुन्दर ॥३१०॥
त्रेता-युगे हइया ये श्रीराम लक्ष्मण । नाना-मत लीला करि बधिला रावण ॥३११॥
हइया द्वापर-युगे कृष्ण सङ्कर्षण । नाना-मते करिलेन भूभार खण्डन ॥३१२॥
मुकुन्द अनन्त यारे सर्ब्ब बेदे कहे । श्रीचैतन्य नित्यानन्द सेइ सुनिश्चये ॥३१३॥

अपने को सँभाल कर (अपना भाव गोपन करके) आचमन करने लगे ॥ ३०० ॥ वह सब लोग विप्रवर को निर्विघ्न भोजन कर चुके देखकर अतिशय आनन्दित हुए ॥३०१॥ वह ब्राह्मण बीती हुई इस घटना को सबसे कहने का मन में विचार करते हैं; मन ही मन सोचते हैं कि—"(मेरे कहने से) इस बालक को ईश्वर जानकर सभी लोग उद्धार हो जावें ॥ ३०२ ॥ जिन प्रभु के लिये ब्रह्मा, शिव आदि देवगण भी कितनी कामनायें करते हैं, वही प्रभु श्री जगन्नाथ मिश्र के घर में अवतीर्ण हुए हैं ॥ ३०३ ॥ उन्हीं श्रीप्रभु को सब लोग बालक समझते हैं। मैं बीती हुई बातें कहदूँ, जिससे सब लोगों का परित्राण हो जाय" ॥ ३०४ ॥ श्रीप्रभु ने किसी से भी कहना निषेध किया है और कहने से श्री भगवदाज्ञा भङ्ग होगी, इस डर से विप्र ने किसी से कुछ भी नहीं कहा ॥ ३०५ ॥ वह ब्राह्मण प्रभु को पहिचान कर उनके पास गुप्त भाव से उस नवद्वीप धाम में रहने लगे ॥ ३०६ ॥ विप्रवर विभिन्न स्थानों से भिक्षा माँगकर निर्वाह करने लगे; और प्रतिदिन आकर ईश्वर दर्शन करने लगे ॥ ३०७ ॥ यह सब महाविचित्र कथा वेद-गोप्य है। इसे श्रवण करने से अवश्य ही श्रीकृष्ण मिल जाते हैं ॥ ३०८ ॥ आदिखण्ड की लीला जिसमें श्रीनारायणदेव बालक रूप से क्रीडा कर रहे हैं, मानो अमृत की झरना जैसी मधुर हैं ॥ ३०९ ॥ श्रीगौरसुन्दर प्रभु सर्व लोक चूड़ामणि, वैकुण्ठ के ईश्वर, श्रीलक्ष्मीकान्त, श्री सीताकान्त आदि सर्व तत्त्वमय हैं ॥ ३१० ॥ [अब पूज्यपाद श्री ग्रन्थकार श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्रीगौरसुन्दर के तत्त्व कुछ वर्णन करते हैं] जिन्होंने त्रेता युग में श्रीराम एवं श्रीलक्ष्मण स्वरूप धारण कर अनेक प्रकार की लीलायें करके रावण का वध किया, द्वापर युग में जिन्होंने श्रीकृष्ण एवं श्रीवलराम होकर अनेक प्रकार से पृथ्वी का भार हरण किया और सर्व वेद जिनको श्री मुकुन्द एवं श्री अनन्त कहकर पुकारते हैं, वही श्रीचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र हैं; यह सुनिश्चय है (कोई भी संशय नहीं है) ॥ ३११-३१३ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्द को जानकर, श्रीवृन्दावनदास ठाकुर उन दोनों के श्रीचरणारविन्द-माहात्म्य को

श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चाँद जान । बृन्दावन-दास तछु पदयुगे गान ॥३१४॥

इति श्रीआदिखण्डे नामकरण-चापल्यविलासादिवर्णनं नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय

हेन मते क्रीडा करे गौराङ्ग गोपाल । हाथे खड़ि दिबार हइल आसि काल ॥१॥
शुभ दिने शुभ क्षणे मिश्र-पुरन्दर । हाथे खड़ि पुत्रेर दिलेन विप्रवर ॥२॥
किछु शेषे मिलिया सकल बन्धुगण । कर्णबेध करिलेन श्रीचूड़ाकरण ॥३॥
दृष्टिमात्र सकल अक्षर लिखि जाय । परम बिस्मित हइ सर्व्वगणे चाय ॥४॥
दिन दुइ तिने लिखिलेन सर्व्व फला । निरन्तर लिखेन कृष्णेर नाममाला ॥५॥
राम, कृष्ण, मुरारि, मुकुन्द, बनमाली । अहर्निशि लिखेन पढ़ेन कुतूहली ॥६॥
शिशुगण-सङ्गे पढ़े बैकुण्ठेर राय । परम-सुकृति सब देखे नदीयाय ॥७॥
कि माधुरी करि प्रभु 'क,ख,ग,घ' बोले । ताहा शुनि तेइ मात्र सर्व्व-जीव भोले ॥८॥
अद्भुत करेन क्रीड़ा श्री गौरसुन्दर । जखने ये चाहे सेइ परम दुष्कर ॥९॥
आकाशे उड़िया जाय पक्षि ताहा चाहे । ना पाइले कान्दिया धूलाय गड़ि याये ॥१०॥
क्षणे चाहे आकाशेर चन्द्र तारागण । हाथ-पाओ आछाड़िया करये क्रन्दन ॥११॥
सान्त्वना करेन सभे करि निज कोले । स्थिर नहे विश्वम्भर 'देओ देओ' बोले ॥१२॥

कुछ गा रहे हैं—(द्वितीय अर्थ) श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्द जिनके प्राण हैं ऐसे श्रीवृन्दावनदास ठाकुर उन दोनों के श्रीचरणारविन्द-माहात्म्य को कुछ गाकर सुना रहे हैं ॥ ३१४ ॥

इस प्रकार श्रीगौराङ्ग-गोपाल क्रीड़ा करते हैं, इतने में आपके हाथ में खड़िया देने का (विद्यारम्भ कराने का) समय आ गया है, विप्रबर श्री जगन्नाथ मिश्र शुभ दिन और शुभ क्षण देखकर पुत्र के हाथ में लिखने के लिये खड़िया पकड़ा दी ॥ १-२ ॥ कुछ समय पीछे बन्धु-बान्धवगणों ने मिलकर प्रभु का कर्णबेध एवं चूड़ाकरण का संस्कार किया ॥ ३ ॥ विद्यारम्भ में प्रभु केवल एक बार देखकर ही सब अक्षर लिख जाते हैं। सब आत्मीयजन परम आश्चर्य मान कर परस्पर देखते ही रह जाते हैं ॥ ४ ॥ दो तीन दिन में ही सब फला लिखने लगे, पश्चात् निरन्तर श्रीकृष्ण-नाममाला लिखते हैं ॥ ५ ॥ बिनोदी प्रभु अब दिन रात, राम, कृष्ण, मुरारि, मुकुन्द, बनमाली आदि नामावली लिखते और पढ़ते हैं ॥ ६ ॥ श्री वैकुण्ठनाथ प्रभु, श्रीविश्वम्भरचन्द्र, बालकों के साथ पढ़ते है; जिसको नवद्वीप के सब परम पुण्यवान् लोग देखते हैं ॥ ७ ॥ प्रभु कैसी माधुरी के साथ 'क, ख, ग, घ' बोलते हैं कि—जिसको सुनते ही सब प्राणी मुग्ध हो जाते हैं ॥ ८ ॥ श्रीगौरसुन्दर अद्भुत क्रीड़ा करते हैं। जब जो वस्तु चाहते हैं, उसे कहीं से लाकर देना परम दुष्कर हो जाता है ॥९॥ कभी कोई पक्षी, आकाश से उड़ता हुआ देखते हैं, तो उसी को माँगने लगते हैं और कहीं नहीं मिलने से रोते-रोते धूल में लोट-पोट होते हैं ॥ १० ॥ क्षण भर में आकाश के चन्द्रमा और तारागण माँगने लगते हैं; और फिर हाथ-पैर पीटकर रोने लगते हैं ॥ ११ ॥ सब लोग अपनी २ गोदी में ले लेकर बहलाते हैं; परन्तु श्री-

सब एक मात्र आछे महा-प्रतिकार । हरिनाम शुनिले ना कान्दे प्रभु आर ॥१३॥
हाथे तालि दिया सभे बोले 'हरि हरि' । तखन सुस्थिर हय चाञ्चल्य पासरि ॥१४॥
बालकेर प्रीते सभे बोले हरिनाम । जगन्नाथ-गृह हैल श्रीवैकुण्ठ-धाम ॥१५॥
एक दिन सभे 'हरि' बोले अनुक्षण । तथापिह प्रभु पुन करेन क्रन्दन ॥१६॥
सभेइ बोलेन 'शुन बाप रे निमाञि ! भाल करि नाच एइ हरिनाम गाइ' ॥१७॥
ना शुने वचन कारो करये क्रन्दन । सभेइ बोलेन 'बाप ! कान्द कि कारण ?' ॥१८॥
सभे बोले 'बोल बाप ! कि इच्छा तोमार । सेइ द्रव्य आनि दिब ना कान्दह आर' ॥१९॥
प्रभु बोले 'यदि मोर प्राण-रक्षा चाह । तबे झट दुइ ब्राह्मणेर घरे जाह ॥२०॥
जगदीश पण्डित, हिरण्य भागवत । एइ दुइ स्थाने आमार आछे अभिमत ॥२१॥
एकादशी-उपवास आजि से दोँहार । विष्णु लागि करियाछे यत उपहार ॥२२॥
से सब नैवेद्य यदि खाइबारे पाञ । तबे मुञि सुस्थ हइ हाँटिया बेड़ाञ' ॥२३॥
असम्भव्य शुनिञा जननी करे खेद । हेन कथा कहे येइ नहे लोक वेद ॥२४॥
सभेइ हासेन शुनि शिशुर वचन । सभे बोले 'दिब बाप ! सम्बर क्रन्दन' ॥२५॥
परम-वैष्णव सेइ बिप्र दुइ जन । जगन्नाथ-मिश्र-सहे अभेद-जीवन ॥२६॥

बिश्वम्भरचन्द्र चुप नहीं होते हैं और लगातार 'ला दो-ला दो' ही कहते जाते हैं ॥ १२ ॥ प्रभु को चुप कराने का केवल एक ही परम उपाय है (वह है श्री हरिनाम कीर्त्तन)—प्रभु श्रीहरिनाम सुनने पर नहीं रोते हैं ॥१३॥ जिस समय सब लोग हाथों से ताली बजा बजा कर 'हरि-हरि' बोलने लगते हैं, उस समय प्रभु अपने को भूलकर बिलकुल चुप पड़ जाते हैं ॥ १४ ॥ बालक पर अत्यन्त प्रीति होने के कारण, उसको प्रसन्न करने के लिये सब स्त्री-पुरुष निरन्तर श्री हरिनाम बोलते हैं । इसलिये श्री जगन्नाथ मिश्र का घर श्रीवैकुण्ठधाम बन गया है ॥ १५ ॥ एक दिन प्रभु के मचल जाने पर सब लोग निरन्तर 'हरि-हरि' बोल रहे हैं, परन्तु तो भी प्रभु चुप नहीं होते; बारम्बार रोते ही रह जाते हैं ॥ १६ ॥ सब लोग कहते हैं कि—"अरे बेटा निमाई ! सुनो । यह देखो हम लोग श्री हरिनाम गाते हैं; तुम अपना अच्छा सा नाच तो दिखाओ" ॥ १७ ॥ [परन्तु] प्रभु किसी की बात नहीं सुनते हैं, रो ही रहे हैं, अब सब पूँछने लगे बेटा निमाई तुम किस लिये रोते हो ?" ॥ १८ ॥ सब लोग कहते हैं—"बतलाओ बेटा ! तुम्हारी क्या इच्छा है ? हम वही बस्तु तुम्हें लाकर देंगे । बस, अब मत रोओ" ॥१९॥ प्रभु ने कहा—"यदि तुम सब मेरी प्राण-रक्षा चाहते हो, तो शीघ्र ही दो ब्राह्मणों के घर जाओ—एक श्री जगदीश पण्डित तथा दूसरे श्री हिरण्य पण्डित—ये दोनों ही परम भागवत हैं । इन दोनों के स्थान में मेरा प्रयोजन है, आज उन दोनों का एकादशी उपवास है । उन्होंने श्रीविष्णु के भोग के लिये जो-जो द्रव्य बनाये हैं, वह सब नैवेद्य यदि खाने को मिले, तो मैं प्रसन्न होकर आनन्द से विचरण करूँगा" ॥ २०-२३ ॥ इस असम्भव बात को सुनकर माताजी खेद प्रकाश करती हैं; वे मन में सोचती हैं, कि—वह तो ऐसी बात कहता है, जो कि लोक में तथा वेद में कहीं भी नहीं है (अथवा जोकि लोक में कोई भी नहीं जानते हैं) ॥ २४ ॥ बालक की बात सुनकर सभी हँसने लगे और कहने लगे—"बेटा विश्वम्भर तुम जो चाहते हो सोई ला देंगे, तुम रोना बन्द करो" ॥ २५ ॥ वे दोनों ब्राह्मण (जगदीश एवं हिरण्य पण्डित)

शुनिञा शिशुर वाक्य दुइ विप्रवर । सन्तोषे पूर्णित हैल सर्ब्ब कलेबर ।।२७।।
दुइ विप्र बोले 'महा-अद्भुत-काहिनी । शिशुर एमत बुद्धि कभो नाहिं शुनि ।।२८।।
केमते जानिल आंज श्रीहरि-बासर । केमते वा जानिल नैवेद्य बहुतर ।।२९।।
बुझिलाङ ए शिशु परम-रूपवान । अतएव ए देहे गोपाल-अधिष्ठान ।।३०।।
ए शिशुर देहे क्रीड़ा करे नारायण । हृदये वसिया सेइ बोलाय बचन' ।।३१।।
मने भावि दुइ विप्र सर्ब्व उपहार । आनिञा दिलेन करि हरिष अपार ।।३२।।
दुइ विप्र बोले 'बाप ! खाओ उपहार । सकल कृष्णेर सात् हइल आमार' ।।३३।।
कृष्ण कृपा हइले एमत बुद्धि हय । दास बिनु अन्येर ए वुद्धि कभु नय ।।३४।।
भक्ति बिना चैतन्य-गोसाञि नाहि जानि । अनन्त ब्रह्माण्ड याँर लोमकूपे शुनि ।।३५।।
हेन प्रभु बिप्रशिशु रूपे क्रीड़ा करे । चक्षु भरि देखे जन्म-जन्मेर किङ्करे ।।३६।।
सन्तोष हइला सब पाइ उपहार । अल्प अल्प किछु प्रभु खाइल सभार ।।३७।।
हरिषे भक्तेर प्रभु उपहार खाय । घुचिल सकल बायु प्रभुर इच्छाय ।।३८।।
हरि हरि' हरिषे बोलये सर्ब्व जने । खाय आर नाचे प्रभु आपन-कीर्त्तने ।।३९।।
कथो फेले भूमिते कथो वा कारो गाय । एइ मत लीला करे त्रिदशेर राय ।।४०।।

परम वैष्णव हैं, दोनों का श्री जगन्नाथ मिश्र के साथ अभिन्न-जीवन (एक-देह-प्राण) है ।। २६ ।। बालक के वाक्य सुनकर उह दोनों श्रेष्ठ ब्राह्मणों का सम्पूर्ण शरीर सन्तोष से परिपूर्ण होगया ।। २७ ।। दोनों विप्र कहते हैं—'यह तो महा अद्भुत बात है, बालक की ऐसी बुद्धि तो आज तक कभी सुनने में नहीं आई ।। २८ ।। "कैसे तो इसने जान लिया कि आज श्री एकादशी है और कैसे यह जान लिया कि बहुत सा नैवेद्य तैयार हुआ है । इसी से वे जान गये कि इस बालक के परम रूपवान् होने से शरीर में श्रीगोपालजी वास करते हैं, इस बालक के शरीर में श्रीनारायणदेव क्रीड़ा करते हैं, इस बालक के हृदय में बैठकर वही वचन बोलते हैं" ।। २९-३१ ।। इस प्रकार मन में भावना करके दोनों ब्राह्मणों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर वह सब उपहार द्रव्य लाकर प्रभु को दे दिया ।।३२।। दोनों विप्र बोले—"बेटा विश्वम्भर ! लेओ विष्णु नैवेद्य उपहार खाओ, तुम्हारे खाने से हमारा सर्व्वस्व श्रीकृष्ण में मिल गया अर्थात् श्रीकृष्णार्पण हो गया ।। ३३ ।। श्रीकृष्ण कृपा होने पर ही मनुष्य की ऐसी बुद्धि होती है; भगवत्-दास बिना अन्य किसी की ऐसी बुद्धि कभी नहीं होती [कहीं-कहीं "दास...नय" इस पाठ के "ठौर में जारे कृपा हय ताने सेइसे जानय" पाठान्तर है] ।। ३४ ।। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी बिना भक्ति के नहीं जाने जा सकते । जिनके एक-एक रोम कूप में असंख्य ब्रह्माण्ड हैं ऐसा सुनते हैं ।। ३५ ।। वही प्रभु (श्रीगौरचन्द्र) एक ब्राह्मण बालक रूप में क्रीड़ा कर रहे हैं और जन्म-जन्म के दास-जन नयन भर कर देख रहे हैं ।। ३६ ।। वह सब उपहार पाकर प्रभु परम सन्तुष्ट हुए और सब से थोड़ा भोजन किया ।। ३७ ।। प्रभु आनन्दित होकर भक्त-दत्त उपहार आरोगते हैं । उनकी इच्छा से अब क्रन्दन रूपी वायु विकार दूर हो गया है ।। ३८ ।। सब लोग आनन्दपूर्वक हरि-हरि बोल रहे हैं; प्रभु अपने (नाम) कीर्त्तन के साथ-साथ खाते और नाचते भी जाते हैं ।। ३९ ।। कुछ भोज्य द्रव्य पृथ्वी पर डाल देते हैं और कुछ कीर्त्तन-कारों पर फेंक देते हैं । आज तीस कोटि-देवताओं के स्वामी इस प्रकार लीला कर रहे हैं ।। ४० ।।

जे प्रभुरे सर्व्व वेदे पुराणे बाखाने । हेन प्रभु खेले शचीदेवीर अङ्गने ॥४१॥
डुबिला चाञ्चल्य-रसे प्रभु विश्वम्भर । संहति चपल यत बिप्र अनुचर ॥४२॥
सभार सहित गिया पड़े नाना-स्थाने । धरिया राखिते नाहि पारे कोन जने ॥४३॥
अन्य शिशु देखिले करये कुतूहल । सेहो परिहास करे बाजये कोन्दल ॥४४॥
प्रभुर बालक सब जिने प्रभु-बले । अन्य शिशुगण यत सब हारि चले ॥४५॥
धूलाय धूसर प्रभु श्रीगौरसुन्दर । लिखन-कालिर बिन्दु शोभे मनोहर ॥४६॥
पढ़िया शुनिञा सर्व्व-शिशुगण-सङ्गे । गङ्गास्नाने मध्यान्हे चलेन बहु रङ्गे ॥४७॥
मज्जिया गङ्गाय बिश्वम्भर कुतूहली । शिशुगण-सङ्गे करे जल फेलाफेलि ॥४८॥
नदियार सम्पत्ति वा के बलिते पारे । असंख्यात लोक एको-घाटे स्नान करे ॥४९॥
कतेक वा शान्त दान्त गृहस्थ सन्यासी । ना जानि कतेक शिशु मिले तहि आसि ५०॥
सभारे लइया प्रभु गङ्गाय साँतारे । क्षणे डुबे क्षणे भासे नाना क्रीड़ा करे ॥५१॥
जल-क्रीड़ा करे गौर सुन्दर-शरीर । सभार गायेते' लागे चरणेर नीर ॥५२॥
सभे माना करे तभो माना नाहि माने । धरिते ओ केहो नाहि पारे एक-स्थाने ॥५३॥
पुनःपुन सभारे कराय प्रभु स्नान । कारे छुँये, कारो अङ्गे कुल्लोल प्रदान ॥५४॥
ना पाइया प्रभुर नागाली विप्रगणे । सभे चलिलेन तार जनकेर स्थाने ॥५५॥

जिस प्रभु की महा महिमा को सर्व वेद एवं पुराण वर्णन करते हैं, वही प्रभु श्रीशचीदेवी के आँगन में खेल रहे हैं ॥ ४१ ॥ प्रभु श्रीविश्वम्भर चाञ्चल्य रस में डूब गये हैं, सब चञ्चल विप्र-बालक सहचर रूप से आपके सङ्ग में हैं ॥ ४२ ॥ सब को साथ लेकर धूलि में गिरते-पड़ते अनेक स्थानों में खेलते हैं; कोई भी उनको पकड़ कर रख नहीं पाता ॥ ४३ ॥ जब कहीं अन्य बालकों की टोली देखते हैं, तब आप उनसे कौतुक करने लगते हैं; वे हँसी करने लगते हैं। इस प्रकार दोनों ओर से लड़ाई होने लगती है ॥४४॥ प्रभु के साथी सब बालक प्रभु के बल से जीत जाते हैं और अन्य बालकवृन्द सब हारकर चले जाते हैं ॥ ४५ ॥ श्रीगौरसुन्दर प्रभु धूल-धूसरित हो रहे हैं, ऊपर से लिखने की काली (स्याही) के बिन्दु समूह मनोहर शोभा को प्राप्त होरहे हैं॥४६॥ पढ़-लिखकर सब शिशुओं के सङ्ग रास्ते में अनेक प्रकार के कौतुक करते हुए, मध्याह्न काल में श्री गङ्गा-स्नान को जाते हैं ॥ ४७ ॥ कौतुकी श्रीविश्वम्भर देव श्रीगङ्गाजी में स्नान करते समय बालकों के साथ फेंका-फेंकी का खेल करते हैं ॥४८॥ श्री नवद्वीप की सम्पत्ति का भी कौन वर्णन कर सकता है ? एक २ घाट पर असंख्य लोग स्नान करते हैं ॥४९॥ कितने ही शान्त, दान्त, गृहस्थ, संन्यासी और न जाने कितने बालक स्नान करने के लिये गङ्गा-घाट पर आ मिलते हैं ॥ ५० ॥ सब बालकों को साथ लेकर प्रभु श्रीगङ्गाजी में तैरते हैं; कभी आप डुबकी लगाते हैं, कभी ऊपर आ जाते हैं, इस प्रकार की अनेक क्रीड़ा करते हैं ॥ ५१ ॥ सुन्दर-शरीर वाले श्रीगौरसुन्दर जलक्रीड़ा करते हैं; आपके चरणों के जल सब के शरीरों पर जा-जाकर पड़ता है ॥ ५२ ॥ उस समय सब लोग आपसे मना करते हैं, पर आप उनके मना करने पर भी कुछ ध्यान नहीं देते। कोई आपको पकड़ कर भी एक जगह नहीं रख सकता है ॥ ५३ ॥ प्रभु आप किसी को छूकर, किसी के ऊपर कुल्ला कर, एक बार स्नान किये हुए को बारम्बार स्नान कराते हैं ॥५४॥ विप्रगण प्रभु को न पकड़ पाकर सब मिल-

'शुन शुन ओहे मिश्र परम-बान्धव ! तोमार पुत्रेर अपन्याय कहि सब ॥५६॥
भालमते करिते ना पारि गङ्गा-स्नान'। केहो बोले 'जल दिया भाङ्गे मोर ध्यान'॥५७॥
आरो बोले "कारे" ध्यान कर एइ देख। कलियुगे नारायण मुजि परितेख ॥५८॥
केहो बोले "मोर शिवलिङ्ग करे चुरि"। केहो बोले "मोर लइ पलाय उत्तरी" ॥५९॥
केहो बोले "पुष्प, दूर्वा, नैवेद्य, चन्दन। बिष्णु पूजिबार सज्ज, बिष्णुर आसन ॥६०॥
आमि करि स्नान, हेथा बैसे से आसने। सब खाइ पहि, तबे करे पलायने" ॥६१॥
आरो बोले 'तुमि केने दुःख भाव मने। यार लागि कैले सेइ खाइल आपने' ॥६२॥
केहो बोले 'सन्ध्या करि जले ते नाम्भिया। डुब देइ लैया याय चरने धरिया' ॥६३॥
केहो बोले 'आमार ना रहे साजि धुति'। केहो बोले 'आमार चोराय गीता पुँथि'॥६४॥
केहो बोले 'पुत्र अति बालक आमार। कर्णे जल दिया तारे कान्दाय अपार' ॥६५॥
केहो बोले 'मोर पृष्ठ दिया कान्धे चढ़े। 'मुजि रे महेश बलि झाँप दिया पड़े' ॥६६॥
केहो बोले 'वैसे मोर पुजार आसने। नैवेद्य खाइया विष्णु पूजये आपने ॥६७॥
स्नान करि उठिले बालुका देइ अङ्गे। यतेक चपल शिशु सेइ तार सङ्गे ॥६८॥
स्त्री-वासे पुरुष-वासे करये वदल। पहिबार बोले सभे लज्जाय विकल ॥६९॥

कर आपके पिताजी के पास आये ॥ ५५ ॥ आप सब कहते हैं कि–"हे परम बान्धव मिश्रवर जी ! सुनिये, सुनिये, हम सब आपको, आपके पुत्र के अन्याय व्यवहार सुनाते हैं ॥ ५६ ॥ कोई कहते हैं—उसके उत्पात से हम लोग अच्छी प्रकार गङ्गा-स्नान भी नहीं कर पाते हैं।" कोई-कोई कहते हैं कि–'वह जल फेंककर हमारा ध्यान भङ्ग कर देता है' ॥ ५७ ॥ और भी कहता है कि "तुम किसका ध्यान करते हो, यह देखो कलियुग में मैं ही प्रत्यक्ष नारायण हूँ" ॥ ५८ ॥ कोई कहते हैं कि–'वह मेरा श्रीशिवलिंग चुरा लेता है', कोई कहते हैं कि–'मेरा दुपट्टा लेकर भाग जाता है' ॥ ५९ ॥ कोई कहता है कि—'पुष्प, दूव, नैबेद्य, चन्दनादि श्रीविष्णु पूजा की सामिग्री और श्रीविष्णु का आसन रखकर मैं तो उधर स्नान करने में लग जाता हूँ और इधर आपका बालक उस आसन पर आ बैठता है और सब (नैबेद्य) खा तथा (माल्यादि) पहन कर भाग जाता है' ॥ ६०-६१ ॥ और ऊपर से कहता है कि—'तुम अपने मन में क्यों दुःखी होते हो ? जिसके लिये ये सब तुमने किया था, स्वयं उसी ने खा लिया है' ॥६२॥ कोई कहता है कि–'मैं तो जल में उतर कर सन्ध्या करता हूँ और वह तुम्हारा पुत्र डुबकी मार कर मेरा पैर पकड़ कर खींच ले जाता है' ॥ ६३ ॥ कोई कहता है कि हमारी तो फूल उठाने की साजी, धोती, कुछ भी नहीं रहने देता है।' कोई कहता है कि–'हमारी श्रीगीता-पोथी को चुरा लेता है' ॥६४॥ कोई कहता है कि–'मेरा एक अति नादान बच्चा है; तुम्हारा पुत्र उसके कान में जल डालकर उसे बहुत रुलाता है' ॥ ६५ ॥ कोई कहता है कि–'वह मेरी पीठ पर होकर कन्धे पर चढ़ जाता है' 'और मैं ही महेश हूँ, कहकर जल में कूद पड़ता है' ॥ ६६ ॥ कोई कहता है कि–'वह मेरे विष्णु-पूजा के आसन पर बैठ जाता है और नैबेद्य खाकर आप ही श्रीविष्णु पूजा करने लगता है ॥ ६८ ॥ [अब सब लोग कहते हैं कि] वह तुम्हारा पुत्र लोगों के स्नान करके ऊपर आते समय उनके शरीर पर बालू फेंकता है। जितने चञ्चल बालक हैं, वही सब उसके सङ्ग के साथी हैं ॥ ६८ ॥ कभी-कभी वह स्त्री और पुरुषों के वस्त्रों को अदल-बदल कर देता है; पहिनने के समय सब स्त्री-पुरुष, लज्जा से विकल हो जाते हैं ॥ ६९ ॥

परम वान्धव तुमि मिश्र जगन्नाथ । नित्य एइ मत करे, कहिल तोमात ॥७०॥
दुइ प्रहरे ओ नाहि उठे जल हैते । देह वा ताहार भाल थाकिब केमते" ॥७१॥
हेन-काले पार्श्ववर्त्ती यतेक बालिका । कोप-मने आइलेन शचीदेवी यथा ॥७२॥
शची सम्बोधिया सभे बोलेन बचन । "शुन ठाकुराणि ! निज पुत्रेर करण ॥७३॥
बसन करये चुरि, बोले बड़ मन्द । उत्तर करिले जल देय, करे द्वन्द्व ॥७४॥
ब्रत करिबारे यत आनि फुल फल । छड़ाइया फेले बल करिया सकल ॥७५॥
स्नान करि उठिले बालुका देइ अंगे । यतेक चपल शिशु, सेइ तार संगे ॥७६॥
अलक्षिते आसि कर्णे बोले बड़ बोल" । केहो बोले 'मोर मुखे दिलेक कुल्लोल'॥७७॥
ओकड़ार फूल देय केशेर भितरे' । केहो बोले 'मोरे चाहे विभा करिवारे ॥७८॥
प्रति दिन एइ मत करे व्यवहार । तोमार निमाञि किवा राजार कुमार ? ॥७६॥
पूरबे शुनिला येन नन्देन कुमार । सेइ मत सब करे निमाञि तोमार ॥८०॥
दुःखे बाप-मायेरे बलिब येइ दिने । ततक्षणे कोन्दल हइब तोमा सने ॥८१॥
निवारण कर झट आपन छाओयाल । नदीयाय हेन कर्म कभू नहे भाल' ॥८२॥
शुनिञा हासेन महाप्रभुर जननी । सभा कोले करिया कहेन प्रिय-वाणी ॥८३॥
'निमाञि आइले आजि एड़िमु बान्धिया । आर येन उपद्रव नाहि करे गिया' ॥८४॥

हे जगन्नाथ मिश्र जी ! आप हमारे परम बान्धव हो;हम आपसे कह चुके आपका बालक नित्यप्रति इसी प्रकार का व्यवहार करता है ॥ ७० ॥ दो-दो प्रहर हो जाते है, पर वह जल से बाहर नहीं आता है, बतलाओ ! फिर उसका शरीर किस प्रकार ठीक रहेगा ?' ॥ ७१ ॥ इसी समय पड़ौस की सब बालिकायें मन में क्रोधित होकर श्रीशचीदेवी के पास आ पहुँची हैं ॥ ७२ ॥ वे सब श्री शचीदेवी को सम्बोधन करके कहती हैं कि—'हे ठकुरानी जी ! आप अपने पुत्र की करतूत सुनिये ॥ ७३ ॥ बह हमारे वस्त्र चुरा लेता है और हमसे बहुत बुरे शब्द कहता है । जब कुछ उत्तर देती हैं, तो हमारे ऊपर जल फेंकता है और लड़ता है ॥ ७४ ॥ हम ब्रत करने के लिये जो फल-फूल ले जाती हैं, तुम्हारा पुत्र जबर्दस्ती से फेंक देता है ॥ ७५ ॥ जब हम स्नान करके आती हैं, तो वह हमारे शरीर पर बालू फेंकता है । जितने चञ्चल बालक हैं, वे सब उसके साथी हैं ॥ ७६ ॥ कभी छुपे-छुपे आकर कान में चिल्ला के कुछ कहता है ।' कोई कहती हैं कि—'आज बह मेरे मुँह पर कुल्ला कर गया ॥ ७७ ॥ हम सब के बालों में चिरचिटा के फल चिपटाय देता है' और कोई कहती हैं—'मेरे साथ विवाह करने को चाहता है ॥ ७८ ॥ वह प्रतिदिन इसी प्रकार के व्यवहार करता है, क्या आपका निमाई कोई राजा का कुँवर है ? ॥ ७६ ॥ पूर्वकाल में जैसे नन्द-नन्दन के व्यवहार जिस प्रकार सुने थे, तुम्हारा निमाई भी उसी प्रकार के सब व्यवहार करता है ॥ ८० ॥ तब दुःखी होकर जिस दिन हम अपने माँ-बाप से कह देंगी, उसी दिन तुम्हारे साथ झगड़ा खड़ा हो जावेगा ॥ ८१ ॥ आप शीघ्र ही अपने बालक को ऐसे कर्म करने से रोक लीजिये; इस नवद्वीप में ऐसा कर्म कभी भी अच्छा नहीं है' ॥ ८२ ॥ सुन कर श्री महाप्रभु की माताजी हँस पड़ती हैं और सबको गोदी में ले लेकर प्रिय वाणी से कहती हैं ॥ ८३ ॥ [आप कहती हैं, प्यारी बेटियो !] 'आज निमाई के घर आने पर मैं उसे बाँध कर छोड़ूँगी; जिससे कि वह फिर कभी जाकर

शचीरचरण-धूलि लइ सभे शिरे । तबे चलिलेन पुन स्नान करिवारे ॥८५॥
यतेक चापल्य प्रभु करे यार सने । परमार्थी सभार सन्तोष बड़ मने ॥८६॥
कौतुके कहिते आइसेन मिश्र स्थाने । शुनि मिश्र तर्ज्जे गर्ज्जे सदम्भ बचने ॥८७॥
'निरवधि ए ब्यभार करये सभारे । भाल मते गङ्गा स्नान ना देय करिवारे ॥८८॥
एइ झाट याञ तार शास्ति करिबारे' । सभे राखिलेह केहो राखिते ना पारे ॥८९॥
क्रोध करि यखन चलिला मिश्रवर । जानिला गौराङ्ग सर्व्वभूतेर ईश्वर ॥९०॥
गङ्गा जले केलि करे श्रीगौरसुन्दर । सर्व्व-बालकेर मध्ये अति मनोहर ॥९१॥
कुमारिका सभे बोले 'शुन विश्वम्भर ! मिश्र आइसेन एइ, पलाह सत्वर ॥९२॥
शिशुगण-सङ्गे प्रभु याय धरिबारे । पलाइल ब्राह्मण-कुमारी सब डरे ॥९३॥
सभारे शिखाय मिश्र-स्थाने कहिबार । 'स्नाने नाहि आइसेन तोमार कुमार ॥९४॥
सेइ पथे गेला घर पढ़िया शुनिञा । आमराओ आछि एइ ताहार लागिया' ॥९५॥
शिखाइया प्रभु आर-पथे गेला घर । गङ्गा घाटे आसिया मिलिला मिश्रबर ॥९६॥
आसिया गंगार घाटे चारि-दिगे चाहे । शिशु गणमध्ये पुत्र देखिते ना पाये ॥९७॥
मिश्र जिज्ञासये 'बिश्वम्भर कति गेला' ? शिशु गण बोले 'आजि स्नाने ना आइला॥९८।
सेइ पथे गेला घर पढ़िया शुनिञा । सभे आछि एइ तार अपेक्षा करिया' ॥९९॥

ऊधम न करे' ॥ ८४ ॥ यह सुनकर सब बालिकायें श्रीशचीदेवी की चरण-रज सिर पर धारण करके फिर स्नान करने को चली गईं ॥ ८५ ॥ प्रभु जिसके साथ जितना चाञ्चल्य करते हैं, परमार्थ विषय में उनसे वे सब मनमें बड़े प्रसन्न होते हैं ॥ ८६ ॥ वे केवल विनोद के लिये ही श्रीजगन्नाथमिश्र जी से कहने को आते हैं। मिश्रजी उनकी बात सुनकर क्रोधयुक्त बचनों से तर्ज्जन-गर्ज्जन करके कहने लगे ॥ ८७ ॥ [देखो यह छोकरा] 'निरन्तर सबके साथ ऐसा ही व्यवहार करता है; लोगों को अच्छी तरह से गङ्गा-स्नान भी नहीं करने देता ॥ ८८ ॥ [अच्छा देखो] अभी शीघ्र ही उसे दण्ड देने के लिये जाता हूँ। [ऐसा कहकर आप चलते हैं] लोग आपको पकड़ते हैं, पर तो भी किसी को रोकने का सामर्थ्य नहीं हुआ ॥८९॥ सर्व प्राणियों के ईश्वर श्रीगौरचन्द्र ने उसी समय जान लिया कि–पिताजी क्रुध होकर मुझे दण्ड देने के लिये आ रहे हैं ॥ ९० ॥ उस समय अति मनोहर श्रीगौरसुन्दर सर्व्व बालकों के मध्य गङ्गाजल में खेल रहे थे ॥ ९१ ॥ [दूर से श्रीजगन्नाथ मिश्र को आते देखकर] सब कुमारिकायें बोली कि–'ए विश्वम्भर ! सुनो ! वह देखो ! मिश्रजी आ रहे हैं; शीघ्र भाग जावो' ॥ ९२ ॥ [श्री जगन्नाथ मिश्र जी] और बालकों के सङ्ग प्रभु को पकड़ने के लिये आते हैं [देखकर] ब्राह्मण-कुमारी सब डर के मारे भाग जाते हैं ॥ ९३ ॥ अब प्रभु सब बालकों को मिश्रजी से यों कहने को सिखाते हैं कि–तुम्हारा पुत्र स्नान करने नहीं आया ॥ ९४ ॥ वह तो पाठशाला से सुनकर उसी रास्ते से (अर्थात् वहीं से) घर चला गया, हम भी उसकी यहाँ बाट देख रहे हैं ॥ ९५ ॥ इस प्रकार सिखाकर प्रभु एक दूसरे रास्ते से अपने घर चले गये, उसी समय श्री जगन्नाथ मिश्रवर गङ्गा जी के घाट पर आकर (लड़कों को) मिले ॥ ९७ ॥ श्री गङ्गा के घाट पर आकर चारों ओर (वे) देखने लगे, परन्तु बालकों के बीच में अपने पुत्र को नहीं देखा (पाया) ॥ ९७ ॥ श्री मिश्रजी बालकों से पूछते हैं– 'विश्वम्भर कहाँ गया ?' उत्तर में शिशुगणों ने कहा कि—"वह आज स्नान करने नहीं आया ॥ ९८ ॥

चारि-दिगे चाहे मिश्र हाथे बाड़ि लैया । तर्ज्ज गर्ज्ज करे बड़ लाग ना पाइया ॥१००॥
कौतुके याहारा निवेदन कैल गिया । सेइ सब विप्र पुन बोलये आसिया ॥१०१॥
"भय पाइ विश्वम्भर पलाइया घरे । घरे चल तुमि, किछु बोल पाछे तारे ॥१०२॥
आर-बार यदि आसि चपलता करे । आमराइ धरि दिब तोमार गोचरे ॥१०३॥
कौतुके से कथा कहिलाङ् तोमा' स्थाने । तोमा बहि भाग्यवान नाहि त्रिभुवने ॥१०४॥
से-हेन नन्दन यार गृह- माझे थाके । कि करिबे क्षुधा तृषा भोख रोग शोके ॥१०५॥
तुमि से सेबिला सत्य प्रभुर चरण । तार महाभाग्य यार ए हेन नन्दन ॥१०६॥
कोटि अपराध यदि विश्वम्भर करे । तबु तारे थुइबाङ् हृदय-उपरे' ॥१०७॥
जन्मे जन्मे कृष्ण-भक्त एइ सब जन । ए सब उत्तम-बुद्धि इहार कारण ॥१०८॥
अतएव प्रभु निज सेवक सहिते । नाना-क्रीड़ा करे केहो ना पारे बुझिते ॥१०९॥
मिश्र बोले 'सेहो पुत्र तोमरा- सभार । यदि अपराध लह शपथ आमार' ॥११०॥
ता सभार संगे मिश्र करि कोलाकुलि । गृहे चलिलेन मिश्र हइ कुतूहली ॥१११॥
आर पथे घरे गेला प्रभु विश्वम्भर । हाथेते मोहन पुँथि येन शशधर ॥११२॥
लिखन-कालिर बिन्दु शोभे गौर अंगे । चम्पके लागिल येन चारिदिगे भृंगे ॥११३॥
'जननि !' बलिया प्रभु लागिला डाकिते । 'तैल देह' मोरे याङ् सिनान करिते ॥११४॥

वह तो पढ़ सुनकर उसी रास्ते से घर चला गया, यह देखिये ! हम सब भी उसी की ही अपेक्षा में हैं ॥९९॥ श्री जगन्नाथ मिश्र जी हाथ में छड़ी लेकर चारों ओर दृष्टि डालते हैं;तथा उनका पता न पाकर बहुत तर्ज्जन-गर्ज्जन करने लगे ॥ १०० ॥ पहले जिन विप्रों ने विनोदार्थ श्रीमिश्र जी से जाकर प्रभु के अन्याय निवेदन किये थे, वही सब ब्राह्मण फिर आकर कहने लगे कि ॥ १०१ ॥ 'मिश्र जी ! विश्वम्भर तुम्हारे डर के मारे घर को भाग गया है; आप घर जाओ—उससे कुछ कहना नहीं ॥ १०२ ॥ अब दूसरे बार यदि वह चञ्चलता करेगा, तो हम ही पकड़ कर, तुम्हारे सामने उसे कर देंगे ॥१०३॥ हमने तो कौतुक से ही यह सब बात तुमसे कही थी, वास्तव में तो आपके सिवाय त्रिभुवन में कोई भाग्यवान् नहीं है ॥ १०४ ॥ उस जैसा पुत्र जिसके घर में हो, उसको भूख-प्यास, बुभुक्षा एवं रोग-शोक क्या कर सकते हैं ॥ १०५ ॥ सचमुच आपने ही प्रभु के श्री चरणों की सेवा की है; जिसका ऐसा पुत्र है, उसका महान् सौभाग्य है ॥ १०६ ॥ विश्वम्भर यदि कोटि अपराध भी करे, तो भी हम लोग हृदय पर धारण करेंगे अर्थात् हृदय से लगा रखेंगे ॥१०७॥ यह सब लोग जन्म-जन्मान्तर के श्रीकृष्ण-भक्त हैं; इसी कारण से ये सब ऐसी उत्तम बुद्धि वाले हैं ॥ १०८ ॥ अतएव प्रभु अपने निज सेवकों के साथ नाना प्रकार की क्रीड़ा करते हैं। परन्तु कोई भी समझ नहीं पाता है ॥ १०९ ॥ श्री मिश्र जी उनसे कहते हैं कि–'वह भी तुम सबका ही पुत्र है; यदि तुम सब उसका कुछ अपराध मानों, तो तुम्हें मेरी शपथ है' ॥ ११० ॥ फिर मिश्र जी उन सबको आलिङ्गन करके आनन्दित होते हुए घर चले गये ॥ १११ ॥ इधर एक दूसरे रास्ते से श्री विश्वम्भर प्रभु गङ्गा-तीर से घर आ गये; हाथ में सुन्दर पोथी लिये हुए हैं; मानों चन्द्र प्रकाशित हुआ हो। आपके गौर श्रीअङ्ग में लिखने की स्याही के बिन्दु ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानों चम्पा के फूल के चारों ओर भौंरे लगे हैं ॥ ११२-११३ ॥ प्रभु श्री विश्वम्भर घर आकर 'मैया ! मैया !!" पुकारने लगे और कहने लगे कि—"मैया मुझे तेल दे दो, मैं स्नान करने जाऊँगा । श्रीशचीदेवी

पुत्रेर बचन शुनि शची हरषित । किछुइ ना देखे अङ्गे स्नानेर चरित ॥११५॥
तैल दिया शचीदेवी मने मने गणे । 'बालिकारा कि बलिल, किवा विप्रगणे ॥११६॥
लिखन कालिर विन्दु आछे सर्व्व-अङ्गे । सेइ वस्त्र परिधान, सेइ पूँथि सङ्गे ॥११७॥
क्षणेके आइला जगन्नाथ-मिश्रवर । मिश्र देखे कोले उठिलेन बिश्वम्भर ॥११८॥
सेइ आलिंगने मिश्र वाह्य नाहि जाने । आनन्दे पूर्णित हैला पुत्र दरशने ॥११९॥
मिश्र देखे सर्व्व अंग धूलाय व्यापित । स्नान-चिन्ह ना देखिया हइला विस्मित ॥१२०॥
मिश्र बोले बिश्वम्भर ! कि बुद्धि तोमार । लोकेर ना देह केने स्नान करिवार ॥१२१॥
बिष्णु-पूजा-सज्ज केने कर अपहार । 'बिष्णु' करिया ओ भय नाहिक तोमार ॥१२२॥
प्रभु बोले 'आजि आमि नाहि जाइ स्नाने । आमार सकल शिशु गेल आगुयाने ॥१२३॥
ए सकल लोकेर तारा करे अव्यभार । ना गेले ओ सभे दोष कहेन आमार ॥१२४॥
ना गेलेओ यदि दोष कहेन आमार । सत्य तबे करिब सभार अव्यभार ॥१२५॥
एत बलि हासि प्रभु यान गंगा स्नाने । पुन सेइ मिलिलेन शिशुगण-सने ॥१२६॥
बिश्वम्भरे देखि सभे आलिंगन करि । हासये सकल शिशु शुनिञा चातुरी ॥१२७॥
सभेइ प्रशंसे 'भाल निमाञि चतुर । भाल एड़ाइला आजि मारण प्रचुर ॥१२८॥
जलकेलि करे प्रभु सब शिशु-सने । एथा शची जगन्नाथ मने मने गणे ॥१२९॥

पुत्र के वचन सुनकर बड़ी प्रसन्न हुईं; परन्तु स्नान के सम्बन्ध से पुत्र के अङ्ग में और कुछ भी वे (ऊधम दंगे के चिह्न) नहीं देखतीं ॥ ११४-११५ ॥ तेल देकर श्री शचीदेवी मन ही मन बिचार करती हैं कि-'यह क्या! थोड़ी देर पहिले उन बालिकाओं एवं विप्रगण ने आकर न जाने क्या-क्या कहा था ! इसके तो सब शरीर में लिखने की स्याही के छींटे पड़े हुए हैं, वही वस्त्र पहिने हुए है और पुस्तक भी वही साथ में है ॥ ११६-११७॥ थोड़ी ही देर में श्री जगन्नाथ मिश्रवर आ गये; उनको देखकर श्री विश्वम्भर गोदी में चढ़ गये, इस प्रकार आलिङ्गन पाकर श्रीमिश्रजी का वाह्य ज्ञान जाता रहा,पुत्र को देखकर आप आनन्द से पूरित हो गये-भर गये ॥११८-११९॥ श्री मिश्रजी देखते हैं कि-पुत्र का सब शरीर में धूलि लग रही है; किसी प्रकार का स्नान चिह्न न देखकर आप विस्मित होते हैं ॥ १२० ॥ फिर भी मिश्रजी कहते हैं कि—"अरे विश्वम्भर ! यह तेरी क्या बुद्धि है ? तू लोगों को स्नान क्यों नहीं करने देता है ? ॥ १२१ ॥ विष्णुपूजा की नैवेद्य तुम क्यों चोरी करते हो ? तुमको विष्णु का भी भय नहीं" ॥ १२२ ॥ प्रभु उत्तर देते हैं कि—"आज मैं स्नान करने नहीं गया, मेरे साथ के सब बालक आगे चले गये हैं। वे (बालक) सब इन लोगों के साथ अन्याय व्यवहार करते हैं मेरे नहीं जाने पर भी ये लोग सब मेरे ही ऊपर दोष लगाते हैं; न जाने पर भी यदि सब लोग मेरा ही दोष कहेंगे, तो मैं भी अब सचमुच ही सबके साथ दुर्व्यवहार करूँगा" ॥ १२३-१२५ ॥ इतना कहकर प्रभु हँसकर श्रीगङ्गा स्नान के लिये चले गये और फिर उन्हीं बालकों के साथ जा मिले ॥ १२६ ॥ विश्वम्भर को देखकर सब बालक आलिङ्गन करने लगे और चतुरता का (पिता-पुत्र संभाषण) वृत्तान्त सुनकर सब बालक हँसने लगे ॥ १२७ ॥ सब बालक प्रशंसा करने लगे कि-"वाह रे निमाई वाह ! बड़ा चतुर है। बड़ी मार खाने से आज खूब बचा !!" ॥ १२८ ॥ यहाँ प्रभु सब बालकों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहे हैं; उधर श्री जगन्नाथ मिश्र व

ये ये कहिलेन कथा सेहो मिथ्या नहे । तबे केने स्नान-चिन्ह किछु नाहि देहे ॥१३०॥
सेइ मत अङ्गे धूला, सेइ मत बेश । सेइ पुँथि, सेइ वस्त्र,सेइ मत केश ॥१३१॥
ए वुझि मनुष्य नहे श्री विश्वम्भर । माया-रूपे कृष्ण वा जन्मिला मोर घर ॥१३२॥
कोन महा-पुरुष वा किछुइ ना जानि । हेन मते चिन्तिते आइला द्विजमणि ॥१३३॥
पुत्र दरशनानन्दे घुचिल विचार । स्नेह-पूर्ण हैल दोँहे किछु नाहि आर ॥१३४॥
येइ दुइ प्रहर प्रभु याय पढ़िवारे । सेइ दुइ युग हइ थाके से दोंहारे ॥१३५॥
कोटि-रूपे कोटि मुखे वेदे यदि कहे । तभो ए दोँहार भाग्य नाहि समुच्चये ॥१३६॥
शची-जगन्नाथ-पाये' वहु नमस्कार । अनन्त-ब्रह्माण्डनाथ पुत्र रूपे याँर ॥१३७॥
एइ मत क्रीड़ा करे वैकुण्ठेर राय । वुझिते ना पारे केहो ताहार मायाय ॥१३८॥
श्री कृष्ण चैतन्य नित्यानन्दचाँद जान । वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान ॥१३९॥

इति श्रीआदिखण्डे शैशवक्रीड़ावर्णनं नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय

जय जय महा-महेश्वर गौरचन्द्र । जय जय विश्वम्भर, प्रिय भक्तवृन्द ॥१॥
जय जगन्नाथ-शचीपुत्र सर्व्व-प्राण । कृपादृष्ट्ये कर प्रभु सर्व्व-जीवे त्राण ॥२॥

श्रीशचीदेवी मन ही मन विचार कर रहे हैं कि–॥ १२९ ॥ 'जिस-जिसने जो-जो बातें कहीं हैं, वह भी झूँठी नहीं है; तब बालक के शरीर पर स्नान का कोई भी चिह्न क्यों नहीं है ? ॥ १३० ॥ पहिले जैसा ही शरीर धूल धूसरित है, वैसा ही वेश है, वैसे वही पोथी है, वही वस्त्र पहिने हुए हैं और वैसे ही केश हैं ॥ १३१ ॥ ऐसा विदित होता है कि श्री विश्वम्भर मनुष्य नहीं है, किंवा श्रीकृष्ण ही माया से (गुप्तरूप से, रूप छिपाकर) हमारे घर में अवतीर्ण हुए हैं अथवा यह कोई अन्य महापुरुष हैं, कुछ समझ में नहीं आता"; इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि द्विजमणि श्रीगौरचन्द्र आ पहुँचे ॥ १३२-१३३ ॥ पुत्र दर्शन के आनन्द से उन दोनों की विचार-धारा टूट गई, वे दोनों स्नेह में डूब गये और कुछ नहीं रहा ॥ १३४ ॥ जिन दो प्रहरों के लिये प्रभु पढ़ने को चले जाते हैं, वे दोनों प्रहर दोनों के लिये दो युग की भाँति बीतते हैं ॥ १३५ ॥ वेद भी यदि करोड़ों प्रकार से, करोड़ों मुखों से, इन दोनों का (श्रीशचीदेवी एवं श्री मिश्रचन्द्र का) सौभाग्य वर्णन करें, तो भी उनके भाग्य की प्रशंसा सम्पूर्ण रूप से वर्णन नहीं कर सकते हैं ॥ १३६ ॥ मैं श्रीशचीदेवी एवं श्रीजगन्नाथ मिश्र दोनों के चरणों में अनेक नमस्कार करता हूँ । जिनके यहाँ असंख्य ब्रह्माण्डों के स्वामी पुत्र रूप में विराजमान हैं ॥ १३७ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ इस प्रकार की क्रीड़ा कर रहे हैं; आपकी माया के प्रभाव से कोई कुछ समझ नहीं सकता ॥ १३८ ॥ श्रीवृन्दावनदासजी, श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु को (समझ कर) जानकर उनके युगल चरणों की महिमा कुछ गा रहे हैं । दूसरे अर्थ–श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु तथा श्रीनित्यानन्दचन्द्र प्रभु जिनके प्राण हैं वह श्रीवृन्दावनदासजी उन दोनों के युगलचरणों का (यश) गान करते हैं ॥१३९॥

महामहेश्वर भगवान् श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो । श्री विश्वम्भर प्रभु के प्रिय भक्तवृन्द की जय हो, जय

हेनमते नवद्वीपे श्री गौरसुन्दर । बाल्य-लीला-छले करे प्रकाश विस्तर ।३॥
निरन्तर चपलता करे सभा सने । माये शिखालेओ प्रबोध नाहिं माने ॥४॥
शिखाइले आरो हय द्विगुण चञ्चल । गृहे याहा पाय ताहा भाङ्गये सकल ॥५॥
भये यार किछु ना बोलये बाप माय । स्वच्छन्दे परमानन्दे खेलाय लीलाय ॥६॥
आदि खण्ड-कथा येन अमृत-श्रवण । यँहि शिशु रूपे क्रीड़ा करे नारायण ॥७॥
पिता-माता काहारे ना करे प्रभु भय । विश्वरूप अग्रज देखिले नम्र हय ॥८॥
प्रभुर अग्रज-विश्वरूप भगवान् । आजन्म विरक्त सर्व्व गुणेर निधान ॥९॥
सर्व-शास्त्रे सबे बाखानेन विष्णु-भक्ति । खण्डते ताँहार व्याख्या नाहि कारो शक्ति ॥१०॥
श्रवणे, बदने, मने, सर्व्वेन्द्रिय गणे । कृष्ण-भक्ति विने आर ना बोले ना शुने ॥११॥
अनुजेर देखि अति विलक्षण-रीति । विश्वरूप मने गणे हइया विस्मित ॥१२॥
'ए बालक कभो नहें प्राकृत छाओयाल । रूपे आचरणे येन श्रीबालगोपाल ॥१३॥
यत अमानुषी कर्म्म निरवधि करे । ए बुझि, खेलेन कृष्ण ए शिशु-शरीरे' ॥१४॥
एइ मते चिन्ते विश्वरूप-महाशय । काहारे ना भाङ्गे तत्त्व, स्वकर्म करय ॥१५॥
निरबधि थाके सर्व्व-बैष्णवेर सङ्गे । कृष्ण-पूजा कृष्ण-भक्ति कृष्ण-कथा रङ्गे ॥१६॥
जगत प्रमत्त धन-पुत्र-मिथ्यारसे । देखिले वैष्णव मात्र सभे उपहासे ॥१७॥

हो । सब जीवों के प्राण श्रीजगन्नाथ-शची के पुत्र की जय हो । हे प्रभो ! अपनी कृपा दृष्टि से सब जीवों का उद्धार कीजिये ॥ १-२ ॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर श्रीधाम नवद्वीप में बाल-क्रीड़ा के बहाने से प्रकाश का विस्तार कर रहे हैं । आप निरन्तर सबके साथ चपल व्यवहार करते हैं । माता की शिक्षा देने पर भी प्रबोध नहीं मानते हैं ॥ ३-४ ॥ शिक्षा देने पर और दूने चंचल हो जाते हैं; घर में जो कुछ पाते हैं, सब तोड़-फोड़ डालते हैं ॥ ५ ॥ भय से माता-पिता और कुछ नहीं कहते हैं, निरंकुश होकर बड़े आनन्द में लीला से ही खेल खेल रहे हैं ॥ ६ ॥ आदि खण्ड की कथा जिसमें श्रीमन् नारायण ने बालरूप से क्रीड़ा की है, अमृत की निर्झरनी के समान है ॥ ७ ॥ प्रभु पिता-माता आदि किसी का भी भय नहीं करते, परन्तु बड़े भाई श्रीविश्वरूप को देखकर नम्र हो जाते हैं ॥ ८ ॥ प्रभु के बड़े भाई श्रीविश्वरूप भगवान् जन्म से ही विरक्त एवं सर्व गुणों के निधान हैं ॥९॥ आप सर्व शास्त्रों द्वारा केवल श्री विष्णु-भक्ति की ही व्याख्या करते हैं। आपकी व्याख्या को खण्डन करने की शक्ति किसी में नहीं है ॥ १० ॥ आप कर्ण, मुख, मन सभी इन्द्रियों से श्रीकृष्ण भक्ति के सिवाय न कुछ बोलते हैं और न सुनते ही हैं ॥ ११ ॥ श्रीविश्वरूप भगवान् अपने छोटे भाई की अति विलक्षण रीति को देखकर आश्चर्यान्वित होकर मन में विचार करते हैं कि—॥ १२ ॥ "यह बालक प्राकृत बालक कभी नहीं है । रूप एवं आचरण से श्री बाल-गोपाल ही है । जितने अमानुषिक (मनुष्य शक्ति से अतीत) कर्म वह निरन्तर करता है, उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि—श्रीकृष्ण इस बालक के शरीर में क्रीड़ा करते हैं" ॥ १३-१४ ॥ श्रीविश्वरूप महाशय इसी प्रकार से विचार करते रहते हैं; और किसी से वह तत्त्व नहीं खोलते; अपने कार्य में रत हैं—अर्थात् निरन्तर सोचते रहते हैं ॥ १५ ॥ आप निरन्तर सर्व वैष्णवों के साथ कृष्ण-पूजा, कृष्ण-भक्ति, कृष्ण-कथा रङ्ग में ही मग्न रहते हैं ॥ १६ ॥ इधर सारा संसार धन-

आर्य्या-तर्ज्जा पढ़े सब वैष्णव देखिया। 'यति, सती, तपस्वीओ याइब मरिया ॥१८॥
तारे बलि सुकृति, ये दोला घोड़ा चढ़े। दश बिश जन जार आगे पाछे नड़े ॥१६॥
एते ये गोसाञि भावे करह क्रन्दन। तभु त दारिद्य दुःख ना हय खण्डन ॥२०॥
घन घन 'हरि-हरि' बलि छाड़ डाक। क्रुद्ध हय गोसाञि शुनिले बड़ डाक ॥२१॥
एइ मत बोले कृष्ण-भक्ति-शून्य जने। शुनि महादुःख पाय भागवत गणे ॥२२॥
कोथाओ ना शुने केहो कृष्णेर कीर्त्तन। दग्ध देखे सकल संसार अनुक्षण ॥२३॥
दुःख बड़ पाय विश्वरूप भगवान। ना शुने अभीष्ट कृष्ण चन्द्रेर आख्यान ॥२४॥
गीता भागवत ये ये जने वा पढाय। कृष्णभक्ति व्याख्या कारो ना आइसे जिह्वाय ॥२५॥
कुतर्क घुषिया सब-अध्यापक मरे। 'भक्ति' हेन नाम नाहि जानये संसारे ॥२६॥
अद्वैत-आचार्य्य-आदि यत भक्तगण। जीवेर कुमति देखि करये कन्दन ॥२७॥
दुःखे विश्वरूप प्रभु मने मने गणे। 'ना देखिब लोक मुख चलिबाङ बने' ॥२८॥
उषःकाले विश्वरूप करि गङ्गास्नान। अद्वैत-सभाय आसि हय उपस्थान ॥२६॥
सर्व्व-शास्त्रे बाखानेन कृष्ण-भक्ति सार। शुनिञा अद्वैत सुखे करेन हुङ्कार ॥३०॥
पूजा छाड़ि विश्वरूपे धरि करे कोले। आनन्दे वैष्णव सब 'हरि हरि' बोले ॥३१॥
कृष्णानन्दे भक्तगण करे सिंहनाद। कारो चित्ते आर नाहि स्फुरये विषाद ॥३२॥

पुत्र के मिथ्या रस में मतवाला हो रहा है, बैष्णव मात्र को देखते ही सभी उपहास करने लगते हैं ॥ १७ ॥ वे सब वैष्णव को देखकर श्लेष से भरी हुई पहेलियाँ पाठ करने लगते हैं और कहते हैं कि–'संन्यासी, सती, तपस्वी सभी तो एक दिन मरेंगे ॥ १८ ॥ पुण्यात्मा तो वह कहलाता है, जो पालकी में बैठकर अथवा घोड़े पर चढ़कर चलता है और दश, बीस मनुष्य उसके आगे-पीछे भगे चलते हैं ॥ १६ ॥ ये 'गोस्वामी' गण इतना तो क्रन्दन की (रोने की) भावना अभिव्यक्त करते हैं, परन्तु तो भी उन लोगों का दारिद्र्य-दुःख का नाश नहीं होता ॥ २० ॥ तुम जो बार-बार 'हरि-हरि' बोलकर चिल्लाते हो, ऐसे चिल्लाने से प्रभु क्रुद्ध हो जाते हैं ॥ २१ ॥ श्रीकृष्ण-भक्ति के शून्य-जन इसी प्रकार अनेक बातें कहते हैं,जिनको भव्य जन सुनकर महा दुःख पाते हैं ॥ २२ ॥ कहीं भी कोई श्रीकृष्ण कीर्त्तन होते हुए नहीं सुनता; वह सारे संसार को निरन्तर घोर बहिर्मुखता रूपी अनल में जलता हुआ देखते हैं ॥ २३ ॥ श्री विश्वरूप भगवान् अपने अभीष्ट श्रीकृष्ण-कथा नहीं सुनते हैं तो बड़े दुःखी होते हैं ॥ २४ ॥ जो-जो मनुष्य श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीमद्भागवत पाठ करते हैं उनमें से भी, किसी की जिह्वा पर, श्रीकृष्ण-भक्ति की व्याख्या नहीं आती है ॥ २५ ॥ सब अध्यापक केवल कुतर्क करके मर रहे हैं; संसार भक्ति का नाम भी नहीं जानता ॥ २६ ॥ श्री अद्वैताचार्य आदि जितने भक्त-वृन्द हैं, वे जीव की कुमति देखकर दुखी होते हैं ॥ २७ ॥ श्री विश्वरूप-प्रभु दुखी होकर मन ही मन विचार करते हैं कि–'मैं मनुष्यों का मुख नहीं देखूँगा। बन को चला जाऊँगा' ॥ २८ ॥ श्री विश्वरूपप्रभु ऊषाकाल में गङ्गा-स्नान करके, श्री अद्वैताचार्यजी की सभा में आकर उपस्थित होते हैं ॥ २६ ॥ आप सर्व शास्त्रों से यही व्याख्या करते हैं कि—श्रीकृष्ण-भक्ति ही सार है, इसे सुनकर श्रीअद्वैताचार्यजी आनन्द से हुङ्कार करते हैं ॥ ३० ॥ आप पूजा करना छोड़कर श्रीविश्वरूप प्रभु को उठाकर गोदी में लेते हैं; तथा सब वैष्णववृन्द

बिश्वरूप छाड़ि केहो नाहिं याय घरे। बिश्वरूपो ना आइसेन आपन-मन्दिरे ॥२३॥
रन्धन करिया शची बोले विश्वम्भरे। 'तोमार अग्रजे गिया आनह सत्वरे' ॥२४॥
मायेर आदेशे प्रभु अद्वैत सभाय। आइसेन अग्रजेरे लबार छलाय ॥२५॥
आसिया देखेन प्रभु वैष्णव-मण्डल। अन्योन्ये करेन कृष्ण-कथन-मङ्गल ॥२६॥
आपन-प्रस्ताव शुनि श्रीगौरसुन्दर। सभारे करेन शुभ दृष्टि मनोहर ॥२७॥
प्रति अङ्गे निरुपम-लावण्येर सीमा। कोटि चन्द्र नहे एक नखेर उपमा ॥२८॥
दिगम्बर सर्व्व-अङ्ग धूलाय धूसर। हासिया अग्रज-प्रति करेन उत्तर ॥२९॥
'भोजने आइस भाइ! डाकये जननी'। अग्रज बसन धरि चलये आपनि ॥४०॥
देखि से मोहन रूप सर्व भक्त-गण। स्थगित हइया सभे करे निरीक्षण ॥४१॥
समाधिर प्राय हइयाछे भक्तगणे। कृष्णेर कथन कारु ना आइसे बदने ॥४२॥
प्रभु देखि भक्त मोह स्वभावेइ हय। बिनु अनुभवे ओ दासेर चित्त लय ॥४३॥
प्रभु ओ से आपन भक्तेर चित्त हरे। ए कथा बुझिते अन्य जने नाहि पारे ॥४४॥
ए रहस्य बिदित कैलेन भागवते। परीक्षित शुनि लेन शुकदेव हैते ॥४५॥
प्रसङ्गे शुनह भागवतेर आख्यान। शुक-परीक्षितेर संवाद अनुपाम ॥४६॥
एइ गौरचन्द्र यबे जन्मिला गोकुले। शिशु सङ्गे गृहे गृहे क्रीड़ा करि बुले ॥४७॥

आनन्द से 'हरि-हरि' ध्वनि करते हैं ॥ ३१ ॥ भक्तगण श्रीकृष्ण-प्रेम के आनन्द में सिंह की भाँति गर्जते हैं, अब किसी के चित्त में कुछ भी बिषाद की स्फूर्त्ति नहीं है ॥ ३२ ॥ कोई भी श्रीविश्वरूप प्रभु को छोड़कर, अपने घर नहीं जाते हैं, श्रीविश्वरूप प्रभु भी उन्हें छोड़कर अपने घर नहीं आते हैं ॥ ३३ ॥ इधर श्रीशची-देवी रसोई तैयार करके श्री विश्वम्भरचन्द्र से कहती हैं कि—'अपने बड़े भाई को जाकर शीघ्र लिवा लाओ' ॥ ३४ ॥ प्रभु माँ के आदेश अनुसार बड़े भाई को बुलाने के बहाने श्रीअद्वैताचार्य जी की सभा में आते हैं ॥ ३५ ॥ प्रभु आकर देखते हैं कि—वैष्णव-मण्डल परस्पर मङ्गलमय श्रीकृष्ण-विषयक कथोपकथन कर रहे हैं ॥ ३६ ॥ प्रभु श्रीगौरसुन्दर अपनी ही चर्च्चा को सुनकर सब के ऊपर मनोहर कृपा-दृष्टि करते हैं ॥ ३७ ॥ आपका प्रत्येक अङ्ग उपमा रहित लावण्य (सलोनेपन की) सीमा हो रहा है; आपके एक नख की उपमा कोटि-कोटि चन्द्रमा भी नहीं पा सकते हैं ॥ ३८ ॥ आप दिगम्बर (वस्त्रहीन) हैं एवं सब अङ्ग धूल-धूसरित हो रहे हैं, उस दशा में बे हँसकर अपने बड़े भाई से कहते हैं कि—॥३९॥ "भैया भोजन करने चलो माँ बुला रही हैं।" यह कहकर आप बड़े भाई का वस्त्र पकड़ कर ले चलते हैं ॥ ४० ॥ आपका वह मोहन रूप देखकर सब भक्त-गण स्तम्भित होकर टकटकी लगा देखते हैं ॥ ४१ ॥ भक्तगण समाधि जैसें दशा में हो गये हैं, अब कृष्ण-वार्त्ता किसी के मुख पर नहीं आ रही है ॥ ४२ ॥ प्रभु को देखकर भक्तजनों का मोहित हो जाना स्वाभाविक ही है, अनुभव बिना भी दास का चित्त स्वतः ही लय हो जाता है ॥ ४३ ॥ प्रभु भी अपने भक्तों के चित्त हर लेते हैं। भक्तों के सिवाय अन्य लोग इस बात को नहीं समझ पाते ॥ ४४ ॥ यह रहस्यमय श्रीमद्भागवत् में प्रगट किया गया है; जिसको श्री परीक्षित् महाराज ने श्रीशुकदेवजी से श्रवण किया था ॥४५॥ शुक-परीक्षित का यह आख्यान बड़ा अनौखा(उपमा रहित)है,इस भागवत-कथा को प्रसङ्ग क्रम से सुनिये॥४६॥

जन्म हैते प्रभुरे सकल गोपीगणे । निज पुत्र हइतेओ करेन स्नेह मने ॥४८॥
यद्यपि ईश्वर-बुद्धये ना जाने कृष्णेरे । स्वभावेइ पुत्र हैते बड़ स्नेह करे ॥४६॥
शुनिञा विस्मित बड़ राजा परीक्षित । शुक स्थाने जिज्ञासेन हय पुलकित ॥५०॥
'परम अद्भुत कथा कहिला गोसाञि । त्रिभुवने एमत कोथाओ शुनि नाञि ॥५१॥
निज पुत्र हैते पर-तनय-कृष्णेरे । कह देखि स्नेह हैल केमन प्रकारे' ? ॥५२॥
श्री शुक कहेन शुन राजा परीक्षित ! परमात्मा सर्व्व-देहे बल्लभ विदित ॥५३॥
आत्मा बिने पुत्र बा कलत्र बन्धु गण । गृह हैते बाहिर करये ततक्षण ॥५४॥
अतएव परमात्मा सभार जीबन । सेइ परमात्मा-एइ श्री नन्द-नन्दन ॥५५॥
अतएब परमात्मा-स्वभाव-कारणे । कृष्णेते अधिक स्नेह करे गोपीगणे ॥५६॥
एहो कथा भक्ति प्रति, अन्य प्रति नहें । अन्यथा जगते केहो, स्नेह ना करये ॥५७॥
'कंसादिरो आत्मा कृष्ण तबे हिंसे केने' ? पूर्ब्ब-अपराध आछे ताहार कारणे ॥५८॥
सहजे शर्करा मिष्ट सर्व्व जने जाने । केहो तिक्त बासे, जिह्वा-दोषेर कारणे ॥५६॥

इन्हीं श्रीगौरचन्द्र ने जब द्वापर युग में गोकुल में अवतार लिया था, तो यह ग्वाल-बालों के साथ घर-घर में क्रीड़ा करते हुए विचरते थे ॥ ४७ ॥ श्रीकृष्ण के जन्म से ही सब गोपिकायें उनके प्रति अपने मन में निज पुत्र से भी अधिक स्नेह करती थीं ॥ ४८ ॥ यद्यपि वे श्री कृष्ण को ईश्वर करके नहीं जानती थीं; तथापि स्वभाव से ही अपने पुत्र से भी अधिक स्नेह करती थीं ॥ ४६ ॥ इस बात को सुनकर श्री परीक्षित् महाराज बड़े बिस्मित हुए; और पुलकित होकर श्रीशुकदेवजी से पूँछने लगे ॥ ५० ॥ "हे प्रभो ! यह तो आपने परम अनोखी बात कही है; मैंने तो इस प्रकार की बात त्रिभुवन में कहीं भी नहीं सुनी ॥ ५१ ॥ गोपियों के अपने पुत्र से भो अधिक स्नेह पर-पुत्र श्रीकृष्ण के प्रति किस प्रकार से हुआ ? वह कृपा करके कहिये" ॥ ५२ ॥ श्रीशुकदेवजी उत्तर देते हैं कि—"हे राजा परीक्षित् सुनिये, यह बात प्रसिद्ध है कि परमात्मा ही सब देहों का स्वामी है ॥ ५३ ॥ बिना आत्मा के शरीर को (मृतक समझकर) स्त्री, पुत्र एवं बन्धुगण तत्क्षण ही घर से बाहर कर देते हैं ॥ ५४ ॥ [जीवात्मा परमात्मा का अंश होने के कारण वास्तविक प्रियता परमात्मा में ही अधिष्ठित है] अतएव परमात्मा ही सबका जीवन है और वही परमात्मा यह श्रीनन्द-नन्दन हैं ॥ ५५ ॥ इसीलिये श्रीकृष्णचन्द्र में परमात्मा के स्वभाविक गुण होने के कारण गोपिकायें श्रीकृष्ण को अपने पुत्र से भी अधिक स्नेह करती हैं" ॥ ५६ ॥ [यद्यपि परमात्मा श्री भगवान् से समधिक स्नेह करना जीव का स्वाभाविक धर्म है; तथापि केवल भक्तगण ही परमात्मा को, स्त्री-पुत्र आदि आत्मीय जन एवं अपने प्राण से भी अधिकतर प्रीति करते हैं, परन्तु जीव-साधारण-सम्बन्ध में यह बात नहीं हैं । यदि ऐसी होती तो सब संसार स्त्री, पुत्र, आत्मीय, स्वजनादि से ममता शून्य हो जाते] अब यहाँ पर श्रीग्रन्थकार इसी सिद्धान्त को प्रकाश करते हैं कि—"यह बात भक्तों के सम्बन्ध में हैं; औरों के सम्बन्ध में नहीं । यदि औरों के सम्बन्ध में यही बात होती तो फिर संसार में किसी प्रकार का स्नेह व्यौहार नहीं होता" ॥ ५७ ॥ [अब यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि परमात्मा ही सबके प्रिय हैं तो] कंस आदिक असुरों में भी तो परमात्मारूपी श्रीकृष्ण ही थे, फिर उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति हिंसा क्यों की ? इसका उत्तर देते हैं कि—पूर्व जन्म के अपराध के कारण उन्होंने हिंसा की ॥ ५८ ॥ और जैसे कि सब लोग जानते हैं कि—शर्करा (मिश्री-सार) स्वाभाविक ही मीठी होती

जिह्वार से दोष, शर्करार दोष नाञि । एइ मत सर्व्व मिष्ट चैतन्य गोसाञि ॥६०॥
एइ नवद्वीपे ते देखिल सर्व्व जने । तथापिह केहो ना जानिल भक्त बिने ॥६१॥
भक्तेर से चित्त प्रभु हरे सर्व्वथाय । विहरये नवद्वीपे वैकुण्ठेर राय ॥६२॥
मोहिया सभार चित्त प्रभु विश्वम्भर । अग्रज लैया चलिलेन निज घर ॥६३॥
मने मने चिन्तये अद्वैत महाशय । "प्राकृत मानुष कभु ए बालक नय" ॥६४॥
सर्व्व वैष्णवेर प्रति वलिला अद्वैते । कोनो वस्तु ए बालक जानिह निश्चिते ॥६५॥
प्रशंसिते लागिलेन सर्व्व भक्त-गण । अपूर्व्व शिशुर रूप लावण्य कथन ॥६६॥
नाम मात्र विश्वरूप चलिलेन घरे । पुन सेइ आइलेन अद्वैत मन्दिरे ॥६७॥
ना भाय संसार सुख विश्वरूप मने । निरवधि थाके कृष्ण-आनन्द-कीर्त्तने ॥६८॥
गृहे आइलेओ गृह व्यभार ना करे । निरवधि थाके विष्णु गृहेर भितरे ॥६९॥
विवाहेर उद्योग करये पिता माता । शुनि विश्वरूप बड़ मने पाय व्यथा ॥७०॥
'छाड़िब संसार' विश्वरूप मने भावे । चलिबाङ बने नित्य एइ मने जागे ॥७१॥
ईश्वरेर चित्त वृत्ति ईश्वर से जाने । विश्वरूप संन्यास करिला कथो दिने ॥७२॥
जगते विदित नाम श्री शङ्करारण्य । चलिला अनन्त पथे वैष्णवाग्रगण्य । ७३॥
चलिलेन जदि विश्वरूप महाशय । शची जगन्नाथेर दग्ध हइला हृदय ॥७४॥

है, परन्तु कोई उसको कड़वे रूप में बोध करता है इसका क्या कारण है ? इसका कारण है उसकी जिह्वा पर पित्त दोष है ॥ ५९ ॥ जिह्वा दूपित है, शर्करा का कोई दोष नहीं है इसी प्रकार श्रीचैतन्य-महाप्रभु भी सर्व्व प्रिय हैं ॥ ६० ॥ इस नवद्वीप में ही क्यों न देख लीजिये कि यहाँ पर सब लोगों ने प्रभु को देखा है, परन्तु भक्तों के सिवाय अन्य किसी ने नहीं जाना ॥ ६१ ॥ वैकुण्ठनाथ प्रभु श्रीविश्वम्भर सर्व प्रकार से भक्त-वृन्द के मन को मोहित करके श्रीनवद्वीप में विहरते हैं ॥ ६२ ॥ वह श्रीविश्वम्भर प्रभु इन भक्त-गण के चित्त को मोहित करके अपने बड़े भाई को लेकर अपने घर जाते हैं ॥ ६३ ॥ इधर श्रीअद्वैताचार्य जी मन में विचार करते हैं कि—यह बालक प्राकृत (प्रकृति की वस्तुओं से गठित) मनुष्य कभी नहीं है ॥ ६४ ॥ तब श्रीअद्वैताचार्य जी सर्व वैष्णवों के प्रति कहते हैं कि–इस बालक को निश्चय कोई (विशेष) वस्तु जानना ॥ ६५ ॥ तब सब भक्त-वृन्द भी बालक के अपूर्व रूप, लावण्य एवं बोली की प्रशंसा करने लगते हैं ॥ ६६ ॥ विश्वरूप-प्रभु नाम मात्र के लिये घर गये कि फिर श्रीअद्वैतप्रभु के घर आ जाते हैं ॥६७॥ श्रीविश्वरूप प्रभु को संसार-सुख अच्छा नहीं लगता है आप निरन्तर श्रीकृष्ण के आनन्दप्रद कीर्त्तन आदि में लगे रहते हैं ॥ ६८ ॥ घर आकर भी आप घर का काम-काज कुछ नहीं करते हैं, उतने समय लगातार आप श्रीविष्णु-मन्दिर में रहे आते हैं ॥ ६९ ॥ आपके माता-पिता आपके विवाह की चेष्टा करते हैं, परन्तु आप अपने विवाह की बातें सुनकर मन में बड़ी व्यथा पाते हैं ॥ ७० ॥ आप मन में संसार छोड़ने का विचार करते हैं, नित्य प्रति आपके मन यही बात जगती है कि–मैं बन को जाऊँ ॥ ७१ ॥ ईश्वर की चित्त-वृत्ति को ईश्वर ही जानते हैं, कुछ दिन पश्चात् (इच्छा होने पर) श्रीविश्वरूप प्रभु संसार छोड़ देते हैं ॥ ७२ ॥ वैष्णवों में अग्रगण्य आप संसार को छोड़कर उस अनन्त(प्रभु सेवा)के पथमें चले जाते हैं अब आपका नाम जगत् प्रसिद्ध श्रीशङ्करारण्य

गोष्ठी सहे क्रन्दन करये उद्ध राय । भाइर विरहे मूर्च्छा गेला गौरराय ॥७५॥
से विरह वर्णिते वदने नाहि पारि । हइल क्रन्दनमय जगन्नाथपुरी ॥७६॥
विश्वरूप संन्यास देखिया भक्तगण । अद्वैतादि सभे बहु करिला क्रन्दन ॥७७॥
उत्तम मध्यम जे शुनिल नदीयाय । हेन नाहि, ये शुनिजा दुःख नाहि पाय ॥७८॥
जगन्नाथ शचीर विदीर्ण हय बुक । निरन्तर डाके 'बिश्वरूप' 'विश्वरूप' ॥७६॥
पुत्र-शोके मिश्रचन्द्र हइला विह्वल । प्रबोधये यत बन्धु वान्धव सकल ॥८०॥
स्थिर हओ मिश्र ! केने दुःख भाव मने । सर्व्व गोष्ठी उद्धारिल सेइ महाजने ॥८१॥
गोष्ठीये पुरुष यार करये संन्यास । त्रिकोटि कुलेर हय श्रीवैकुण्ठे वास ॥८२॥
हेन कर्म्म करिलेन नन्दन तोमार । सफल हइल विद्या-सम्बन्ध ताहार ॥८३॥
आनन्द विशेष आरो करिते जुयाय । एत वलि सकले धरये हाथे पाय ॥८४॥
'एइ कुले भूषण तोमार विश्वम्भर । एइ पुत्र हइब तोमार वंशधर ॥८५॥
इहा हैते सर्व्व दुःख घुचिव तोमार । कोटि पुत्रे कि करिब, ए पुत्र याहार ॥८६॥
एइ मत सभे बुझायेन बन्धुगण । तथापि मिश्रेर दुःख ना हय खण्डन ॥८७॥
ये ते मते धैर्य्य करे मिश्र महाशय । विश्वरूप गुण स्मरि धैर्य पासरय ॥८८॥
मिश्र बोले 'एइ पुत्र रहिबेक घरे । इहाते प्रमाण मोर ना लय अन्तरे ॥८९॥

होता है॥७३॥जब श्रीविश्वरूप महाशय संन्यास लेकर चले गये हैं तबसे श्रीशचीदेवी एवं श्रीजगन्नाथ मिश्र के हृदय विरह से दग्ध हो गये ॥ ७४ ॥ वे दोनों स्वजन सहित ऊँचे स्वर से क्रन्दन करने लगे और प्रभु श्रीविश्वम्भरचन्द्र भी अपने भाई के विच्छेद से मूर्च्छित हो गये॥७५॥उस विरह का मुख से वर्णन नहीं हो सकता है, श्रीजगन्नाथ मिश्र की सम्पूर्ण नगरी क्रन्दनमय हो रही है ॥७६॥ श्रीअद्वैताचार्य आदि सब भक्तगणों ने श्रीविश्वरूप का संन्यास देखकर बहुत रोदन किया ॥७७॥ श्रीनवद्वीप में उत्तम,मध्यम श्रेणी के जिस किसी भी पुरुष-स्त्री ने श्रीविश्वरूप का संन्यास लेना सुना,उनमें कोई भी ऐसा नहीं था जो सुनकर दुःखी न हुआ हो॥७८॥ श्रीजगन्नाथमिश्र एवं श्रीशचीदेवी की छाती टुकड़े-टुकड़ेहोकर फटती थी। वे निरन्तर 'बिश्वरूप! विश्वरूप!' पुकार रहे थे ॥ ७६ ॥ जब मिश्रवरजी को पुत्र शोक में अधिक विह्वल होते हुए देखा तो आपके सब बन्धु-वान्धव आपको समझाने लगे कि-॥८०॥ हे मिश्रजी ! आप स्थिर हूजिये, मन में दुःख करने का कारण क्या है ? उस महापुरुष ने तो हमारी सम्पूर्ण गोष्ठी का उद्धार किया है ?॥८१॥जिस समुदाय (कुल)में से कोई पुरुष संन्यासी हो जाता है, उस गोष्ठी के तीन करोड़ कुलों का श्रीवैकुण्ठ में वास होता है ॥ ८२ ॥ आपके पुत्र ने भी ऐसा ही किया है, उसका विद्याध्ययन सफल हुआ ॥८३॥ ऐसे अवसर पर तो और आनन्द मनाना उचित है । इतना कहकर सब लोग श्रीजगन्नाथ मिश्र के हाथ और पाँव छूते हैं ॥८४॥ वे सब और कहने लगे कि-'तुम्हारा पुत्र विश्वम्भर इस कुल का भूषण है; यही पुत्र तुम्हारे वंश को चलाने वाला होगा। इसके रहते तुम्हारे सब दुःख नाश हो जायेंगे, जिसका ऐसा पुत्र है वह करोड़ों पुत्रों का क्या करेगा ॥ ८५-८६ ॥ सब बन्धुगणों ने इस प्रकार से समझाया परन्तु तो भी मिश्र जी का दुःख नाश नहीं होता है ॥ ८७ ॥ ज्यौं-त्यौं करके श्रीमिश्र महाशय धीरज धरते भी हैं;परन्तु फिर श्रीविश्वरूप के गुण स्मरण होते ही धैर्य्य लोप हो जाता

दिलेन कृष्ण से पुत्र निलेन कृष्ण से। ये कृष्णचन्द्रेर इच्छा हइब सेइ से ॥६०॥
स्वतन्त्र जीवेर तिलार्द्धेको शक्ति नाजि। देहेन्द्रिय कृष्ण ! समर्पिल तोमा ठाजि ॥६१॥
एइ रूपे ज्ञानयोगे मिश्र महा-धीर। अल्पे अल्पे चित्तवृत्ति करिलेन स्थिर ॥६२॥
हेन मते विश्वरूप हइला बाहिर। नित्यानन्द-स्वरूपेर अभेद शरीर ॥६३॥
ये शुनिये विश्वरूप प्रभुर संन्यास। कृष्णभक्ति हय तार छिण्डे कर्म्म-फाँस ॥६४॥
विश्वरूप-संन्यास शुनिञा भक्तगण। हरिष-बिषाद सभे करे अनुक्षण ॥६५॥
ये वा छिल स्थान कृष्ण-कथा कहिबार। ताहा कृष्ण हरिलेन आमा सभाकार ॥६६॥
आमराओ ना रहिब चलिजाब बने। ए पापिष्ठ-लोक-मुख ना देखि येखाने ॥६७॥
पाषण्डीर वाक्य ज्वाला सहिब 'व' कत। निरन्तर असत्पथे सर्व्व लोक रत ॥६८॥
'कृष्ण' हेन नाम नाहि शुनि कारो मुखे। सकल संसार डुबि मरे मिथ्या सुखे ॥६९॥
बुझाइलेओ केओ कृष्ण-पथ नाहि लय। उलटिया आरो उपहास से करय ॥१००॥
कृष्ण भजि तोमार हइल कोन सुख ? । मागिया से खाओ, आरो बाढ़े जत दुःख ॥१०१॥
जोग्य नहे एसब लोकेर सने वास। बने चलिबाङ बलि सभे छाड़े श्वास ॥१०२॥
प्रबोधेन सभारे अद्वैत महाशय। पाइबा परमानन्द सभेइ निश्चय ॥१०३॥
एवे बड़ वासोँ मुजि हृदये उल्लास। हेन वुझि 'कृष्णचन्द्र करिला प्रकाश' ॥१०४॥

है ॥ ८८ ॥ मिश्रजी कहते हैं कि—'यह पुत्र घर में रहेगा, इस विषय में प्रमाण को मेरा अन्तर ग्रहण नहीं करता ॥ ८९ ॥ श्रीकृष्ण ने वह पुत्र दिया था, श्रीकृष्ण ने ही उसे ले लिया। जो श्रीकृष्णचन्द्र की इच्छा है, वही होता है ॥ ९० ॥ जीव की तिलार्द्ध मात्र भी स्वतन्त्र शक्ति नहीं है। हे कृष्ण ! मैंने अपनी देह एवं सर्व इन्द्रियाँ आपको समर्पण कर दिये हैं" ॥ ९१ ॥ इस प्रकार ज्ञानयोग अवलम्बन कर महाधीर श्रीमिश्रजी ने धीरे-धीरे अपनी चित्त वृत्ति को स्थिर किया ॥ ९२ ॥ प्रभु श्रीनित्यानन्द-स्वरूप के अभेद शरीर, श्रीविश्वरूप प्रभु ने इस प्रकार संन्यास ले लिया ॥ ९३ ॥ जो कोई श्रीविश्वरूप प्रभु का संन्यास सुनता है, उसको श्रीकृष्ण भक्ति लाभ होती है और उसका कर्म-पाश टूट जाता है ॥ ९४ ॥ भक्तगण श्रीविश्वरूप का संन्यास सुनकर, निरन्तर हर्ष-विषाद योग का अवलम्बन कर रहे हैं ॥९५॥ [भक्तगण परस्पर कहते हैं कि] "हम लोगों के कृष्ण-कथा कहने सुनने का जो एक आशय स्थान था, उसको श्रीकृष्ण ने हरण कर लिया। हम लोग भी यहाँ नहीं रहेंगे; वन को चले जायेंगे; जहाँ इन पापिष्ठ लोगों का मुख न देखना पड़े ॥९६-९७॥ पाखण्डियों की वाक्य-ज्वाला को अब और कितना सहन करेंगे ? ये सब लोग निरन्तर मिथ्या मार्ग में लगे हुए हैं ॥ ९८ ॥ [भजन साधन की बात तो दूर रही] इनमें से किसी के मुख से 'कृष्ण' ऐसा नाम भी सुनने में नहीं आता है। सब संसार मिथ्या सुख भोग में ही डूब कर मर रहा है ॥९९॥ समझाने से भी कोई कृष्ण-भजन-पथ ग्रहण नहीं करता; उल्टी और हँसी करते हैं कि—'कृष्ण भजने से बतलाओ तुमें कौनसा सुख मिला; माँग कर खाते हो और आगे दुःख ही बढ़ता हुआ दिखलाई देता है' ॥ १००—१०१ ॥ इन सब लोगों के साथ रहना उचित नहीं 'वन में जायेंगे'। ऐसा कहकर सब भक्तवृन्द लम्बी साँसें ले रहे हैं ॥ १०२ ॥ श्रीअद्वैताचार्य महाशय सब भक्तवृन्द को समझाते हैं कि—"तुम सब लोग [धीरज धारण करो] निश्चय परमानन्द प्राप्त करोगे ॥१०३॥

सभे 'कृष्ण' गाओ गिया परम हरिषे । एथाइ देखिवा कृष्ण कथोक दिवसे ॥१०५॥
तोमा 'सभा' लइ हइव कृष्णेर बिलास । तबे से अद्वैत हङ शुद्ध कृष्णदास ॥१०६॥
कदाचित याहा पाये शुक वा प्रह्लाद । 'तोमा सभार भृत्ये ओ से पाइब प्रसाद' ॥१०७॥
शुनि अद्वैतेरे अति-अमृत-वचन । परानन्दे 'हरि' बोले सर्व्व भक्तगण ॥१०८॥
'हरि' बलि भक्तगण करये हुङ्कार । सुखमय चित्तवृत्ति हइल सभार ।'१०९
शिशु-सङ्गे क्रीड़ा करे श्री गौरसुन्दर । हरि-ध्वनि शुनि याय बाड़ीर भितर ॥११०॥
'कि कार्य्य आइला बाप' ! बोले भक्तगणे । प्रभु बोले 'तोमरा डाकिले मोरे केने' ॥१११
एत बलि प्रभु शिशु-सङ्गे धाइ याय । तथापि ना जाने केहो प्रभुर मायाय ॥११२॥
ये अवधि विश्वरूप इहला बाहिर । तदवधि प्रभु किछु हइला सुस्थिर ॥११३॥
निरवधि थाके पिता मातार समीपे । दुःख पासरये येन जननी जनके ॥११४॥
खेला सम्बरिया प्रभु यत्न करि पड़े । तिलार्द्धेको पुस्तक छाड़िया नाहि नड़े ॥११५॥
एक बार ये सूत्र पढ़िया प्रभु याय । आर-बार उलटिया सभारे ठेकाय ॥११६॥
देखिया अपूर्व्व बुद्धि सभेइ प्रशंसे । सभे बोले 'धन्य पिता-माता हेन बंशे' ॥११७॥
सन्तोषे कहेन सभे जगन्नाथ स्थाने । तुमित कृतार्थ मिश्र ! ए-हेन नन्दने ॥११८॥
एमत सुबुद्धि शिशु नाहि त्रिभुवने । वृहस्पति जिनिजा हइब अध्ययने ॥११९॥

इस समय मैं एक बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ । ऐसा प्रतीत होता है कि–'श्रीकृष्ण ने [यहाँ ही कहीं] जन्म ले लिया है ॥ १०४ ॥ तुम सब परम हर्षयुक्त होकर 'श्रीकृष्ण-नाम' गान करते रहो । कुछ दिन पश्चात् यहाँ पर ही श्रीकृष्ण-दर्शन करोगे [यह निश्चित है] ॥ १०५ ॥ तुम सबको लेकर ही श्रीकृष्ण-विलास करेंगे [जब ये सब बातें सत्य हो जायें] तब मानना कि अद्वैत शुद्ध-कृष्ण-दास है ॥ १०६ ॥ जो कृपा श्रीशुकदेव जी ने एवं श्रीप्रह्लाद जी ने कदाचित् ही पाई हो; तुम्हारे सबके सेवक जन भी वह कृपा [अनायास में ही] प्राप्त करेंगे ॥ १०७ ॥ श्रीअद्वैताचार्य प्रभु के अति अमृतरूपी इस वचन को सुनकर सर्व भक्तगण परमानन्द सागर में डूबते हुए मङ्गल-हरि-ध्वनि करने लगे ॥ १०८ ॥ भक्तगण 'हरि-हरि' बोलकर हुङ्कार करने लगे, सब की चित्तवृत्ति सुखमय हो गई ॥ १०९ ॥ श्रीगौरसुन्दर बालकों के साथ खेल रहे थे; हरि-ध्वनि सुनकर श्री-अद्वैत प्रभु के घर के भीतर आ गये ॥ ११० ॥ आपको देखकर भक्तवृन्द बोले कि–"वत्स ! यहाँ पर कैसे आये" प्रभु बोले "तुम लोगों ने मुझे क्यों बुलाया ?" ॥ १११ ॥ इतना कहकर प्रभु बालकों के साथ भागकर चल दिये; तब भी कोई प्रभुमाया के कारण, उन्हें प्रभु करके नहीं जान पाया ॥ ११२ ॥ जब से श्रीविश्वरूप· प्रभु घर छोड़कर गये, तब से श्रीप्रभु विश्वम्भरचन्द्र कुछ सुस्थिर हो गये ॥ ११३ ॥ निरन्तर श्रीमाता-पिता के निकट ही रहते हैं; जिससे वे सब दुःख भूल जाँय ॥ ११४ ॥ अब प्रभु खेल बन्द करके,यत्नपूर्वक पढ़ने लगे किंचिन्मात्र समय भी पुस्तक छोड़कर कहीं नहीं जाते ॥ ११५ ॥ प्रभु एक बार जिस सूत्र को पढ़ लेते हैं, फिर उलट कर दुबारा उसकी व्याख्या करने में सबको निरुत्तर कर देते हैं ॥ ११६ ॥ उनकी ऐसी अपूर्व बुद्धि देख-कर सब लोग प्रशंसा करते हैं, और कहते हैं कि—"धन्य इनके पिता-माता और धन्य यह वंश जिसमें ऐसे पत्र ने जन्म लिया है" ॥ ११७ ॥ सब लोग प्रसन्न होकर श्रीजगन्नाथ मिश्र से कहते हैं कि–"मिश्रजी ! ऐसा

शुनि लेइ सर्व अर्थ आपने बाखाने । तान फाँकि वखानिते नारे कोन जने ।।१२०।।
शुनिञा पुत्रेर गुण जननी हरिष । मिश्र पुन चित्ते बड़ हय बिमरिष ।।१२१।।
शची प्रति बोले जगन्नाथ मिश्रवर । एहो पुत्र ना रहिब संसार-भितर ।।१२२।।
एइ मत विश्वरूप पढ़ि सर्व्व शास्त्र । जानिल संसार सत्य नहे तिलमात्र ।।१२३।।
सर्व्व-शास्त्र-मर्म जानि बिश्वरूप धीर । अनित्य संसार हैते हइला बाहिर ।।१२४।।
एहो यदि सर्व्व-शास्त्रे हैब ज्ञानवान । छाड़िया संसार-सुख करिब पयान ।।१२५।।
एइ पुत्र सबे दुइ-जनेर जीवन । इहा ना देखिले दुइ-जनेर मरण ।।१२६।।
अतएव इहार पढ़िया कार्य नाञि। मूर्ख हइ घरे मोर रहुक निमाञि ।।१२७।।
शची बोले 'मूर्ख हैले जीवेक केमने ? मूर्खेरे त कन्याओ ना दिब कोन जने' ।।१२८।।
मिश्र बोले 'तुमित अवुध बिप्रसुता ! हर्त्ता-कर्त्ता पिता कृष्ण सभार रक्षिता ।।१२९।।
जगत पोषण करे जगतेर नाथ । 'पाण्डित्ये पोषये' केवा कहिल तोमात ।।१३०।।
किवा मूर्ख, कि पण्डित, याहार येखाने । कन्या लिखियाछे कृष्ण, से हैब आपने ।।१३१।।
कुल-विद्या-आदि उपलक्षण सकल । सभारे पोषये कृष्ण, कृष्ण सर्व्व-बल ।।१३२।।
साक्षातेइ एइ केने ना देख आमात । पढ़ियाओ आमार घरे केने नाहि भात ।।१३३।।
भालमते वर्ण उच्चारितेओ ये नारे । सहस्र पण्डित गिया देख तार द्वारे ।।१३४।।

पुत्र पाकर आप तो कृतार्थ हो । ऐसा सुवुद्धि बालक त्रिभुवन में नहीं है । यह बालक विद्या में श्रीवृहस्पतिजी को भी जीतने वाला होगा । एक बार सुनते ही सम्पूर्ण शब्दार्थ तथा भावार्थ की व्यवस्था स्वयं ही कर देता है और उसकी फाँकी की व्याख्या कोई मनुष्य नहीं कर सकता है" ॥ ११८-१२० ॥ अपने पुत्र के गुण सुनकर जननी बहुत प्रसन्न होती हैं। किन्तु श्रीजगन्नाथ मिश्रजी वड़े खिन्न मन हो जाते हैं ॥ १२१ ॥ श्रीजगन्नाथ मिश्रवर श्रीशचीदेवी से कहते हैं कि-"यह पुत्र भी संसार में नहीं रहेगा । क्योंकि विश्वरूप ने भी इसी प्रकार सर्व्व शास्त्र पढ़कर मान लिया था कि—'संसार तिल मात्र भी सत्य नहीं है' ॥ १२२-१२३ ॥ वह धीर विश्वरूप सर्व शास्त्रों का मर्म जानकर यह नाशवान् संसार से निकल गया [उसी प्रकार] यदि यह भी सम्पूर्ण शास्त्र का मर्मज्ञ हो जायगा; तो संसार सुख को तिलाञ्जलि देकर संन्यास धारण करके चल देगा ॥ १२४-१२५ ॥ यह पुत्र ही एक मात्र हम दोनों का जीवन है, इसको नहीं देखने से हम दोनों की मृत्यु अनिवार्य है । अतएव इसके पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है, मेरा निमाई मूर्ख होकर ही घर में रहे' ॥ १२६-१२७ ॥ प्रत्युत्तर में श्रीशचीदेवी कहती हैं कि—'वह मूर्ख रहकर कैसे जीवेगा ? मूर्ख को तो कोई अपनी कन्या भी नहीं देगा' ॥ १२८ ॥ श्रीमिश्रचन्द्र कहते हैं कि-"हे विप्रसुते ! तुम तो अबोध हो । इस सृष्टि के हर्त्ता, कर्त्ता, एवं पिता श्रीकृष्ण सबकी रक्षा करने वाले हैं ॥ १२९ ॥ जगत् के नाथ श्रीकृष्ण जगत् का पालन करते हैं; यह तुमसे किसने कहा है कि—'जगत् को पाण्डित्य ही पोषण करता है' ॥१३०॥ कन्या मूर्ख और क्या पण्डित, जिसके लिये जहाँ से श्रीकृष्ण ने कन्या लिख रक्खी हैं, उसको वह आप ही मिल जायगी ॥ १३१ ॥ कुल, विद्या, आदि सब आनुसङ्गिक सम्मान की वस्तु हैं, वास्तव में श्रीकृष्ण सबका पोषण करते हैं और कृष्ण ही जगत् पोषण के लिये मूल बल [वस्तु] हैं ॥१३२॥ प्रत्यक्ष यह हमको ही क्यों न देखो; पढ़े लिखे होने पर भी हमारे

अतएव विद्या आदि ना करे पोषण । कृष्ण से सभारे करे पोषण पालन ॥१३५॥
'अनायासे मरण, जीवन दैन्य विने । कृष्ण सेविले से हय, नहे विद्या धने ॥१३६॥
तथाहि:—"अनायासेन मरणं विना दैन्येन जीवनम् । अनाराधित-गोविन्द-चरणस्य कथं भवेत्" ॥१॥
कृष्ण कृपा विने नहे दुःखेर मोचन । थाकिल वा विद्या, कुल, काटि कोटि धन ॥१३७
यार गृहे आछये सकल-उपभोग । तारे कृष्ण दियाछेन कोन एक रोग ॥१३८॥
किछु विलसिते नारे, दुःखे पुड़ि मरे । यार नाहि, ताहा हैते दुःखी बलि तारे ॥१३९॥
एतेके जानिह, थाकिलेओ किछु नहे । यारे येन कृष्ण-आज्ञा, सेइ सत्य हये ॥१४०॥
एतेके ना कर चिन्ता पुत्र प्रति तुमि । 'कृष्ण पुषिबेन पुत्र' कहिलाङ आमि ॥१४१॥
यावत् शरीरे प्राण आछये आमार । तावत् तिलेक दुःख नाहिक उहार ॥१४२॥
आमार सभारे कृष्ण आछेन रक्षिता । किवा चिन्ता, तुमि यार माता पतिव्रता ।१४३॥
'पढ़िया नाहिक कार्य' बलिल तोमारे । मूर्ख हइ पुत्र मोर रहु मात्र घरे ॥१४४॥
एत बलि पुत्रेरे डाकिला मिश्रवर । मिश्र बोले 'शुन बाप आमार उत्तर ॥१४५॥
आजि हैते आर पाठ नाहिक तोमार । इहाते अन्यथा कर, शपथ आमार ॥१४६॥
ये तोमार इच्छा बाप ! ताइ दिव आमि । गृहे वसि परम मङ्गले थाक तुमि' ॥१४७॥
एत बलि मिश्र चलिलेन कार्यान्तरे । पढ़िते ना पाय आर प्रभु विश्वम्भरे ॥१४८॥

घर में भात क्यों नहीं है ॥ १३३ ॥ जो कोई अच्छी प्रकार से वर्ण का शुद्ध उच्चारण भी नहीं कर सकता है उसके द्वार पर सहस्रों पण्डित जाकर देख लो ॥१३४॥ इससे प्रगट होता है कि कुल, विद्या आदि पालन नहीं करते, श्रीकृष्ण ही सबका पालन-पोषण करते हैं ॥ १३५ ॥ जिस व्यक्ति ने श्रीगोविन्द चरणारविन्द की आराधना नहीं की है उसकी सुखपूर्वक मृत्यु तथा जीवन सुखी कैसे हो सकता है' ॥ १ ॥ 'स्वच्छन्द मृत्यु और सुखमय जीवन श्रीकृष्ण की आराधना से ही होते हैं; विद्या एवं धन से नहीं ॥ १३६ ॥ श्रीकृष्ण कृपा के बिना दुःख की निवृत्ति नहीं होती, चाहे उत्तम कुल, विद्या और कोटि धन भी पास क्यों न हो ॥ १३७ ॥ देखो ! जिस किसी के घर में सर्व प्रकार की भोग सामिग्री बर्तमान हैं उसको श्रीकृष्ण ने कोई न कोई रोग दे रक्खा है ॥१३८॥ वह उसके कारण कुछ भोग नहीं कर सकता है । केवल दुःख की ज्वाला से जलकर मरता है । जिसके यहाँ कुछ भोग सामिग्री नहीं है उसकी अपेक्षा वह अधिक दुःखी कहलाता है ॥ १३९ ॥ इससे जानना चाहिये कि–धन आदि पास रहने से भी कुछ नहीं होता है । जिसके प्रति श्रीकृष्ण की जो आज्ञा होती है (वास्तव में) वही सत्य होती है । इसलिये तुम पुत्र के प्रति कोई चिन्ता मत करो; मैं तुमसे कहता हूँ कि—पुत्र का पालन-पोषण श्रीकृष्ण करेंगे ॥ १४०-१४१ ॥ जब तक हमारे शरीर में प्राण हैं, तब तक उसके लिये तिलमात्र भी दुःख नहीं ॥ १४२ ॥ हम सबकी रक्षा करने वाले श्रीकृष्ण हैं; जिस पुत्र की तुम जैसी पतिव्रता माता हो, उसके लिये फिर चिन्ता ही क्या है ? ॥ १४३ ॥ अतएव मैं तुमसे कहता हूँ कि—'उसके पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं हैं, बस ! मेरा पुत्र मूर्ख होकर ही केवल मात्र घर में रहा आवे ॥ १४४ ॥ इतना कहकर पुत्र श्रीविश्वम्भर को बुलाया और कहा कि–'हे वत्स ! मेरी एक बात सुनो ॥ १४५ ॥ आज से और तुम्हारा पढ़ना नहीं होगा । यदि तुम इसको अन्यथा करो तो तुमको मेरी शपथ है ॥ १४६ ॥ हे वत्स ! जिस वस्तु की तुम इच्छा करोगे वह मैं तुमको ला दूँगा, तुम परम मङ्गल से घर में ही बैठ रहो ॥ १४७ ॥

नित्य धर्म्म सनातन श्री गौराङ्ग-राय । ना लङ्घे जनक-वाक्य, पढ़िते ना याय ॥१४६॥
अन्तरे दुःखित प्रभु बिद्या-रस भङ्गे । पुन प्रभु उद्धत हइला शिशु-सङ्गे ॥१५०॥
किवा निज-गृहे प्रभु, किवा पर-घरे । याहा पाय, ताहा भाङ्गे, अपचय करे ॥१५१॥
निशा हइलेओ प्रभु ना आइसे घरे । सर्व्व-रात्रि-शिशु-सङ्गे नाना क्रीड़ा करे ॥१५२॥
कम्बले ढाकिया अङ्ग दुइ शिशु मेलि । बृष-प्राय हइया चलेन कुतुहली ॥१५३॥
यार बाड़ी कलाबन देखि थाके दिने । रात्रिहैले बृष-रूपे भाङ्गये आपने ॥१५४॥
गरु-ज्ञाने गृहस्थ करये 'हाय हाय' । जागिले गृहस्थ,शिशु-संहति पलाय ॥१५५॥
कारो घरे द्वार दिया बान्धये बाहिरे । लघ्वी गुर्व्वी गृहस्थ करिते नाहि पारे ॥१५६॥
के बान्धिल दुयार करये 'हाय हाय' । जागिले गृहस्थ प्रभु उठिया पलाय ॥१५७॥
एइ मत दिनरात्रि त्रिदशेर राय । शिशुगण-सङ्गे क्रीड़ा करे सर्व्वदाय ॥१५८॥
एतेक चापल्य करे प्रभु बिश्वम्भर । तथापिह मिश्र किछु ना करे उत्तर ॥१५६॥
एक दिन मिश्र चलिलेन कार्यान्तर । पढ़िते ना पाये प्रभु क्रोधित अन्तर ॥१६०॥
विष्णु-नैवेद्येर यत बर्ज्य-हाण्डीगण । बसिलेन प्रभु हाँड़ी करिया आसन ॥१६१॥
ए बड़ निगूढ़ कथा शुन एक-मने । कृष्ण-भक्ति-सिद्धि हय इहार श्रवणे ॥१६२॥
बर्ज्य-हाँड़ीगण सब करि सिंहासन । तथि बसि हासे गौर सुन्दर-बदन ॥१६३॥

इतना कहकर श्रीमिश्रजी दूसरे कार्य समाधान के लिये बाहर चले गये; श्रीविश्वम्भर प्रभु अब और पढ़ नहीं पाते हैं ॥ १४८ ॥ नित्य-धर्म सनातन-मूर्त्ति श्रीगौराङ्गराय पिताजी की आज्ञा का उलङ्घन भय से अब आप पढ़ने नहीं जाते ॥ १४६ ॥ विद्या-रस-भङ्ग होने के कारण प्रभु अन्तर में दुःखित हैं; अतएव वे बालकों के साथ मिलकर फिर उद्दण्ड हो गये ॥ १५० ॥ क्या अपने घर और क्या दूसरों के, आप जो कुछ पाते हैं, उसे ही तोड़-फोड़ डालते हैं और खूब हानि करते हैं ॥ १५१ ॥ रात्रि होने पर भी आप घर लौटकर नहीं आते, रात्रि भर बालकों के साथ अनेक प्रकार के खेल खेलते रहते हैं ॥ १५२ ॥ दो बालकों को एक साथ मिलाकर और (उनके) शरीर कम्बल से ढँककर बैल की तरह कौतुक वस आप चलते हैं ॥ १५३ ॥ दिन में जिसके घर में केले का बाग देख आते हैं, रात्रि होने पर वहाँ जाकर बैल बनकर सब तोड़-फोड़ डालते हैं ॥ १५४ ॥ घर के लोग गाय, बैल समझकर 'हाय-हाय' करते हैं। लोगों के जागने पर आप बालकों को साथ लेकर भाग जाते है ॥ १५५ ॥ किसी के घर के किवाड़ बन्द करके बाहर से लगा देते हैं, जिससे घर के लोग लघुशङ्का (मूत्र त्याग) एवं दीर्घशङ्का (मल-त्याग) भी नहीं करने पाते हैं ॥ १५६ ॥ तब वे भीतर से चिल्लाते हैं कि बाहर से किबाड़ किसने लगा दिया; प्रभु घर वालों के जगने पर भाग जाते हैं ॥ १५७ ॥ सर्व देवताओं के राजा श्रीविश्वम्भरचन्द्र प्रभु बालकों के साथ दिन रात इसी प्रकार की क्रीड़ा निरन्तर करते रहते हैं ॥ १५८ ॥ यद्यपि आप इतनी चाञ्चल्य प्रकाश कर रहे हैं, तथापि श्रीमिश्रजी आप से कुछ नहीं कहते हैं ॥ १५६ ॥ एक दिन जब कि श्रीजगन्नाथ मिश्र किसी कार्य बस बाहर चले गये, तब प्रभु पढ़ना छूट जाने के कारण मन में क्रोधित होकर श्रीठाकुरजी के भोग की रसोई करने के पश्चात् जो हँड़िया घूरे पर फेंक दी गई थीं, उन हँड़ियों पर आसन लगाकर बैठ गये ॥ १६०–१६१ ॥ यह बड़ी निगूढ़ कथा है, इसको एकाग्र चित्त होकर सुनिये।

लागिल हाँड़ीर काली सर्व्व गौर अङ्गे । कनक पुतलि जेन लिखियाछे अङ्गे ॥१६४॥
शिशु गण जानाइल गिया शची स्थाने । निमाञि वसिया आछे हाँड़ीर आसने ॥१६५॥
माये आसि देखिया करेन हाय हाय । ए स्थानेते बाप वसिबारे ना जुयाय ॥१६६॥
वर्ज्य हाँड़ी इहा सब परशिले स्नान । एत दिने तोमार ए ना जन्मिल ज्ञान ? ॥१६७॥
प्रभु बोले तोरा मोरे ना दिस् पढ़िते । भद्राभद्र मूर्ख विप्रे जानिब केमते ॥१६८॥
मूर्ख आमि ना जानिये भाल मन्द स्थान । सर्वत्र आमार हय अद्वितीय ज्ञान ॥१६९॥
एत बलि हासे वर्ज्य हाँड़ीर आसने । दत्तात्रेय-भाव प्रभु हइला तखने ॥१७०॥
माये बोले तुमि जे बसिला मन्द-स्थाने । एवे तुमि पवित्र वा हइबा केमने ॥१७१॥
प्रभु बोले माता तुमि बड़ शिशु-मति । अपवित्र-स्थाने कभू मोर नहे स्थिति १७२॥
जथा मोर स्थिति सेइ सर्व्व पुण्यस्थान । गङ्गा आदि सर्व्व तीर्थ तहिँ अधिष्ठान ॥१७३॥
आमार से काल्पनिक शुचि वा अशुचि । स्रष्टार कि दोष आछे मने भाव बुझि ॥१७४॥
लोक-वेद मते जदि अशुद्ध वा हय । आमि परशिलेओ कि अशुद्धता रय ॥१७५॥
ए सब हाँड़ीते मूले नाहिक दूषण । तुमि जाते विष्णु लागि करिला रन्धन ॥१७६॥
विष्णुर रन्धन-स्थाली कभू दुष्ट नय । से हाँड़ी परशे आर स्थान शुद्ध हय ॥१७७॥

इसके श्रवण से कृष्ण-भक्ति सिद्धि होती है ।१६२। वह देखो परित्यक्त हाँड़ियों के सिंहासन पर बैठे हुए श्रीगौर-सुन्दर सुन्दर बदन हँस रहे हैं॥१६३॥आपके सर्व श्रीगौर अङ्ग में काली(हाँड़ियों की स्याही)के चिह्न इस प्रकार शोभित हैं, मानो स्वर्ण-पुतली के ऊपर किसी कारीगर ने चित्राङ्कन कर दिया हो ॥१६४॥ बालकों ने जाकर श्रीशचीदेवी से कह दिया कि–"मैया ! निमाई (भूँठी)हाँड़ियों के ऊपर आसन बनाकर बैठा हुआ है"॥१६५॥ माता जी ने आकर देखा और देखकर 'हाय-हाय' करने लगीं; तथा बोलीं–'मेरे लाल ! इस स्थान पर बैठना योग्य नहीं है । यह सब वर्जित, भूँठी हाँड़ी हैं, इनके छूने से स्नान करना पड़ता है । क्या अब तक भी इतने दिनों में भी तुम्हें यह ज्ञान नहीं हुआ ?' ॥ १६६-१६७ ॥ प्रभु कहते हैं—'तुम सब मुझे पढ़ने नहीं देते हो, कोई मूर्ख विप्र भला-बुरा कैसे जान सकता है ? मैं मूर्ख हूँ, भला-बुरा स्थान नहीं पहिचानता, मुझको सब स्थान एक से मालुम होते हैं अथवा (सर्वत्र ही मुझे एक ब्रह्म-स्वरूप दिखलाई देते हैं) ॥ १६८-१६९ ॥ प्रभु यह कहकर बर्ज्य हाँड़ियों के ऊपर बैठे हुए हँसने लगे । उस समय प्रभु दत्तात्रेय भाव में आविष्ट थे ॥ १७० ॥ श्रीमाता जी पूँछने लगीं—"बेटा तुम जो इस अपवित्र स्थान पर बैठे हो, बतलाओ अब तुम कैसे पवित्र होगे ॥ १७१ ॥ प्रभु कहते हैं कि–'माँ तुम तो बड़ी भोलीभाली हो; अपवित्र स्थान पर तो मैं कभी नहीं रहता ॥ १७२ ॥ जहाँ मैं वास करता हूँ वही सर्व पुण्यतीर्थ वास करते हैं वहीं श्रीगङ्गाजी आदि सब तीर्थ अधिष्ठित रहते हैं ॥ १७३ ॥ शुचि अथवा अशुचि यह सब हमारी कल्पना से उद्भूत हैं (अर्थात् मैंने सृजन किया) इसमें सृष्टि कर्ता ब्रह्माजी का क्या दोष है ? मन में विचार कर देखो ॥ १७४ ॥ लोक एवं वेद के मतानुसार भी यदि कोई वस्तु अशुद्ध भी हो, तो क्या वह मेरे स्पर्श कर लेने पर भी अशुद्ध रह सकती है ? ॥१७५॥ इन सब हाँड़ियों में जिनमें कि तुमने श्रीविष्णु के लिये रसोई तैयार की है, मूलतः (वास्तव में) कोई दोष नहीं है ॥ १७६ ॥ देखो ! श्रीविष्णु के लिये रन्धन का पात्र कभी अशुद्ध नहीं होता है । ऐसे पात्र के

एतेके आमार बास नहे मन्द स्थाने । सभार शुद्धता मोर परश-कारणे ॥१७८॥
बाल्य भावे सर्व्व तत्त्व कहि प्रभु हासे । तथापि ना बुझे केहो तान माया वशे ॥१७९॥
सभेइ हासेन शुनि शिशुर बचन । 'स्नान आसि कर' शची बोलेन तखन ॥१८०॥
ना आइसेन प्रभु सेइ खाने बसि आछे । शची बोले 'झाट आय' बापे जाने पाछे ॥१८१॥
प्रभु बोले 'जदि मोरे ना देह पढ़िते । तबे मुजि नाहि जाङ कहिलुँ तोमाते' ॥१८२॥
सभेइ भर्त्सेन ठाकुरेर जननीरे । सभे बोले केने नाहि देह पढ़िबारे ॥१८३॥
यत्न करि केहो निज बालक पढ़ाय । कत भाग्ये आपने पढ़िते शिशु चाय ॥१८४॥
कोन शत्रु हेन बुद्धि दिल वा तोमारे । घरे मूर्ख करि पुत्र राखिवार तरे ॥१८५॥
इहाते शिशुर दोष तिलार्द्धेको नाञि । सभेइ बोलेन बाप आइस निमाञि ॥१८६॥
आजि हैते तुमि जदि ना पाओ पढ़िते । तबे अपचय तुमि करिह भालमते ॥१८७॥
ना आइसे प्रभु सेइखाने बसि हासे । सुकृति-सकल सुख-सिन्धु-माझे भासे ॥१८८॥
आपने धरिया शिशु आनिला जननी । हासे गौरचन्द्र जेन इन्द्र नील मणि ॥१८९॥
तत्त्व कहिलेन प्रभु दत्तात्रेय भावे । ना बुझिल केहो विष्णुमायार प्रभावे ॥१९०॥
स्नान कराइला पुत्रे शची पुण्यवती । हेन काले आइलेन मिश्र महामति ॥१९१॥
मिश्र स्थाने शची सब कहिलेन कथा । पढ़िते ना पाये पुत्र मने भावे व्यथा ॥१९२॥

स्पर्श से तो स्थान ही पवित्र होता है ॥ १७७ ॥ अतएव अपवित्र स्थान पर मेरा बास नहीं है। मेरे स्पर्श के कारण सब शुद्ध हो जाते हैं ॥ १७८ ॥ इस प्रकार बालक भाव का आवरण देकर सर्व तत्त्व प्रकाश करके प्रभु हँसते हैं। तथापि उनकी माया में मुग्ध होकर कोई समझ नहीं पाता ॥ १७९ ॥ बालक की बातें सुनकर सब हँस पड़े। तब श्रीशची माता बोलीं—'मेरे लाल ! आओ स्नान कर लो' ॥ १८० ॥ प्रभु नहीं आते हैं, कि—"जल्दी से आ जाओ नहीं तो तुम्हारे पिता को खबर पड़ जायगी (तो क्रुद्ध होंगे—यह अर्थ) ॥ १८१ ॥ प्रभु कहते हैं कि—'तुम यदि मुझे पढ़ने नहीं दोगे तो मैं यहाँ से नहीं उठूँगा, मैंने तुमसे (स्पष्ट) कह दिया' ॥ १८२ ॥ सब लोग श्रीमाताजी को भर्त्सना करने लगे और कहने लगे कि—"तुम बालक को पढ़ने क्यों नहीं देते हो ? ॥ १८३ ॥ देखो ! कोई तो कितनी ही चेष्टा करके अपने बालक को पढ़ाते हैं, तुम्हारा कितना भाग्य है कि—'यह बालक आप ही पढ़ना चाहता है' ॥ १८४ ॥ अथवा पुत्र को मूर्ख रखकर घर में बैठाये रखने के लिये न जाने किस शत्रु ने तुमको ऐसी बुद्धि दी है ? ॥ १८५ ॥ इसमें बच्चे का किञ्चिन्मात्र भी दोष नहीं है। फिर सब लोग कहने लगे कि बेटा निमाई आओ ॥१८६॥ आज से यदि तुमको पढ़ने न जाने दिया जाय तो फिर तुम अच्छी तरह से ऊधम करना ॥ १८७ ॥ प्रभु आते नहीं हैं और वहीं पर बैठे हुए हँस रहे हैं, सकल पुण्यात्मा जन यह देख-देखकर सुख-समुद्र हिलोरें ले रहे हैं ॥ १८८ ॥ जननी श्रीशची माता स्वयं उनको पकड़ कर ले आईं, श्रीगौरचन्द्र इन्द्रनीलमणि बालकृष्ण की भाँति हँस रहे थे (काली छाप से शोभित श्रीगौरसुन्दर इन्द्रनीलमणि अर्थात् हँसते हुए बाल-गोपाल जैसे दिखाई देने लगे ॥१८९॥ प्रभु ने श्रीदत्तात्रेय भाव से तत्त्व वर्णन कर दिया; परन्तु विष्णुमाया के प्रभाव से कोई समझ नहीं पाया ॥ १९० ॥ पुण्यवती श्रीशचीदेवी ने पुत्र को स्नान करवाया, उसी समय महामति श्रीजगन्नाथ मिश्र जी भी आ गये ॥ १९१ ॥

सभेइ बोलेन मिश्र ! तुमि त उदार। कार बोले पुत्र नाहि देह पढ़िबार ? ॥१९३॥
ये करिब कृष्णचन्द्र सेइ सत्य हय। चिन्ता परिहरि देह पढ़िते निर्भय ॥१९४॥
भाग्य से बालक चाहे अपने पढ़िते। भाल-दिने यज्ञसूत्र देह भालमते ॥१९५॥
मिश्र बोले तोमरा परम बन्धुगण। तोमरा ये बोल, सेइ आमार वचन' ॥१९६॥
अलौकिक देखिया शिशुर सर्व्व कर्म्म। विस्मय भावेन केहो नाहि जाने मर्म्म ॥१९७॥
मध्ये मध्ये कोन जन अति भाग्यवाने। पूर्व्वे कहि राखियाछे जगन्नाथस्थाने ॥१९८॥
'प्राकृत बालक कभु ए बालक नहे। यत्न करि ए बालक राखिह हृदये' ॥१९९॥
निरवधि गुप्त भावे प्रभु केलि करे। वैकुण्ठ-नायक द्विज-अङ्गने विहरे ॥२००॥
पढ़िते पाइला प्रभु बापेर आदेशे। हइलेन महाप्रभु आनन्द विशेषे ॥२०१॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥२०२॥

इति श्रीआदिखण्डे श्रीविश्वरूप संन्यासादि वर्णनं
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय

जय जय कृपासिन्धु श्रीगौर सुन्दर। जय शची जगन्नाथ-गृह शशधर ॥१॥
जय जय नित्यानन्द-स्वरूपेर प्राण। जय जय सङ्कीर्त्तन-धर्म्मेर निधान ॥२॥

श्रीशचीदेवी ने श्रीजगन्नाथ मिश्र से सब बातें कह सुनाई और शेष में कहा कि–'पुत्र को पढ़ने को नहीं मिलता इसलिये वह मन में दुःख पाता है' ॥ १९२ ॥ इसके साथ ही अन्य सब लोग भी बोले कि–'मिश्रजी ! आप तो बहुत उदार हो; कहिये तो किसके कहने से अपने पुत्र को पढ़ने नहीं जाने देते ॥ १९३ ॥ जो श्रीकृष्णचन्द्र करेंगे सत्य २ वास्तव में होगा वही। आप चिन्ता छोड़कर पुत्र को निर्भयता से पढ़ने दीजिये ॥ १९४ ॥ कितने सौभाग्य की बात है कि–'बालक स्वयं ही पढ़ने का इच्छुक है। अब शुभ दिन में यथाविधि सुन्दर भाव से विश्वम्भर को यज्ञोपवीत भी दे दीजिये' ॥ १९५ ॥ श्रीमिश्र जी कहते हैं कि–'आप सब हमारे परम बन्धु हो; आप लोग जो कहते हैं, वह मुझे भी अभिप्रेत है" ॥ १९६ ॥ सब लोक बालक के सभी कर्म अलौकिक देखकर विस्मय के कारण रहस्य को नहीं जान पाते ॥ १९७ ॥ किसी-किसी अति भाग्यवान् पुरुष ने पहिले ही बीच २ में श्रीजगन्नाथ मिश्र से कह दिया था कि—"यह बालक कभी प्राकृत-बालक नहीं है; इस बालक को यत्नपूर्वक हृदय से लगाये रखना ॥ १९८-१९९ ॥ प्रभु निरन्तर गुप्त रूप से केलि करते थे, वैकुण्ठनायक भगवान् ब्राह्मण के आँगन में विहार कर रहे थे ॥ २०० ॥ अब प्रभु को पिताजी के आदेशानुसार पढ़ने की आज्ञा मिल गई, जिससे महाप्रभु श्रीगौरचन्द्र को विशेष आनन्द हुआ ॥ २०१ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को जान (समझ) कर; वृन्दावनदास उनके युगल चरणों की महिमा का कुछ गान करते हैं (श्रीकृष्णचैतन्य तथा श्रीनित्यानन्द प्रभु जिनके प्राण हैं, वह वृन्दावनदास उनके युगल चरणों का कुछ यहाँ गान करते हैं ॥ २०२ ॥

कृपासिन्धु श्रीगौरसुन्दर ! आपकी जय हो, जय हो। श्रीशचीदेवी एवं श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर के चन्द्रमा आपकी जय हो। श्रीनित्यानन्द स्वरूप के प्राण,आपकी जय हो, जय हो। श्रीसङ्कीर्त्तन धर्म के आधार

भक्त-गोष्ठी-सहिते गौराङ्ग जय जय । शुनिले चैतन्यकथा भक्ति लभ्य हय ॥३॥
हेन मते महाप्रभु जगन्नाथ-घरे । निगूढ़े आछेन केहो चिनिते ना पारे ॥४॥
बाल्य क्रीड़ा-नाम यत आछे पृथिवीते । सकल खेलाय प्रभु, के पारे कहिते ॥ ५॥
बेद-द्वारे व्यक्त हैब सकल-पुराणे । किछु शेषे शुनिब सकल भाग्यवाने ॥६॥
एइमत गौरचन्द्र बाल्य-रसे भोला । यज्ञोपवीतेर काल आसिया मिलिला ॥७॥
यज्ञसूत्र पुत्रेर दिबारे मिश्रबर । बन्धुवर्ग डाकिया आनिला निज-घर ॥८॥
परम-हरिषे सभे आसिया मिलिला । यार येन योग्य कार्य करिते लागिला ॥९॥
स्त्रीगणेते 'जय' दिया कृष्णगुण गाय । नट-गणे मृदङ्ग, सानाजि, बंशी बाय'॥१०॥
बिप्रगणे वेद पढ़े, भाटे रायबार । शची-गृहे हइल आनन्द-अबतार ॥११॥
यज्ञसूत्र धरिबेन श्रीगौरसुन्दर । शुभयोग सकल आइल शची-घर ॥१२॥
शुभ मासे, शुभ दिन, शुभ क्षण करि । धरिलेन यज्ञसूत्र गौराङ्ग श्रीहरि ॥१३॥
शोभिल श्री अङ्गे यज्ञसूत्र मनोहर । सूक्ष्मरूपे 'शेष' बा बेढ़िला कलेवर ॥१४॥
हइला बामनरूप प्रभु गौरचन्द्र । देखिते सभार बाढ़े परम आनन्द ॥१५॥
अपूर्व्व ब्रह्मण्य तेज देखि सर्व्व गणे । नर-ज्ञान आर केहो नाहि करे मने ॥१६॥
हाथे दण्ड, कान्धे झुलि, श्रीगौरसुन्दर । भिक्षा करे प्रभु सब सेवकेर घर ॥१७॥

स्वरूप ! आपकी जय हो, जय हो । भक्त-गोष्ठी सहित श्रीगौराङ्ग महाप्रभु ! आपकी जय हो, जय हो । श्री-चैतन्यचन्द्र की लीला-कथा सुनने से भक्ति लाभ होती है ॥१-२-३॥ इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु जी, श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर गुप्त रूप से विराजमान हैं; परन्तु कोई पहिचान नहीं पाता ॥४॥ पृथ्वी पर बाल-क्रीड़ा के जितने खेल हो सकते हैं, प्रभु वे सब खेल खेलते हैं; उनका वर्णन कौन कर सकता है ॥ ५ ॥ यह सब क्रीड़ा चरित्र वेदव्यास शक्ति से अनुप्राणित सब भक्त महाजनों के पवित्र ग्रन्थों में प्रगट होंगे; जिनको कुछ समय पश्चात् सब भाग्यवान् जन श्रवण करेंगे ॥ ६ ॥ इसी प्रकार श्रीगौरचन्द्र बाल्य-रस में विभोर हो रहे हैं; धीरे-धीरे करके प्रभु के यज्ञोपवीत का समय आ पहुँचा ॥ ७ ॥ श्रीजगन्नाथ मिश्रवर पुत्र को यज्ञोपवीत धारण कराने के लिये बन्धु-बान्धवों को अपने घर बुलाकर लाये ॥ ८ ॥ सब परम प्रसन्नता पूर्वक आकर सम्मिलित हुए और अपने-अपने योग्य कार्य करने लगे, स्त्रीगण जय जयकार करके श्रीकृष्ण गुण गाने लगीं और नट लोग मृदङ्ग, सहनाई एवं बंशी बजाने लगे ॥ ९-१० ॥ बिप्रगण वेद पाठ एवं भाट गण यशोगान करने लगे; श्री-शचीदेवी के घर में आज आनन्द ने ही मानों मूर्त्तिमन्त होकर अबतार लिया है ॥ ११ ॥ श्रीगौरचन्द्र प्रभु यज्ञसूत्र धारण करेंगे; इस समय सर्व शुभ योग आकर श्रीशचीदेवी के घर में वर्तमान हुए ॥१२॥ शुभ मास, शुभ दिन, शुभ मुहूर्त्त में श्रीगौराङ्गहरि ने यज्ञसूत्र धारण किया ॥१३॥ श्रीअङ्ग में मनोहर यज्ञोपवीत परम शोभा का विस्तार कर रहा है, श्रीअङ्ग वेष्टित करके छोटे अवकाश में कहीं शेष भगवान् ही तो नहीं हैं ? ॥ १४ ॥ [यज्ञोपवीत धारण करके] प्रभु श्रीगौरचन्द्र आज श्रीबामनरूप को धारण किये हुए हैं; देखकर सबके हृदय में परम आनन्द बढ़ा ॥ १५ ॥ सब लोग आपके अपूर्व ब्रह्मतेज को देखकर, फिर कोई भी अपने मन में आप में मनुष्य बुद्धि नहीं करता ॥१६॥ प्रभु श्रीगौरसुन्दर हाथ में दण्ड और कन्धे पर झोली धारण

यार यथा शक्ति भिक्षा सभेइ सन्तोषे । प्रभुर झूलिते दिया नारीगण हासे ॥१८॥
द्विजपत्नी रूप धरि ब्रह्माणी रुद्राणी । यत पतिव्रता मुनिवर्गेर गृहिणी ॥१९॥
श्री बामन-रूप प्रभुर देखिया सन्तोषे । सभेइ झूलिते भिक्षा दिया दिया हासे ॥२०॥
प्रभुओ करेन श्रीवामन रूप लीला । जीवेर उद्धार लागि ए सकल खेला ॥२१॥
जय जय श्री बामनरूप गौरचन्द्र । दान देह हृदये तोमार पद द्वन्द्व ॥२२॥
ये शुने प्रभुर यज्ञसूत्रेर ग्रहन । से पाय चैतन्यचन्द्र-चरणे-शरण ॥२३॥
हेन मते बैकुण्ठनायक शची घरे । वेदेर निगूढ़ नानामत क्रीड़ा करे ॥२४॥
घरे सर्व्वशास्त्रेर बुझिया समीहित । गोष्ठी-माझे प्रभुर पढ़िते हैल चित्त ॥२५॥
नवद्वीपे आछे अध्यापक-शिरोमणि । गङ्गादास-पण्डित ये हेन सान्दीपनि ॥२६॥
व्याकरण-शास्त्रेर एकान्त तत्त्ववित्त । ताँर ठाञि पढ़िते प्रभुर समीहित ॥२७॥
बुझिलेन पुत्रेर इङ्गित मिश्रवर । पुत्र-सङ्गे गेला गङ्गादास विप्रघर ॥२८॥
मिश्र देखि गङ्गादास सम्भ्रमे उठिला । आलिङ्गन करि एक-आसने बसिला ॥२९॥
मिश्र बोले 'पुत्र आमि दिल तोमा' स्थाने । पढ़ाइबा शुनाइबा सकल आपने' ॥३०॥
गंगादास बोले 'बड़ भाग्य से आमार । पाढ़ाइमु यत शक्ति आछये आमार' ॥३१॥
शिष्य देखि परम आनन्दे गंगादास । पुत्र-प्राय करिया राखिला निज-पाश ॥३२॥
यत व्याख्या गंगादास पण्डित करेन । सकृत् शुनिले मात्र ठाकुर धरेन ॥३३॥

कर अपने सब सेवकों के घर भिक्षा कर रहे थे ॥१७॥ सब स्त्रीगण अपनी २ शक्ति के अनुसार आनन्दपूर्वक प्रभु की झोली में भिक्षा दे देकर हँसने लगीं ॥ १८ ॥ ब्रह्मपत्नी श्रीसावित्री जी, शिवपत्नी श्रीपार्वतीजी एवं मुनिजनों की सब पतिव्रता स्त्रियाँ प्रभु के श्रीबामन रूप को देखकर आनन्दित होकर झोली में भिक्षा दे देकर हँस रही हैं ॥ १९-२० ॥ श्रीप्रभु ने भी श्रीबामन रूप की लीला की; यह सब लीलायें जीव उद्धार के लिये हैं ॥ २१ ॥ श्रीबामनरूपी श्रीगौरचन्द्र प्रभु ! आपकी जय हो, जय हो; [कृपा करके] अपने युगल चरण मेरे हृदय में दान दीजिये ॥२२॥ जो कोई स्त्री-पुरुष प्रभु के यज्ञोपवीत-धारण की कथा सुनेगा वह श्रीचैतन्यचन्द्र के चरणों में शरण पावेगा ॥ २३ ॥ इस प्रकार वैकुण्ठनाथ श्रीगौरसुन्दर, श्रीशची 'माँ' के घर में नाना प्रकार की वेद से गोप्य लीलायें कर रहे हैं ॥ २४ ॥ घर बैठे ही सर्व शास्त्रों का अभिप्राय जानकर भ प्रभु छात्र मण्डली में बैठकर पढ़ने की इच्छा करने लगे ॥२५॥ नवद्वीप में सान्दीपनि मुनि के अवतार अध्यापक-शिरोमणि, श्रीगंगादास पण्डित जी वास करते थे ॥ २६ ॥ आप व्याकरण शास्त्र के अद्वितीय तत्त्व-वेत्ता थे; प्रभु का अभिप्राय उनके निकट पढ़ने का हुआ ॥ २७ ॥ श्रीमिश्रवर जी अपने पुत्र के इस इङ्गित को समझ गये । आप पुत्र को साथ लेकर श्रीगंगादास पण्डित के घर गये ॥ २८ ॥ श्रीमिश्रजी को देखकर श्रीगंगादास जी हड़बड़ा कर खड़े हो गये और उनको आलिंगन करके दोनों एक ही आसन पर विराजमान होगये ॥२९॥ मिश्रजी कहते हैं कि—'मैं यह पुत्र आपको सौंपता हूँ; अब आप इसको सब प्रकार से पठन-श्रवन कराइये' ॥ ३० ॥ श्रीगंगादासजी कहते हैं—"यह तो मेरे लिये बड़े सौभाग्य की बात है, जहाँ तक मेरी शक्ति है, मैं (इसको) पढ़ाऊँगा" ॥ ३१ ॥ श्रीगंगादास जी मिश्र को देखकर परम आनन्दित हुए और पुत्र की तरह, अपने

गुरुर यतेक व्याख्या करेन खण्डन । पुनर्व्वार सेइ व्याख्या करेन स्थापन ।।३४।।
सहस्र सहस्र शिष्य पढ़े यत जने । हेन कारो शक्ति नाहि दिवारे दूषणे ।।३५।।
देखिया अद्भुत बुद्धि गुरु हरषित । सर्व्व-गोष्ठी श्रेष्ठ करि करिला पूजित ।।३६।।
यत पढ़े गङ्गादास-पण्डितेर स्थाने । सभारेइ ठाकुर चालेन अनुक्षणे ।।३७।
श्री मुरारिगुप्त, श्रीकमलाकान्त नाम । कृष्णानन्द आदि यत गोष्ठीर प्रधान ।।३८।।
सभारे चालये प्रभु फाँकि जिज्ञासिया । शिशु-ज्ञाने केहो किछु ना बोले हाँसिया ।।३९।।
एइमत प्रतिदिन पढ़िया शुनिञा । गङ्गास्नाने चले निज वयस्य लइया ।।४०।।
पढुयार अन्त नाहि नवद्वीप पुरे । पढ़िया मध्यान्हे सभे गङ्गा स्नान करे ।।४१।।
एको अध्यापकेर सहस्र-शिष्यगन । अन्योन्ये कलह करेन अनुक्षण ।।४२।।
प्रथम वयस प्रभुर स्वभाव चञ्चल । पढुयागणेर सह करेन कन्दल ।।४३।।
केहो बोले 'तोर गुरु कोन बुद्धि तार ?' । केहो बोले 'बोल एइ आमि शिष्य याँर ?'।।४४।।
इए मत अल्पे अल्पे हय गालागालि । तबे जल फेलाफेलि, तबे देन बालि ।।४५।।
तबे हय मारामारि, ये याहारे पारे । कर्द्दम फेलिया कारो गाये केहो मारे ।।४६।।
राजार दोहाइ दिया केहो कारे धरे । मारिया पलाय केहो गङ्गार ओ पारे ।।४७।।
एत हुड़ाहुड़ि करे पढुया सकल । बालि-कादामय सब हय गङ्गा-जल ।।४८।।

पास रख लिया ।। ३२ ।। श्रीगंगादास पण्डित जितनी व्याख्या करते हैं, प्रभु एक बार सुनकर ही धारण कर लेते थे ।। ३३ ।। कभी-कभी आप श्रीगुरुदेव की सम्पूर्ण व्याख्या को खण्डन कर देते हैं; और फिर उसी व्याख्या को स्थापन कर देते हैं ।। ३४ ।। वहाँ जो सहस्रों शिष्य पढ़ते थे, उनमें से किसी की भी यह सामर्थ्य नहीं थी, कि प्रभु की व्याख्या के ऊपर कोई दोषारोपण कर सकें ।।३५।। (श्रीमहाप्रभु की) ऐसी अद्भुत बुद्धि देखकर श्रीगुरुदेव ने प्रसन्न होकर प्रभु को सर्व-श्रेष्ठ शिष्य की पदवी देकर सम्मानित किया ।। ३६ ।। जितने शिष्य श्रीगङ्गादास पण्डित जी के यहाँ पढ़ते थे, प्रभु उन सबको (कोई न कोई) प्रश्न उठाकर क्षण-क्षण में चक्कर में डाल देते थे ।। ३७ ।। श्रीमुरारिगुप्त, श्रीकमलाकान्त एवं श्रीकृष्णानन्द आदि गोष्ठी में जो-जो प्रधान शिष्य हैं उन सबको प्रभु फाँकि (फक्किका) पूछकर विवश कर देते थे । वे सब प्रभु को बालक समझकर हँसकर कुछ नहीं कहते हैं ।। ३८-३९ ।। इसी प्रकार नित्य प्रति पढ़ सुनकर प्रभु अपने सखाओं के सङ्ग श्रीगङ्गास्नान करने चले जाते हैं ।। ४० ।। श्रीनवद्वीप पुरी में विद्यार्थियों की गिनती नहीं हैं; वे सब ही दोपहर तक पढ़कर श्रीगंगा स्नान करने जाते थे ।। ४१ ।। एक-एक अध्यापक के सहस्र-सहस्र शिष्य थे, जो परस्पर निरन्तर विवाद करते रहते थे ।। ४२ ।। प्रभु की नवीन अवस्था होने से चञ्चल स्वभाव था; आप विद्यार्थियों के साथ लड़-झगड़ रहते थे ।। ४३ ।। विद्यार्थियों में से कोई कहता—"तेरा गुरु क्या है ? वह कितनी बुद्धि रखता है ?" सुनकर कोई दूसरा कहता कि—"वह देख ! मेरे गुरु वे हैं; मेरे जैसे बुद्धिमान् जिनके शिष्य हैं ?" ।। ४४ ।। इसी प्रकार धीरे धीरे गाली—गलौज होने लगती; फिर जल फेंका—फेंकी, फिर बालू उछालना शुरू हो जाता, फिर जो जिसके हाथ आता, वह उसके साथ मार—पीट करता । कोई किसी के शरीर पर कीचड़ फेंककर मारने लगता । कोई राजा की दोहाई देकर किसी को पकड़ लेता, कोई मार-पीटकर गंगाजी के उस पार तैरकर भाग

जल भरिबारे नाहि पारे नारीगणे। ना पारे करिते स्नान ब्राह्मण-सज्जने ॥४६॥
परम चञ्चल प्रभु विश्वम्भर राय। एइमत प्रभु प्रति घाटे घाटे जाय ॥५०॥
प्रति घाटे पढुयार अन्त नाहिं पाइ। ठाकुर कलह करे प्रति ठाञि ठाञि ॥५१॥
प्रति घाटे घाटे जाय गङ्गाय साँतारि। एको घाटे दुइ चारि दण्ड क्रीड़ा करि ॥५२॥
जत जत प्रामाणिक पढुयार गण। तारा बोले 'कलह करह कि कारण ॥५३॥
जिज्ञासा करह बुझि, कार कोन बुद्धि। वृत्ति-पञ्जी-टीकार के जाने देखि शुद्धि' ॥५४॥
प्रभु बोले 'भालो भालो एइ कथा हय। जिज्ञासुक आमारे जाहार चित्ते लय' ॥५५॥
केहो बले 'एत केने कर अहङ्कार'। प्रभु बले 'जिज्ञासह जे चित्ते तोमार' ॥५६॥
'धातुसूत्र बाखानह' बले से पढुया। प्रभु बले 'बाखानि जे शुन मन दिया' ॥५७॥
सर्व्वशक्ति समन्वित प्रभु भगवान्। करिलेन सूत्र-ब्याख्या जे हय प्रमाण॥५८॥
ब्याख्या शुनि सभे बोले प्रशंसा-बचन। प्रभु बोले 'एबे शुन करिये खण्डन' ॥५६॥
यत बाखानिल ताहा दूषिल सकल। प्रभु बोले 'स्थाप' एबे कार आछे बल॥६०॥
चमत्कार सभेइ भावेन मने मने। प्रभु बोले 'शुन एबे करिये स्थापने' ॥६१॥
पुन हेन ब्याख्या करिलेन गौरचन्द्र। सर्व्वमते सुन्दर, कोथाओ नाहि मन्द ॥६२॥
यत सब प्रामाणिक पढुयार गण। सन्तोषे सभेइ करिलेन आलिङ्गन ॥६३॥

जाता ॥४५-४७॥ विद्यार्थीगण सब इतना ऊधम करते थे कि सम्पूर्ण श्रीगङ्गाजल बालू एवं कीच से गदला हो जाता था, स्त्रीगण जल भरने नहीं पातीं तथा ब्राह्मण, सज्जनगण स्नान नहीं कर पाते थे ॥ ४८–४६ ॥ प्रभु श्रीविश्वम्भर राय परम चञ्चल थे, आप इसी प्रकार प्रत्येक घाट पर (ऊधम करने कराने के लिये) पहुँच जाते थे॥५०॥प्रत्येक घाट पर असंख्य विद्यार्थी और प्रभु भी प्रत्येक स्थान पर कलह करते पहुँच जाते थे॥५१॥ प्रभु गङ्गाजी में तैरते हुए एक घाट से दूसरे घाट पर पहुँच जाते थे और प्रत्येक घाट पर दो-दो, चार-चार घड़ी क्रीड़ा करते थे ॥ ५२ ॥ विद्यार्थियों में जो सर्व प्रमुख विद्यार्थी थे, वे प्रभु से कहते थे कि–"तुम झगड़ा क्यों करते हो ? तुम्हारे मन में हो जो हमसे पूछो; मालुम पड़ेगा किसमें कितनी बुद्धि है देखें, वृत्ति, पाँञ्जी, टीका के यथार्थ तत्त्व कौन जानता है ?" ॥५३–५४॥ प्रभु कहते थे–"अच्छा, अच्छा, यही बात ठहरी तुममें से जिसके मनमें हो वह प्रथम हमसे प्रश्न करे" ॥ ५८ ॥ कोई कहता था "इतना अहङ्कार क्यों करते हो ?" प्रभु कहते हैं–"जो तुम्हारे मन में हो पूँछो" ॥ ५६ ॥ तब विद्यार्थी कोई एक विशेष धातु सूत्र उठाकर प्रभु से कहता कि "इसकी व्याख्या करो"; प्रभु कहते "अब व्याख्यान करता हूँ, मन लगाकर सुनो" ॥ ५७ ॥ सर्व शक्ति समन्वित भगवान् प्रभु सूत्र की ऐसी व्याख्या करते जो सर्वथा संगत होती ॥ ५८ ॥ प्रभु की व्याख्या को सुनकर सब लोग प्रशंसा करने लगते तब पुनः आप कहते कि–"सुनो अब मैं इसी का खण्डन करता हूँ" ॥ ५६ ॥ आपने अभी-अभी जो व्याख्या की थी, इस बार उन सबको दोषयुक्त सिद्ध करके सबको दिखाया, तब प्रभु कहते कि–देखूँ अब किस में बल है; जो इसको पुनर्वार प्रमाणित करें ॥ ६० ॥ सब लोग मन ही मन बड़ा आश्चर्य करने लगे, तब प्रभु कहते कि "लो ! अबकी बार इसी खंडित व्याख्या की पुनः स्थापना करता हूँ, सुनो !" ॥६१॥ यह कह कर श्रीगौरचन्द्र ने पुनर्वार ऐसी व्याख्या की जो कि सर्व प्रकार से सुन्दर

पढुया सकले 'बोले आजि घरे जाह । कालि ये जिज्ञासि ताहा बलिबारे चाह ॥६४॥
एइमत प्रतिदिन जाह्नवीर जले । वैकुण्ठ-नायक-विद्या-रस खेला खेले ॥६५॥
एइ क्रीड़ा लागिया सर्व्वज्ञ बृहस्पति । शिष्य सह नवद्वीपे हइला उत्पत्ति ॥६६॥
जलक्रीड़ा करे प्रभु शिशुगण सङ्गे । क्षणे क्षणे गंगार ओ पारे जाय रंगे ॥६७॥
बहु मनोरथ पूर्व्वे आछिल गंगार । जमुनाय देखि कृष्णचन्द्रेर विहार ॥६८॥
'कबे हइबेक मोर यमुनार भाग्य' । निरबधि गंगा एइ बलिलेन वाक्य ॥६९॥
यद्यपिह गंगा अज-भवादि-वन्दिता । तथापिह यमुनार पद से बाञ्छिता ॥७०॥
वाञ्छा-कल्पतरु प्रभु श्री गौरसुन्दर । जाह्नवीर बाञ्छा पूर्ण करे निरन्तर ॥७१॥
करि बहु विधि क्रीड़ा जाह्नवीर जले । गृहे आइलेन गौरचन्द्र कुतूहले ॥७२॥
यथाविधि करि प्रभु श्री विष्णु-पूजन । तुलसीरे जल दिया करेन भोजन ॥७३॥
भोजन करिया मात्र प्रभु सेइ क्षणे । पुस्तक लइया गिया वसेन निर्ज्जने ॥७४॥
आपने करेन प्रभु सूत्रेर टिप्पनी । भुलिला पुस्तक-रसे सर्व्वदेव-मणि ॥७५॥
देखिया आनन्दे भासे मिश्र महाशय । रात्रि-दिने हरिषे किछुइ ना जानय ॥७६॥
देखिते देखिते जगन्नाथ पुत्र मुख । तिले तिले पाय अनिर्व्वचनीय सुख ॥७७॥
जे मते पुत्रेर रूप करे मिश्र पान । सशरीरे सायुज्य हइल किवा तान ॥७८॥

थी, कहीं भी कोई दूषण नहीं था ॥ ६२ ॥ तिस पर सब प्रमुख विद्यार्थियों ने सन्तुष्ट होकर श्रीप्रभु को आलिङ्गन प्रदान किया ॥ ६३ ॥ सब विद्यार्थी जन कहने लगे कि—"आज तुम घर को जाओ कल जो हम पूछें उसका उत्तर देना" ॥ ६४ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ प्रतिदिन इसी प्रकार श्रीगङ्गा जी के जल में विद्या रस के खेल खेलते थे ॥ ६५ ॥ इसी क्रीड़ा आस्वादन के लिये सर्वज्ञ श्रीबृहस्पति जी ने भी अपने शिष्यों के साथ श्रीनवद्वीप धाम में जन्म लिया ॥ ६६ ॥ प्रभु बालकों के साथ जलक्रीड़ा करते थे और खेल ही खेल में तैर थोड़ी-थोड़ी देर में श्रीगङ्गाजी के उस पार तक चले जाते थे ॥ ६७ ॥ पूर्व काल में श्रीजमुना जी में श्रीकृष्णचन्द्र के जल-विहार को देखकर श्रीगंगाजी ने भी अपने मन में बहुत प्रकार के मनोरथ किये थे ॥६८॥ श्रीगङ्गाजी निरन्तर यही कहती रहती थीं, कि—"मेरा भाग्य श्रीयमुना के भाग्य जैसा कब होगा" ? ॥ ६९ ॥ यद्यपि श्रीगंगाजी, ब्रह्मा-शिवादिकों से भी पूजिता है, तथापि आप श्रीयमुना जी की पदवी पाने की इच्छा करती थीं ॥ ७० ॥ भक्तजनों की वाञ्छा पूर्ण करने वाले कल्पतरु श्रीगौरसुन्दर प्रभु (अब) निरन्तर श्रीगङ्गाजी की इच्छा पूर्ण करने लगे ॥ ७१ ॥ श्रीगौरचन्द्र श्रीगङ्गाजी के जल में नाना प्रकार की क्रीड़ा करके आनन्दपूर्वक घर लौट आये ॥ ७२ ॥ घर आकर प्रभु शास्त्रानुसार यथाविधि श्रीविष्णु पूजन करके तथा तुलसी जी में जल-दान करके (पश्चात्) भोजन करने लगे ॥ ७३ ॥ प्रभु भोजन मात्र करके ही, तुरन्त पुस्तक लेकर निर्जन स्थान में जा बैठते थे ॥ ७४ ॥ प्रभु स्वयं सूत्रों की टिप्पणी करने लगे । सर्वदेव शिरोमणि प्रभु उस समय विद्यारस में अपने को भुलाये हुए थे॥७५॥श्रीमिश्र महाशय निज पुत्र को विद्यारस में इस प्रकार मगन देखकर आनन्दसागर में बहने लगे । अब रात-दिन आनन्द के अतिरिक्त उन्हें और कुछ नहीं भासता ॥ ७६ ॥ श्रीजगन्नाथ मिश्र पुत्र के मुख को देख देखकर, तिल-तिल में अनिवर्चनीय सुख पाते थे (तिल, समय का एक

सायुज्य वा कोन उपाधिक सुख ताने। सायुज्यादि-सुख मिश्र अल्प करि माने ॥७९॥
जगन्नाथ-मिश्र-पाय बहु नमस्कार। अनन्त-ब्रह्माण्ड-नाथ पुत्र रूपे-जाँर ॥८०॥
एइ मत मिश्रचन्द्र देखिते पुत्रेरे। निरवधि भासे बिप्र आनन्द-सागरे ॥८१॥
कामदेव जिनिञा प्रभु से रूपवान्। प्रति अङ्गे अङ्गे से लावण्य अनुपाम ॥८२॥
इहा देखि मिश्रचन्द्र चिन्तेन अन्तरे। 'डाकिनी दानवे पाछे पुत्रे बल करे' ॥८३॥
भये मिश्र पुत्र समर्पये कृष्ण-स्थाने। हासे प्रभु गौरचन्द्र आड़े थाकि सुने ॥८४॥
मिश्र बोले 'कृष्ण! तुमि रक्षिता सभार। पुत्र-प्रति शुभ दृष्टि करिबा आमार ॥८५॥
ये तोमार चरण-कमल स्मृति करे। कभु बिघ्न ना आइसे ताहार मन्दिरे ॥८६॥
तोमार स्मरण-हीन ये ये पाप-स्थान। तथाये डाकिनी-भूत-प्रेत-अधिष्ठान ॥८७॥

तथाहि–'न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्म्मसु। कुर्व्वन्ति सात्वतां भर्त्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि'॥१॥भा.१०।६।३

'आमि तोर दास प्रभु! यतेक आमार। राखिबा आपने तुमि, सकल तोमार ॥८८॥
अतएव यत आछे बिघ्न वा सङ्कट। 'ना आयुक कभु मोर पुत्रेर निकट' ॥८९॥
एइ मत निरवधि मिश्र जगन्नाथ। एक-चित्ते बर मागे तुलि दुइ हाथ ॥९०॥
दैवे एक दिन स्वप्न देखि मिश्रबर। हरिष-बिषाद बड़ हइल अन्तर ॥९१॥
स्वप्न देखि स्तव पढ़ि दण्डवत करे। 'हे गोविन्द! निमाञि रहुक मोर घरे ॥९२॥

कहना मात्र है) ॥७७॥ श्रीमिश्रजी जिस प्रकार पुत्र की रूप-सुधा पान कर रहे थे, उसको देखकर प्रतीत होता था कि स्यात् उन्हें सदेह की सायुज्य मुक्ति मिल गई हो ॥ ७८ ॥ अथवा सायुज्य ही क्या वस्तु है, वह तो केवल मात्र औपाधिक सुख है; श्रीमिश्रदेव सायुज्यादि सुख को बहुत छोटा करके मानते थे ॥ ७९ ॥ श्री· जगन्नाथ मिश्र के चरणों में हमारी अनेक प्रकार नमस्कार हैं; जिनके यहाँ अनन्त ब्रह्माण्ड स्वामी पुत्र रूप में विराजमान थे॥८०॥इसी प्रकार श्रीमिश्रचन्द्र पुत्र को देखकर निरन्तर आनन्द के समुद्र में बहते रहते थे॥८१॥ प्रभु कामदेव के भी रूप को विजय करने वाले महा रूपवान् थे, आपके श्रीअङ्ग-प्रत्यङ्ग में अतुलित अनौखा लावण्य था ॥ ८२ ॥ उसको देखकर श्रीमिश्रचन्द्र मन में चिन्ता करने लगे कि कहीं ऐसा न हो कि–"कोई डाकिनी व दानव आदि पुत्र के ऊपर अपना असर जमावे" ॥ ८३ ॥ इस डर से श्रीमिश्रदेव पुत्र को श्रीकृष्ण को सौंपने लगे हैं, प्रभु श्रीगौरचन्द्र आड़ में खड़े हो यह सब सुनते और हँसते थे ॥ ८४ ॥ श्रीमिश्रदेव कहते थे कि—"हे कृष्ण! आप सबकी रक्षा करने वाले हो, मेरे पुत्र के प्रति भी शुभ दृष्टि करना ॥८५॥ हे प्रभो! जो आपके चरण कमलों का स्मरण करते हैं, उनके घर में विघ्न कभी नहीं आते ॥ ८६ ॥ तुम्हारे स्मरण से विरसित जो-जो पाप-स्थान हैं, वहीं डाइन, भूत-प्रेतों का निवास होता है ॥ ८७ ॥ "जिस स्थान में जनसमूह समाज अपना कर्मानुष्ठान करते समय भक्त-भर्त्ता भगवान् की विघ्न-विनाशकारी लीला कथाओं का श्रवणादि नहीं करता, उस स्थान में ही राक्षसगण निवास करते हैं" ॥ १ ॥ "हे प्रभो! मैं आपका दास हूँ; मेरा जो कुछ है वह सब आपका ही है, आप स्वयं उनकी रक्षा कीजियेगा। अतएव जो भी विघ्न व सङ्कट हों, वे मेरे पुत्र के निकट कभी न आवें" ॥ ८८–८९ ॥ इसी प्रकार श्रीजगन्नाथ मिश्र निरन्तर दोनों हाथ उठाकर मन को एकाग्र करके वर माँगते हैं ॥ ९० ॥ दैवयोग से (भगवत्-इच्छा से) एक दिन श्रीमिश्रबर जी एक

सबे एइ बर कृष्ण ! मागों तोर ठाञि । गृहस्थ हइया घरे रहुक निमाञि' ॥९३॥
शची जिज्ञासये बड़ हइया विस्मित । 'ए सकल बर केने माग आचम्बित' ॥९४।
मिश्र बोले 'आजि मुञि देखिलुँ स्वपन । निमाञि करेछे जेन शिखार मुण्डन ॥९५॥
अद्भुत-सन्न्यासि-वेश कहने ना जाय । हासे नाचे कान्दे 'कृष्ण' बलि सर्व्वदाय ॥९६॥
अद्वैत-आचार्य्य-आदि यत भक्तगण ! निमाञि बेढ़िया सभे करेन कीर्त्तन ॥९७॥
कखनो निमाञि बैसे विष्णुर खट्टाय । चरण तुलिया देइ सभार माथाय ॥९८॥
चतुर्म्मुख पञ्चमुख सहस्रबदन । सभेइ गायेन 'जय श्री शचीनन्दन' ॥९९॥
महाभये चतुर्दिगे सभे स्तुति करे । देखिया आमार मुखे वाक्य नाहि स्फुरे ॥१००॥
कथोत्तणे देखि कोटि कोटि लोक लैया । निमाञि बुलेन प्रति नगरे नाचिया ॥१०१॥
लक्ष कोटि लोक निमाञिर पाछे धाय । ब्रह्माण्ड स्पर्शिया सभे हरिध्वनि गाय ॥१०२॥
चतुर्दिगे शुनि मात्र निमाञिर स्तुति । नीलाचले जाय सर्व्व भक्तेर संहति ॥१०३
एइ स्वप्न देखि चिन्ता पाञ सर्व्वथाय । 'बिरक्त हइया पाछे पुत्र वाहिराय' ॥१०४॥
शची बोले 'स्वप्न तुमि देखिला गोसाञि । चिन्ता ना करिह, घरे रहिब निमाञि ॥१०५॥
पूँथि छाड़ि निमाञि ना जाने कोन कर्म्म । विद्यारस तार हइयाछे सर्व्व-धर्म्म' ॥१०६॥

विचित्र स्वप्न देखकर मनमें बड़े हर्ष एवं विषाद योग को प्राप्त हुए ॥९१॥ स्वप्न देख आप स्तव पढ़कर दण्डवत् करने लगे और प्रार्थना करते हैं कि—"हे गोविन्द ! निमाई मेरे घर में ही रहे। हे कृष्ण ! मैं आपसे केवल यही बरदान माँगता हूँ कि—"मेरा निमाई गृहस्थ होकर घर में ही रहे" ॥ ९२–९३ ॥ श्रीशचीदेवी बड़ी विस्मित होकर श्रीमिश्रजी से पूछने लगीं कि–"आज तुम अकस्मात् यह सब बर क्यों माँग रहे हो ?" ॥ ९४ ॥ श्रीमिश्रदेव कहने लगे कि—"आज मैंने स्वप्न में ऐसा देखा है कि निमाई ने शिखा-मुण्डन करवा लिया है ॥ ९५ ॥ अद्भुत संन्यासी का वेश धारण किये हुए हैं, जो कि कहा नहीं जाता है और निरन्तर मुख से "कृष्ण-कृष्ण" बोलता हुआ कभी हँसता है, कभी नाचता है और कभी रोता है ॥ ९६ ॥ श्रीअद्वैत आचार्य आदि सब भक्तगण निमाई को चारों ओर से घेर कर कीर्त्तन कर रहे हैं ॥ ९७ ॥ कभी निमाई श्रीविष्णु सिंहासन पर जा बैठता है और अपने चरण उठाकर सब भक्तवृन्द के सिर पर धर रहा है। उस समय क्या चतुर्मुख (ब्रह्माजी) और क्या पंचमुख (श्रीशिवजी) और क्या सहस्रबदन (श्रीशेषजी) सभी 'जय श्रीशचीनन्दन गा रहे हैं' ॥ ९८–९९ ॥ महा भयभीत होकर चारों ओर सब लोग स्तुति कर रहे हैं, यह देखकर मेरे मुख से वाक्य स्फूर्ति नहीं हुई अर्थात् अवाक् होगया, बोल न सका ॥१००॥ फिर देखता हूँ कि—"कुछ ही देर पीछे निमाई कोटि-कोटि मनुष्य साथ लेकर नगर के प्रत्येक विभाग में नृत्य करते हुए विचरण करता है ॥ १०१ ॥ असंख्य मनुष्य निमाञि के पीछे दौड़ रहे हैं; सब लोग मिलकर ब्रह्माण्ड स्पर्श करने वाली हरि-ध्वनि करके गा रहे हैं ॥ १०२ ॥ चारों ओर से केवल निमाई की ही स्तुति सुनने में आती थी अन्त में वह सब भक्त मंडली सहित श्रीनीलाचल धाम (श्रीजगन्नाथपुरी) जाते हुए देखा ॥ १०२ ॥ इस स्वप्न को देखकर मैं सर्वथा (बड़ा) चिन्तित हो रहा हूँ, ऐसा न हो कि–"कहीं पुत्र संसार से विरक्त होकर बाहर निकल जाय' ॥ १०४ ॥ श्रीशचीदेवी कहने लगी कि–"हे स्वामी ! आपने तो स्वप्न ही देखा है इसलिये चिन्ता न कीजिये, निमाई घर में ही रहेगा। निमाई पोथी के सिवाय और कोई कर्म नहीं जानता है,

एइमत परम उदार दुइ जन । नाना कथा कहे पुत्र-स्नेहेर कारण ॥१०७॥
हेनमते कथोदिन थाकि मिश्रवर । अन्तर्धान हैला नित्य-सिद्ध कलेवर ॥१०८॥
मिश्रेर बिजये प्रभु कान्दिला बिस्तर । दशरथ-विजये ये हेन रघुबर ॥१०६॥
दुर्निबार श्री गौरचन्द्रेर आकर्षण । अतएव रक्षा हैल आइर जीवन ॥११०॥
दुःख-रस ए सकल बिस्तारि कहिते । दुःख हय, अतएव कहिल संक्षेपे ॥१११॥
हेनमते जननीर सङ्गे गौरहरि । आछेन निगूढ़रूपे आपना सम्बरि ॥११२॥
पितृ-हीन-बालक देखिया शची 'आई' । सेइ पुत्र सेवा बहि आर कार्य्य नाञि ॥११३॥
दण्डेके ना देखे यदि आइ गौरचन्द्र । मूर्च्छा पाये आइ दुइ चक्षे हय अन्ध ॥११४॥
प्रभुओ मायेर प्रीति करे निरन्तर । प्रबोधेन ताने बलि आश्वास-उत्तर ॥११५॥
शुन माता ! मने किछु ना चिन्तिह तुमि । सकल तोमार आछे,यदि आछि आमि ॥११६॥
ब्रह्मा महेश्वरेरो ये दुर्ल्लभ लोके बोले । ताहा आमि तोमारे आनिञा दिब हेले ॥११७॥
शची ओ देखिते गौरचन्द्रेर श्रीमुख । देह-स्मृति-मात्र नाहि थाके किसे दुःख ॥११८॥
जार स्मृति-मात्र सर्व्व पूर्ण हय काम । से प्रभु जाहार पुत्र-रूपे विद्यमान ॥११६॥
ताहार के मते दुःख रहिब शरीरे ? । आनन्द स्वरूप करिलेन जननीरे ॥१२०॥
हेनमते नवद्वीपे बिप्र शिशुरूपे । आछेन बैकुण्ठनाथ स्वानुभव-सुखे ॥१२१॥

आज कल तो विद्या-रस ही उसका सर्व-धर्म बन गया है" ॥ १०५–१०६ ॥ इसी प्रकार परम उदार दोनों जन पुत्र-स्नेह के कारण नाना प्रकार की बातें करते रहते थे ॥ १०७ ॥ इस प्रकार कुछ दिन इस नाशवान् जगत् में रहकर श्रीजगन्नाथ मिश्र जी अपने नित्य सिद्ध स्वरूप को (श्रीमन्महाप्रभु के नित्य लीला में पितृ-स्वरूप को प्राप्त होकर यहाँ से अन्तर्धान होगये) ॥ १०८॥ श्रीमिश्रदेव के विजय (अन्तर्धान) होने पर प्रभु ने ऐसा विलाप किया, जैसा श्रीरामचन्द्रजी ने श्रीदशरथ महाराज के अन्तर्धान हो जाने पर किया था ॥ १०६ ॥ श्रीगौरचन्द्र का आकर्षण दुर्निवार (निवारण करना कठिन) है, इसीलिये श्रीशची माताजी की जीवन-रक्षा हो सकी ॥ ११० ॥ यह सब कथा विस्तार पूर्वक कहने में बहुत दुःख होता है; अतएव (बहुत दुःख होने के कारण) संक्षेप में ही कहा है ॥१११॥ इस प्रकार श्रीगौरहरि अपनी जननी के साथ अपने स्वरूप को छिपाकर गुप्त रूप से रहने लगे ॥ ११२ ॥ श्रीशचीमाता पुत्र को पितृहीन देखकर उसकी सेवा के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं करती थीं ॥ ११३ ॥ यदि श्रीमाताजी एक दण्ड के लिये भी श्रीगौरचन्द्र को नहीं देखतीं तो आप दोनों नेत्रों से अन्धी होकर मूर्च्छित हो जाती थीं ॥ ११४ ॥ प्रभु भी श्रीमाताजी की प्रीति का निरन्तर साधन करते थे और आश्वासन वाक्य कहकर उनको प्रबोध करते थे ॥ ११५ ॥ आप कहते हैं कि–'हे मातः ! सुनो तुम अपने मनमें कुछ भी चिन्ता मत करो; यदि मैं हूँ तो तुम्हारे सब कुछ है । जो वस्तु संसार में ब्रह्मा एवं शिबजी को भी दुर्ल्लभ कही जाती हैं, वह वस्तु मैं तुम्हारे लिये अनायास ही ला दूँगा' ॥ ११६-११७ ॥ श्रीशचीदेवी को भी श्रीगौरचन्द्र के श्रीमुख को देखते हुए देह की स्मृति मात्र तक नहीं रहती, फिर दुख कैसे हो॥११८॥ जिनकी स्मृति मात्र से सर्व कामनायें पूर्ण हो जाती हैं,ऐसे प्रभु जिनके पुत्र रूप में विद्यमान हैं फिर उनके शरीर में दुःख कैसे रह सकता है ? आपने अपनी जननी को आनन्द-स्वरूप कर दिया था ॥११६-१२०॥

घरे मात्र हय दरिद्रतार प्रकाश । आज्ञा येन महामहेश्वरेर बिलास ॥१२२॥
कि थाकूक, ना थाकूक, नाहिक बिचार । चाहिलेइ ना पाइले रक्षा नाहि आर ॥१२३॥
घर द्वार भाङ्गिया फेलेन सेइ क्षणे । आपनार अपचय ताओ नाहि माने ॥१२४॥
तथापिह शची, जे चाहेन, सेइक्षणे । नाना-यत्ने देन पुत्र स्नेहेर-कारणे ॥१२५॥
एक दिन प्रभु चलिलेन गङ्गा-स्नाने । तैल आमलकी चाहे जननीर स्थाने ॥१२६॥
'दिब्य-माला सुगन्धि-चन्दन देह' मोरे । गङ्गा-स्नान करि चाओ गङ्गा पूजिबारे' ॥१२७॥
जननी कहेन 'बाप ! शुन मन दिया । क्षणेके अपेक्षा कर माला आनों गिया' ॥१२८॥
'आनों गिया' सेइ-मात्र शुनिला वचन । क्रोधे रूद्र हइलेन शचीर नन्दन ॥१२९॥
'एखने जाइबा तुमि माला आनिबारे' । एत बलि क्रुद्ध हइ प्रवेशिला घरे ॥१३०॥
यतेक आछिल गङ्गा-जलेर कलस । आगे सब भाङ्गिलेन हइ क्रोधबश ॥१३१॥
तैल, घृत, लवण आछिल जाते जाते । सर्व चूर्ण करिलेन ठेङ्गा लइ हाथे ॥१३२॥
छोट बड़ घरे यत छिल घट नाम । सब भाङ्गिलेन इच्छामय भगवान् ॥१३३॥
गड़ागड़ि जाय घरे तैल, घृत, दुग्ध । तण्डुल, कार्पास, धान्य, लोण, बड़ी, मुद्‌ग ॥१३४॥
जतेक आछिल सिका टानिआ टानिआ । क्रोधावेशे फेले प्रभु छिण्डिया छिण्डिया ॥१३५॥
बस्त्र आदि जत किछु पाइलेन घरे । खानि खानि करि चिरि फेले दुइ-करे ॥१३६॥

इस प्रकार श्रीवैकुण्ठनाथ नवद्वीप धाम में ब्राह्मण-बालक के रूप में निज स्वरूपानन्द सुख में मग्न होकर विराजमान थे ॥ १२१ ॥ घर में तो दरिद्रता मात्र ही प्रकाश कर रही थी, परन्तु आपकी आज्ञा मात्र से महामहेश्वर का विलास उपस्थित हो जाता था ॥१२२॥ घर में कुछ है कि नहीं इस बात का तनिक भी विचार नहीं करते। यदि इच्छित वस्तु चाहते ही न मिले, तो फिर उसकी खैर नहीं ॥ १२३ ॥ उसी क्षण घर द्वार सब तोड़-फोड़ कर फेंक देते थे, ऐसा करने से अपनी ही हानि होती है, इस बात को भी वह नहीं मानते थे ॥ १२४ ॥ तब भी श्रीशचीदेवी पुत्र स्नेह के कारण श्रीविश्वम्भर जिस समय जो वस्तु माँगते थे, वही वस्तु उसी क्षण नाना प्रयत्न करके भी ला देती थीं ॥ १२५ ॥ एक दिन प्रभु श्रीगङ्गा–स्नान करने को जाने लगे। श्रीमाताजी से (श्रीअङ्ग में लगाने के लिये) तेल और (उबटन के लिये) आमले माँगे ॥ १२६ ॥ फिर कहने लगे कि–'माँ ! मुझे दिव्य माला एवं सुगन्धि चन्दन ला दो, श्रीगङ्गा–स्नान करके मेरी इच्छा श्रीगङ्गा पूजा करने की है' ॥१२७॥ श्रीमाताजी कहने लगीं कि–"बेटा ! ध्यान देकर सुनो; तुम तनिक ठहर जाओ मैं अभी माला ला देती हूँ" ॥१२८॥ श्रीशचीनन्दन 'जाती हूँ'; शब्द सुनते ही क्रोध से मूर्त्तिमान रुद्र ही होगये ॥१२९॥ "इस समय तुम माला लेने जाओगी" इतना कहकर क्रोधित होकर घर में घुस गये ॥ १३० ॥ वहाँ जितने गङ्गाजल के कलश रक्खे थे; क्रोधवश उन सबको तोड़-फोड़ डाला ॥ १३१ ॥ जिस-जिस बर्तन में तेल, घी, एवं नमक रक्खे थे, उन सबको हाथ में डण्डा लेकर चूर्ण कर डाला ॥ १३२ ॥ "घट" नाम के छोटे, बड़े जितने भी पात्र घर में थे, इच्छामय भगवान् ने उन सबको फोड़ डाला ॥ १३३ ॥ घर में तेल, घृत, दुग्ध, चावल, कपास, धान, लवण, मँगोड़ीं एवं मूँग लोट-पोट होने लगे (तितर-बितर बिखर गये) ॥ १३४ ॥ तब प्रभु घर के छींकों को खींच-खींच कर क्रोधावेश में छोटे २ टुकड़े करके फेंक दिये ॥ १३५ ॥ घर में वस्त्र

सब भाङ्गि आर जदि नाहि अवशेष । तबे शेषे गृह प्रति हैल क्रोधावेश ॥१३७॥
दोहाथिया ठेङ्गा पाड़े गृहेर उपरे । हेन प्राण नाहि कारो ये निरोध करे ॥१३८॥
घर द्वार भाङ्गि शेषे बृक्षेरे देखिया । ताहार उपरे ठेङ्गा पाड़े दोहाथिया ॥१३९॥
तथापिह क्रोधावेशे क्षमा नाहि हय । शेषे पृथिवीते ठेङ्गा नाहि समुच्चय ॥१४०॥
गृहेर उपान्ते शची सशङ्कित हैया । महा-भये आछेन जे-हेन लुकाइया ॥१४१॥
धर्म्म-संस्थापक प्रभु धर्म-सनातन । जननीरे हस्त नाहि तोलेन कखन ॥१४२॥
एतादृश क्रोध आरो आछेन व्यञ्जिया । तथापिह जननीरे ना मारिला गिया ॥१४३॥
सकल भाङ्गिया शेषे आसिया अङ्गने । गड़ागड़ि जाइते लागिला क्रोध-मने ॥१४४॥
श्री कनक-अङ्ग हैल बालुका वेष्टित । सेइ हैल महाशोभा अकथ्य-चरित ॥१४५॥
कथोक्षण महाप्रभु गड़ागड़ि दिया । स्थिर हइ रहिलेन शयन करिया ॥१४६॥
सेइमते दृष्टि कैला योग-निद्रा प्रति । पृथिवीते शुइ आछेन श्री वैकुण्ठपति ॥१४७॥
अनन्तेर श्री विग्रहे जाँहार शयन । लक्ष्मी जाँर पाद-पद्म सेवे अनुक्षण ॥१४८॥
चारि वेदे ये प्रभुरे करे अन्वेषणे । से प्रभु जायेन निद्रा शचीर अङ्गने ॥१४९॥
अनन्त-ब्रह्माण्ड जाँर लोम कूपे भासे । सृष्टि-स्थिति-प्रलय करये जाँर दासे ॥१५०॥
ब्रह्मा-शिव-आदि मत्त जाँर गुण-ध्याने । हेन प्रभु निद्रा जान शचीर अङ्गने ॥१५१॥

आदि जो कुछ भी मिला, वह सब दोनों हाथों से टूक-टूक करके चीर २ कर फेंक दिये । सब कुछ तोड़-फोड़ कर जब कुछ अवशेष नहीं रहा तब घर पर क्रोध आया ॥ १३६—१३७ ॥ दोनों हाथों में लठिया लेकर घर के ऊपर बजाने लगे; ऐसा साहस किसी में नहीं हुआ जो प्रभु को रोके ॥ १३८ ॥ घर, द्वार सब तोड़-फोड़ के अन्त में वृक्ष को देखकर उसी के ऊपर दोनों हाथों से लठिया बजाने लगे ॥ १३९ ॥ इतने पर भी आपका क्रोधावेश शान्त नहीं हुआ; शेष पृथ्वी पर इतनी लठिया बजाते रहे, जिनकी कोई संख्या नहीं है ॥ १४० ॥ गृह के एक प्रान्त में श्रीशचीमाता ऐसी सशङ्किता होकर बैठी थीं, मानों महाभय से डर कर अपने को छिपा रक्खा हो॥१४१॥परन्तु धर्म के संस्थापन करने वाले मूर्तिमान सनातन धर्मस्वरूप श्रीप्रभु ने कभी भी माताजी के ऊपर हाथ नहीं उठाया ॥ १४२ ॥ प्रभु इस प्रकार और भी अनेक बार क्रोध प्रकाशित कर चुके थे, परन्तु तथापि आपने कभी माताजी के ऊपर हाथ नहीं उठाया ॥ १४३ ॥ सब कुछ तोड़ फोड़ने के पश्चात् श्रीप्रभु क्रोध के वश आंगन में लोट लगाने लगे ॥ १४४ ॥ स्वर्ण की कान्ति वाला श्रीअङ्ग बालुका में लिपटने लगा जिससे वह महाशोभा को प्राप्त हुआ । प्रभु के ये सब चरित्र अकथनीय हैं ॥ १४५ ॥ महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर कुछ समय बालू में लोट लगाकर, स्थिर होकर चुपचाप सो गये ॥ १४६ ॥ पृथ्वी पर सोते हुए ही आपने श्री-योगनिद्रा के प्रति दृष्टि की । वह देखो आज श्रीवैकुण्ठपति पृथ्वी के ऊपर सो रहे हैं ॥ १४७ ॥ श्रीशेषजी का श्रीविग्रह जिनकी शय्या थी,श्रीलक्ष्मीजी निरन्तर जिनके चरण-कमलों की सेवा करती थी एवं महान् जिन प्रभु का चारों वेद अन्वेषण करते हैं,देखो आज वही प्रभु श्रीशचीदेवीके आँगन में निश्चित हो शयन कर रहे हैं॥१४८—१४९॥जिनके एक-एक लोम कूप में अनन्त ब्रह्माण्ड भासमान हैं, जिनके दासजन सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय कार्य करते रहते हैं;ब्रह्मा शिवादिक जिनके गुण ध्यान में रत रहते हैं,ऐसे प्रभु श्रीशचीदेवी के आँगन में

एइमत महाप्रभु स्वानुभव-रसे । निद्रा जाय देखि सर्व्व देवे कान्दे हासे ॥१५२॥
कथोक्षणे शचीदेवी माला आनाइया । गङ्गा पूजिबार सज्ज प्रत्यक्ष करिया ॥१५३॥
धीरे धीरे पुत्रेर श्री अङ्गे हस्त दिया । धूला झाड़ि तुलिते लागिला देवी गिया ॥१५४॥
'उठ उठ बाप ! मोर' हेर माला धर । आपन इच्छाय गिया गङ्गा पूजा कर ॥१५५॥
भाल हैल बाप ! यत फेलिला भाङ्गिया । जाउक तोमार सब बालाइ लइया' ॥१५६॥
जननीर वाक्य शुनि श्री गौरसुन्दर । चलिला करिते स्नान लज्जित अन्तर ॥१५७॥
एथा शची सर्व्वगृह करि उपस्कार । रन्धनेर उद्योग लागिला करिबार ॥१५८॥
यद्यपिह प्रभु एत करे अपचय । तथापि शचीर चित्ते दुःख नाहि हय ॥१५९॥
कृष्णेर चापल्य येन अशेष-प्रकारे । यशोदाये सहिलेन गोकुल-नगरे ॥१६०॥
एइमत गौराङ्गेर यत चञ्चलता । सहिलेन अनुक्षण शची जगन्माता ॥१६१॥
ईश्वरेर क्रीड़ा जानि कहिते कतेक । एइमत चञ्चलता करेन यतेक ॥१६२॥
सकल सहेन शची काय-वाक्य-मने । हइलेन आइ येन पृथिवी आपने ॥१६३॥
कथोक्षणे महाप्रभु करि गंगास्नान । गृहे आइलेन क्रीड़ामय भगवान् ॥१६४॥
विष्णु-पूजा करि तुलसीरे जल दिया । भोजन करिते प्रभु बसिलेन गिया ॥१६५॥
भोजन करिया प्रभु हैला हर्ष-मन । हासिया करेन प्रभु ताम्बूल भक्षण ॥१६६॥
धीरे धीरे आइ तबे बलिते लागिला । 'एत अपचय बाप ! कि कार्य्यो करिला' ॥१६७॥

सो गये ॥१५०–१५१॥ इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभुजी को निज अनुभव के आनन्द में स्थित हो सोते हुए देखकर सभी देवता कभी रोते थे व कभी हँसते थे ॥ १५२ ॥ कुछ समय पश्चात् श्रीशचीदेवी माला मँगवाकर और गङ्गापूजा की सामिग्री पुत्र के सामने रखकर धीरे-धीरे पुत्र के श्रीअङ्ग से अपने हस्त द्वारा धूलि झाड़ कर उन्हें उठाने लगीं ॥ १५३–१५४ ॥ श्रीमाताजी कहने लगीं कि–"बेटा ! उठो, उठो । देखो ! यह लो माला। अपनी इच्छानुसार जाकर गङ्गा पूजन करो ॥ १५५ ॥ मेरे लाल ! जो कुछ तुमने नष्ट-भ्रष्ट किया वह सब अच्छा ही किया, तुम्हारी आपत्ति-विपत्ति बलाय लेकर सब चला जाय (दुःख नहीं)" ॥१५६॥ श्रीगौरसुन्दर जननी के इस वाक्य को सुनकर कुछ हृदय में लज्जित होकर, श्रीगङ्गा-स्नान करने को चले गये ॥ १५७ ॥ इधर श्रीशचीदेवी समस्त घर को परिष्कार करके, रसोई तैयार करने का उद्योग करने लगीं ॥ १५८ ॥ यद्यपि प्रभु ने इतनी हानि की, तथापि श्रीशचीदेवी के चित्त में तनिक भी दुःख नहीं हुआ ॥ १५९ ॥ जिस प्रकार गोकुलनगरमें श्रीयशोदाजीने श्रीकृष्णकी अनेक प्रकार की महान् चञ्चलता का सहन कियाथा;उसी प्रकार जगमाता श्रीशचीदेवी निरन्तर श्रीगौरचन्द्रके सब चापल्यको सहन करती थीं॥१६०–१६१॥श्रीभगवान् की क्रीड़ा, सभी लीला मैं (लेखक) कितनी कह सकता हूँ ? प्रभु ने जितनी भी चापल्य लीला की,श्रीशची माताजी ने मनो-वाक्-काय से पृथ्वी के समान सभी कुछ सहन किया है ॥१६२–१६३॥ कुछ समय में क्रीड़ामय भगवान् श्रीमन्महाप्रभुजी गङ्गा-स्नान करके घर आये और श्रीविष्णु पूजा करके एवं तुलसीजी में जल प्रदान कर तथा भोजन करने के लिये जा बैठे ॥ १६४-१६५ ॥भोजन करके प्रभु प्रसन्न चित्त हुए और आप हँसकर पान-बीड़ी आरोग किया।।१६६।।तब श्रीशचीमाता धीरे-धीरे कहने लगीं–"मेरे लालन ! तुमने आज इतना नुकसान किस-

घर द्वार द्रव्य जत सकलि तोमार । अपचय तोमार से, कि दाय आमार ॥१६८॥
पढ़िबारे तुमि बोल एखने जाइबा । घरेते सम्बल नाहि कालि कि खाइबा' ॥१६९॥
हासे प्रभु जननीर शुनिञा बचन । प्रभु बोले 'कृष्ण पोष्टा करिब पोषण' ॥१७०॥
एत बलि पुस्तक लइया प्रभु करे । सरस्वती-पति चलिलेन पढ़िबारे ॥१७१॥
कथोच्चण विद्या-रस करि कुतूहले । जाह्नवीर तीरे आइलेन सन्ध्या-काले ॥१७२॥
कथोच्चण थाकि प्रभु जाह्नवीर तीरे । तबे पुन आइलेन आपन मन्दिरे ॥१७३॥
जननीरे डाक दिया आनिञा निभृते । दिव्य स्वर्ण तोला दुइ दिला तान हाथे ॥१७४॥
'देख माता ! कृष्ण एइ दिलेन सम्बल । इहा भांगाइया व्यय करह सकल' ॥१७५॥
एत बलि महाप्रभु चलिला शयने । परम बिस्मित हइ आइ मने गणे ॥१७६॥
'कोथा हैते सुवर्ण आनये बारे बार । पाछे कोन प्रमाद जन्माये आसि आर ॥१७७॥
जेइ-मात्र सम्बल-सङ्कोच हय घरे । सेइ एइमत सोणा आने बारे बारे ॥१७८॥
किबा धार करे, किबा कोन सिद्धि जाने । कोन रूपे कार सोणा आने वा केमने ॥१७९॥
महा-अकैतव आइ परम उदार । भांगाइते दिते ओ डराय बारे बार ॥१८०॥
'दशठाञि पाँचठाञि देखाइया आगे' । लोकेरे शिखाय आइ 'भांगाइबि तबे' ॥१८१॥
हेन-मते-महा प्रभु सर्व्व सिद्धेश्वर । गुप्तभावे आछे नवद्वीपेर भितर ॥१८२॥
ना छाड़ेन श्री हस्ते पुस्तक एकच्चण । पढुआ गोष्ठीते येन प्रत्यच्च मदन ॥१८३॥

लिये किया ॥ १६७ ॥ घर, द्वार, द्रव्य सब कुछ तुम्हारा ही है; जो हानि हुई वह भी तुम्हारी ही है; इसमें हमारा क्या स्वत्व है । कहो ! तुम तो अभी पढ़ने जाओगे, घर में तो कुछ भी सहारा नहीं है; कल क्या खाओगे ? ॥१६८-१६९॥श्रीजननी के वचनों को सुनकर प्रभु हँसे और कहने लगे कि–"मातः ! पालन कर्त्ता श्रीकृष्ण हैं; वे ही पालन करेंगे ।"इतना कहकर सरस्वतीपति प्रभु श्रीविश्वम्भरचन्द्र हाथ में पुस्तक लेकर पढ़ने को चले गये ॥ १७०–१७१ ॥ कुछ समय तक प्रसन्न मन विद्या-रस-आस्वादन करके, सन्ध्या समय श्रीगङ्गा-तीर पर पहुँचे । कुछ देर गङ्गा-तीर में ठहर कर फिर अपने घर लौट आये ॥ १७२-१७३ ॥ घर में आकर श्री-माताजी को पुकार कर एकान्त में बुलाया और दो तोला दिव्य सोना उनके हाथ रख दिया । आप कहने लगे कि–मेरी मैया ! यह देखो ! श्रीकृष्ण ने यह सहारे को दिया है; इसको तुड़वाकर सब व्यय चलाओ ॥ १७४-१७५ ॥इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु जी शयन घर में शयन करने के लिये चले गये; श्रीमाताजी परम विस्मित होकर मन ही मन विचार करने लगीं ॥ १७६ ॥ "यह सोना बार-बार कहाँ से ले आता है; ऐसा न हो कोई और झगड़ा खड़ा करवा ले । जब-जब घर में खर्च की कमी पड़ती है, तब-तब बारम्बार इसी प्रकार सोना ले आता है । न मालुम किसी से उधार करके लाता है, अथवा कोई सिद्धि जानता है; किस प्रकार से किसका सोना कैसे ले आता है" ॥ १७७–१७९ ॥ श्रीशचीमाता महानिष्कपट एवं परम उदार हैं । आप उस सुवर्ण को तुड़वाने के लिये देने में भी बार-बार डरती हैं। अपने सेवक को श्रीमाता जी सिखाती हैं कि—"दश, पाँच ठौर पहिले दिखाकर, पीछे तुड़वाना" ॥ १८०–१८१ ॥ इस प्रकार सर्व सिद्धेश्वर श्रीमन्महाप्रभुजी गुप्त भाव से श्रीनवद्वीप में रहे ॥ १८२ ॥ आप अपने श्री हस्त से एक क्षण के लिये भी पुस्तक नहीं छोड़ते तथा

ललाटे शोभये उर्द्ध-तिलक सुन्दर। शिरे श्री चाँचर-केश सर्व्व-मनोहर ॥१८४॥
स्कन्धे उपवीत, ब्रह्मतेज मूर्तिमन्त। हास्यमय श्री मुख, प्रसन्न दिब्य-दन्त ॥१८५॥
किवा से अद्भुत दुइ कमल-नयन। किवा से अद्भुत शोभे त्रिकच्छ*बसन ॥१८६॥
जेइ देखे, सेइ एकदृष्टे रूप चाय। हेन नाहि 'धन्य धन्य' बलिये ना जाय ॥१८७॥
हेन से अद्भुत ब्याख्या करेन ठाकुर। शुनिञा गुरुर हय सन्तोष प्रचुर ॥१८८॥
सकल पढ़ुया-मध्ये आपने धरिया। बसायेन गुरु सर्व्व-प्रधान करिया ॥१८९॥
गुरु बोले 'बाप! तुमि मन दिया पढ़। भट्टाचार्य्य हैबा तुमि, बलिलाङ दढ़' ॥१९०॥
प्रभु बोले 'तुमि आशीर्व्वाद कर जारे। भट्टाचार्य्य-पद कोन दुर्लभ ताहारे' ॥१९१॥
जाहारे जे जिज्ञासेन श्री गौरसुन्दर। हेन नाहि पढ़ुया जे दिवेक उत्तर ॥१९२॥
आपनि करेन तबे सूत्रेर स्थापन। शेषे आपनार व्याख्या करेन खण्डन ॥१९३॥
केहो जदि कोन मते ना पारे स्थापिते। तबे सेइ व्याख्या प्रभु करेन सुरीते ॥१९४॥
किवा स्नाने, कि भोजने, किवा पर्य्यटने। नाहिक प्रभुर आर चेष्टा शास्त्र विने ॥१९५॥
एइमते आछेन ठाकुर बिद्यारसे। प्रकाश ना करे जगतेर दिन-दोषे ॥१९६॥
हरि-भक्ति-शून्य हैल सकल संसार। असत्सङ्ग असत्पथ बहि नाहि आर ॥१९७॥
नाना रूपे पुत्रादिर महोत्सव करे। देह-गेह-ब्यतिरिक्त आर नाहि स्फुरे ॥१९८॥

छात्र-गोष्ठी में प्रत्यक्ष मदन के समान शोभा पाते थे ॥ १८३ । आपके ललाट प्रदेश में सुन्दर ऊद्र्ध्व-पुण्ड्र तिलक शोभा देता था; सर्व मनहरणकारी घुँघराले लम्बित केश-कलाप सिर पर झलमला रहे थे। स्कन्ध देश में यज्ञोपवीत सुशोभित था,मानों आप मूर्त्तिमन्त ब्रह्मतेज ही थे। परन्तु श्रीमुख के ऊपर हँसी की चाँदनी छा जाती थी,दिव्य दन्त-पंक्ति शोभा दे रही है,आपके वे दोनों नयन,कमल की तरह अद्भुत शोभा को प्राप्त होरहे थे और वह त्रिकच्छ वस्त्र क्या ही विलक्षण शोभा दे रहा था। जो कोई भी देखता, वही टकटकी लगाकर रूप को निरन्तर देखता ही रह जाता था; ऐसा कोई नहीं था जो 'धन्य-धन्य' कहकर न जाता है॥१८४-१८७॥ ठाकुर ऐसी अद्भुत व्याख्या करते थे कि जिसे सुनकर श्रीगुरुदेव परम सन्तोष होते थे ॥ १८८ ॥ श्रीगुरुदेव निज करों से श्रीविश्वम्भरचन्द्र को उठाकर सम्पूर्ण गोष्ठी के मध्य में 'सर्व प्रधान' कहकर बिठाते थे ॥ १८९ ॥ श्रीगुरुदेव ने कहा कि—'हे वत्स! विश्वम्भर! तुम मन लगाकर पढ़ो; मैं दृढ़ता पूर्वक (जोर देकर) अवश्य कहता हूँ, तुम भट्टाचार्य हो जावोगे" ॥ १९० ॥ प्रभु बोले कि—"हे श्री गुरो! जिसके ऊपर आपका आशीर्वाद हो, उसके लिये भट्टाचार्य पद प्राप्त कर लेना, कौन दुर्लभ बात है?" ॥१९१॥ श्रीगौरसुन्दर जिस किसी विद्यार्थी से जो कुछ प्रश्न करते थे, किसी में भी शक्ति नहीं, जो उसका उत्तर दे सकें ॥ १९२ ॥ तब प्रभु स्वयं उस सूत्र की स्थापन करते, फिर अपनी व्याख्या का आप ही खण्डन करके दिखाते थे ॥ १९३ ॥ यदि कोई किसी प्रकार से भी स्थापन नहीं कर सकता, तब प्रभु स्वयं उस व्याख्या को वड़ी सुन्दर रीति से स्थापन कर देते थे ॥ १९४ ॥ क्या स्नान समय, क्या भोजन समय और क्या पर्यटन समय, शास्त्र चर्चा के सिवाय श्रीप्रभु की और कोई दूसरी चेष्टा नहीं थी ॥ १९५ ॥ इसी प्रकार ठाकुर विद्यारस में निमग्न थे; संसार के दिनों के दोष से आप अपने को प्रकाशित नहीं करते थे ॥ १९६ ॥ इस समय सब संसार हरि भक्ति शून्य हो

*पटलीदार धोती बाँधकर आगे पैर पर लटकी हुई चुनावट को उठाकर नाभि के पास धोती बन्द के नीचे दाब देते हैं।

मिथ्या सुखे देखि सब लोकेर आचार । हइये वैष्णव गण दुःखित अपार ॥१९९॥
'कृष्णवलि' सर्व्वजन करेन क्रन्दन । ए सब जीवेर कृपा कर नारायण ॥२००॥
हेन देह पाइया कृष्णेते नाहि मति । कत काल गिया आर भुञ्जिव दुर्गति ॥२०१॥
जे नर शरीर लागि देवे काम्य करे । ताहा व्यर्थ जाय व्यर्थ सुखेर विहारे ॥२०२॥
कृष्ण यात्रा महोत्सव पर्व्व नाहि करे । विवाहादि कर्म लागि श्रमकरि मरे ॥२०३॥
तोमार से जीव कृष्ण तुमि से रक्षिता । कि वलिव आमरा तुमि 'त' सर्व्व पिता' ॥२०४॥
एइ मत भक्तगण सभार कुशल । चिन्तेन गायेन कृष्ण चन्द्रेर मङ्गल ॥२०५॥
विद्या-रस करे गौरचन्द्र भगवान् । ए क्षणे शुनह नित्यानन्देर आख्यान ॥२०६॥
पूर्व्वे प्रभु श्री अनन्त कृष्णेर आज्ञाय । राढ़े अवतीर्ण हइयाछेन लीलाय ॥२०७॥
हाड़ो ओझा नामे पिता, माता पद्मावती । एकचाका नामे ग्राम मौड़ेश्वर जथि ॥२०८॥
शिशु हइते सुबुद्धि सुस्थिर गुणवान् । जिनिया कन्दर्प कोटि लावण्येर धाम ॥२०९॥
सेइ हैते राढ़े हइल सर्व्व सुमंगल । दुर्भिक्ष दरिद्र दोष खण्डिल सकल ॥२१०॥
जे दिने जन्मिला नवद्वीपे गौर चन्द्र । राढ़े थाकि हुङ्कार करिला नित्यानन्द ॥२११॥
अनन्त ब्रह्माण्ड व्यापि हइल हुङ्कार । मूर्च्छागत हइल जेन सकल संसार ॥२१२॥

रहा था, असत्सङ्ग और असन्मार्ग के अतिरिक्त और कुछ नहीं थे ॥ १९७ ॥ लोग नाना प्रकार से पुत्र आदि के महोत्सव करते थे; उनको देह एवं गृह के सिवाय और कुछ नहीं सूझता है ॥ १९८ ॥ सब लोगों के मिथ्या सुख के व्यवहार देखकर वैष्णवगण परम दुःखित होते थे ॥ १९९ ॥ वह सब भक्त-जन कृष्ण ! कृष्ण ! कहते हुए क्रन्दन करते हैं औह प्रार्थना करते हैं कि–'हे नारायण! इन सब जीवों के प्रति कृपा करो ॥ २०० ॥ इन सब जीवों की ऐसा भी देह पाकर श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति नहीं है । यह जीव और कितने समय तक दुर्गति भोग करेंगे ॥ २०१ ॥ जिस नर-शरीर को पाने के लिये देवगण कामना करते रहते हैं, इनका वही नर-शरीर वृथा सुख-विहार में व्यर्थ जा रहा है ॥ २०२ ॥ यह लोग श्रीकृष्ण-भक्ति पद श्रीकृष्ण-यात्रा, महोत्सव और पर्व आदि कुछ नहीं करते हैं; केवल विवाह आदि में परिश्रम कर करके मर रहे हैं ॥ २०३ ॥ हे कृष्ण ! यह जीव आपका ही है, इसके आप रक्षक हैं, हम लोग क्या कहें आप तो सर्वपिता हैं ॥२०४॥ इसी प्रकार भक्त-जन सब जीवों की कुशल कामना करते हैं और श्रीकृष्णचन्द्र का मङ्गल-यश गान करते हैं ॥ २०५ ॥ यहाँ श्रीगौरचन्द्र भगवान् विद्या-रस केलि में लगे हुए हैं । अब उधर प्रभु-पाद श्रीनित्यानन्द जी का आख्यान सुनिये ॥ २०६ ॥ इधर पहले ही श्रीकृष्ण की आज्ञा से, श्रीअनन्तदेव (श्रीनित्यानन्द प्रभु) राढ़ देश में लीला-हेतु प्रकटित हुए ॥ २०७ ॥ आपके पिता का नाम 'श्रीहाड़ाइ ओझा', आपकी माताजी का नाम 'श्रीपद्मा-वतीदेवी' आपके जन्म-ग्राम का नाम 'एकचक्रा' जहाँ पर कि मयूरेश्वर देव विराजित हैं ॥ २०८ ॥ आप बालकपन से ही सुबुद्धि, सुस्थिर, गुणवान् और अपने श्रीअङ्ग के लावण्य धाम से कोटि कामदेवों को जीतने वाले थे ॥ २०९ ॥ आपके जन्म-दिन से ही राढ़ देश में सर्व सुमङ्गल हो गये और दुर्भिक्ष व दरिद्रता का दोष नष्ट हो गया ॥ २१० ॥ जिस दिन नवद्वीप में श्रीगौरचन्द्र अवतीर्ण हुए थे उस दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु ने श्रीराढ़देश में हुङ्कार की थी ॥ २११ ॥ वह हुङ्कार अनन्त-ब्रह्माण्ड-व्यापी हुई थी उस समय ऐसा प्रतीत हुआ

कत लोक वलिलेक हइल वज्रपात । कतलोक मनिलेक परम उत्पात ॥२१३॥
कत लोक वलिलेक जानिल कारण । गौड़ेश्वर गोसाञिर हइल गर्ज्जन ॥२१४॥
एइमत सर्व्व लोक नाना कथा गाय । नित्यानन्द केहो नाहि चिनिल मायाय ॥२१५॥
हेन मते आपना लुकाइया नित्यानन्द । शिशु-गण सङ्गे खेला करेन आनन्द ॥२१६॥
शिशु-गण सङ्गे नित्यानन्द क्रीड़ा करे । श्रीकृष्णेर वाक्य विना आर नाहि स्फुरे ॥२१७॥
देव सभा करेन मिलिया शिशु-गण । पृथिवीर रूपे केह करे निवेदन ॥२१८॥
तवे पृथ्वी लैया सभे नदीतीरे जाय । शिशु गण मेलि स्तुति करे ऊर्द्ध राय ॥२१९॥
कोन शिशु लुकाइया ऊर्द्ध करि बोले । जन्मिवाङ आमि गिया मथुरा गोकुले ॥२२०॥
कोन दिन निशा भागे शिशु-गणलैया । वसुदेव देवकीर करायेन विया ॥२२१॥
बन्दिघर क्करिया अत्यन्त निशा भागे । कृष्ण-जन्म करायेन केह नाहि जागे ॥२२२॥
गोकुल सृजिया तथि आनेन कृष्णेरे । महामाया दिला लइया भाण्डिला कंसेरे ॥२२३॥
कोन शिशु साजायेन पूतनार रूपे । केहो स्तन पान करे उठि तार बुके ॥२२४॥
कोन दिन शिशु सङ्गे नल-खड़ि दिया । शकट गढ़िया ताहा फेलेन भाङ्गिया ॥२२५॥
निकटे वसये जत गोयालार घरे । अलक्षिते शिशु-सङ्गे गिया चुरि करे ॥२२६॥
तारे छाड़ि शिशु-गण नाहि जाय घरे । रात्रि दिन नित्यानन्द संहति विहरे ॥२२७॥

था मानो समस्त संसार को मूर्च्छा हो गई ॥ २१२ ॥ उस समय कुछ लोग कहने लगे कि—बज्र-पात हुआ है और कुछ अन्य लोगों ने कोई परम उत्पात समझा ॥ २१३ ॥ कुछ लोग बोले कि—समझ लिया कारण, गौड़ेश्वर प्रभु ने तर्ज्जना की है ॥ २१४ ॥ उस दिन सब लोग इसी प्रकार की नाना बातें करते थे; परन्तु माया के वशीभूत होने के कारण कोई यह नही समझ सका कि—वह श्रीनित्यानन्द प्रभु ने हुङ्कार की है ॥ २१५ ॥ इसी प्रकार अपने को छिपाकर श्रीनित्यानन्द प्रभु बालकों के संग खेल खेलकर आनन्दित होते थे ॥ २१६ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु के मुख से बालकों के साथ खेलते समय श्रीकृष्ण विषयक वाक्यों के अतिरिक्त अन्य और कुछ निकलते न थे ॥ २१७ ॥ क्रीड़ा के समय अब शिशुगण मिलकर 'देव-सभा' का खेल करते तो एक बालक अपने को पृथ्वी जानकर उनकी सभा में अपना निवेदन सुनाता ॥ २१८ ॥ तब वे सब पृथ्वी को साथ लेकर नदी के किनारे पर जाते और ऊँचे स्वर से सब बालकगण मिलकर प्रभु की स्तुति करते थे ॥ २१९ ॥ तब शिशु छिपकर ऊँचे स्वर से कहता कि—मैं मथुरा-गोकुल में जाकर जन्म लूँगा ॥ २२० ॥ किसी दिन रात्रि के समय दो शिशुओं को लेकर बसुदेव-देबकी का विवाह कराते हैं ॥२२१॥ घोर अँधेरी रात में एक बन्दी-घर बनाकर उसमें श्रीकृष्ण का जन्म कराते, उस समय गाँव के लोग तो सोते थे ॥२२२॥ पास में ही गोकुल नगर बनाकर पूर्व स्थान से श्रीकृष्ण को वहाँ ले आते और कंस बने हुए शिशु के पास, महामाया बने हुए शिशु को ले जाकर उस (कंस) से छल करते थे ॥ २२३ ॥ एक बालक को 'पूतना' बनाते और श्रीकृष्ण बने हुए शिशु उसके वक्ष-स्थल पर चढ़कर उसका स्तन पान करते थे ॥ २२४ ॥ किसी दिन बालकों के साथ नल (नरसल) ब खड़िया द्वारा शकट रचना करके उसको तोड़ कर फेंक देते थे ॥ २२५ ॥ (आप श्रीनित्यानन्द प्रभु) श्रीकृष्ण के हृदय में ग्वाल-बाल बने हुए शिशुगणों के साथ, निकटवर्त्ती ग्वालाओं के घर अलक्षित रूप

जाहार बालक तारा किछु नाहि बोले । सबे स्नेह करिया राखेन लइया कोले ॥२२८॥
सभे बले नाहि देखि हेन मत खेला । के मने जानिल शिशु एत कृष्ण-लीला ॥२२६॥
कोन दिन पत्रेर गढ़िया नाग गण । जले जाय संहति लइया शिशु-गण ॥२३०॥
झाँप दिया पड़े केहो अचेष्ट हइया । चेतन्य कराय पाछे आपने आसिया ॥२३१॥
कोन दिने तालबने शिशु सङ्गे गिया । शिशु-सङ्गे ताल खाय धेनुके मारिया ॥२३२॥
शिशु-सङ्गे गोष्ठे गिया नाना क्रीड़ा करे । बक, अघ, वत्स करिया ताहा मारे ॥२३३॥
विकाले आइसे घर गोष्ठोर सहिते । शिशु-गण-सङ्गे शृङ्ग बाइते वाइते ॥२३४॥
कोन दिन करे गोवर्द्धन धर लीला । वृन्दावन रचि कोन दिन करे खेला ॥२३५॥
कोन दिन करे गोपीर बसन-हरण । कोन दिन करे जज्ञ पत्नी दरशन ॥२३६॥
कोन शिशु नारद काचये दाढ़ि दिया । कंस स्थाने मन्त्र कहे निभृते बसिया ॥२३७॥
कोन दिन कोन शिशु अक्रूरेर वेशे । लइया जाय 'रामकृष्ण' कंसेर आदेशे ॥२३८॥
आपने जे गोपी भावे करेन क्रन्दन । नदी वहे हेन जेन देखे शिशु-गण ॥२३६॥
विष्णु माया मोहे केहो लखिते ना पारे । नित्यानन्द संगे सब बालक विहरे ॥२४०॥
मधुपुरी रचिया भ्रमेण शिशु संगे । केह हय माली केह माला परे रंगे ॥२४१॥

से जाकर चोरी करते थे ॥ २२६ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु को छोड़कर बालक-वृद्ध अपने घर नहीं जाते थे, वे सब रात्रि दिन उनके साथ ही खेलते (बिहार करते) रहते थे ॥ २२७ ॥ जिनके बालक आपके साथ में रहते थे वे भी आपसे कुछ नहीं कहते; वरन् सभी स्नेह करके गोदी में ले लेते थे ॥ २२८ ॥ वह सब कहते कि–हमने तो ऐसे खेल कभी नहीं देखे हैं, इस बालक ने इतनी 'कृष्ण-लीला' किस प्रकार जान ली ? ॥ २२६ ॥ किसी दिन आप पत्रों द्वारा नाग-गण रचना करके शिशु-वृन्द को अपने साथ लेकर जल के पास जाते॥२३०॥ वहाँ जाकर एक बालक अचेष्ट होकर जल में कूद पड़ता था; पीछे प्रभु स्वयं जाकर उसको चेतन कराते थे ॥ २३१ ॥ किसी दिन खेल में शिशुगण को साथ ले जाकर तालवन में धेनुकासुर को मारकर ताल-फल खाने की लीला करते ॥ २३२ ॥ एवं सब बालकों के साथ गोष्ठ में जाकर नाना प्रकार की क्रीड़ा करते थे–वकासुर, अघासुर, वत्सासुर बना-बनाकर उसका बध करने की लीला करते थे ॥२३३॥ वहाँ से तृतीय-प्रहर में गोष्ठी के साथ जिसमें कि शिशुगण शृङ्ग बजाते बजाते लौट कर घर आते थे ॥ २३४ ॥ किसी दिन गोवर्द्धन-धारण की लीला करते तो किसी दिन वृन्दावन रचन कर उसमें क्रीड़ा-विहार करते थे ॥ २३५ ॥ किसी दिन गोपियों के वस्त्र-हरण लीला करते तो किसी दिन यज्ञ-पत्नियों को दर्शन देने की लीला करते थे ॥२३६॥ किसी दिन एक शिशु दाढ़ी लगाकर नारद-बेश धारण करके कंस के पास जाकर एकान्त में उसके हित की बात उससे कहता था ॥ २३७ ॥ किसी दिन एक शिशु श्रीअक्रूर के बेश से कंस महाराज के आदेशानुसार श्रीबलरामजी व श्रीकृष्ण को ब्रज से ले जाता है ॥ २३८ ॥ उस समय आप (श्रीनित्यानन्द प्रभु) गोपी-भाव से क्रन्दन करने लगते; प्रभु की अश्रुधारा नदी रूप होकर बहने लगती थी। बालकगण प्रभु की ओर देखते ही रह जाते थे ॥ २३६ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ सब बालक-वृन्द बिहार करते थे; उस समय श्रीविष्णु-माया से मोहित होने के कारण कोई भी (आपको) जान नहीं पाता था॥२४०॥ किसी दिन श्रीमधु-

कुब्जा वेश करि गन्ध परे तार स्थाने । धनुक करिया भांगे करिया गर्ज्जने ॥२४२॥
कुवलय चाणूर मुष्टिक मल्ल मारि । कंस करि काहारो, पाड़ये चूले धरि ॥२४३॥
कंस बध करिया चलये शिशु-संगे । सर्व्व लोक देखि हासे बालकेर रंगे ।।२४४॥
एइ मत जत जत अवतार लीला । सब अनुकरण करिया करे खेला ॥२४५॥
कोन दिन नित्यानन्द हइया बामन । बलिराजा करि चले ताहार भवन ।२४६॥
बृद्ध काछे शुक्र रूपे केह माना करे । भिक्षा लइया शेषे प्रभु चढ़े बलि शिरे ॥२४७॥
कोन दिन नित्यानन्द सेतु-बन्ध करे । बाननेर रूप सब शिशु गण-धरे ॥२४८॥
भेरेण्डार गाछ काटि फेलायेन जले । शिशु-गण मेलि जय रघुनाथ बले ॥२४९॥
श्री लक्ष्मण रूप प्रभु धरिया आपने । धनु धरि कोपे चले सुग्रीवेर स्थाने ॥२५०॥
आरेरे बानरा ! मोर प्रभु दुःख पाय । प्राण ना लइब जदि तवे झाट आय ॥२५१॥
सुवेल पर्व्वते मोर प्रभु पाय दुःख । नारीगण लइया बेटा तुमि कर सुख ॥२५२॥
कोन दिन क्रुद्ध हये परशुरामेरे । मोर दोष नाहि विप्र पलाह सत्वरे ॥२५३॥
लक्ष्मणेर भावे प्रभु हय सेइ रूप । बुझिते ना पारे शिशु मानये कौतुक ॥२५४॥
पञ्च बाननेर रूपे बले शिशुगण । वार्त्ता जिज्ञासये प्रभु हइया लक्ष्मण ॥२५५॥

पुरी रचना करके उसमें शिशुगण के साथ आप भ्रमण करते थे; उस समय कोई शिशु माली बन जाता और कोई शिशु आनन्दपूर्वक माला पहिनता था॥२४१॥किसी बालक को कुब्जा वेश बनाकर प्रभु उससे गन्ध अनुलेपन कराते;धनुष बनाकर फिर गर्जनकर उसे तोड़ने की लीला करते,कुवलया पीड़ हस्ती एवं चाणूर व मुष्टिक मल्लों को मारकर तथा किसी शिशु को कंस बनाकर, उसके केश पकड़ कर नीचे गिराते ॥ २४२-२४३॥ और कंस-बध करके शिशुओं के साथ चले जाते थे; बालकों के इस आनन्ददायक खेल को देखकर सब लोग हँसते थे ॥ २४४ ॥ इसी प्रकार श्रीकृष्ण अवतार की जितनी भी लीला हैं, वे सब अनुकरण करके खेल खेलते थे ॥ २४५ ॥ किसी दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीवामन रूप बनकर एवं एक शिशु को 'बलि' राजा बनाकर उसके भवन पर जाते ॥२४६॥ दूसरा एक शिशु वृद्ध-वेश में श्रीशुक्राचार्य रूप से बलि राजा को 'मना' करता, अन्त में प्रभु भिक्षा लेकर बलि के सिर पर चढ़ते थे ॥ २४७ ॥ किसी दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु सेतु-बन्ध रचना करते थे, उस समय सब शिशु-गण बन्दर रूप बन जाते थे ॥ २४८ ॥ और अरण्डी के वृक्ष काट-काट कर जल में फेंकते थे साथ ही शिशु-गण मिलकर 'जय रघुनाथजी की' बोलते थे ॥ २४९ ॥ किसी दिन प्रभु स्वयं श्री लक्ष्मणजी का रूप धारण करके, धनुष लेकर, क्रोधयुक्त होकर सुग्रीव के पास जाते ॥ २५० ॥ और कहते-अरे ओ वानरा ! मेरे प्रभु दुःख पा रहे हैं जो तू जल्दी ही आ जावे तो तेरे प्राण नहीं लूँगा ॥ २५१ ॥ मेरे प्रभु तो सुवेल पर्वत पर दुःख पा रहे हैं और तुम बेटा ! स्त्री-गण लेकर सुख भोग रहे हो ! ॥२५२॥ किसी दिन प्रभु श्रीलक्ष्मण भाव से श्रीपरशुराम जी के प्रति क्रोध करते और कहते कि ऐ विप्र ! शीघ्र वहाँ से भाग जाओ; नहीं तो फिर मेरा दोष नहीं है ॥ २५३ ॥ प्रभु श्रीलक्ष्मण के भाव से ठीक उसी रूप में हो जाते थे, जिसको शिशु-गण समझ नहीं पाते और बड़ा आश्चर्य मानते थे॥२५४॥फिर किसी दिन प्रभु श्रीलक्ष्मण होकर बातें पूछते और शिशु-गण पञ्च-वानर (सुग्रीव एवं उसके हनूमान आदि ४ मन्त्री) रूप उत्तर देते थे ॥२५५॥

के तोरा बानर सब बल एइ बने । आमि रघुनाथभृत्य बल मोर स्थाने ।।२५६।।
तारा बले आमरा बालिर भये बुलि । देखा ओ श्री रामचन्द्र लइ पद-धूलि ।।२५७।।
ता सभारे सङ्गे करि आइला लइया । श्री रामचरणे पड़े दण्डवत हइया ।।२५८।।
इन्द्रजित-वध लीला कोन दिन करे । कोनोदिन आपने लक्ष्मण भावे हारे ।।२५९।।
विभीषण करिया आनेन राम स्थाने । लङ्केश्वर अभिषेक करेन ताहाने ।।२६०।।
कोनो शिशु बले मुञि आइलुँ रावण । शक्ति शेल हानि एइ, सम्बर लक्ष्मण ।।२६१।।
एत बलि पद्मपुष्प मारिल फेलिया । लक्ष्मणेर भावे प्रभु पड़िला ढ़लिया ।।२६२।।
मूर्च्छित हइला प्रभु लक्ष्मणेर भावे । जगायेन सब शिशु तभु नाहि जागे ।।२६३।।
परमार्थे धातु नाहि सकल शरीरे । कान्दये सकल शिशु हाथ दिया शिरे ।।२६४।।
शुनि माता पिता धाइ आइला सत्वरे । देखये पुत्रेर धातु नाहिक शरीरे ।।२६५।।
मूर्च्छित हइया दोँहे पड़िला भूमिते । देखि सर्व्व लोक आसि हइला विस्मिते ।।२६६।।
सकल वृतान्त कहिलेन शिशुगण । केह केह बुझिलेन भावेर कारण ।।२६७।।
पूर्व्वे दशरथ भावे एक नटवर । राम बनवासी शुनि त्यजे कलेवर ।।२६८।।
केह बले 'काच काचियाछे जे छाओयाल । हनूमान औषधि दिले हइ बेजे भाल ।।२६९।।

प्रभु पूछते कि–ऐ सब वानरो ! बतलाओ तुम कौन हो ? मैं श्रीरामचन्द्र जी का सेवक हूँ, हमको बतलाओ तुम वन में क्यों फिर रहे हो ? ।। २५६ ।। वे उत्तर देते कि–हम सब 'बालि' के भय से फिरते हैं आप हमको श्रीरामचन्द्र दर्शन करा दीजिये हम जाकर उनकी पद-धूलि लें।। २५७।। प्रभु उन सबको साथ लेकर आते और वे सब श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत् करते ।। २५८ ।। किसी दिन आप इन्द्रजीत-वध लीला करते और किसी दिन आप श्रीलक्ष्मण भाव से हार जाते थे ।। २५९ ।। किसी दिन एक शिशु को विभीषण बनाकर उसे श्रीरामचन्द्र जी के पास लाते; श्रीरामचन्द्र जी उसको लङ्केश्वर कह के अभिषेक करते ।। २६० ।। किसी दिन कोई एक शिशु कहता कि–देखो ! मैं रावण सामने आया हूँ, लक्ष्मण ! तुम सावधान होओ यह देखो ! मैं शक्ति (सेल) प्रहार करता हूँ ।। २६१ ।। ऐसा कह कर उसने कमलपुष्प फेंका एवं प्रभु लक्ष्मण भाव में उस समय ढल गये ।। २६२ ।। उस समय प्रभु श्रीलक्ष्मण के भाव से मूर्च्छित हो गये; सब शिशु आपको जगाते हैं परन्तु तो भी आप जागृत अवस्था में नहीं आते हैं ।। २६३ ।। सचमुच ही आपके सम्पूर्ण शरीर में (प्राण) नहीं हैं सब बालक आपकी ऐसी दशा देखकर सिर पर हाथ रखकर रोने लगे ।। २६४ ।। इस बात को सुनकर प्रभु के माता-पिता शीघ्र ही दौड़कर आये और आकर देखा कि–सचमुच ही पुत्र के शरीर में (प्राण) नहीं है ।। २६५ ।। तब तो बह दोनों मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े तथा सब लोग आकर यह आश्चर्य-जनक दृश्य देखकर बड़े विस्मित हुए।।२६६।।लोगों के पूछने पर शिशु-गण ने समस्त वृतान्त कह सुनाया तब उनमें से कोई २ प्रभु के इस भावावेश का कारण इस प्रकार अनुमान किये कि–।। २६७ ।। जैसे पूर्व काल में एक श्रेष्ठ नाट्यकार ने श्रीरामचन्द्र जी का वनवास सुनकर श्रीदशरथ के भाव से अपना शरीर छोड़ दिया था, स्यात् उसी प्रकार का भाव इनको भी न हो गया हो ।। २६८ ।। कोई कहता है कि–'जिस बालक ने हनूमानजी का वेश धारण कर रक्खा है उसके द्वारा औषधि देने से यह अच्छे

पूर्व्वे प्रभु शिखाइया छिलेन सभारे। पड़िले तोमरा वेड़ि कान्दिह आमारे ॥२७०॥
क्षणेक विलम्वे पाठाइया हनूमान। नाके दिले ओषधि आसिवे मोर प्राण ॥२७१॥
निज भावे प्रभु मात्र हइला अचेतन। देखि बड़ विकल हइला शिशु-गण ॥२७२॥
छन्न हइलेन सभे शिक्षा नाहि स्फुरे। उठ भाइ! वलि मात्र कान्दे उच्च स्वरे ॥२७३॥
लोक मुखे शुनि कथा हइल स्मरण। हनूमान काचे शिशु चलिला तखन ॥२७४॥
आर एक शिशु पथे तपस्वीर वेशे। फल मूल दिया हनूमानेरे, आशंसे ॥२७५॥
'रह बाप! धन्य कर आमार आश्रम। बड़ भाग्ये आसि मिले तोमा हेन जन ॥२७६॥
हनूमान वले 'कार्य्य गौरवे चलिव। आसिवारे चाहि, रहिवारे ना पारिव ॥२७७॥
शुनियाछ रामचन्द्र अनुज लक्ष्मण। शक्ति शेले ताँरे मूर्च्छा करिल रावण ॥२७८॥
अतएव जाव आमि गन्ध मादन। औषध आनिले रहे ताँहार जीवन' ॥२७९॥
तपस्वी बलये 'जदि जाइवे निश्चय। स्नान करि किछु खेये करह विजय' ॥२८०॥
नित्यानन्द शिक्षाते बालके कथा कय। विस्मत हइया सर्व्व लोके रहि चाय ॥२८१॥
तपस्वीर बोले सरोवरे गेला स्नाने। जले थाकि आर शिशु धरिला चरणे ॥२८२॥
कुम्भीरेर रूप धरि जाय जले लैया। हनूमान शिशु आने कूलेते टानिञा ॥२८३॥

हो जाँयगे' ॥२६६॥ वैसे तो प्रभु ने पहिले ही सब शिशु-गण को सिखा दिया कि—'मेरे मूर्च्छित होने पर तुम सब मुझे चारों ओर से घेरकर मेरे लिये क्रन्दन करना ॥ २७० ॥ थोड़ी देर पीछे हनूमानजी से औषधि मँगवाना, फिर उसको मुझे सुँघा देना तो मेरे प्राण लौट आवेंगे ॥ २७१ ॥ इतना कहते ही प्रभु जब श्रीलक्ष्मण भाव से अचेतन हो गये तो प्रभु की यह दशा देखकर शिशु-गण बड़े विकल हुए ॥ २७२ ॥ वे सब खिन्न हो गये थे, ऐसी दशा में उन्हें प्रभु प्रदत्त-शिक्षा स्मरण नहीं हो रही थी, वह केवल 'उठो भाई!' बोल-बोल कर उच्च स्वर से क्रन्दन कर रहे थे ॥ २७३ ॥ अब लोगों के मुख से यह प्रसङ्ग सुनकर कि—जिस बालक ने श्री-हनूमान जी का वेश धारण किया उसके दवा देने से यह अच्छे हो जाँयगे) उनको प्रभु प्रदत्त-शिक्षा स्मरण हो आई, तब श्रीहनूमान वेशधारी बालक ने औषधि लेने के लिए प्रस्थान किया ॥ २७४ ॥ एक और शिशु रास्ते में तपस्वी के वेश में फल-मूल देकर श्रीहनूमानजी को आशीर्वाद देने लगा और कहने लगा कि॥२७५॥ हे प्रिय! यहाँ पर कुछ विश्राम कीजिये और हमारे आश्रम को धन्य कीजिये; आप जैसे पुरुष बड़े भाग्य से आकर मिलते हैं ॥ २७६ ॥ हनूमानजी कहते हैं कि—मैं एक विशेष गौरव कार्य के लिये जा रहा हूँ, फिर लौटना भी है, इसलिये मैं ठहर नहीं सकता ॥ २७७ ॥ तुमने सुना है कि—श्रीरामचन्द्र जी के छोटे भाई श्री-लक्ष्मण जी को रावण ने शक्ति-वाण से मूर्च्छित कर दिया है ॥२७८॥ अतएव मैं दवा लाने के लिये जिससे कि उनके जीवन की रक्षा हो, गन्धमादन पर्वत पर जा रहा हूँ ॥ २७९ ॥ तपस्वी कहता कि—"यदि आपको जाना निश्चय ही है तो यहाँ स्नान करके कुछ खाकर आप पधारिये" ॥ २८० ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु की शिक्षा से बालक परस्पर इस प्रकार बातें करते हैं सब लोग विस्मित होकर उनकी ओर देखते हैं॥२८१॥श्रीहनूमानजी तपस्वी के कहने से स्नान करने के लिये सरोवर में उतरते मात्र जल में छिपे हुए एक और शिशु ने आपके चरण पकड़ लिये ॥ २८२ ॥ और मगर का रूप धरकर वह राक्षस उन्हें जल में ले गया, हनूमान-शिशु उनको

कथोक्षणे रण करि जिनिञा कुम्भीर। आसि देखे हनूमान आर महाबीर ॥२८४॥
आर एक शिशु धरि राक्षसेर काचे। हनूमान खाइबारे जाय तार पाछे ॥२८५॥
'कुम्भीर जिनिला, मोरे जिनिबा केमने। तोमाखाङ, तबे केबा जीयाबे लक्ष्मणे' ॥२८६॥
हनूमान बोले तोर रावण कुक्कुर। तारे नाहि वस्तु बुद्धि, तुइ पाला दूर ॥२८७॥
एइमते दुइ जने हय गाला गाली। शेषे हय चूलाचूली तबे किलाकिली ॥२८८॥
कथोक्षणे से कौतुके जिनिञा राक्षसे। गन्धमादने आसि हइला प्रवेशे ॥२८९॥
तँहि गन्धर्व्वेर बेश धरि शिशुगण। तासभार सङ्गे युद्ध हय कथोक्षण ॥२९०॥
युद्धे पराजय करि गन्धर्व्वेर गण। शिरे करि आनिलेन गन्धमादन ॥२९१॥
आर एक शिशु तँहि वैद्य रूप धरि। औषध दिलेन नाके श्रीराम स्मङरि ॥२९२॥
नित्यानन्द महाप्रभु उठिला तखने। देखि माता-पिता-आदि हासे सर्व्व जने ॥२९३॥
कोले करिलेन गिया हाड़ाइ पण्डित। सकल बालक हइलेन हरषित ॥२९४॥
सभे बोले 'बाप! इहा कोथाय शिखिला?'। हासि बोले प्रभु 'मोर ए सकल लीला' २९५॥
प्रथम वयस प्रभु अति सुकुमार। कोले हैते कारो चित्त नाहि एड़िबार ॥२९६॥
सर्व्व लोके पुत्र हैते बड़ स्नेह वासे। चिन्तिते ना पारे केहो विष्णु माया-वशे ॥२९७॥
हेन मते शिशु काल हैते नित्यानन्द। कृष्णलीला बिना आर ना करे आनन्द ॥२९८॥
पिता माता गृह छाड़ि सर्व्व शिशु-गण। नित्यानन्द-संहति विहरे अनुक्षण ॥२९९॥

खींचकर किनारे पर ले आया ॥ २८३ ॥ इसी प्रकार थोड़ी देर युद्ध करके मगर को जीतकर श्रीहनूमानजी ने ऊपर आकर एक और महावीर को देखा ॥ २८४ ॥ एक और शिशु राक्षस का वेश धारण करके हनूमानजी को खाने के लिये उनके पीछे दौड़ा ॥ २८५ ॥ उसने कहा कि—तुमने मगर को तो जीत लिया परन्तु मुझे कैसे जीतोगे? अगर मैं तुमको खा जाऊँ तो लक्ष्मण को कौन जिवायेगा? ॥ २८६ ॥ श्रीहनूमान जी बोले—"तेरा रावण तो कुत्ता है, मैं उसको कोई वस्तु नहीं समझता हूँ, तू दूर हट ॥ २८७ ॥ इसी भाँति से दोनों में पहिले गाली-गलौज हुई, फिर बाल नोंचा-नोंची और अन्त में मुक्का-मुकी होने लगी ॥ २८८ ॥ कुछ क्षण में श्रीहनूमानजी खेल ही में राक्षस को जीतकर गन्धमादन पर्वत पर जा पहुँचे ॥ २८९ ॥ वहाँ पर शिशुगण गन्धर्वों का वेश धारण करके कुछ देर श्रीहनूमान जी के साथ युद्ध में प्रवृत्त हुए ॥ २९० ॥ अन्त में श्रीहनूमानजी गन्धर्व-गण को युद्ध में परास्त करके गन्धमादन को सिर पर रखकर ले आये ॥ २९१ ॥ एक और शिशु वहीं वैद्य का रूप धारण करके 'श्रीराम' स्मरण कर श्रीलक्ष्मण जी की नाक में औषधि देता है ॥२९२॥ तब श्रीनित्यानन्द महाप्रभु उठ बैठे हैं इनको देखकर माता-पिता आदि सब लोग हर्षित हुए ॥ २९३ ॥ श्री-हाड़ाइ पण्डित जाकर उन्हें गोदी में उठाया तथा सब बालक प्रसन्न हो गये ॥ २९४ ॥ सब लोग कहने लगे कि बालक! यह खेल कहाँ सीखे हो? प्रभु ने हँसकर उत्तर दिया कि—'यह सब मेरी ही लीला है' ॥ २९५ ॥ प्रभु की बालक वयस थी आप अति सुकुमार थे, आपको गोदी में उतारने की किसी की इच्छा नहीं होती थी ॥ २९६ ॥ सब लोग आपको पुत्र से भी अधिक स्नेह करते थे, परन्तु विष्णु-माया के वशीभूत होकर आपको कोई समझ नहीं पाता था ॥ २९७ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु बालकपन से ही श्रीकृष्ण-लीला के

से सब शिशुर पाये रहु नमस्कार। नित्यानन्द सङ्गे जार एमत विहार ॥३००॥
एइमत क्रीड़ा करे नित्यानन्द राय। शिशु हैते कृष्णलीला विने नाहि भाय ॥३०१॥
अनन्तेर लीला केबा पारे कहिवारे। ताहान कृपाय जेन मत स्फुरे जारे ॥३०२॥
हेनमते द्वादश वत्सर थाकि घरे। नित्यानन्द चलिलेन तीर्थ करि वारे ॥३०३॥
तीर्थ-जात्रा करिलेन विंशति वत्सर। तवे शेषे आइलेन चैतन्य-गोचर ॥३०४॥
नित्यानन्द तीर्थ-जात्रा शुन आदिखण्डे। जे प्रभुरे निन्दे दुष्ट पापिष्ठ पाषण्डे ॥३०५॥
जे प्रभु करिल सर्व्व-जगत-उद्धार। करुणा समुद्र जाहा वहि नाहि आर ॥३०६॥
जाहार कृपाये जानि चैतन्येर तत्त्व। जे प्रभुरे द्वारे व्यक्त चैतन्य महत्त्व ॥३०७॥
शुन श्री चैतन्य प्रियतमेर कथन। जे मते करिला तीर्थ-मण्डली-भ्रमण ॥३०८॥
प्रथमे चलिला प्रभु तीर्थ वक्रेश्वर। तवे वैद्यनाथ वने गेला एकेश्वर ॥३०९॥
गया गिया काशीगेला शिव-राजधानी। जहिं धारा वहे गङ्गा उत्तर वाहिनी ॥३१०॥
गङ्गा देखि बड़ सुखी नित्यानन्दराय। स्नान करे पान करे आर्ति नाहि जाय ॥३११॥
प्रयागे करिला माघ मासे प्रातः स्नान। तवे मथुराय गेला पूर्व्व जन्म स्थान ॥३१२॥
जमुना विश्राम घाटे करि जल केलि। गोवर्द्धन पर्व्वत वुलेन कुतूहली ॥३१३॥
श्री वृन्दावन आदि जत द्वादशवन। एके एके प्रभु सब करेन भ्रमण ॥३१४॥

सिवाय और कुछ क्रीड़ा (खेल) नही करते थे ॥ २९८ ॥ सब शिशुगण माता-पिता तथा घर को छोड़कर निरन्तर श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ विहार करते रहते थे।'२९९॥उन सब शिशु-गण के चरणों में मेरा नमस्कार निवेदन हो जिनका श्रीनित्यानन्द प्रभु के सङ्ग इस प्रकार का विहार होता था ॥ ३०० ॥ श्रीनित्यानन्द राय इसी प्रकार की सब क्रीड़ाएँ करते थे बालकपन से ही आपको श्रीकृष्ण-लीलाओं के सिवाय और कुछ नहीं भाता था ॥३०१॥ श्रीअनन्तदेव की लीला कौन वर्णन कर सकता है ? केवल उनकी कृपा से जिसको जितनी स्फूर्ति प्राप्त होती है वह उतना ही वर्णन कर पाता है ॥ ३०२ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु १२ वर्ष घर में रहे पश्चात् तीर्थाटन करनेके लिये चल पड़े॥३०३॥आपने बीसवर्ष तीर्थयात्रा में लगाये,फिर अन्तमें श्रीकृष्ण-चैतन्यप्रभु के गोचर होते हैं॥३०४॥नित्यानन्द की तीर्थयात्रा सुनो,जिन प्रभुकी दुष्ट, पापी,पाखण्डी ही निन्दा करते हैं॥३०५॥ जिन प्रभु ने सम्पूर्ण संसार का उद्धार किया व जिन प्रभु के सिवाय करुणा-समुद्र अन्य कोई नहीं है उन श्रीनित्यानन्द प्रभु की तीर्थ यात्रा (कथा) श्रोतागण इस ग्रन्थ के आदिखण्ड में सुनें ॥३०६॥ जिन प्रभु की कृपा से श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु का तत्त्व समझ में आता है, जिन प्रभु के द्वारा श्रीचैतन्यचन्द्र का महत्त्व व्यक्त हुआ एवं होता है, उन श्रीचैतन्यचन्द्र के प्रियतम श्रीनित्यानन्द प्रभु का चरित्र सुनिये कि जिस प्रकार उन्होंने तीर्थ मण्डली में भ्रमण किया था ॥ ३०७-३०८ ॥ प्रभु प्रथम वक्रेश्वर तीर्थ गये फिर वहाँ से अकेले वैद्य-नाथ-वन को गमन किया; श्रीगयाजी जाकर फिर शिव-राजधानी श्रीकाशी को जहाँ श्रीगङ्गाजी की उत्तर वाहिनी धारा बहती है ॥ ३०९-३१० ॥ श्रीनित्यानन्द राय श्रीगङ्गाजी को देखकर बड़े आनन्दित हो स्नान करते जल-पान करते तो भी उनकी तृप्ति नहीं होती थी ॥३११॥ माघमास में प्रयाग जाकर प्रातः स्नान करके वहाँ से फिर श्रीकृष्ण के पूर्व जन्म स्थान श्रीमथुराजी को गये ॥ ३१२ ॥ वहाँ श्रीयमुना जी के विश्राम-

गोकुले नन्देर घर-वसति देखिया । विस्तर रोदन प्रभु करिला वसिया ॥३१५॥
तबे प्रभु मदन गोपाल नमस्करि । चलिल हस्तिनापुर-पाण्डवेर पुरी ॥३१६॥
भक्त स्थान देखि प्रभु करेन क्रन्दन । ना वुझे तैर्थिक भक्तिशून्येर कारण ॥३१७॥
*वलराम- कीर्त्ति देखि हस्तिना नगरे । 'त्राहि हलधर' ! वलि नमस्कार करे ॥३१८॥
तबे द्वारकाय आइलेन नित्यानन्द । समुद्रे करिला स्नान हइला आनन्द ॥३१९॥
सिद्ध पुर गेला जथा कपिलेरस्थान । मत्स्य-तीर्थे महोत्सवे करिला अन्नदान ॥३२०॥
शिव काञ्ची विष्णु-काञ्ची गेला नित्यानन्द । देखि हासे दुइ गने महा-महा द्वन्द्व ॥३२१॥
कुरुक्षेत्रे पुण्योदक विन्दु—सरोवरे । प्रभासे गेलेन सुदर्शन-तीर्थवरे ॥३२२॥
त्रितकूप महातीर्थ गेलेन विशाला । तबे ब्रह्म तीर्थ चक्रतीर्थेरे चलिला ॥३२३॥
प्रतिस्रोता गेला यथा प्राची सरस्वती । नैमिष-अरण्ये तबे गेला महामति ॥३२४॥
तबे गेला नित्यानन्द अयोध्या नगर । राम-जन्म-भूमि देखि कान्दिला विस्तर ॥३२५॥
तबे गेला गुहक चण्डाल राज्य जथा । महा-मूर्च्छा नित्यानन्द पाइलेन तथा ॥३२६॥
गुहक चण्डाल मात्र हइल स्मरण । तिन दिन आछिला आनन्दे अचेतन ॥३२७॥

घाट पर जल-केलि करके आनन्दित होकर श्रीगोवर्द्धन पर्वत की परिक्रमा की ॥३१३॥ फिर प्रभु ने श्रीवृन्दावन आदिक द्वादश बन में एक-एक करके भ्रमण किया ॥३१४॥ तत्पश्चात् गोकुल जाकर वहाँ श्रीनन्द बाबा के वास-स्थान को देखकर प्रभु ने बैठकर बड़ा क्रन्दन किया ॥ ३१५ ॥ फिर प्रभु श्रीमदनगोपालजी को प्रणाम करके पाण्डवों की पुरी श्रीहस्तिनापुर गये ॥ ३१६ । भक्त-स्थान हस्तिनापुर को देखकर प्रभु ने क्रन्दन किया, क्रन्दन का तात्पर्य, वहाँ के तैर्थिक ब्राह्मण भक्ति-शून्य होने के कारण कुछ नहीं समझे ॥३१७॥ तथा यहाँ पर श्रीबलराम जी की कीर्त्ति के चिह्नों को देखकर 'त्राहि हलधर !' कहकर नमस्कार करने लगे ॥३१८॥ फिर श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीद्वारकापुरी गये, वहाँ समुद्र में स्नान करके आनन्दित हुए ॥ ३१९ ॥ फिर कपिलमुनि के आश्रम 'सिद्धपुर' को गये तथा मत्स्य-तीर्थ में जाकर महोत्सव करके अन्न दान किया ॥ ३२० ॥ फिर श्रीनित्यानन्द प्रभु शिवकाञ्ची तथा विष्णुकाञ्ची पहुँचे, वहाँ पर दोनों स्थानों के दोनों दलों के संन्यासियों के बीच भीषण कलह देखकर श्रीप्रभु हँसने लगे ॥ ३२१ ॥ तब प्रभु कुरुक्षेत्र, पुण्य-सलिल श्रीबिन्दु-सरोवर तीर्थ, प्रभास व तीर्थवर सुदर्शन को गये ॥ ३२२ ॥ प्रभु फिर त्रितकूप, महातीर्थ, विशाल को गये तदनन्तर ब्रह्म-तीर्थ एवं चक्रतीर्थ को गये ॥ ३२३ ॥ फिर प्रतिस्रोता तीर्थ को जहाँ पर पूर्ववाहिनी श्रीसरस्वती जी हैं, फिर महामति श्रीनित्यानन्द प्रभु नैमिषारण्य को गये ॥ ३२४ ॥ फिर श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीअयोध्यापुरी पहुँचे, श्रीरामचन्द्रजी की जन्म-भूमि को देखकर आपने वहाँ बहुत क्रन्दन किया ॥३२५॥ तब श्रीनित्यानन्द प्रभु गुहक-चाण्डाल के राज्य स्थान को गये वहाँ पहुँच कर आप महान् मूर्च्छा को प्राप्त हो गये॥३२६॥'गुहक-चाण्डाल'

---

* बलराम कीर्ति-एक समय जाम्ववती-पुत्र शाम्ब, दुर्योधन की पुत्री 'लक्ष्मणा' को हर लाये । तब दुर्योधन व कर्ण आदि शाम्ब को युद्ध में परास्त कर अपने नगर में ले गये । तब नारदजी से बलदेवजी ने यह वार्त्ता सुनी तो वह हस्तिनापुर गये । जब दुर्योधनादि श्रीबलदेवजी के साथ समझौता करने पर राजी न हुए तो उन्होंने क्रोधित होकर अपने हल द्वारा पृथ्वी का आकर्षण किया । वह चिह्न अभी वर्त्तमान है ।

जे जे बने आछिला ठाकुर रामचन्द्र । देखिया विरहे गड़ि जाय नित्यानन्द ॥३२८॥
तवे गेला सरयू कौशिकी मुनि स्थान । तवे गेला पुलह आश्रम पुण्य-स्थान ॥३२९॥
गोमती गण्डकी शोण तीर्थे स्नान करि । तवे गेला महेन्द्र पर्व्वत चूडोपरि ॥३३०॥
परशुरामेरे तँहि करि नमस्कार । तवे गेला गङ्गा-जन्मभूमि हरिद्वार । ३३१॥
पम्पा भीमरथी गेला सप्त गोदावरी । वेण्वातीर्थे वियासाय मञ्जन आचरि । ३३२॥
कार्त्तिक देखिया नित्यानन्द महामति । श्रीपर्ब्वत गेला जथा महेश-पार्व्वती ॥३३३॥
ब्राह्मण-ब्राह्मणी रूपे महेश-पार्व्वती । सेइ श्रीपर्व्वते दोंहे करेन वसति ॥३३४।
निज-इष्टदेव चिनिलेन दुइजने । अवधूत रूपे करे तीर्थ पर्य्यटने ॥३३५॥
परम सन्तोषे दोंहे अतिथि देखिया । पाक करिलेन देवी हरषित हैया ॥३३६॥
परम आदरे भिक्षा दिलेन प्रभुरे । हासि नित्यानन्द दोंहाकारे नमस्करे ॥३३७॥
एकान्ते कि कथा हैल, कृष्ण से जानेन । तवे नित्यानन्द प्रभु द्रविड़े गेलेन ॥३३८॥
देखिया वेङ्कटनाथ कामकोष्ठी पुरी । काञ्ची सरिद्वरा गिया गेलेन कावेरी ॥३३९॥
तवे गेला श्रीरङ्गनाथेर पुण्य-स्थान । तवे करिलेन हरिक्षेत्रेर पयान ॥३४०॥
ऋषभ पर्व्वत गेला दक्षिण मथुरा । कृतमाला ताम्रपर्णी यमुना-उत्तरा ॥३४१॥
मलय पर्व्वत गेला अगस्त्य आलय । ताहाराओ हृष्ट हैला देखि महाशय ॥३४२॥
ता सभार आदर लइया नित्यानन्द । वदरिकाश्रम गेला परम आनन्द ॥३४३॥

मात्र स्मरण होते ही आप तीन दिन तक आनन्द से विह्वल हो अचेतन पड़े रहे ॥ ३२७ ॥ जिस-जिस बन में ठाकुर श्रीरामचन्द्र रहे थे उस वन को देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभु विरह से पृथ्वी पर लोट-पोट हो जाते थे ॥३२८॥ फिर सरयू नदी के तट पर श्रीकौशिक-मुनि के आश्रम पर गये व पुण्य-स्थान श्रीपुलह ऋषि के आश्रम पर भी पहुँचे ॥ ३२९ ॥ और गोमती, गण्डकी, शोण तीर्थ-स्नान करके महेन्द्र पर्वत की शिखर के ऊपर चढ़ गये ॥३३०॥ वहाँ श्रीपरशुरामजी को नमस्कार करके श्रीगङ्गा जी की जन्म-भूमि श्रीहरिद्वार को गये ॥३३१॥ फिर पम्पा, भीमरथी, सप्त गोदावरी को गये और वेण्वातीर्थ में जलपान करके स्नान किया ॥ ३३२ ॥ फिर श्रीनित्यानन्द महामति श्रीकार्तिकजी के दर्शन करके श्रीपर्वत पर पहुँचे जहाँ पर श्रीमहेश व पार्वतीजी विराजमान हैं ॥ ३३३ ॥ उस श्रीपर्वत पर श्रीमहेश व पार्वती जी ब्राह्मण व ब्राह्मणी के रूप में निवास करते थे ॥ ३३४ ॥ उन दोनों जनों ने अपने इष्टदेव को अवधूत रूप में तीर्थ पर्य्यटन करते हुए पहिचान लिया ॥३३५॥ वह दोनों प्रभुको अतिथि देखकर परम प्रसन्न हुए तथा श्रीपार्वतीदेवी ने हर्षित होकर रसोई तैयार की॥३३६॥ और परम सत्कार पूर्वक प्रभु को प्रसाद पवाया है, श्रीनित्यानन्द प्रभु ने हँसकर दोनों को नमस्कार किया ॥ ३३७ ॥ पश्चात् एकान्त में उनके साथ क्या २ बातें हुईं यह तो श्रीकृष्ण ही जानें, तदनन्तर श्रीनित्यानन्द प्रभु द्रविड देश को पधारे ॥ ३३८ ॥ फिर श्रीवेङ्कट-नाथ व काम-कोष्ठी पुरी देखकर काञ्ची व सरिद्वरा होते हुए 'कावेरी' पहुँचे ॥ ३३९ ॥ फिर पुण्य स्थल श्रीरङ्गनाथ जी के स्थान पर जाकर हरिक्षेत्र को पयान किया ॥ ३४० ॥ फिर ऋषभ पर्वत व दक्षिण-मथुरा, कृतमाला, ताम्रपर्णी एवं उत्तर यमुना को गये ॥ ३४१ ॥ फिर मलय पर्वत पर श्रीअगस्त्य मुनि के आश्रम पर पहुँचे वहाँ के निवासी भी श्रीनित्यानन्द प्रभु के दर्शन करके

कथो दिन नर नारायणेर आश्रमे । आछिलेन नित्यानन्द परम निर्ज्जने ॥३४४॥
तबे नन्दी ग्रामे गेला ब्यासेर आलय । ब्यास चिनिलेन बलराम महाशय ।।३४५॥
साक्षात् हइया ब्यास आतिथ्य करिला । प्रभु ओ ब्यासेर दण्ड प्रणत हइला ॥३४६॥
तबे नित्यानन्द गेला बौद्धेर भवन । देखि लेन प्रभु वसि आछे बौद्ध-गण ॥३४७॥
जिज्ञासेन प्रभु केहो उत्तर ना करे । क्रुद्ध हय प्रभु लाथि मारिलेन शिरे ॥३४८॥
पलाइल बौद्ध गण हासिया हासिया । वने भ्रमे नित्यानन्द निर्भय हइया ॥३४९॥
तबे प्रभु आइलेन कन्यका-नगर । दुर्गा देवी देखि गेला दक्षिण सागर ।।३५०॥
तबे नित्यानन्द गेला श्रीअनन्त पुरे । तबे गेला पञ्च अप्सरा-सरोवरे ॥३५१॥
गोकर्णाख्य गेला प्रभु शिवेर मन्दिरे । केरलेते त्रिगर्त्तके बुले घरे घरे ॥३५२॥
द्वैपायनी आर्य्या देखि नित्यानन्द राय । निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी भ्रमेन लीलाय ॥३५३॥
रेवा माहिष्मती पुरी मल्लतीर्थ गेला । सूर्पारक दिया प्रभु प्रतीची चलिला ॥३५४॥
एइमत अभय परमानन्द राय । भ्रमे नित्यानन्द भय नाहिक कोथाय ॥३५५॥
निरन्तर कृष्णावेशे शरीर अवश । क्षणे कान्दे क्षणे हासे के बुझे से रस ॥३५६॥
एइमत नित्यानन्द प्रभुर भ्रमण । दैवे माधवेन्द्र सहे हइल मिलन ॥३५७॥
माधवेन्द्रपुरी प्रेम मय कलेवर । प्रेममय जत सब सङ्गे अनुचर ॥३५८॥

बड़े आनन्दित हुए ॥३४२॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु उन सबके सत्कार को ग्रहण करके परम आनन्दपूर्वक श्रीवदरिकाश्रम को चले गये ॥ ३४३ ॥ फिर कुछ दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु नर-नारायण के परम निर्जन आश्रम में रहे ॥ ३४४ ॥ फिर नन्दी ग्राम में श्रीव्यास आश्रम पर आये, वहाँ पर श्रीव्यासजी ने महामति श्रीबलरामजी को पहिचान लिया ॥ ३४५ ॥ तथा प्रकट होकर प्रभु का आतिथ्य-सत्कार किया, श्रीप्रभु ने भी श्रीव्यासजी को दण्डवत् प्रणाम किया ॥३४६॥ फिर श्रीनित्यानन्द प्रभु बौद्धों के आश्रम पर पहुँचे वहाँ आपने बौद्ध-गणों को बैठे हुए देखा ॥ ३४७ ॥ प्रभु ने उनसे कुछ पूछा, परन्तु उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब प्रभु ने क्रोधित होकर उनके सिर पर लात का प्रहार किया ॥३४८॥ तब सब बौद्ध हँसते हुए भाग गये, इधर श्रीनित्यानन्द प्रभु निर्भय होकर बन में भ्रमण करने लगे ॥ ३४९ ॥ फिर प्रभु कन्यका नगर पहुँचे वहाँ दुर्गादेवी के दर्शन करके दक्षिण सागर को गये ॥ ३५० ॥ तब श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीअनन्तपुर को गये, फिर पञ्च अप्सरा-सरोवर पहुँचे ॥ ३५१ ॥ फिर गोकर्ण नामक श्रीशिवजी के मन्दिर पर पहुँचे तथा केरल व त्रिगर्त्त में जाकर वहाँ के घर-घर पर आप विचरण करने लगे ॥ ३५२ ॥ फिर श्रीनित्यानन्द राय द्वैपायनी आर्य्या (द्वीप-निवासिनी श्रीपार्वती देवी) के दर्शन करके आनन्दपूर्वक निर्विन्ध्या, तापी एवं पयोष्णी का भ्रमण किया ॥ ३५३ ॥ फिर आप रेवा, महेश्वरपुरी, मल्ल-तीर्थ को गये तथा सूर्पारक होकर प्रतीची पहुँचे ॥३५४॥ इस प्रकार अभय परमानन्द-धनी श्रीनित्यानन्द प्रभु ने किसी का डर न करते हुए भ्रमण किया ॥३५५॥ आपका शरीर निरन्तर श्रीकृष्ण-आवेश से अवश रहता था, क्षण में आप क्रन्दन करते और दूसरे ही क्षण हँसने लगते उस रस को कौन समझ पाता था ॥ ३५६ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु को भ्रमण करते हुए दैवयोग से श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी का मिलन हो गया ॥३५७॥ श्रीमाधवेन्द्रपुरी का शरीर प्रेममय था, आपके सब अनुचर भी प्रेममय थे ॥३५८॥

कृष्ण रस विना आर नाहिक आहार । माधवेन्द्र पुरी देहे कृष्णेर विहार ॥३५६॥
जार शिष्य महाप्रभु-आचार्य्य गोसाञि । कि कहिव आर तार प्रेमेर बड़ाइ ॥३६०॥
माधवपुरी रे देखिलेन नित्यानन्द । ततक्षणे प्रेमे मूर्च्छा हइल निष्पन्द ॥३६१॥
नित्यानन्द देखि मात्र श्री माधव-पुरी । पड़िला मूर्च्छित हइया आपना पोसरि ॥३६२॥
भक्ति रसे आदि माधवेन्द्र सूत्रधार । गौरचन्द्र इहा कहियाछेन बार बार ॥३६३॥
दोंहे मूर्च्छा हइलेन दोंहा दरशने । कान्दये ईश्वर पुरी आदि शिष्य गणे ॥३६४॥
क्षणेके हइला बाह्य दृष्टि दुइ जने । अन्योऽन्ये गलाय धरि करेन क्रन्दने ॥३६५॥
बने गड़ि जाय दुइ प्रभु प्रेमरसे । हुङ्कार करये दुइ प्रेमेरे आवेशे ॥३६६॥
प्रेम नदी वहे दुइ प्रभुर नयाने । पृथिवी हइया सिक्त धन्य हेन माने ॥३६७॥
कम्प, अश्रु, पुलक, भावेर अन्त नाञि । दुइ देहे विहरये चैतन्य गोसाञि ॥३६८॥
नित्यानन्द बोले जत तीर्थ करिलाङ । सम्यक् ताहार फल आज पाइलाङ ॥३६९॥
नयने देखिलुँ माधवेन्द्रेर चरण । ए प्रेम देखिया धन्य हइल जीवन ॥३७०॥
माधवेन्द्रपुरी नित्यानन्द करि कोले । उत्तर ना स्फुरे रुद्ध कण्ठ प्रेम जले ॥३७१॥
हेन प्रीत हइलेन माधवेन्द्र पुरी । बक्ष हैते नित्यानन्द बाहिर ना करि ॥३७२॥
ईश्वर पुरी परमानन्द पुरी आदि जत । सर्व्व शिष्य हइलेन नित्यानन्देर मत ॥३७३॥
सभे जत महाजन सम्भाषा करेन । कृष्ण प्रेम काहारो शरीरे ना देखेन ॥३७४॥

कृष्ण-रस के सिवाय आपका अन्य आहार नही था आपकी देह में श्रीकृष्ण ही विहार करते थे ॥ ३५६॥ जिनके शिष्य श्रीमहान प्रभु आचार्य श्रीअद्वैत प्रभु हैं फिर भला उनके प्रेम की प्रशंसा और कहाँ तक कहँ ॥ ३६० ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी को देखकर तत्क्षण प्रेम से मूर्च्छित होकर निष्पन्द हो गये ॥ ३६१ ॥ श्रीमाधवेन्द्रपुरी भी श्रीनित्यानन्द प्रभु को देखते ही अपने शरीर की सुधि-बुधि भूलकर मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥ ३६२ ॥ 'श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी भक्ति रस के प्रथम सूत्रधार हैं' यह बात श्रीगौरचन्द्र प्रभु ने बार-बार कही है ॥३६३॥ दोनों जने परस्पर में दोनों के दर्शन करके मूर्च्छित हो गये और श्रीईश्वरपुरी आदि शिष्यगण रोने लगे ॥ ३६४ ॥ थोड़ी देर में ही दोनों की बाह्य दृष्टि हुई तब वह दोनों परस्पर में एक दूसरे के गले में बाँह डालकर क्रन्दन करने लगे ॥ ३६५ ॥ दोनों ही प्रभु प्रेम-रस से बन में लोट-पोट होते थे तथा दोनों ही प्रेमावेश में हुङ्कार करते थे ॥ ३६६ ॥ दोनों प्रभुओं के नेत्रों से प्रेम की नदियाँ बह रही थीं पृथ्वी सिञ्चित होकर अपने को धन्य मान रही थी ॥ ३६७ ॥ दोनों के शरीरों में कम्प, अश्रु, पुलक आदि भावों का अन्त नहीं था। दोनों के देहों में श्रीचैतन्यचन्द्र प्रभु विहार करते थे ॥ ३६८ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु कहने लगे कि—मैंने जितने तीर्थ भ्रमण किये हैं, उनका सम्यक् फल आज ही पाया है । ३६९ ॥ मैंने अपने नेत्रों से श्रीमाधवेन्द्र-चरण दर्शन पाये, इस प्रेम को देखकर मेरा जीवन धन्य होगया ॥ ३७० ॥ श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी श्रीनित्यानन्द प्रभु को गोदी में लेकर कुछ भी नहीं बोल पाते, आपका गला प्रेम-जल से भर गया ॥ ३७१ ॥ श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी को श्रीनित्यानन्द प्रभु से ऐसी प्रीति हुई कि उनको अपने वक्ष-स्थल से अलग नहीं करते थे ॥ ३७२ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु की तरह ही श्रीईश्वरपुरी एवं श्रीपरमानन्द पुरी आदि सब

सभेइ पायेन दुःख जन सम्भाषिया । अतएव बने सभे भ्रमेन देखिया ॥३७५॥
अन्योऽन्ये से सब दुःखेर हैल नाश । अन्योऽन्ये देखि कृष्ण प्रेमेर प्रकाश ॥३७६॥
कथो दिन नित्यानन्द माधवेन्द्र सङ्गे । भ्रमेन श्री कृष्ण कथा-परानन्द-रङ्गे ॥३७७॥
माधवेन्द्र कथा अति अद्भुत कथन । मेघ देखिलेइ मात्र हय अचेतन ॥३७८॥
अहर्निश कृष्ण प्रेमे मद्यपेर प्राय । हासे कान्दे है है करे हाय हाय ॥३७९॥
नित्यानन्द महा-मत्त गोविन्देर रसे । ढुलिया ढुलिया पड़े अट्ट अट्ट हासे ३८०॥
दोंहार अद्भुत भाव देखि शिष्य गण । निरवधि 'हरि' बलि करये कीर्त्तन ॥३८१॥
रात्रि दिन केहो नाहि जाने प्रेम रसे । कत काल जाय, केहो क्षण नाहि वासे ॥३८२॥
माधवेन्द्र सङ्गे जत हइल आख्यान । के जानये ताहा-कृष्णचन्द्र से प्रमाण ॥३८३॥
माधवेन्द्र नित्यानन्दे छाड़िते ना पारे । निरवधि नित्यानन्द संहति विहरे ॥३८४॥
माधवेन्द्र बोले प्रेम ना देखिलुँ कोथा । सेइ मोर सर्व्व-तीर्थ हेन प्रेम जथा ॥३८५॥
जानिलुँ कृष्णेर कृपा आछे मोर प्रति । नित्यानन्द हेन बन्धु पाइलुँ संहति ॥३८६॥
जे से स्थाने जदि नित्यानन्द सङ्ग हय । सेइ स्थान सर्व्व तीर्थ-वैकुण्ठादि मय ॥३८७॥
नित्यानन्द हेन भक्त शुनिले श्रवणे । अवश्य पाइव कृष्णचन्द्र सेइ जने ॥३८८॥

शिष्यगण की वही-दशा थी।।६७३।।श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीमाधवेन्द्र पुरी संसार में जितने बड़े २ आदमियों से बात-चीत करते थे उनमें से किसी के शरीर में कृष्ण-प्रेम का दर्शन नहीं पाते थे ।।३७४।। दोनों ही संसारी मनुष्यों से सम्भाषण करके दुखी होते थे इस कारण दोनों ही वन में भ्रमण करते थे ।।३७५।। अब इस समय एक दूसरे को देखकर उस समस्त दुःख का नाश होगया और परस्पर में श्रीकृष्ण प्रेम का प्रकाश दीखने लगा ।। ३७६ ।। श्रीनित्यानन्द प्रभु कुछ दिन श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी के साथ श्रीकृष्ण-कथा के परमानन्द रस में निमग्न हुए भ्रमण करते रहे ।।३७७।। श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी की भी अत्यन्त अद्भुत-कथा थी कि–आप मेघ देखते मात्र ही अचेतन हो जाते थे ।। ३७८ ।। श्रीकृष्ण प्रेम में रात दिन मद्यप की तरह आप कभी हँसते,कभी रोते, कभी 'है' 'है' करते तथा कभी 'हाय' 'हाय' करते थे ।। ३७९ ।। इधर श्रीनित्यानन्द प्रभु भी श्रीकृष्ण प्रेम में महामत्त हो रहे थे आप ढुल-ढुल पड़ते और जोर से अट्टहास करके हँसते थे ।।३८०।। शिष्यगण दोनों प्रभुओं के अद्भुत भाव को देखकर निरन्तर 'हरि' 'हरि' बोलकर कीर्त्तन करते थे ।। ३८१ ।। प्रेम-रस में मग्न होकर कोई भी यह नहीं जानता था कि अब रात्रि है या दिन । कितना ही समय क्यों न बीत जाय,वह एक क्षण ही मालुम होता था ।।३८२।। श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी के साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु की जो कुछ कथा-वार्त्तायें हुईं उनको कौन जानता है ? अर्थात् श्रीकृष्ण ही जानें उसमें तो प्रमाणस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं ।। ३८३ ।। श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी श्रीनित्यानन्द प्रभु को छोड़ नहीं पाते वह निरन्तर श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ ही विचरण करते थे ।। ३८४ ।। श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी कहते थे कि–मैंने ऐसा प्रेम कहीं नहीं देखा, जहाँ ऐसा प्रेम है वही स्थान मेरे लिये सर्व-तीर्थमय है ।। ३८५ ।। मैं जानता हूँ कि–मेरे ऊपर श्रीकृष्ण की कृपा है तभी तो श्रीनित्यानन्द जैसे बन्धु मुझे मिले ।। ३८६ ।। 'चाहे जैसे स्थान पर भी श्रीनित्यानन्द प्रभु का सङ्ग हो, वही स्थान सर्व तीर्थ मय एवं श्रीवैकुण्ठ आदि मय है' ।। ३८७ ।। श्रीनित्यानन्द जैसे भक्त का नाम कानों से सुनने से, सुनने वाला

नित्यानन्दे जाहार तिलेक द्वेष रहे । भक्त हइले ओ से कृष्णेर प्रिय नहे' ॥३८९॥
एइ मत माधवेन्द्र नित्यानन्द प्रति । अहर्निश बोलेन करेन रति मति ॥३९०॥
माधवेन्द्र प्रति नित्यानन्द महाशय । गुरु-बुद्धि व्यतिरिक्त आर ना करय ॥३९१॥
एइ मत अन्योऽन्ये दुइ महामति । कृष्ण-प्रेमे ना जानेन कोथा दिवा-राति ॥३९२॥
कथो दिन माधवेन्द्र सङ्गे नित्यानन्द । थाकिया चलिला शेषे जथा सेतुबन्ध ॥३९३॥
माधवेन्द्र चलिला सरजू देखिवारे । कृष्णावेशे केहो निज देह नाहि स्मरे ॥३९४॥
अतएव जीवनेर रक्षा से विरहे । वाह्य थाकिले कि से-विरहे प्रान रहे ॥३९५॥
नित्यानन्द-माधवेन्द्र-दुइ-दरशन । जे शुनये तारे मिले कृष्ण-प्रेमधन ॥३९६॥
हेन मते नित्यानन्द भ्रमे प्रेम रसे । सेतुबन्धु आइलेन कथोक दिवसे ॥३९७॥
धनु-तीर्थे स्नान करि गेला रामेश्वर । तवे प्रभु आइलेन विजया नगर ॥३९८॥
मायापुरी अवन्ती देखिया गोदावरी । आइलेन जिओड़-नृसिंह देव पुरी ॥३९९॥
त्रिमल्ल देखिया कूर्म्म-नाथ पुण्य स्थान । शेषे नीलाचल-चन्द्र देखिते पयान ॥४००॥
आइलेन नीलाचल-चन्द्रेर नगरे । ध्वजा देखि मात्र मूर्च्छा हइला शरीरे ॥४०१॥
देखिलेन चतुर्व्यूहरूप जगन्नाथ । प्रकट परकानन्द सुभद्रादि साथ ॥४०२॥
देखि मात्र हइलेन आनन्दे मूर्च्छिते । पुन वाह्य हय पुन पड़े पृथिवी ते ॥४०३॥

अवश्य श्रीकृष्णचन्द्र को पावेगा' ॥ ३८८ ॥ 'जिसका श्रीनित्यानन्दजी के प्रति तिल-मात्र भी द्वेष रहेगा वह भक्त होने पर भी श्रीकृष्ण का प्रिय नहीं होगा' ॥ ३८९ ॥ श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी दिन रात इसी प्रकार श्रीनित्यानन्द के प्रति कहते और उनसे प्रीति-बुद्धि करते थे ॥ ३९० ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी के प्रति गुरु-बुद्धि के सिवाय अन्य कोई भाव नहीं रखते थे ॥ ३९१ ॥ इसी प्रकार दोनों महामति एक दूसरे के प्रति भाव रखते और कृष्ण-प्रेम में रात दिन कहाँ डूबे हुए जाते हैं यह नहीं जान पाते थे ॥ ३९२ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु कुछ दिन श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी के साथ रहकर अन्त में सेतुबन्ध की ओर चले गये ॥ ३९३ ॥ इधर श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी भी सरयू-दर्शन के लिये चल दिये; कृष्ण-प्रेम में आविष्ट महान् दोनों से किसी को भी अपनी देह की सुधि नहीं है ॥ ३९४ ॥ इसीलिये दोनों के परस्पर बिछुड़ने पर विरह से दोनों के जीवन की रक्षा हो गई, यदि उस समय वाह्य दशा होती तो क्या इस विरह में दोनों के प्राण रहते ? ॥ ३९५ ॥ जो कोई श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी के परस्पर मिलन की कथा सुनेगा उसे कृष्ण-प्रेम-धन प्राप्त होगा ॥ ३९६ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु प्रेम-रस में मग्न हुए भ्रमण करते २ कुछ दिन में सेतुबन्ध जा पहुँचे ॥ ३९७ ॥ वहाँ धनु-तीर्थ में स्नान करके रामेश्वर गये, तब प्रभु विद्यानगर पहुँचे ॥ ३९८ ॥ फिर मायापुरी, अवन्तिका, गोदावरी दर्शन करते हुए जिओड़-नृसिंह देव पुरी में आये ॥ ३९९ ॥ तब फिर त्रिमल्ल एवं श्रीकूर्म्म-नाथ के पुण्य स्थान दर्शन करते हुए अन्त में श्रीनीलाचलचन्द्र (श्रीजगन्नाथजी) दर्शन करने के लिये प्रस्थान किया ॥४००॥ जब आप श्रीनीलाचलचन्द्र के नगर में आये तो आप ध्वजा देखते मात्र ही मूर्च्छित हो गये ॥ ४०१ ॥ फिर सुभद्रादि के साथ परमानन्द प्रगट करने वाले चतुर्व्यूह मूर्त्ति श्रीजगन्नाथजी के दर्शन किये ॥ ४०२ ॥ दर्शन करते ही आप आनन्द से मूर्च्छित हुए एवं आपको बार २ वाह्य ज्ञान होता तथा पुन

कम्प, स्वेद, पुलकाश्रु, आछाड़ हुङ्कार। के कहिते पारे नित्यानन्देर विकार ॥४०४॥
एइ मत कथो दिन वसि नीला चले। देखि गङ्गासागर आइला कुतूहले ॥४०५॥
तान तीर्थ-जात्रा सब के पारे कहिते। किछु लिखिलाङ मात्र तार कृपा हैते ॥४०६॥
एइ मत तीर्थ भ्रमि नित्यानन्द राय। पुनर्ब्बार आसिया मिलिला मथुराय ॥४०७॥
निरवधि वृन्दावने करेन वसति। कृष्णेर आवेशे ना जानेन दिवा राति ॥४०८॥
आहार नाहिक-कदाचित दुग्ध पान। सेहो जदि अजाचित केहो करे दान ॥४०९॥
नवद्वीपे गौरचन्द्र आछे गुप्त भावे। इहा नित्यानन्द स्वरूपेर मने जागे ॥४१०॥
'आपन ऐश्वर्य्य प्रभु प्रकाशिबे जबे। आमि गिया करिमु आपन सेवा तबे' ॥४११॥
एइ मानसिक करि नित्यानन्द राय। मथुरा छाड़िया नवद्वीपे नाहि जाय ॥४१२॥
निरवधि विहरये कालिन्दीर जले। शिशु सङ्गे वृन्दावने धूला खेला खेले ॥४१३॥
जद्यपिओ नित्यानन्द धरे सर्व्व शक्ति। तथापिओ कारे नाहि देन कृष्ण-भक्ति ॥४१४॥
'जबे गौरचन्द्र प्रभु करिबे प्रकाश। तार आज्ञा लइया भक्ति-दानेर विलास' ॥४१५॥
केहो किछु ना करे चैतन्य आज्ञा बिने। इहाते अल्पता नाहि पाय प्रभु गणे ॥४१६॥
कि अनन्त किवा शिव, अजादि देवता। चैतन्य-आज्ञाय हर्त्ता कर्त्ता पालयिता ॥४१७॥
इहाते जे पापि-गण मने दुःख पाय। वैष्णवेर अदृश्य सेइ पापी सर्व्वथाय ॥४१८॥
साक्षातेइ देख सभे एइ त्रिभुवने। नित्यानन्द द्वारा पाइलेन प्रेम धने ॥४१९॥

मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ते थे ॥ ४०३ ॥ आपके शरीर में कम्प, स्वेद, पुलक, अश्रु, पछाड़खाना एवं हुङ्कार करना आदि सात्त्विक भावों का वर्णन कौन कर सकता है ?॥४०४॥श्रीनित्यानन्द प्रभु इसी प्रकार कुछ दिन नीलाचल में रहकर आनन्दयुक्त होकर श्रीगङ्गासागर दर्शन करने के लिये चले गये ॥ ४०५ ॥ आपकी सम्पूर्ण तीर्थ-यात्रा का वर्णन कौन कर सकता है ? उनकी कृपा द्वारा ही मैंने कुछ लिखा है ॥ ४०६ ॥ श्री-नित्यानन्द राय इस प्रकार तीर्थ भ्रमण करके पुनः श्रीमथुरा जी पहुँचे हैं ॥ ४०७ ॥ आप निरन्तर वृन्दावन में ही रहते और उनकी कृष्णा-वेश में दिन-रात की सुधि नहीं रहती थी ॥४०८॥ आहार तो करते ही नहीं थे। कभी २ दुग्ध पान हो जाता था, वह भी यदि कोई बिना माँगे ही दे जाता ॥ ४०९ ॥ श्रीनित्यानन्द स्वरूप के मन ही मन यह जाग्रति होती थी कि-इस समय नवद्वीप में श्रीगौरचन्द्र गुप्त भाव से विराजमान हैं ॥४१०॥ 'जब प्रभु अपना ऐश्वर्य प्रकाश करेंगे तब ही मैं जाकर अपनी सेवा करूँगा ॥ ४११ ॥ श्रीनित्यानन्दराय अपने मन में यही विचार करके श्रीमथुराजी छोड़कर श्रीनवद्वीप नहीं जाते थे ॥ ४१२ ॥ आप निरन्तर श्रीयमुना-जल में विहार करते थे तथा बालकों के साथ वृन्दावन की धूल में खेल-खेलते रहते थे ॥ ४१३ ॥ यद्यपि श्री-नित्यानन्द प्रभु सब शक्ति धारण किये हुए थे फिर भी आप किसी को श्रीकृष्ण-भक्ति नहीं देते थे ॥ ४१४ ॥ आपके मन में ऐसा है कि-'जब श्रीगौरचन्द्र प्रभु आत्म-प्रकाश करेंगे उस समय उनकी आज्ञा से भक्ति-दान का विलास होगा' ॥ ४१५ ॥ श्रीचैतन्यचन्द्र प्रभु की आज्ञा के बिना कोई कुछ नहीं करता है इससे प्रभु परि-कर में कोई अल्पता नहीं आती ॥ ४१६ ॥ क्या श्रीअनन्तदेव क्या शिवजी और क्या श्रीब्रह्मा आदि देवगण सभी श्रीचैतन्यचन्द्र प्रभु की आज्ञानुसार हर्त्ता, कर्त्ता एवं पालक हैं ॥ ४१७ ॥ इस बात से जो पापी मन में

चैतन्येर आदि भक्त नित्यानन्द राय । चैतन्येर जश वैसे जाहार जिह्वाय ॥४२०॥
अहर्निश चैतन्येर कथा प्रभु कहे । ताने भजिले से चैतन्य-भक्ति हये ॥४२१॥
आदिदेव जय जय नित्यानन्द राय । चैतन्य महिमा स्फुरे जाहार कृपाय ॥४२२॥
चैतन्य कृपाय हय नित्यानन्दे रति । नित्यानन्द जानिले आपद जाय कति ॥४२३॥
संसारेर पारहइ भक्तिरसागरे । जे डूबिबे से भजुक निताइ चान्देरे ॥४२४॥
केहो बोले 'नित्यानन्द जेन बलराम' । केहो बोले 'चैतन्येर बड़ प्रिय-धाम' ॥४२५॥
किवा जति नित्यानन्द किवा भक्त ज्ञानी । जार जेन मत इच्छा ना बोलये केनि ॥४२६॥
जे से केने चैतन्येर नित्यानन्द नहे । तथापि से पाद पद्म रहुक हृदये ॥४२७॥
एत परिहारेओ जे पापी निन्दाकरे । तवे लाथि मारों तार शिरेर उपरे ॥४२८॥
कोन चैतन्येर लोक नित्यानन्द प्रति । मन्द बले हेन देख, से केवल स्तुति ॥४२९॥
नित्य शुद्ध ज्ञानवन्त वैष्णव सकल । तबे जे कलह देख, सब कुतूहल ॥४३०॥
इथे एक जनेर जे पक्ष हैया हासे । अन्य जने निन्दा करे क्षय जाय शेषे ॥४३१॥
नित्यानन्द स्वरूपे से निन्दा ना लओयाय । तार पथे थाकिले से गौरचन्द्र पाय ॥४३२॥
हेन दिन हैब कि चैतन्य नित्यानन्द । देखिब वेष्टित चतुर्दिके भक्त-वृन्द ॥४३३॥

दुःखी हो वह पापी सर्वथा वैष्णवजनों के लिये अदर्शनीय है।।४१८।।प्रत्यक्ष ही देखो,इस त्रिभुवनमें सबने श्रीनित्यानन्द द्वारा ही प्रेम-धन प्राप्त किया है ।।४१९।। श्रीनित्यानन्द राय श्रीचैतन्य प्रभु के आदि-भक्त हैं जिनकी जिह्वा पर श्रीचैतन्य प्रभु का यश विराजमान है ।। ४२० ।। इस प्रकार प्रभु निरन्तर श्रीचैतन्यप्रभु की कथा कहते थे, इनको भजने से भजने वाले को श्रीचैतन्य प्रभु के प्रति भक्ति हो जाती है ।। ४२१ ।। हे आदिदेव श्रीनित्यानन्द राय ! आपकी जय हो ! जय हो ! आपकी कृपा से ही श्रीचैतन्य प्रभु की महिमा स्फूर्त्ति होती है ।। ४२२ ।। और श्रीचैतन्य प्रभु की कृपा से श्रीनित्यानन्द के प्रति प्रीति-बुद्धि होती है श्रीनित्यानन्द प्रभु के जान लेने पर आपदाएँ न जाने कहाँ चली जाती हैं ।। ४२३ ।। जो संसार समुद्र के पार होकर भक्ति समुद्र में डूबने के इच्छुक हों वह श्रीनित्यानन्दचन्द्र का भजन करें ।। ४२४ ।। कोई कहता है कि 'श्रीनित्यानन्द श्रीबलराम हैं' । कोई कहता है कि-'श्रीचैतन्य-प्रभु के बड़े प्रिय-धाम हैं' ।। ४२५ ।। श्रीनित्यानन्द प्रभु को 'यति' व 'भक्त' अथवा 'ज्ञानी' जिसकी जैसी इच्छा हो क्यों न कहे मेरे हृदय में तो उनके चरण-युगल सदा रहे ।। ४२६ ।। और श्रीनित्यानन्द श्रीचैतन्यचन्द्र के जो कुछ भी क्यों न हों तब भी वह चरण कमल मेरे हृदय में रहें ।। ४२७ ।। इतनी क्षमायाचना करने पर भी जो पापी श्रीनित्यानन्द प्रभु की निन्दा करे तब मैं उसके सिर के ऊपर लात मारूँगा ।। ४२८ ।। यदि कोई श्रीचैतन्य महाप्रभु का जन, श्रीनित्यानन्द जी के प्रति मन्द शब्द भी प्रयोग करें ऐसा देखो तो वह 'निन्दा' नहीं है, वह केवल 'स्तुति' है । क्योंकि वह समस्त वैष्णव नित्य शुद्ध ज्ञान वाले हैं उनके भीतर जो तुम कलह विवाद देखते हो वह सब उनके कौतुक पूर्ण हास्यादि हैं ।। ४२९-४३० ।। इसमें जो एक जन के पक्ष में होकर हँसता एवं दूसरे जन की निन्दा करता है वह अन्त में नाश को प्राप्त होता है ।। ४३१ ।। यह निन्दा श्रीनित्यानन्द स्वरूप के प्रति भक्ति उत्पन्न नहीं होने देती है । उन प्रभु के मार्ग पर चलने से श्रीगौरचन्द्र प्रभु की प्राप्ति होती है ।। ४३२ ।। क्या कभी ऐसा दिन भी होगा, जब

सर्व्व भावे स्वामी जेन हय नित्यानन्द । तार हइया भजि जेन प्रभु गौरचन्द्र ।।४३४।।
नित्यानन्द स्वरूपेर स्थाने भागवत । जन्मे जन्मे पढ़िबाङ एइ अभिमत ।।४३५।।
जय जय महा प्रभु श्री गौराङ्ग चन्द्र । दिलाओ निलाओ तुमि प्रभु नित्यानन्द ४३६।।
तथापिह एइ कृपा कर महाशय । तोमाते ताहाते जेन चित्त वृत्ति रय ।।४३७।।
तोमार परम भक्त नित्यानन्द राय । बिना तुमि दिले तारे केह नाहि पाय ।।४३८।।
वृन्दावन आदि करि भ्रमे नित्यानन्द । जावत ना आपने प्रकाशे गौरचन्द्र ।।४३९।।
नित्यानन्द स्वरूपेर तीर्थ पर्य्यटन । जेइ इहा शुने तारे मिले प्रेम-धन ।।४४०।।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जान । वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ।।४४१।।

इतिश्रीचैतन्य भागवते आदिखण्डे श्रीनित्यानन्दतीर्थ-यात्रादि कथनं नाम षष्ठोऽध्याय: ।। ६ ।।

सप्तम अध्याय

जय जय श्रीगौरसुन्दर महेश्वर । जय नित्यानन्द-प्रिय नित्य-कलेवर ।।१।।
जय श्रीगोविन्द द्वार-पालकेर नाथ । जीव प्रति कर प्रभु शुभ-दृष्टि पात ।।२।।
जय जय जगन्नाथ-पुत्र द्विज राज । जय हउक तोर जत भकत समाज ।।३।।
जय जय कृपा-सिन्धु कमल लोचन । हेन कृपा कर तव जशे रहु मन ।।४।।
आदि खण्डे शुन भाइ चैतन्येर कथा । विद्या रसे विलास प्रभु करिलेन जथा ।।५।।

मैं श्रीचैतन्य महाप्रभु व श्रीनित्यानन्द प्रभु को चारों ओर से भक्त-वृन्द से वेष्ठित, दर्शन करूँगा ।। ४३३ ।। जिस प्रकार भी हो, सर्व भाव से श्रीनित्यानन्द प्रभु मेरे स्वामी हों, मेरी यही इच्छा है कि-मैं उनका होकर ही श्रीगौरचन्द्र प्रभु को भजूँ ।। ४३४ ।। मेरा यही अभिप्राय है कि-मैं जन्म-जन्म में श्रीनित्यानन्द स्वरूप के पास श्रीमद्भागवत का अध्ययन करूँ ।। ४३५ ।। श्रीमहाप्रभु श्रीगौराङ्गचन्द्र ! आपकी जय हो ! जय हो ! आपकी इच्छा से श्रीनित्यानन्द प्रभु प्राप्त होंगे अथवा नहीं ।। ४३६ ।। तो भी हे महाशय ! आप ऐसी कृपा कीजिये कि–जिस प्रकार भी हो आप एवं उनमें मेरी चित्त वृत्ति रहे ।।४३७।। श्रीनित्यानन्द राय आपके परम भक्त हैं आपकी कृपा बिना उनको कोई नहीं पा सकता है ।।४३८।। जब तक श्रीगौरचन्द्र अपने को 'प्रकाशित' नहीं करते तब तक श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीवृन्दावन आदि में ही भ्रमण करते रहे ।। ४३९ ।। जो कोई श्रीनित्यानन्द-प्रभु की तीर्थ-यात्रा को सुनेगा उसको प्रेम-धन प्राप्त होगा ।।४४०।। श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को समझ कर श्रीवृन्दावनदास उनके युगल चरणों में कुछ निवेदन करते हैं ।। ४४१ ।।

हे श्रीगौरसुन्दर ! हे महेश्वर ! आपकी जय हो, जय हो, हे श्रीनित्यानन्द के प्रिय ! नित्य-शरीर (कलेवर) आपकी जय हो ।। १ ।। श्रीगोविन्द द्वारपालक के नाथ ! आपकी जय हो ! हे प्रभो ! जीव के प्रति आप शुभ दृष्टि-पात कीजिये ।।२।। हे श्रीजगन्नाथ मिश्र के पुत्र द्विजराज श्रीगौरचन्द्र ! आपकी जय हो ! जय हो ! आपके सब भक्त समाज की जय हो ! ।। ३ ।। हे कृपासिन्धु ! हे कमल लोचन ! आपकी जय हो ! आप हमारे ऊपर ऐसी कृपा कीजिये कि–आपके यश श्रवण एवं गान आदि में हमारा मन निरन्तर लगा रहे ।। ४ ।। हे

हेन मते नवद्वीपे श्री गौरसुन्दर । रात्रि दिने विद्या-रसे नाहि अवसर ॥६॥
उषा काले सन्ध्या करि त्रिदशेर नाथ । पढ़िते चलेन सर्व्व शिष्य गण साथ ॥७॥
आसिया वैसेन गङ्गादासेर सभाय । पक्ष-प्रतिपक्ष प्रभु करेन सदाय ॥८॥
प्रभु स्थाने पुँथि नाहि चिन्ते जे जे जने । ताहारे से प्रभु कदर्थेन अनुक्षणे ॥९॥
पढ़िया वैसेन प्रभु पुँथि चिन्ताइते । जार जत गण लैया वैसे चारि भिते ॥१०॥
ना चिन्ते मुरारि गुप्त पुँथि प्रभु स्थाने । अतएव प्रभु किछु चालान ताहाने ॥११॥
जोग पट्ट-छान्दे वस्त्र करिया बन्धन । वैसेन सभार मध्ये करि वीरासन ॥१२॥
चन्दनेर शोभे उर्द्ध तिलक सुभाति । मुकुता गञ्जये श्रीदशनेर ज्योति ॥१३॥
गौराङ्ग सुन्दर वेश मदन-मोहन । षोड़श वत्सर प्रभु प्रथम जौवन ॥१४॥
बृहस्पति जिनिञा पाण्डित्य परकाशे । स्वतन्त्र जे पुँथि चिन्ते तारे करे हासे ॥१५॥
प्रभु वले 'इथे आछे कोन बड़ जन । आसिया खण्डुक् देखि आमार स्थापन ॥१६॥
सन्धि-कार्य ना जानिञा कोन कोन जना । आपने चिन्तये पुँथि प्रबोधे आपना ॥१७॥
अहङ्कार करि लोक भाले मूर्ख हय । जेवा जाने ताँर ठाञि पुँथि ना चिन्तय ॥१८॥
शुनये मुरारि गुप्त आटोप-टङ्कार । ना बोलये किछु, कार्य करे आपनार ॥१९॥
तथापिह प्रभु तारे चालेन सदाय । सेवक देखिञा बड़ सुखी द्विज राय ॥२०॥

भाइयो ! आदिखण्ड में श्रीचैतन्यचन्द्र की वह कथा सुनिये जिस प्रकार प्रभु ने विद्या-रस-विलास किया था ॥ ५ ॥ पूर्वोक्त रीति से नवद्वीप में श्रीगौरसुन्दर को रात्रि-दिन विद्या-रस से ही अवसर नहीं मिलता था ॥ ६ ॥ देवगण के स्वामी श्रीविश्वम्भरचन्द्र अति प्रातःकाल सन्ध्या करके सब शिष्य-गण के साथ पढ़ने जाते थे ॥ ७ ॥ और श्रीगङ्गादास की गोष्ठी के बीच जाकर बैठ जाते थे, आप निरन्तर व्याख्या का स्थापन एवं खण्डन करते रहते थे ॥ ८ ॥ जो-जो छात्र प्रभु के पास पुस्तक-चिन्तन नहीं करते थे उनकी प्रभु निरन्तर कदर्थना (हँसी) करते थे ॥ ९ ॥ जब प्रभु पुस्तक चिन्तन कराने के लिये बैठते तो सभी प्रमुख शिष्य अपने-अपने समुदाय को लेकर चारों ओर घेरकर बैठ जाते थे ॥ १० ॥ परन्तु 'मुरारि गुप्त' प्रभु के पास पुस्तक-चिन्तन नहीं करते थे, अतएव प्रभु उनको कुछ छेड़ते थे ॥ ११ ॥ संन्यासी जन जैसा योगपट्ट धारण करते हैं प्रभु वैसा ही वस्त्र बन्धन करके सभा के बीच में वीरासन से बैठते थे ॥ १२ ॥ आपके ललाट-देश में चन्दन का उर्द्ध तिलक भली भाँति से शोभा देता था; आपके श्री दर्शनों की ज्योति मुक्ताओं को भी लज्जित करती थी ॥ १३ ॥ आपका मदन को भी मोहित करने वाला सुन्दर-वेश एवं गौर श्रीअङ्ग था । सोलहवीं वर्षहिं वयस आरम्भ होने से प्रभु का नव-यौवन था ॥ १४ ॥ आप श्रीबृहस्पति जी को भी जीतने वाले पाण्डित्य का प्रकाश करते थे । जो विद्यार्थी अपनी स्वतन्त्र पोथी-चिन्तन करते उनकी आप हँसी करते थे ॥ १५ ॥ प्रभु कहते हैं कि—देखें इस सभा में कौन बड़ा पण्डित है, वह आकर हमारी स्थापित की हुई व्याख्या को खण्डन करे ॥ १६ ॥ कोई २ जन सन्धि-प्रकरण के बिना जाने ही स्वतन्त्र पुस्तक चिन्तन करते हैं और आप ही समाधान कर लेते हैं ॥ १७ ॥ अहङ्कार करके लोग भले ही मूर्ख रह जाँय, परन्तु जानकार से पुस्तक-चिन्तन नहीं करेंगे ॥१८॥ मुरारि-गुप्त प्रभु की इस प्रकार की आटोप-टङ्कार को शुनकर भी चुप रहते हैं और अपना

प्रभु बोले वैद्य ! तुमि इहा केने पढ़ । लता पाता निआ गिया रोगी कर दढ़ ॥२१॥
व्याकरण शास्त्र एइ विषम अवधि । कफ पित्त अजीर्ण व्यवस्था नाहि इथि । २२॥
मने मने चिन्त तुमि कि बुझिवे इहा । घरे जाह तुमि रोगी दढ़ कर गिया ॥२३॥
रुद्र अंश मुरारि परम खर-तर । तथापि नहिल क्रोध देखि विश्वम्भर ॥२४॥
प्रत्युत्तर दिल केने बड़ 'त' ठाकुर । सभारेइ चाल देखि गर्व्वह प्रचुर ॥२५॥
सूत्र, वृत्ति, पाँजी, टीका कत हेन कर । आमा जिज्ञासिया किना पाइला उत्तर ॥२६॥
बिना जिज्ञासिया बोल 'कि जानिस् तुइ । ठाकुर ब्राह्मण तुमि कि बलिब मुजि' ॥२७॥
प्रभु बोले व्याख्या कर आजि जे पढ़िला । व्याख्या करे गुप्त प्रभु खण्डिते लागिला ॥२८॥
गुप्त बले एक अर्थ प्रभु बले आर । प्रभु भृत्ये केह कारे नारे जिनिवार ॥२९॥
प्रभुर प्रभावे गुप्त परम पण्डित । मुरारिर व्याख्या शुनि प्रभु हरषित ॥३०॥
सन्तोषे दिलेन तार अङ्गे पद्म हस्त । मुरारिर देह हइल आनन्द समस्त ॥३१॥
चिन्तये मुरारि गुप्त आपन हृदये । प्राकृत-मनुष्य कभु ए पुरुष नहे ॥३२॥
एमन पाण्डित्य कि मनुष्ये कभु हय । हस्त स्पर्शे देह हइल परानन्द मय॥३३॥
चिन्तिले इहार स्थाने किछु लाज नाञि । एमत सुबुद्धि सर्व्व नवद्वीपे नाञि ॥३४॥

काम करते रहते थे ॥ १९ ॥ तब भी प्रभु उन्हें सदा छेड़ते ही रहते थे क्योंकि द्विजराय श्रीविश्वम्भरचन्द्र अपने सेवक को देखकर बड़े सुखी (प्रसन्न) होते थे ॥ २० ॥ फिर प्रभु मुरारि गुप्त से कहते कि–'अरे वैद्य जी ! तुम यह क्यों पढ़ते हो ? लता, पता लेकर रोगी की व्यवस्था करो ॥ २१ ॥ यह व्याकरण शास्त्र विषमता की सीमा है, इसमें कफ, पित्त एवं अजीर्ण आदि की व्यवस्था नहीं है ॥ २२ ॥ जो तुम स्वयं मन-मन पुस्तक-चिन्तन करते हो, इसको कौन समझे ? तुम घर जाओ और रोगियों का इलाज करो ॥ २३ ॥ श्रीमुरारि गुप्त रुद्र-अंश होने के कारण परम खरे स्वभाव के थे,परन्तु तब भी श्रीविश्वम्भरचन्द्र की हास्यापद बातें सुनकर एवं उन्हें देखकर क्रोधित नहीं होते थे ॥ २४ ॥ प्राय प्रत्युत्तर करते कि–क्यों तुम्हीं तो बड़े ठाकुर हो जो सबको छेड़कर अत्यन्त गर्व करते हो ? ॥ २५ ॥ सूत्र, वृत्ति, पाँजी, टीका आदि की व्याख्या तुम अपने मन से ही करते हो; हम से पूछने पर क्या तुम्हें कभी उत्तर नहीं मिला ? ॥ २६ ॥ बिना कोई व्याख्या पूछे ही तुम कहते हो कि–'तू क्या जानता है' । तुम ब्राह्मण ठाकुर हो आपसे क्या कहें ? ॥ २७ ॥ प्रभु ने कहा–'तो अच्छा' आज जो पढ़ा है उसकी ही व्याख्या करो' । प्रभु के कहने पर श्रीमुरारि गुप्त व्याख्या करने लगे तथा प्रभु उसका खण्डन करते जाते थे ॥ २८ ॥ श्रीगुप्त जी एक प्रकार की अर्थ व्याख्या करते थे तो प्रभु दूसरी ही प्रकार से इस भाँति सेवक में से कोई दूसरे को जीत नहीं पाता था ॥ २९ ॥ प्रभु की कृपा से गुप्त जी परम पण्डित थे, श्री मुरारि गुप्त की व्याख्या को सुनकर प्रभु बढ़े प्रसन्न होते थे ॥ ३० ॥ प्रसन्न होकर प्रभु उनके अङ्ग पर अपना कमल हस्त फेरते थे जिससे उनकी देह आनन्द से पूरित हो जाती थी ॥ ३१ ॥ तब श्रीमुरारि गुप्त अपने हृदय में विचार करते थे कि–'यह पुरुष कभी प्राकृत-मनुष्य नहीं हो सकता ॥ ३२ ॥ इस प्रकार का पाण्डित्य क्या मनुष्य में होना कभी सम्भव है ? इसके हस्त-स्पर्श मात्र से ही मेरा देह परमानन्दमय हो गया ? ॥३३॥ इनके पास पुस्तक-चिन्तन करने में कोई लज्जा की बात नहीं है । इन जैसा सुबुद्धि-

सन्तोषित हइया वलेन वैद्यवर । 'चिन्तिव तोमार स्थाने शुन विश्वम्भर' ॥३५॥
ठाकुरे सेवके हेन मते करि रङ्ग । गङ्गा स्नाने चलिला लइया सब सङ्ग ॥३६॥
गङ्गा-स्नान करिया चलिला प्रभु घरे । एइमत विद्या रसे ईश्वर विहरे ॥३७॥
मुकुन्द सञ्जय बड़ महा भाग्यवान । जाहार मन्दिरे विद्या विलासेर-स्थान ॥३८॥
ताहार पुत्रेर प्रभु आपने पढ़ाय । ताहाराओ प्रभु प्रति भक्ति सर्व्वथाय ॥३९॥
बड़ चण्डी-मण्डप आछये तार घरे । चतुर्दिके विस्तर पढुआ ताय धरे ॥४०॥
गोष्ठी करि ताहाँइ पढ़ान द्विजराज । सेइ स्थाने गौराङ्गेर विद्यार समाज ॥४१॥
कत रूपे व्याख्या करे कत वा खण्डन । अध्यापक प्रति से आक्षेप सर्व क्षण ॥४२॥
प्रभु कहे सन्धि-कार्ज ज्ञान नाहि जार । कलिजुगे भट्टाचार्य पदवी ताहार ॥४३॥
हेन जन देखि फाँकि वलुक आमार । तबे जानि भट्ट, मिश्र पदवी समार' ॥४४॥
एइ मत वैकुण्ठ नायक विद्या-रसे । क्रीड़ा करे चिनिते ना पारे कोन दासे ॥४५॥
किछु मात्र देखि आइ पुत्रेर जौवन । विवाहेर कार्य मने चिन्ते अनुक्षण ॥४६॥
दैवे सेइ नवद्वीपे एक सुब्राह्मण । वल्लभ आचार्य नाम जनकेर सम ॥४७॥
तार कन्या आछे जेन लक्ष्मी मूर्त्तिमती । निरवधि विप्र तार चिन्ते जोग्य पति ॥४८॥
दैवे लक्ष्मी एक दिन गेला गङ्गा-स्नाने । गौरचन्द्र हेनइ समये सेइ स्थाने ॥४९॥

शाली तो नवद्वीप भर में कोई नहीं है' ॥ ३४ ॥ वैद्यवर सन्तुष्ट होकर तब बोले–'हे विश्वम्भर ! सुनो, अब से मैं तुम्हारे साथ पुस्तक-चिन्तन किया करूँगा' ॥ ३५ ॥ इस प्रकार ठाकुर-सेवक का सा आमोद प्रमोद करते हुए गङ्गा-स्नान करने के लिये प्रभु सब साथियों को लेकर चल दिये ॥ ३६ ॥ श्रीगङ्गा-स्नान करके प्रभु घर आये। इसी प्रकार ईश्वर श्रीगौरचन्द्र प्रभु विद्या-रस में विहार करते थे ॥ ३७ ॥ श्रीमुकुन्द 'सञ्जय' परम महा भाग्यवान् पुरुष थे जिनका घर प्रभु के विद्या-विलास का केन्द्र स्थान था ॥ ३८ ॥ उनके पुत्र को आप प्रभु स्वयं पढ़ाते थे,वह भी प्रभु के प्रति नितान्त भक्ति करते थे॥३९॥उनके घर में एक बड़ा चण्डी-मण्डप (चौपार) था उसमें चारों ओर अनेक विद्यार्थी बैठ सकते थे॥४०॥वहीं बिप्र श्रेष्ठ श्रीविश्वम्भरचन्द्र गोष्ठी बनाकर पढ़ते वहीं पर श्रीगौरचन्द्र की विद्या का समाज लगती थी ॥ ४१ ॥ आप कितने ही प्रकार से व्याख्या करते और पुनः कितने ही प्रकार से उसका खण्डन कर देते थे,अध्यापकों के प्रति सदाही आक्षेप चलता रहता था॥४२॥ प्रभु कहते कि–जिसको सन्धि करने का भी ज्ञान नहीं है उसको कलियुग में 'भट्टाचार्य' पदवी मिल जाती है ॥ ४३ ॥ देखें, ऐसा कौन व्यक्ति जो हमारी फाँकि का उत्तर दे सके। अगर दे सके तो हम उनकी 'भट्टाचार्य' व 'मिश्र' आदि पदवियों को सत्य मानें' ॥ ४४ ॥ श्रीवैकुण्ठ-नाथ इस प्रकार विद्या-रस में क्रीडा करते थे, परन्तु कोई दास आपको पहचान नहीं पाता था ॥ ४५ ॥ अब श्रीशची–माता अपने पुत्र में यौवन के कुछ चिह्न देखकर आपके विवाह करने की निरन्तर चिन्ता करने लगीं ॥ ४६ ॥ दैवयोग से उसी नवद्वीप में श्री-वल्लभाचार्य नाम के एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे, जो श्रीजनक जी के समान गुण वाले थे ॥४७॥ उनकी कन्या 'लक्ष्मीदेवी' मानों मूर्त्तिमती श्रीलक्ष्मीजी थी। विप्रवर निरन्तर उसके योग्य पति की चिन्ता करते रहते थे ॥ ४८ ॥ संयोगवश एक दिन लक्ष्मीदेवी श्रीगङ्गा-स्नान को गईं, श्रीगौरचन्द्र भी उसी समय उसी स्थान पर

निज लक्ष्मी चिनिञा हासिला गौरचन्द्र। लक्ष्मी ओ वन्दिला मने प्रभु पद द्वन्द्व ॥५०॥
हेन मते दोंहा चिनि दोंहे घर गेला। के वुझिते पारे गौर सुन्दरेर लीला ॥५१॥
ईश्वर इच्छाय विप्र बनमाली नामे। सेइ दिन आइलेन शची देवी-स्थाने ॥५२॥
नमस्करि आइरे वसिल द्विजवर। आसन दिलेन आइ करिया आदर ॥५३॥
आइरे वलेन तवे वनमाली आचार्य्य। 'पुत्र-विवाहेर केन ना चिन्तह कार्य्य ॥५४॥
वल्लभ आचार्य्य कुले शीले सदाचारे। निर्दोषे वैसेन नवद्वीपेर भीतरे ॥५५॥
तार कन्या लक्ष्मी प्राय रूपे शीले गुणे। से सम्बन्ध कर, जदि इच्छा हय मने ॥५६॥
आइ वले, 'पितृहीन बालक आमार। जीउक पढ़ुक आगे तवे कार्य्य आर' ॥५७॥
आइर कथाय विप्र रस ना पाइया। चलिलेन विप्र किछु दुःखित हइया ॥५८॥
दैवे पथे देखा हइल गौरचन्द्र सङ्गे। तारे देखि आलिङ्गन कैल प्रभु रङ्गे ॥५९॥
प्रभुवले 'कह गियाछिले कोन भिते'। द्विज वले तोमार जननी सम्भाषिते ॥६०॥
तोमार विवाह लागि वलिलाम ताने। ना जाने शुनिञा श्रद्धा ना करिला केने ॥६१॥
शुनि तार वचन ईश्वर मौन हइला। हासि तारे सन्भाषिया मन्दिरे आइला ॥६२॥
जननीरे हासिया वलेन सेइ क्षणे। 'आचार्य्येर सम्भाषा ना कैला कि कारणे' ॥६३॥
पुत्रेर इङ्गित पाइ शची हरषिता। आर दिन विप्रे आनि कहिलेन कथा ॥६४॥

पहुँच गये ॥ ४९ ॥ निज लक्ष्मी को पहिचान कर श्रीप्रभु गौरचन्द्र हँसे, उधर श्रीलक्ष्मीदेवी भी मन ही मन प्रभु के युगल चरणों की बन्दना करने लगीं ॥ ५० ॥ इस प्रकार दोनों व्यक्ति परस्पर में एक दूसरे को पहिचान कर अपने-अपने घरों को गये। श्रीगौर सुन्दर की अपूर्व लीला को कौन समझ सकता है ? ॥ ५१ ॥ प्रभु की इच्छा से उसी दिन 'वनमाली' नामक विप्र श्रीशचीदेवी के पास आते हैं ॥ ५२ ॥ और माता जी को नमस्कार करके द्विजवर वैठ गये, श्रीशची माता ने सत्कार पूर्वक आसन दिया ॥ ५३ ॥ पश्चात् श्रीवनमाली आचार्य श्रीशची 'मा' से कहने लगे कि-'माताजी ! आप अपने पुत्र के विवाह के लिये विचार क्यों नहीं करते हो ? ॥ ५४ ॥ देखो नवद्वीप के भीतर ही एक वल्लभाचार्य करके विप्र हैं जो कुलीन, शीलवान्, सदाचारी एवं निर्दोष सज्जन हैं॥५५॥उनकी 'लक्ष्मीदेवी' नाम की कन्या है जो रूप,शील एवं गुण में श्रीलक्ष्मीजी के तुल्य है; यदि तुम्हारे मन में हो तो वह सम्बन्ध करलो' ॥५६॥ माताजी ने उत्तर दिया कि-'हमारा बालक तो पितृहीन है, पहले वह कुछ और बढ़े एवं और कुछ पढ़लें तव आगे और काम देखा जावेगा' ॥ ५७ ॥ विप्र श्रीशची माता की बात में कोई रस न पाकर कुछ उदास मना अपने घर लौट गये ॥ ५८ ॥ दैवयोग से रास्ते में श्रीगौरचन्द्र के साथ मिलन हो गया, प्रभु ने उन्हें देखकर आनन्द पूर्वक आलिङ्गन किया ॥५९॥ फिर प्रभु ने पूँछा-'कहो भाई ! कहाँ गये थे' ? विप्रवर ने उत्तर दिया तुम्हारी माताजी से बातचीत करने ॥६०॥ मैंने उनसे तुम्हारे विवाह के लिये कहा था, न मालूम क्यों उन्होंने सुनकर किसी प्रकार की श्रद्धा प्रकट नहीं की ? ॥ ६१ ॥ उनके वचन सुनकर प्रभु मौन हो गये पश्चात् हँसकर कुछ सम्भाषण करके अपने घर आये ॥ ६२ ॥ और आकर उसी समय माताजी से हँसकर बोले-'माताजी ! तुमने आचार्य जी से बातचीत क्यों नहीं की' ? ॥ ६३ ॥ पुत्र के इस इङ्गित को जानकर श्रीशचीदेवी प्रसन्न हो गईं और दूसरे दिन वनमाली-

शची कहे 'विप्र ! कालि जे कहिला तुमि । शीघ्र ताहा कर एइ वलिलाङ आमि' ॥६५॥
आइर चरण धूलि लइया ब्राह्मण । सेइक्षणे चलिलेन वल्लभ भवन ॥६६॥
बल्लभ आचार्य देखि सम्भ्रमे ताहाने । वहुमान्य करि वसाइलेन आसने ॥६७॥
आचार्य वलेन शुन आमार वचन । अविलम्वे कर विचारिवा नाहि क्षण ॥६८॥
मिश्र पुरन्दर पुत्र नाम विश्वम्भर । परम पण्डित सर्व्व गुणेर सागर ॥६९॥
तोमार कन्यार जोग्य सेइ महाशय । कहिलाङ कर जदि चित्ते हेन लय ॥७०॥
शुनिञा बल्लभाचार्य वलेन हरिषे । से हेन कन्यार पति मिले भाग्य वशे ॥७१॥
कृष्ण जदि सुप्रसन्न हयेन आमारे । अथवा कमला गौरी सन्तुष्ट कन्यारे ॥७२॥
तवे से हेन आसि मिलिवे जामाता । अविलम्वे तुमि इहा करह सर्व्वथा ॥७३॥
सवे एक वचन वलिते लज्जा पाइ । आमि से निर्धन, किछु दिते शक्ति नाञि ॥७४॥
कन्या मात्र दिव पञ्च हरीतकी दिया । एइ आज्ञा सवे तुमि आनिवे मागिया ॥७५॥
बल्लभ मिश्रेर वाक्य शुनिञा आचार्य । सन्तोषे आइला सिद्धि करि सर्व्व कार्य ॥७६॥
सिद्धि कथा आसिया कहिला आइ स्थाने । सफल हइल कार्य कर शुभक्षणे ॥७७॥
आप्तगण शुनि सभे हरषित हइला । सभेइ उद्योग आसि करिते लागिला ॥७८॥
अधिवास लग्न करिलेन शुभक्षणे । नृत्य गीत नाना वाद्य वाय नटगणे ॥७९॥
चतुर्दिके द्विजगण करे वेद ध्वनि । मध्ये चन्द्र प्राय वसियाछे द्विजमणि ॥८०॥

विप्र को बुलाकर बोलीं कि-॥ ६४ ॥ 'भाई ! कल जो तुम कहते थे उसको शीघ्र होने दो, मैं तुमसे यह पक्की बात कहती हूँ' ॥ ६५ ॥ तब तत्काल ही विप्रजी माताजी की चरण-धूलि लेकर श्रीवल्लभाचार्य के घर चल दिये ॥६६॥ श्रीवल्लभाचार्य जी ने उनको देखकर शीघ्र ही अत्यन्त आदर के साथ आसन पर बैठाया ॥६७॥ श्रीवनमाली आचार्य कहते हैं कि-'हे आचार्य जी ! हमारे वचन सुनिये, जैसा हम कहें अविलम्ब वैसा कीजिये उसमें तुम्हारे किञ्चित मात्र समय भी विचारने की आवश्यकता नहींहै॥६८॥श्रीजगन्नाथ'मिश्र पुरन्दर' के पुत्र श्रीविश्वम्भर परम पण्डित एवं सर्व गुण-सागर हैं; वही महाशय तुम्हारी कन्या के योग्य हैं। मैंने तो आपको बतला दिया अब यदि तुम्हारी समझ में आवे तो कीजिये ॥६९-७०॥ सुनकर श्रीवल्लभाचार्यजी ने प्रसन्न होकर कहा कि-उन जैसे कन्या के पति तो बड़े भाग्य से मिलते हैं; यदि श्रीकृष्ण हमारे ऊपर सुप्रसन्न हों अथवा श्रीकमला व श्रीगौरी,कन्या से सन्तुष्ट हों ॥७१-७२॥ तभी वह जैसे जमाई हमको मिलेंगे । तुम सब प्रकार से इस कार्यको शीघ्र ही करो । केवल एक बात कहते मुझे लज्जा होती है कि-मैं निर्धन हूँ,कुछ देने की सामर्थ्य नहीं है ॥ ७३-७४ ॥ मैं केवल पाँच हरीतकी (बड़ी-हर्र) देकर कन्या मात्र ही दे सकूँगा, केवल यह आज्ञा तुम उनसे माँग कर ले आओ' ॥ ७५ ॥ श्रीवल्लभाचार्यजी की बात सुनकर श्रीवनमाली आचार्य अपना सब कार्य सिद्ध करके प्रसन्न होकर वहाँ से लौटे ॥ ७६ ॥ और आकर माताजी को कार्य-सिद्धि की बात सुनाई तथा कहते हैं कि—'कार्य सफल हुआ है शुभ अवसर में इसको होने दीजिये' ॥ ७७ ॥ सुनकर सब आत्मीय जन बड़े प्रसन्न हुए और सभी आकर इस कार्य में हाथ बटाने लगे ॥ ७८ ॥ यथा मुहूर्त्त में अधिवास (घट-स्थापन) का लग्न स्थिर किया और वह लोग अनेक प्रकार बाजे बजाकर नृत्य करने लगे॥७९॥

ईश्वरेरे गन्ध-माला दिया शुभ क्षणे। अधिवास करिलेन आप्त विप्रगणे ॥८१॥
दिव्य गन्ध चन्दन ताम्बूल माला दिया। ब्राह्मण गणेरे तुषिलेन हर्ष हैया ॥८२॥
वल्लभ आचार्य आसि यथा विधि रूपे। अधिवास कराइया गेलेन कौतुके ॥८३॥
प्रभाते उठिया प्रभु करि स्नान दान। पितृ गणे पूजिलेन करिया सम्मान ॥८४॥
नृत्य गीत वाद्ये महा उठिल मङ्गल। चतुर्द्दिके जय जय शुनि कोलाहल ॥८५॥
कत वा मिलिला आसि पतिव्रता-गण। कतेक वा इष्ट मित्र ब्राह्मण सज्जन ॥८६॥
खइ कला सिन्दूर ताम्बूल, तेल दिया। स्त्री गणेरे आइ तुषिलेन हर्ष हैया ॥८७॥
देव-गण देव-वधू-गण नर रूपे। प्रभुर विवाहे आसि आछेन कौतुके ॥८८॥
वल्लभ आचार्य एइमत विधि क्रमे। करिलेन देव पितृ कार्य्य हर्ष मने ॥८९॥
तवे प्रभु शुभ लग्ने गोधूली-समये। जात्रा करि आइलेन आचार्य्य आलये ॥९०॥
प्रभु आइलेन मात्र आचार्य्य गोष्ठी सने। आनन्द सागरे मग्न हैला हर्ष मने ॥९१॥
सम्भ्रमे आसन दिया यथा विधि रूपे। जामातारे वसाइया परम कौतुके ॥९२॥
तवे सर्व्व अलङ्कारे करिञा भूषित। लक्ष्मी कन्या आनिलेन प्रभुर समीप ॥९३॥
हरिध्वनि सर्व्व लोके लागिला करिते। तुलिला प्रभुरे सभे पृथिवी हइते ॥९४॥
तवे लक्ष्मी प्रदक्षिण कैल सातबार। जोड़ हस्ते रहिलेन करि नमस्कार ॥९५॥
तवे शेषे हइल पुष्प फेला फेलि। लक्ष्मी नारायण दोँहे महा कुतुहली ॥९६॥

चारों ओर ब्राह्मणगण वेदध्वनि करने लगा उनके मध्य में द्विज-मणि श्रीविश्वम्भरचन्द्र बैठे हुए चन्द्रमा के समान शोभित हो रहे थे ॥ ८० ॥ शुभ मुहूर्त्त में श्रीभगवान् को गन्ध (सुगन्धि चन्दन एवं इत्र आदि) व माला देकर आत्मीय जन व विप्रगणों ने अधिवास (घट-स्थापन) किया ॥ ८१ ॥ एवं प्रसन्न चित्त होकर ब्राह्मणों को दिव्य गन्ध, चन्दन, ताम्बूल एवं माला देकर उन्हें संतुष्ट किया ॥८२॥ श्रीवल्लभाचार्यजी आकर विधि पूर्वक अधिवास कराकर आनन्दित होकर चले गये ॥ ८३ ॥ दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर प्रभु ने स्नान-दान करके, सम्मान पूर्वक पितृगण की पूजा की ॥ ८४ ॥ उसी समय नृत्य, गीत एवं वाद्यों का मङ्गल ध्वनि होने लगी चारों ओर से 'जय' 'जय' का कोलाहल हुआ ॥८५॥ तथा कितनी ही पतिव्रता स्त्रियाँ वहाँ आकर मिलीं और कितने ही इष्ट-मित्र, सज्जन, ब्राह्मण भी वहाँ उपस्थित हुए ॥ ८६ ॥ श्रीशची माता प्रसन्न होकर खील, केला, सिन्दूर, ताम्बूल एवं तेल दे देकर स्त्रियों को तोषित करने लगीं ॥ ८७ ॥ देवगण एवं देव-वधू गण, नर-नारी रूप में प्रभु के विवाह में सम्मिलित होकर आनन्दित हो रहे थे ॥ ८८ ॥ इसी विधि क्रम से श्रीवल्लभाचार्यजी ने भी आनन्दित होकर देव कार्य व पितृ-पूजा आदि सम्पन्न किया ॥ ८९ ॥ तब प्रभु लग्न युत गोधूलि वेला में श्रीवल्लभाचार्य जी के घर पधारे ॥ ९० ॥ प्रभु के आते ही श्रीवल्लभाचार्यजी निज गोष्ठी सहित प्रसन्न बदन होकर आनन्द-सागर में मग्न हो गये ॥ ९१ ॥ शीघ्र ही यथा विधि आसन देकर वर (जमाता) को आनन्द से बैठाया ॥ ९२ ॥ तब सब आभूषणों से सज्जित करके स्वनाम धन्या कन्या लक्ष्मीदेवी को प्रभु के समीप ले आये और सब लोग हरि ध्वनि करने लगे तथा सब ने प्रभु को पृथ्वी से ऊपर उठा लिया ॥९३-९४॥ तब लक्ष्मीदेवी ने सात बार उनकी प्रदक्षिणा की और नमस्कार करके दोनों हाथ

दिव्य माला दिया लक्ष्मी प्रभुर चरणे । नमस्कार करिलेन आत्म समर्पणे ॥९७॥
सर्व्वदिके जय जय महा हरिध्वनि । उठिल परमानन्द आर नाहि शुनि ॥९८॥
हेन मते श्री मुखचन्द्रिका* करि रसे । वसिलेन प्रभु लक्ष्मी करि वाम पाशे ॥९९॥
प्रथम वयस प्रभु जिनिञा मदन । वाम-पाशे लक्ष्मी वसिलेन सेइ क्षण ॥१००॥
किवा शोभा किवा सुख हेल मिश्रघरे । कोन जन ताहा वर्णिवारे शक्ति धरे ॥१०१॥
तवे शेषे वल्लभ करिते कन्यादान । वसिलेन जेहेन भीष्मक× विद्यमान ॥१०२॥
जे चरणे पाद्य दिया शङ्कर ब्रह्मार । जगत् सृजिते शक्ति हइल सभार ॥१०३॥
हेन पाद पद्मे पाद्य दिया द्विजवर । वस्त्र माल्य चन्दने भूषिञा कलेवर ॥१०४॥
यथा विधि-रूपे कन्या करि समर्पण । आनन्द सागरे मग्न हइला ब्राह्मण ॥१०५॥
तवे जत किछु कुल व्यवहार आछे । पतिव्रता गण ताहा करिलेन पाछे ॥१०६॥
से रात्रि तथाय थाकि तवे आर दिने । गृहे आइलेन महा प्रभु लक्ष्मी-सने ॥१०७॥
लक्ष्मीर सहित प्रभु चढ़िञा दोलाय । आइसेन देखिते सकल लोक धाय ॥१०८॥
गन्ध माल्य अलङ्कार मुकुट चन्दन । कज्जले उज्ज्वल हेल लक्ष्मी नारायण ॥१०९॥
सर्व्व लोक देखि मात्र धन्य धन्य वले । विशेषे रमणी गण पड़िलेन भोले ॥११०॥

जोड़कर खड़ी रह गईं ॥९५॥ तब अन्त में परम विनोदी श्रीलक्ष्मी नारायण दोनों एक दूसरे पर पुष्प वर्षा करने लगे ॥९६॥ तब श्रीलक्ष्मीदेवी ने प्रभु के श्रीचरणों में दिव्य माला अर्पण करके नमस्कार करके आत्म-समर्पण किया ॥ ९७ ॥ चारों ओर से बड़े जोर से 'जय' 'जय' तथा हरिध्वनि द्वारा परमानन्द उमड़ पड़ा जिससे और कुछ सुन नहीं पड़ता था ॥ ९८ ॥ इस प्रकार आनन्द से 'श्रीमुख चन्द्रिका' करके प्रभु श्रीलक्ष्मीदेवी जी को वाम भाग में रख बैठे ॥९९॥ श्रीप्रभु ने जिस क्षण में श्रीलक्ष्मीदेवी को वाम पार्श्व (बगल) में बैठाया तो उन्होंने नवीन मदन (युवा कामदेव) को भी जीत लिया ॥ १०० ॥ उस समय श्रीवल्लभाचार्य मिश्र जी परिवार में कैसी शोभा एवं कैसा सुख छा गया उसका वर्णन करने की सामर्थ्य किसी व्यक्ति में नहीं रही ॥ १०१ ॥ तब अन्त में साक्षात् 'भीष्मक' ही जैसे उपस्थित हों उसी प्रकार श्रीवल्लभाचार्य जी कन्या-दान करने के लिये बैठे ॥ १०२ ॥ जिन श्रीचरणों में पाद्य देकर श्रीशङ्कर एवं ब्रह्माजी ने जगत् संहार एवं सृजन करने की शक्ति पाई ॥ १०३ ॥ उन्हीं श्रीचरण-कमलों में द्विजवर श्रीवल्लभाचार्य जी पाद्य देकर एवं वस्त्र, माला, चन्दन से प्रभु के श्रीअङ्ग को भूषित करके ॥१०४॥ यथा विधि पूर्वक कन्या को समर्पण करके आनन्द-समुद्र में डूब गये ॥ १०५ ॥ तब पतिव्रता स्त्रियों ने कुल-व्यवहार के अनुसार जो कुछ करना होता है वह रीति पीछे से पुरी की ॥१०६॥ उस रात को वहीं रहकर तब दूसरे दिन महाप्रभु श्रीविश्वम्भरचन्द्र श्रीलक्ष्मी-देवी के साथ अपने घर लौट आये ॥ १०७ ॥ पालकी में लक्ष्मीजी सहित प्रभु को चढ़े हुए देखने के लिये सभी लोग चारों ओर से दौड़ पड़े ॥ १०८ ॥ यह श्रीलक्ष्मी-नारायण की युगल जोड़ी गन्ध, माल्य, अलङ्कार, मुकुट, चन्दन एवं कज्जल से दीप्त (उज्वल) हो रही थी ॥ १०९ ॥ सभी लोग देखते ही 'धन्य' 'धन्य' बोल

* श्रीमुख-चन्द्रिका—फेरे पड़ने के पश्चात् वर-कन्या की आपस में पुष्प-वृष्टि होती है फिर कन्या, वर के चरणों में माला देकर आत्म-समर्पण करती है फिर कन्या-पक्ष व वर-पक्ष में हास-परिहास होता है, बाजा बजता है, जै जै कार होती है इसी का नाम 'श्रीमुख-चन्द्रिका' है । × भीष्मक—श्रीकृष्ण-महिषी श्रीरुक्मिणी जी के पिता ।

'कत कालावधि भाग्यवती हर गौरी । निष्कपटे सेविलेन कत भक्ति करि ॥१११॥
अल्प भाग्ये कन्यार कि हेन स्वामी मिले' । 'एइ हर गौरी हेन बुझि' केह बले ॥११२॥
केहबले 'इन्द्रशची रतिवा मदन' । कोन नारी बले 'एइ लक्ष्मी नारायण' ॥११३॥
कोन कोन नारी बले 'जेन सीताराम । दोलोपरि शोभियाछे अति अनुपाम' ॥११४॥
एइ मत नाना रूप बले नारीगण । शुभ दृष्टे सभे देखे लक्ष्मी नारायण ॥११५॥
हेन मते नृत्य गीत वाद्य कोलाहले । निज गृहे प्रभु आइलेन सन्ध्या काले ॥११६॥
तवे शचीदेवी विप्रपत्नी गण लैया । पुत्र वधू घरे आनिलेन हर्ष हैया ॥११७॥
द्विज आदि जत जाति नट बाजनिया । सभारे तुषिला धन, वस्त्र, वाक्य दिया ॥११८॥
जे शुनये प्रभुर विवाह पुण्य-कथा । ताहार संसार वन्ध ना हय सर्व्वथा ॥११९॥
प्रभु पार्श्वे लक्ष्मीर हइल अवस्थान । शची गृह हइल परम ज्योतिर्धाम ॥१२०॥
निरवधि देखे शची कि घर बाहिरे । परम अद्भुत ज्योति लखिते ना पारे ॥१२१॥
कखन पुत्रेर पाशे देखे अग्नि शिखा । उलटिया चाहिते ना पाय आर देखा ॥१२२॥
कमल पुष्पेर गन्ध क्षणे क्षणे पाय । परम विस्मित आइ चिन्तेन सदाय ॥१२३॥
आइ बले बुझिलाङ कारण इहार । ए कन्याय अधिष्ठान आछे कमलार ॥१२४॥
अतएव ज्योति देखि पद्म गन्ध पाइ । पूर्व्व प्राय एवे आर दारिद्र दुःख नाजि ॥१२५॥

रहे थे; विशेष करके रमणी-गण तो ठगी सी रह गईं ॥ ११० ॥ उनमें से कोई रमणी कहती कि—"इस भाग्यवती ने न जाने कितने समय तक, कितनी भक्ति करके निष्कपट भाव से श्रीशङ्कर व गौरी की सेवा की है ? क्या कभी कन्या के मन्द भाग्य से उसको ऐसे स्वामी मिल सकते थे ? फिर कोई दूसरी कहती कि—'ऐसा प्रतीत होता है कि यही हर-गौरी हैं' ॥ १११-११२ ॥ कोई कहती—'यह तो इन्द्र-शची हैं' अथवा 'रति-कामदेव' की जोड़ी हैं'। कोई स्त्री कहती-'यह लक्ष्मीनारायण हैं' ॥११३॥ कोई २ रमणी कहती कि-'डोली में यह तो श्रीसीताराम ही अति अनुपम शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥ ११४ ॥ इस प्रकार स्त्रीगण इस लक्ष्मी-नारायण की जोड़ी के लिये अनेक प्रकार से कहते जाते थे सभी की शुभ दृष्टि उन पर थी तथा यह लक्ष्मी-नारायण सब पर शुभ दृष्टिपात करते जाते थे ॥ ११५ ॥ इस प्रकार नृत्य, गीत वाद्य के कोलाहल के बीच प्रभु सन्ध्या काल में अपने घर पहुँचे ॥ ११६ ॥ तब श्रीशचीदेवी ने प्रसन्न हो ब्राह्मण-पत्नियों को अपने साथ लेकर पुत्र एवं वधू को द्वार पर से घर में ले आईं ॥११७॥ तथा ब्राह्मण को आदि लेकर अर्थात् ब्राह्मण आदि जितने प्रकार के नट-बजंतरी आदि वहाँ थे सभी को धन, वस्त्र तथा मीठी वाणी से सन्तुष्ट किया ॥ ११८ ॥ जो मनुष्य प्रभु के विवाह की पुण्य कथा को श्रवण करेंगे उनका संसार बन्धन कभी नहीं होगा ॥ ११९ ॥ जब से प्रभु के पार्श्वभाग में लक्ष्मीजी अवस्थिति हुईं तब से श्रीशचीदेवी का घर परम ज्योति-धाम हो गया ॥ १२० ॥ श्रीशचीदेवी बराबर क्या बाहर जब भी देखती थीं तो उनकी परम अद्भुत ज्योति पर दृष्टि नहीं ठहरती थी ॥ १२१ ॥ कभी पुत्र के पास अग्नि-शिखा उठती हुई देखती और जब उलट कर देखती तो फिर वह अदृश्य हो जाती ॥ १२२ ॥ थोड़ी २ देर में (क्षण २ में) कमल पुष्प की सुगन्धि सी प्रतीत होती, इससे माताजी परम विस्मित होकर निरन्तर सोच-विचार करती रहती ॥ १२३ ॥ कभी मन में कहती कि-'इन

एइ लक्ष्मी वधू गृहे आसि प्रवेशिले । कोथा हैते ना जानि आसिया सब मिले ॥१२६॥
एइ मत आइ नाना मत कथा कय । व्यक्त हइयाओ प्रभु व्यक्त नाहि हय ॥१२७॥
ईश्वरेर इच्छा बुझि वार शक्ति कार । कि रूपे करेन कोन काले कि प्रकार । १२८॥
ईश्वर से आपवारे ना जानाये जवे । लक्ष्मी ओ जानिते शक्ति ना धरेन तवे ॥१२९॥
एइ सब शास्त्र वेद पुराणे वाखाने । तार कृपा हय जारे, सेइ तारे जाने ॥१३०॥
एइ मत गुप्त भावे आछे द्विजराज । अध्ययन बिना आर नाहि कोन काज ।.१३१॥
जिनिआ कन्दर्प कोटि रूप मनोहर । प्रति अङ्गे अनुपम लावण्य सुन्दर ॥१३२॥
आजानु-लम्बित भुज कमल नयन । अधरे ताम्बुल दिव्य वास परिधान ॥१३३॥
सर्व्वदाय परिहास-मूर्त्ति विद्या वले । सहस्र पढुआ सङ्गे जवे प्रभु चले ॥१३४॥
सर्व्व नवद्वीपे भ्रमे त्रिभुवन पति । पुस्तकेर रूपे करे प्रिया सरस्वती ॥१३५॥
नवद्वीपे हेन नाहि पण्डितेर नाम । जे आसिया बुझिवेक प्रभुर व्याख्यान ॥१३६॥
सभे एक गङ्गा दास महा भाग्यवान । जार ठाञि करे प्रभु विद्यार आदान ॥१३७॥
सकल संसार देखि वले 'धन्य' 'धन्य' । ए नन्दन जाहार ताहार कौन दैन्य ॥१३८॥
जतेक प्रकृति देखे मदन समान । पाषण्डी देखये जेन जम विद्यमान ॥१३९॥
पण्डित सकल देखे जेन बृहस्पति । एइ मत देखे सभे जार जेन मति ॥१४०॥

बातों का कारण समझ गई, इस कन्या के शरीर में श्रीलक्ष्मीजी का अधिष्ठान है ॥१२४॥ इसीलिये 'ज्योति' दिखलाई देतीं है और पद्म-गन्ध प्राप्त होती है । पहले का सा दरिद्रता का दुःख अब हमारे घर में नहीं रहा, जिस दिन से यह वधू-लक्ष्मी घर में आई है, न जाने कहाँ से सब वस्तुएँ आ जाती हैं ॥ १२५-१२६ ॥ इस प्रकार श्रीशची माता नाना प्रकार की बातें विचारती थीं, प्रभु श्रीगौरचन्द्र प्रकट होकर भी प्रकट नहीं होते ॥ १२७ ॥ वे किस रूप से किस काल में किस प्रकार से क्या लीला कार्य करते हैं इस ईश्वरेच्छा को जानने की सामर्थ्य किस में है ? ॥ १२८ ॥ यदि प्रभु स्वयं अपने को न जनावें तो लक्ष्मीजी की भी शक्ति नहीं है कि वह प्रभु को जान लें ॥ १२९ ॥ सर्व शास्त्र वेद एवं पुराण यही वर्णन करते हैं कि-'जिसके ऊपर उनकी कृपा होती है वही उन्हें जानता है' ॥ १३० ॥ द्विजराज श्रीगौरचन्द्र प्रभु इस प्रकार गुप्त भाव से रह रहे हैं आपको इस समय अध्ययन के सिवाय और कोई काम नहीं है ॥ १३१ ॥ आपका मनोहर रूप कोटि काम-देवों को भी जीतने वाला है, आपके श्रीअङ्ग प्रत्यङ्ग में अनुपम लावण्य देदीप्यमान है ॥ १३२ ॥ आपकी आजानुलम्बित भुजा एवं कमल नेत्र हैं, होठों पर ताम्बूल एवं श्रीअङ्ग में दिव्य वस्त्र पहिरे हुए हैं ॥ १३३ ॥ आप विद्या-वल के स्वाभिमान से सर्वदा परिहास-मूर्त्ति रूप में दृष्टिगोचर होते हैं जब प्रभु आप चलते हैं तो साथ में सहस्रों विद्यार्थी चलते हैं ॥ १३४ ॥ त्रिभुवन पति आप हाथ में पुस्तक रूप से प्रिया श्रीसरस्वती को लिये हुए सम्पूर्ण नवद्वीप में भ्रमण करते हैं ॥ १३५ ॥ श्रीनवद्वीप में ऐसा कोई पण्डित नहीं है जो प्रभु के व्याख्यान को समझ सके ॥ १३६ ॥ केवल एक श्रीगङ्गादास पण्डित जी महा भाग्यशाली हैं कि जिनके पास प्रभु विद्या अध्ययन करते हैं ॥ १३७ ॥ प्रभु को देखकर संसार के लोग कहते हैं कि-'धन्य है' 'धन्य है' जसका यह पुत्र है उसके यहाँ फिर किस बात की कमी है ? ॥ १३८ ॥ सब रमणीगण आपको मदन के

देखि विश्वम्भर रूप जनेक वैष्णव । हरिष विषाद मने एइ भावेसब ॥१४१॥
हेन दिव्य शरीर ना हय कृष्ण रस । कि करिवे विद्याय हइले काल-वश ॥१४२॥
मोहित वैष्णव सब प्रभुर मायाय । देखिओ तबु केह देखिते ना पाय ॥१४३॥
साक्षातेओ प्रभुदेखि, केह केह बोले । 'कि कार्जे गोङाओ काल तुमि विद्या भोले' ॥१४४॥
शुनिया हासेन प्रभु सेवकेर बाक्य । प्रभु बोले 'तोमरा शिखाओ मोर भाग्य' ॥१४५॥
हेन मते प्रभु गोङायेन विद्यारसे । सेवक चिनिते नारे अन्य जन किसे ॥१४६॥
चतुर्दिक् हइते लोक नवद्वीपे जाय । नवद्वीपे पढ़िले से विद्या-रस पाय ॥१४७॥
चाटि ग्राम निवासिओ अनेक तथाय । पढ़ेन वैष्णव सब महा सुख पाय ॥१४८॥
सभेइ जन्मियाछेन प्रभुर आज्ञाय । सभेइ विरक्त कृष्ण-भक्त सर्व्वथाय ॥१४९॥
अन्योऽन्ये मिलिया सभे पढ़िया शुनिया । करेन गोविन्द चर्च्चा निभृते वसिया ॥१५०॥
सर्व्व वैष्णवेर प्रिय मुकुन्द एकान्त । मुकुन्देर गाने द्रवे सकल महान्त ॥१५१॥
विकाल हइले आसि भागवत गण । अद्वैत सभाय सभे हयेन मिलन ॥१५२॥
जेइ मात्र मुकुन्द गायेन कृष्ण गीत । हेन नाहि जानि केवा पड़ये कोन् भित ॥१५३॥
केह कान्दे केहो हासे केहो नृत्य करे । गड़ागड़ि जाय केहो वस्त्र ना सम्वरे ॥१५४॥

समान देखती हैं और पाखण्डी लोग आपको साक्षात् यम के रूप में देखते हैं ॥ १३९ ॥ सब पण्डित लोग आपको श्रीवृहस्पति के रूप में देखते हैं इसी प्रकार जिनकी जैसी मति है वह प्रभु को उसी रूप में देखते हैं ॥ १४० ॥ श्रीविश्वम्भर के रूप को देखकर वैष्णव-वृन्द में से प्रत्येक हर्ष एवं विषाद को प्राप्त होते हैं और सोचते हैं कि-॥१४१॥ अगर इनका ऐसा दिव्य शरीर श्रीकृष्ण-रस की ओर आकृष्ट नहीं हुआ तो यह काल के वशीभूत होने पर विद्या-बल से क्या कर सकेंगे ? ॥१४२॥ इस प्रकार प्रभु की माया से सब वैष्णव मोहित हो रहे थे प्रभु को देखकर भी कोई नहीं देख पाता ॥ १४३ ॥ कोई-कोई तो प्रभु को साक्षात् देखकर आपसे कह उठता कि-'ए विश्वम्भर ! तुम विद्या-रस में मत्त होकर अपने समय को क्यों व्यर्थ नष्ट करते हो ?' ॥१४४॥ प्रभु अपने सेवकों के वचन सुनकर हँसते और कहते कि-'तुम जो मुझे शिक्षा देते हो यह मेरा बड़ा भाग्य है' ॥ १४५ ॥ इस प्रकार प्रभु विद्या-रस में अपना समय व्यतीत कर रहे थे । आपको आपके सेवक भी नहीं पहिचान पाते थे तब अन्य जनों की तो गणना ही क्या है ॥ १४६ ॥ लोग चारों ओर से श्रीनवद्वीप में पढ़ने के लिये आते थे, वे सब श्रीनवद्वीप में पढ़ने से ही विद्या-रस की प्राप्ति करते थे ॥ १४७ ॥ वहाँ पर चाटिग्राम (चटगाँव), निवासी अनेक वैष्णव भी परम सुख पूर्वक पढ़ते थे ॥ १४८ ॥ उन सब ने प्रभु की आज्ञा से ही जन्म लिया था वह सभी सर्व भाँति से विरक्त एवं श्रीकृष्ण-भक्त थे ॥ १४९ ॥ वह सब पढ़ सुन कर, परस्पर मिलकर एकान्त में बैठकर श्रीकृष्ण-चर्चा किया करते थे ॥ १५० ॥ उनमें से श्रीमुकुन्द दत्त सर्व वैष्णव-वृन्द के एकान्त प्रिय थे आपके गान को सुन कर सब वैष्णव-वृन्द द्रवीभूत हो जाते थे ॥ १५१ ॥ सब भक्त-वृन्द विकाल (तृतीय-प्रहर) होने पर श्रीअद्वैत प्रभु की गोष्ठी में आकर सम्मिलित होते थे॥१५२॥ वहाँ ज्योंही श्रीमुकुन्द दत्त कृष्ण-गीत गाना प्रारम्भ करते त्योंही न मालूम कौन किस ओर लुढ़क पड़ता था ॥ १५३ ॥ कोई हँसता तो कोई रोता था, कोई नृत्य करता तो कोई वस्त्रों को बिना सँभाले ही लोट-पोटता

हुङ्कार करये केह मालसाट मारे । केह गिया मुकुन्देर दुइ पाये धरे ॥१५५॥
एइ मत उठये परमानन्द सुख । ना जाने वैष्णव सब आर कोन दुःख ॥१५६॥
प्रभुओ मुकुन्द प्रति बड़ सुखी मने । देखिलेइ मुकुन्देरे धरेन आपने ॥१५७॥
प्रभु जिज्ञासेन फाँकि बाखाने मुकुन्द । प्रभु वले 'किछु नहे' आर लागे द्वन्द ॥१५८॥
मुकुन्द पण्डित बड़ प्रभुर प्रभावे । पक्ष प्रति-पक्ष करि प्रभु सङ्गे लागे ॥१५९॥
एइ मत प्रभु निज सेवक चिनिआ । जिज्ञासेन फाँकि, सभे जायेन हारिया ॥१६०॥
श्रीवासादि देखिलेओ फाँकि जिज्ञासेन । मिथ्या वाक्य-व्यय भये सभे पलायेन ॥१६१॥
सहजे विरक्त सभे श्री कृष्णेर-रसे । कृष्ण व्याख्या विनु आर किछु नाहि वासे ॥१६२॥
देखिलेइ मात्र प्रभु फाँकि से जिज्ञा से । प्रबोधिते नारे केहो शेषे उपहासे ॥१६३॥
जदि केह देखे प्रभु आइसेन दूरे । सभे पलायेन फाँकि जिज्ञासेर डरे ॥१६४॥
कृष्ण-कथा शुनिते से सभे भाल वासे । फाँकि बिना प्रभु कृष्ण-कथा ना जिज्ञासे ॥१६५॥
राज पथे प्रभु आइसेन एक दिन । पढुयार सङ्गे महा उद्धतेर चिह्न ॥१६६॥
मुकुन्द जायेन गङ्गा-स्नान करिवारे । प्रभु देखि आड़े पलाइल कत दूरे ॥१६७॥
देखि प्रभु जिज्ञासेन पढुयार स्थाने । ए बेटा आमारे देखि पलाइल केने ॥१६८॥
पढुया सकले वले 'ना जानि पण्डित । आर कोन कार्जे वा चलिला कोनभित' ॥१६९॥

था ॥ १५४ ॥ कोई हुङ्कार करता तो कोई मल्लों की भाँति खम्भ ठोकता एवं कोई जाकर श्रीमुकुन्द के दोनों चरणों को ही पकड़ लेता था ॥१५५॥ इसी प्रकार का परमानन्द-सुख उमड़ उठता था । उस समय वैष्णवगण अन्य किसी प्रकार के दुःख का भान भी नहीं करते थे ॥१५६॥ प्रभु भी श्रीमुकुन्द के प्रति मन में बड़े प्रसन्न थे, मुकुन्द को देखते ही आप उन्हें पकड़ लेते थे ॥१५७॥ प्रभु उनसे 'फाँकि'पूछते, वह उसकी व्याख्या करते, तब प्रभु कहते कि–'यह तो कुछ नहीं !' तब मुकन्द के साथ द्वन्द खड़ा हो जाता था ॥ १५८ ॥ प्रभु की कृपा से मुकुन्द जी परम पण्डित हैं इसीलिये आप प्रभु के साथ पक्ष, प्रति पक्ष करते हुए प्रभु की बराबरी करने लगते थे ॥१५९॥ प्रभु इसी प्रकार अपने सेवकों को पहिचान कर उनसे 'फाँकि' पूछते तो वे सब आप से हार कर चले जाते थे ॥ १६० ॥ श्री श्रीवास आदि भक्तों से भी आप 'फाँकि' पूछने लगते थे, परन्तु जिसमें सार नहीं है ऐसे वाक्य प्रयोग में समय नष्ट होने के भय से वे सब दूर भागते थे ॥ १६१ ॥ वे सब भक्त-गण श्री-कृष्ण-रस में लीन होने के कारण अन्य रस से सहज में ही विरक्त थे। वह श्रीकृष्ण-विषयक व्याख्या के अतिरिक्त बोलना पसन्द नहीं करते थे ॥ १६२ ॥ प्रभु उनके देखते ही उनसे 'फाँकि' पूछते जब उनमें से कोई ठीक उत्तर न देकर प्रभु को प्रबोध नहीं कर पाता तो अन्त में प्रभु उनकी हँसी उड़ाते थे ॥ १६३ ॥ फाँकि पूछने के डर के कारण यदि उनमें से कोई प्रभु को दूर से भी आता हुआ देखता तो वह सबके सब भाग जाते थे ॥१६४॥उन सबको कृष्ण-कथा सुनना ही अच्छा लगता था, परन्तु प्रभु फाँकि पूछने के अतिरिक्त कृष्ण-कथा पूछते नहीं ॥ १६५ ॥ एक दिन प्रभु विद्यार्थी समूह के साथ महा उद्दण्डता प्रकाशित करते हुए राज-पथ पर आये ॥ १६६ ॥ इधर से श्रीमुकुन्द श्रीगङ्गा-स्नान करने के लिये जाते थे। प्रभु को सामने आते देखकर आँख बचाकर वह कुछ दूर निकल भाग गये ॥ १६७ ॥ यह देखकर प्रभु विद्यार्थियों से पूछने लगे—'यह बेटा

प्रभु बले जानिलाम जे लागि पलाय । वहिर्म्मुख सम्भाषा करिते ना जुयाय ॥१७०॥
ए बेटा पढ़ाय जत वैष्णवेर शास्त्र । पाँजि, वृत्ति, टीका आमि वाखानिये मात्र ॥१७१॥
आमार सम्भाषे नाहि कृष्णेर कथन । अतएव आमा देखि करे पलायन ॥१७२॥
सन्तोषे पाड़ेन गालि प्रभु मुकुन्देरे । व्यपदेशे प्रकाश करेन आपनारे ॥१७३॥
प्रभु वले 'आरे बेटा कत दिन थाक । पलाइले कोथा एड़ाइवे मोर पाक' ॥१७४॥
हासि वले प्रभु 'आगे पढ़ों कतदिन । तवे से देखिवे मोर वैष्णवेर चिह्न ॥१७५॥
एमन वैष्णव मुजि हइब संसारे । अज भव आसिवेक आमार दुयारे' ॥१७६॥
शुन भाइ सब एइ आमार वचन । वैष्णव हइव मुजि सर्व्व विलक्षण ॥१७७॥
आमारे देखिया एवे जे सब पलाय । ताहाराओ जेन मोर गुण कीर्त्ति गाय॥१७८॥
एतेक वलिया प्रभु हासिते हासिते । घरे गेला निज शिष्य-गणेर सहिते ॥१७९॥
एइमत रङ्ग करे विश्वम्भर राय । के ताने जानिते पारे जदि ना जानाय ॥१८०॥
हेन मते भक्त-गण नवद्वीपे वैसे । सकल नदिया मत्त धन पुत्र रसे ॥१८१॥
शुनिलेइ कीर्त्तन करये परिहास । केह वले 'सब पेट पुषिवार आश' ॥१८२॥
केहो वले 'ज्ञान-जोग एड़िया विचार । उद्धतेर प्राय नृत्य कोन व्यभार' ॥१८३॥
केहो वले 'कत रूप पढ़िल भागवत । नाचिव कान्दिव हेन ना देखिल पथ' ॥१८४॥

हमको देखकर भाग क्यों गया ?' ॥ १६८ ॥ सब विद्यार्थी-वृन्द ने उत्तर दिया-'पण्डितजी ! पता नहीं, स्यात् अन्य किसी कार्य से कहीं चले गये हों अथवा डर से !' प्रभु बोले-'हम जान गये, जिससे कि वह भागा है, वह वहिर्मुख से सम्भाषण करना योग्य नहीं समझता ! ॥१६९-१७०॥यह बेटा तो केवल वैष्णव-शास्त्र पढ़ाता है और मैं केवल पाँजि, वृत्ति एवं टीका की व्याख्या करता हूँ ॥ १७१ ॥ मेरी व्याख्या में कृष्ण-वार्त्ता नहीं होती है अतएव यह मुझको देखकर भाग जाताहै॥१७२॥इस प्रकार प्रभु मुकुन्द से सन्तुष्ट होकर गाली देते थे; इस वहाने से आप अपना भाव प्रकाश करने लगे ॥१७३॥प्रभु कहते हैं कि-'अरे बेटा ! कुछ दिन और ठहर, मेरी पकड़ से भागकर कहाँ छिपेगा ?' ॥ १७४ ॥ प्रभु फिर हँस कर कहते कि—मैं पहले कुछ दिन विद्या-अध्ययन कर लूँ तब वह मुझ में वैष्णवता के चिह्न देखेगा ॥ १७५ ॥ मैं संसार में इस प्रकार का वैष्णव हूँगा कि-ब्रह्मा व शिव भी मेरे द्वार पर आयेंगे ॥ १७६ ॥ तुम सब भाई ! मेरी बात सुनो, मैं कुछ समय पश्चात् सब से अनौखा वैष्णव होऊँगा ॥ १७७ ॥ इस समय जो यह सब लोग मुझको देखकर भागते हैं, देखना ! वह भी मेरी गुण-कीर्त्ति गावेंगे' ॥ १७८ ॥ इतना कह कर प्रभु हँसते-हँसते शिष्य-गण के साथ घर चले गये ॥ १७९ ॥ श्रीविश्वम्भर राय इस प्रकार के खेल करते थे; यदि आप अपने को न जनावें तो आपको कौन जान सकता है ? ॥ १८० ॥ इस प्रकार भक्त-गण श्रीनवद्वीप में वास कर रहे थे। इधर सब नवद्वीप-वासी धन एवं पुत्र के क्षणिक आनन्द में मस्त हो रहे थे ॥ १८१ ॥ वह सब कीर्त्तन सुनते ही उसकी हँसी उड़ाते । कोई कहता कि—'यह सब (कीर्त्तन) पेट पालन की आशा से है' ॥ १८२ ॥ कोई कहता कि-'इनका ज्ञान-योग के विचार को छोड़कर उद्धतों की भाँति नाचना न मालूम क्या आचरण है ?' कोई कहता कि-'हमने भागवत् को कितनेही रूपसे पढ़ा लेकिन उसमें नाचने एवं रोने का पथ नहीं देखा'॥१८३-१८४॥"और

श्रीवास पण्डित चारि भाइर लागिया । निद्रा नाहि जाय भाइ ! भोजन करिया ॥१८५॥
धीरे धीरे कृष्ण बलिले कि पुण्य नहे । नाचिले गाइले डाक छाड़िले कि हये ॥१८६॥
एइ मत जत पाप पाषण्डीर गण । देखिलेइ वैष्णवेर करेन निन्दन ॥१८७॥
शुनिञा वैष्णव सब महा दुःख पाय । कृष्ण बलि सभेइ कान्देन ऊर्द्ध-राय ॥१८८॥
'कत दिने ए सब दुःखेर हवे नाश । जगतेरे कृष्णचन्द्र ! करह प्रकाश' ॥१८९॥
सकल वैष्णव मेलि अद्वैतेर स्थाने । पाषण्डीर वचन करेन निवेदने ॥१९०॥
शुनिञा अद्वैत हन रुद्र अवतार । 'संहारिमु सब' बलि करिये हुङ्कार ॥१९१॥
'आसितेछे एइ मोर प्रभु चक्रधर । देखिवा कि हय एइ नदियार भितर ॥१९२॥
कराइमु कृष्ण सर्व्व नयन गोचर । तवे से अद्वैत नाम कृष्णेर किङ्कर । १९३॥
दुःख ना भाविह आर शुन भाइ सब । एथाइ पाइवा समे कृष्ण अनुभव' ॥१९४॥
अद्वैतेर वाक्य शुनि भागवत-गण । दुःख पासरिया सभे करेन कीर्त्तन । १९५॥
उठिल कृष्णेर नाम परम मङ्गल । अद्वैत सहित सभे हइला विह्वल ॥१९६॥
पाषण्डीर वाक्य ज्वाला सब गेल दूर । एइ मत आनन्दित नवद्वीप-पुर ॥१९७॥
अध्ययन सुखे प्रभु विश्वम्भर राय । निरवधि जननीर आनन्द बाढ़ाय ॥१९८॥
हेन काले नवद्वीपे श्रीईश्वर पुरी । आइलेन अति अलक्षित वेश धरि ॥१९९॥

देखो भाई ! शाम को भोजन करने के पीछे श्रीवास पण्डित सहित चारों भाई रात को सोते भी नहीं हैं ॥१८५॥ क्या धीरे-धीरे 'कृष्ण' 'कृष्ण' जपने से पुण्य नहीं होता है ? नाचने, गाने एवं ऊँचे स्वर से पुकार देने से ही क्या होता है ?' ॥ १८६ ॥ पापी पाखण्डीगण सब इसी प्रकार के थे वह वैष्णव को देखते मात्र ही निन्दा करने लगते ॥ १८७ ॥ जिसको सुनकर सब ही वैष्णव-वृन्द महा दुःख पाते और सभी 'कृष्ण !' 'कृष्ण !' कहकर ऊँचे स्वर से क्रन्दन करने लगते थे ॥ १८८ ॥ और प्रार्थना करते कि–'हे कृष्णचन्द्र ! अब कितने में यह सब दुःख नाश होगा ? हे कृष्णचन्द्र ! अब तो संसार में प्रगट होओ ॥ १८९ ॥ सब वैष्णव मिल कर श्रीअद्वैत प्रभु के पास पाखण्डियों के वाक्य निवेदन करते थे ॥ १९० ॥ उनको सुनकर श्रीअद्वैत प्रभु रुद्र रूप धारण कर लेते और 'मैं सब पापियों का नाश करूँगा' कह कर हुङ्कार करते थे ॥ १९१ ॥ फिर कहते कि–देखो शीघ्र ही मेरे चक्रधारी प्रभु यहाँ आ रहे हैं, तुम देखना, इस नवद्वीप में क्या (अघटन घटन) होता है ? ॥१९२॥ मैं श्रीकृष्ण को सबके नयन-गोचर कराऊँगा, तभी श्रीकृष्ण का दास मेरा अद्वैत नाम जानना ॥ १९३ ॥ हे सब भाइयो ! सुनो, अब और मन में दुःख न पाओ, तुम सब यहीं श्रीकृष्ण का अनुभव करोगे ।' ॥१९४॥ सब वैष्णव-वृन्द श्रीअद्वैत प्रभु के वाक्य सुन कर दुःख भूल कर श्रीहरि-सङ्कीर्त्तन करते थे ॥ १९५ ॥ परम मङ्गलमयी श्रीकृष्ण-नाम ध्वनि उठी और श्रीअद्वैत प्रभु सहित सब जन विह्वल हो गये ॥ १९६ ॥ उस समय पाखण्डियों की वाक्य-ज्वाला दूर हो गई इस प्रकार श्रीनवद्वीप-पुर में आनन्द होता रहता था ॥ १९७ ॥ इधर प्रभु श्रीविश्वम्भर राय अध्ययन-सुख से निरन्तर श्रीमाताजी का आनन्द वर्द्धन कर रहे थे ॥१९८॥ उसी समय श्रीईश्वरपुरी गोस्वामिपाद अति अलक्षित रूप से श्रीनवद्वीप में पधारे ॥१९९॥ श्रीपाद महाशय कृष्ण-रस में परम विह्वल हो रहे थे आप श्रीकृष्ण के एकान्त प्रिय हैं एवं अति दया-

कृष्ण रसे परम विह्वल महाशय । एकान्त कृष्णेर प्रिय अति दयामय ॥२००॥
तान वेशे ताने केह चिनिते ना पारे । दैवे गिया उठिलेन अद्वैत मन्दिरे ॥२०१॥
जे खाने अद्वैत सेवा करेन वसिया । सम्मुखे वसिला बड़ सङ्कुचित हैया ॥२०२॥
वैष्णवेर तेज वैष्णवेरे ना लुकाय । पुनः पुन अद्वैत ताहार पाने चाय ॥२०३॥
अद्वैत वलेन 'बापु तुमि कोन जन । वैष्णव सन्यासी तुमि हेन लय मन' ॥२०४॥
वलेन ईश्वर पुरी 'आमि शूद्राधम । देखिवारे आइलाम तोमार चरण' ॥२०५॥
बुझिया मुकुन्द एक कृष्णेर चरित । गाइते लागिला अति प्रेमेर सहित ॥२०६॥
जेइमात्र शुनिलेन मुकुन्देर गीते । पड़िला ईश्वर पुरी ढलि पृथिवीते ॥२०७॥
नयनेर जले अन्त नाहिक ताहान । पुनः पुन बाढ़े प्रेम-धारार पयान ॥२०८॥
आस्ते व्यस्ते अद्वैत तुलिया कैला कोले । सिञ्चित हइल अङ्ग नयनेर जले ॥२०९॥
सम्वरण नहे प्रेम पुनः पुनः बाढ़े । सन्तोषे मुकुन्द उच्च करि श्लोक पढ़े ॥२१०॥
देखिया वैष्णव सब प्रेमेर विकार । अतुल आनन्द मने जन्मिल सभार ॥२११॥
पाछे सभे चिनिलेन श्री ईश्वर पुरी । प्रेम देखि सभेइ सङरे 'हरि' 'हरि' ॥२१२॥
एइ मत ईश्वर पुरी नवद्वीप पुरे । अलक्षिते वसेन चिनिते केह नारे ॥२१३॥
दैवे एक दिन प्रभु श्री गौर सुन्दर । पड़ाइया आइसेन आपनार घर ॥२१४॥
पथे देखा हइल ईश्वर पुरी सने । भृत्य देखि प्रभु नमस्करिला आपने ॥२१५॥

मय हैं ॥ २०० ॥ उस वेश में आपको कोई पहचान नहीं सकता, दैवयोग से आप श्रीअद्वैत-प्रभु के घर जा पहुँचे ॥ २०१ ॥ जिस स्थान पर वैठकर श्रीअद्वैत प्रभु श्रीठाकुर-सेवा कर रहे थे आप बड़े संकुचित होकर उनके सामने वहीं बैठ गये ॥ २०२ ॥ वैष्णव का तेज वैष्णव से छिपता नहीं है अतएव श्रीअद्वैत प्रभु बार-बार आपकी ओर देखते थे ॥ २०३ ॥ कुछ समय पश्चात् श्रीअद्वैत प्रभु ने आपसे कहा कि-'हे बाबा ! आप कौन हो ? ऐसा प्रतीत होता है कि आप वैष्णव-संन्यासी हैं' ॥ २०४ ॥ श्रीईश्वरपुरी जी ने उत्तर दिया कि-'मैं शूद्रों में भी अति नीच शूद्र हूँ । आपके चरण दर्शन के लिये आया हूँ' ॥ २०५ ॥ श्रीमुकुन्द यह समझ कर अत्यन्त प्रेम के साथ श्रीकृष्ण-चरित्र गान करने लगे ॥ २०६ ॥ ज्योंही श्रीईश्वर पुरीजी ने श्रीमुकुन्द का गान सुना कि-आप पृथ्वी पर ढुलक कर गिर पड़े ॥ २०७ ॥ आपके अश्रुपात का अन्त नहीं हो रहा था तथा अश्रुधारा पुनः पुनः और वेगवान हो उठती थी ॥ २०८ ॥ जैसे तैसे श्रीअद्वैत प्रभु ने आपको उठा कर गोदी में लिया है, आपका सर्वाङ्ग अश्रु जल से सिञ्चित हो गया था ॥ २०९ ॥ आपका प्रेम शान्त नहीं होता था वह पुनः पुनः बढ़ता ही जाता था श्रीमुकुन्द प्रसन्न होकर और उच्च स्वर से श्लोक पढ़ते थे ॥ २१० ॥ सब वैष्णव-वृन्द के मन में (श्रीईश्वरपुरी जी के) प्रेम-विकार को देखकर अतुलित आनन्द हुआ ॥ २११ ॥ पीछे सभी ने श्रीईश्वर पुरी को पहिचाना; आपके प्रेम को देखकर सभी 'हरि' 'हरि' स्मरण करने लगे ॥२१२॥ इस प्रकार से श्रीईश्वर पुरी श्रीनवद्वीप-पुर में अलक्षित रूप से निवास कर रहे थे, आपको कोई पहिचान नहीं पाता था ॥ २१३ ॥ दैवयोग से एक दिन प्रभु श्रीगौरसुन्दर पढ़ा कर अपने घर आ रहे थे ॥२१४॥ अकस्मात् मार्ग में श्रीईश्वर पुरी जी के साथ मिलन हो गया,प्रभु ने अपना सेवक (परिकर) जान कर उन्हें स्वयं नमस्कार

अति अनिर्व्वचनीय ठाकुर सुन्दर । सर्व्व मते सर्व्व विलक्षण गुण धर ॥२१६॥
जद्यपिओ तान मर्म्म केह नाहि जाने । तथापि साध्वस करे देखि सर्व्व जने ॥२१७॥
चाहेन ईश्वर पुरी प्रभुर शरीर । सिद्ध पुरुषेर प्राय परम गम्भीर ॥२१८॥
जिज्ञासेन 'तोमार कि नाम द्विजवर । कि पुँथि पढ़ाओ पढ़, कोन स्थाने घर' ॥२१९॥
शेषे सभे बलिलेन निमाञि पण्डित । 'तुमि सेइ' बलिया बड़ हइला हर्षित ॥२२०॥
भिक्षा निमन्त्रण प्रभु करिल ताहाने । महादरे गृहे लइ चलिला आपने ॥२२१॥
कृष्णेर नैवेद्य आइ करिलेन गिया । भिक्षा करि विष्णुगृहे वसिला आसिया ॥२२२॥
कृष्णेर प्रस्ताव तबे कहिते लागिला । कहिते कृष्णेर कथा विह्वल हइला ॥२२३॥
देखिया प्रेमेर धारा प्रभुर सन्तोष । ना प्रकाशे आपन लोकेर दिन दोष ॥२२४॥
मास कत गोपीनाथ आचार्येर घरे । रहिला ईश्वर पुरी नवद्वीप पुरे ॥२२५॥
सभे बड़ उल्लासित देखिते ताहाने । प्रभुओ देखिते नित्य चलेन आपने ॥२२६॥
गदाधर पण्डितेर देखि प्रेम जल । बड़ प्रिय वासे तारे वैष्णव सकल ॥२२७॥
शिशु हैते संसारे विरक्त बड़ मने । ईश्वर पुरीओ स्नेह करेन ताहाने ॥२२८॥
गदाधर पण्डितेरे आपनार कृत । पुँथि पढ़ायेन, नाम 'कृष्ण लीलामृत' ॥२२९॥
पढ़ाइया पढ़िया ठाकुर सन्ध्या काले । ईश्वर पुरीरे नित्य नमस्कारे चले ॥२३०॥

किया ॥ २१५ ॥ ठाकुर श्रीगौरसुन्दर का स्वरूप अनिर्वचनीय सुन्दर एवं सर्व प्रकार से सभी विलक्षण गुणों का आलय था ॥ २१६ ॥ यद्यपि आपके मर्म को कोई नहीं जानता तो भी सब लोग आप को देखकर भय खाते थे ॥ २१७ ॥ इस कारण श्रीईश्वर पुरी जी भी प्रभु के शरीर की ओर देखते ही रह गये, प्रभु आपको सिद्ध पुरुष के समान परम गम्भीर दिखलाई दिये ॥ २१८ ॥ श्री पुरी जी ने पूछा—'द्विज श्रेष्ठ ! आपका क्या नाम है ? कौनसी पुस्तक पढ़ते एवं पढ़ाते हो ? आपका घर कहाँ है ? ॥ २१९ ॥ श्रीनिमाञि पण्डित अन्त में सब बतला दिया, श्रीपुरी जी ने विस्मित होकर कहा–'अरे आप ही वह हो ?' और बड़े प्रसन्न हुए हैं ॥ २२० ॥ तब प्रभु ने उनको भोजन करने का निमन्त्रण दिया और स्वयं उनको बड़े आदर पूर्वक अपने घर लिवा ले गये हैं ॥ २२१ ॥ श्रीमाता जी ने श्रीकृष्ण-नैवेद्य प्रस्तुत किया तथा श्रीपुरी जी भोजन करके श्रीविष्णु-गृह में आकर बैठ गये ॥ २२२ ॥ और श्रीकृष्ण-कथा वार्त्ता कहना प्रारम्भ कर दी, आप श्रीकृष्ण-कथा कहते-कहते विह्वल हो जाते थे एवं प्रेमाश्रु धारा बहने लगती ॥ २२३ ॥ आपकी प्रेमाश्रु-धारा देखकर प्रभु को बड़ा सन्तोष हुआ परन्तु लोगों के दुर्दिन होने के कारण महाप्रभु अपने को प्रकाश नहीं करते थे ॥ २२४ ॥ श्रीईश्वर पुरी श्रीनवद्वीप-पुरी में कई महीने श्रीगोपीनाथ आचार्य के घर में रहे ॥ २२५ ॥ आपके दर्शन करने के लिये सभी जन बड़े उत्सुक रहते थे,प्रभु भी नित्य प्रति आप से मिलने के लिये जाते थे॥२२६॥ श्रीगदाधर पण्डित के नेत्रों में प्रेम-जल देखकर सकल वैष्णव-वृन्द आपको बड़ा प्यार करते थे ॥२२७॥ आप बालपन से ही संसार से बड़े विरक्त थे, श्रीईश्वरपुरी भी आपको स्नेह करते थे ॥ २२८ ॥ श्रीईश्वरपुरी, श्रीगदाधर पण्डित को अपनी बनाई हुई 'श्रीकृष्णलीलामृत' नामक पुस्तक पढ़ाते थे ॥ २२९ ॥ ठाकुर भी पढ़ाकर एवं पढ़कर सन्ध्या समय नित्य प्रति श्रीईश्वरपुरी जी को नमस्कार करने के लिये जाते थे ॥ २३० ॥ प्रभु

प्रभु देखे श्री ईश्वर पुरी हरषित । प्रभु हेन ना जानेन तबु बड़ प्रीत ॥२३१॥
हासिया वलेन तुमि परम पण्डित । आमि पुँथि करियाछि कृष्णेर चरित ॥२३२॥
सकल कहिवा कोथा थाके कोन दोष । इहाते आमार बड़ परम सन्तोष ॥२३३॥
प्रभु बोले भक्त वाक्य कृष्णेर वर्णन । इहाते जे दोष देखे, पापी सेइ जन ॥२३४॥
भक्तेर कवित्व जेते मते केने नहे । कृष्णेर सर्व्वथा प्रीत ताहाते निश्चये । २३५॥
मूर्खो वदति विष्णाय, विष्णवे वले धीर । दुइ वाक्य परिग्रह करे कृष्ण वीर ॥२३६॥
तथाहि:—मूर्खो वदति विष्णाय धीरो वदति विष्णवे । उभयोस्तु समं पुण्यं भावग्राही जनार्दनः ॥ (क)
इहाते जे दोष देखे ताहाते से दोष । भक्तेर वर्णन मात्र कृष्णेर सन्तोष ॥२३७॥
अतएव तोमार से प्रेमेर वर्णन । इहा दूषिवेक कौन साहसिक जन ॥२३८॥
शुनिञा ईश्वर पुरी प्रभुर उत्तर । अमृत सिञ्चित हइल तान कलेवर ॥२३९॥
पुन हासि वलिला तोमार दोष नाञि । अवश्य वलिवा दोष थाके जेइ ठाञि ॥२४०॥
एइ मत प्रति दिन प्रभु तान सङ्गे । विचार करेन दुइ चारि दण्ड रङ्गे ॥२४१॥
एक दिन प्रभु तान कवित्व शुनिञा । हासि दूषिलेन धातु ना लागे वलिया ॥२४२॥
प्रभु वले ए धातु आत्मनेपदी नय । वलिया चलिला प्रभु आपन आलय ॥२४३॥
ईश्वर पुरीओ सर्व्व शास्त्रेते पण्डित । विद्या रस विचारेओ बड़ हरषित ॥२४४॥
प्रभु गेले सेइ धातु करेन विचार । सिद्धान्त करेन तहि अशेष प्रकार २४५॥

को देखकर श्रीईश्वरपुरी बड़े प्रसन्न होते थे, यद्यपि वह प्रभु को, प्रभु करके नहीं जानते थे तब भी बड़ी प्रीति करते थे ॥ २३१ ॥ श्रीपुरी जी हँसकर प्रभु से कहते कि–'आप परम पण्डित हैं मैंने कृष्ण-चरित्र की एक पुस्तक रचना की है ॥२३२॥ उसको आप देखिये और जहाँ कहीं उसमें कोई दोष हों तो वह सब मुझे बताइये इससे मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी' प्रभु ने उत्तर दिया कि—'प्रथम तो भक्त-वाक्य' दूसरे श्रीकृष्ण का वर्णन फिर उसमें जो दोष देखता है वह व्यक्ति पापी है॥२३३-२३४॥भक्त की कविता चाहे जिस प्रकार की भी क्यों न हो निश्चय ही, श्रीकृष्ण उससे प्रसन्न होते हैं। मूर्ख मनुष्य 'विष्णाय' बोलता है और बुद्धिमान 'विष्णवे' कहता है, परन्तु वीर श्रीकृष्ण दोनों ही वाक्यों को ग्रहण करते हैं ॥ २३५-२३६ ॥ मूर्ख 'विष्णाय नमः' कहता है (जो अशुद्ध है) और धीर 'विष्णवे नमः' कहता है (जो शुद्ध है) लेकिन दोनों का समान पुण्य है क्योंकि श्रीजनार्दन भाव-ग्राही हैं (क) जो इसमें दोष देखता है वह दोष उस ही में है। भक्त के सर्व प्रकार के वर्णन से श्रीकृष्ण की प्रसन्नता होती है ॥ २३७ ॥ अतएव तुम्हारे उस प्रेम के वर्णन में कौन साहसिक जन दोष लगा सकता है ?' ॥ २३८ ॥ प्रभु का उत्तर सुनकर श्रीईश्वर पुरी का शरीर अमृत से सिञ्चित हो गया, आप फिर हँसकर बोले कि–'इसमें तुम्हारा कोई दोष न होगा, जिस-जिस स्थान पर दोष देखने में आवें आप अवश्य उन्हें बताना'॥२३९-२४०॥प्रभु इस प्रकार प्रति दिन उनके साथ आनन्दपूर्वक दो-चार दण्ड (दण्ड= २॥घड़ी) विचार करते थे॥२४१॥एक दिन प्रभु आपके कवित्व को सुनकर हँसे तथा यहाँ धातु पाठ नहीं लगती है' ऐसा कहकर उसमें दोष लगाया ॥ २४२ ॥ प्रभु ने कहा कि–'यह धातु आत्मनेपदी नहीं है' यह कहकर अपने घर चले गये ॥ २४३ ॥ श्रीईश्वरपुरी भी सर्व-शास्त्रों के पण्डित थे एवं विद्या-रस विचार में ही बड़े

सेइ धातु करेन 'आत्मनेपदी' नाम । आर दिन प्रभु गेले करेन व्याख्यान ॥२४६॥
जे धातु परस्मैपदी बलि गेला तुमि । ताहा एइ साधिलु 'आत्मने पदी आमि ॥२४७॥
व्याख्यान शुनिञा प्रभु परम सन्तोष । भृत्य जय निमित्त नादेन आर दोष ॥२४८॥
सर्व्व काल प्रभु बाढ़ायेन भृत्य जय । एइ तान स्वभाव सकल वेदे कय ॥२४९॥
एइ मत कत दिन विद्या-रस रङ्गे । आछिला ईश्वर पुरी गौरचन्द्र-सङ्गे ॥२५०॥
भक्ति रसे चञ्चल, एकत्र नहे स्थिति । पर्यटने चलिला पवित्र करि क्षिति ॥२५१॥
जे शुनये ईश्वर पुरीर पुण्य-कथा । तार वास हय कृष्ण पाद पद्म यथा ॥२५२॥
जत प्रेम माधवेन्द्र पुरीर शरीरे । सन्तोषे दिलेन सब ईश्वर पुरीरे ॥२५३॥
पाइया गुरुर प्रेम कृष्णेर प्रसादे । भ्रमेण ईश्वर पुरी अति निर्व्विरोधे ॥२५४॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । बृन्दावनदास तछु पद जुगे गान ॥२५५॥

इति श्रीचैतन्यभागवते आदिखण्डे ईश्वर पुरी मिलनं नाम-
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमो अध्याय

जय जय महा प्रभु श्रीगौर सुन्दर । जय हउक प्रभुर जतेक अनुचर ॥१॥
हेन मते नवद्वीपे श्रीगौर सुन्दर । पुस्तक लइया क्रीड़ा करे निरन्तर ॥२॥
जत अध्यापक प्रभु चालेन सभारे । प्रबोधिते कोन जन शक्ति नाहि धरे ॥३॥

प्रसन्न रहते थे ॥ २४४ ॥ प्रभु के चले जाने पर आप उस धातु का विचार करते रहे तथा उसी समय बहुत प्रकार से सिद्धान्त किया ॥ २४५ ॥ आपने उस धातु को 'आत्मने पदी' नाम से ही स्थिर किया; जब दूसरे दिन प्रभु आपके पास आये तो आपने उस व्याख्या को उन्हें सुनाया ॥ २४६ ॥ श्री पुरी जी ने कहा कि- जिस धातु को आप परस्मैपदी कह गये थे, उसको देखो मैं 'आत्मनेपदी' सिद्ध करता हूँ' ॥ २४७ ॥ श्रीईश्वर-पुरी की व्याख्या को सुन कर प्रभु परम प्रसन्न हुए एवं अपने सेवक की जय कराने के लिये आपने और कोई दोष उसमें नहीं निकाला ॥ २४८ ॥ प्रभु सर्वदा अपने सेवक की जय को बढ़ाते हैं आपका यह स्वभाव सर्व वेद कहते हैं ॥ २४९ ॥ इस प्रकार श्रीईश्वर पुरी कितने ही दिन श्रीगौरचन्द्र के साथ विद्या-रस-रङ्ग में रहे ॥ २५० ॥ श्रीईश्वरपुरी जी भक्ति-रस के द्वारा चञ्चल हो रहे थे, आपकी एक स्थान पर स्थिति नहीं रहती थी, पृथ्वी को पवित्र करने के लिये तीर्थ-भ्रमण के लिये चल दिये ॥२५१॥ जो कोई श्रीईश्वर पुरी की पुण्य-कथा को सुनेगा उसको श्रीकृष्ण-चरण कमलों में स्थान मिलेगा ॥ २५२ ॥ श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी के शरीर में जितना प्रेम था वह सब प्रसन्न होकर आपने श्रीईश्वर पुरी को दे दिया ॥२५३॥ श्रीईश्वर पुरी श्रीकृष्ण कृपा से श्रीगुरुदेव का प्रेम लाभ करके अति निर्बाध हो भ्रमण करते थे ॥ २५४ ॥ श्रीवृन्दावनदास, श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र जिनके प्राण हैं उनको समझ कर उनके पदयुगल में उन्हीं का गुण-गान करता है॥२५५॥

महाप्रभु श्रीगौर सुन्दर ! आपकी जय हो ! प्रभो ! आपके सब सेवकों की जय हो ! ॥ १ ॥ इस प्रकार श्रीनवद्वीप में श्रीगौर सुन्दर पुस्तक लेकर निरन्तर विद्या रस-क्रीड़ा करते थे ॥२॥ जितने अध्यापक श्रीनवद्वीप

व्याकरण शास्त्रे सबे विचार आदान । भट्टाचार्य प्रति ओ नाहिक तृण ज्ञान ॥४॥
स्वानुभवानन्दे करे नगर भ्रमण । संहति परम भाग्यवन्त शिष्य-गण ॥५॥
दैवे पथे मुकुन्देर सङ्गे दरशन । हस्ते धरि प्रभु तारे वलेन वचन ॥६॥
आमारे देखिया तुमि कि कार्जे पलाओ । आजि आमा प्रवोधिया बिना देखि जाओ ॥७॥
मने भावे मुकुन्द 'एरे जिनिव केमने । इहार अभ्यास मात्र सवे व्याकरणे ॥८॥
ठेका इमु आजि जिज्ञासिया अलङ्कार । मोर सने गर्व्व जेन नाहि करे आर' ॥९॥
लागिल जिज्ञासा मुकुन्देरे प्रभु सने । प्रभु खण्डे जत अर्थ मुकुन्द बाखाने ॥१०॥
मुकुन्द वलेन 'व्याकरण' शिशु-शास्त्र । बालके से इहार विचार करे मात्र ॥११॥
अलङ्कार विचार करिव तोमा सने । प्रभु वले वुझ तोमार जेवा लय मने ॥१२॥
विषम विषम जत कवित्व प्रचार । पढ़िया मुकुन्द जिज्ञासये अलङ्कार ॥१३॥
सर्व्व शक्ति मय गौर चन्द्र अवतार । खण्ड खण्ड करि दूषे सब अलङ्कार ॥१४॥
मुकुन्द स्थापिते नारे प्रभुर खण्डन । हासिया हासिया प्रभु वलेन वचन ॥१५॥
आजि घरे गिया भालमते पुँथि चाह । कालि बुझवाङ झट आसिवारे चाह ॥१६॥
चलिला मुकुन्द लइ चरणेर धूली । मने मने चिन्तये मुकुन्द कुतुहली ॥१७॥
"मनुष्येर एमन पाण्डित्य आछे कोथा । हेन शास्त्र नाहि जे अभ्यास नाहि जथा ॥१८॥

में थे प्रभु सभी को छेड़ते थे उनमें से कोई भी ऐसा शक्ति धारी (विद्यानिधान) अध्यापक नहीं था, जो प्रभु को बोध करा दे ॥ ३ ॥ यद्यपि प्रभु ने केवल व्याकरण शास्त्र ही अध्ययन किया था तथापि आप भट्टाचार्य आदिकों को भी तृण मात्र नहीं समझते थे ॥ ४ ॥ आप अपनी इच्छा से स्वानुभव आनन्द में नगर-भ्रमण करते रहते थे, परम भाग्यवान् शिष्यगण आपके साथ रहते थे ॥ ५ ॥ एक दिन दैवयोग से पथ में श्रीमुकुन्द के साथ मिलन हो गया है उस समय प्रभु उनका हाथ पकड़ कर कहने लगे ॥ ६ ॥ मुझको देखकर तुम क्यों भागते हो ? देखें, आज तुम बिना मुझे प्रबोध दिये कैसे जाते हो ॥ ७ ॥ श्रीमुकुन्द मन में विचार करने लगे कि-"इसको किस प्रकार जीतूँ, इसका अभ्यास तो केवल मात्र व्याकरण शास्त्र में ही है ॥ ८ ॥ आज मैं इसको अलङ्कार पूछ कर हराऊँगा जिससे मेरे साथ और कभी गर्व न करे' ॥ ९ ॥ तब श्रीप्रभु के साथ श्री-मुकुन्द प्रश्नोत्तर आरम्भ हुए, मुकुन्द जितने भी अर्थ व्याख्या करते प्रभु उन सबको खण्डन कर देते थे॥१०॥ तब श्रीमुकुन्द ने कहा-'व्याकरण तो शिशु-शास्त्र है, इसका विचार केवल बालक ही करते हैं ॥ ११ ॥ मैं तुम्हारे साथ अलङ्कार विचार करूँगा' । प्रभु बोले-'तुम्हारे मन में जो हो सो पूछो' ॥ १२ ॥ तब श्रीमुकुन्द जितने कठिन-कठिन कवित्व (पद्य) प्रचलित थे उनको पढ़कर उनमें अलङ्कार पूछने लगे ॥ १३ ॥ सर्व शक्ति समन्वित अवतारश्रेष्ठ श्रीगौरचन्द्र उन सब अलङ्कारों को खण्ड-खण्ड करके उनमें दोष स्थापित करते थे॥१४॥ प्रभु के खण्डन को मुकुन्द स्थापन नहीं कर पाते, तब प्रभु हँसते हुए उनसे कहते कि-॥ १५ ॥ तुम आज घर जाकर अच्छी तरह से पुस्तक विचार करना, कल हम समझ लेंगे, शीघ्र आना ॥ १६ ॥ तब श्रीमुकुन्द प्रभु के श्रीचरणों की धूलि लेकर चले गये तथा मन ही मन विस्मित होकर विचार करते जाते थे कि ॥ १७ ॥ "ऐसा पाण्डित्य मनुष्यों में कहाँ होता है ? ऐसा कोई शास्त्र नहीं है जिसका इनको यथार्थ अभ्यास न हो॥१८॥

एमन सुबुद्धि कृष्ण-भक्त हय जवे । तिलेक इहार सङ्ग ना छाड़िये तवे' ॥१६॥
एइ मते विद्या रसे वैंकुण्ठ ईश्वर । भ्रमिते देखेन आर दिने गदाधर ॥२०॥
हासि दुइ हाते प्रभु राखिल धरिया । 'न्याय पढ़ तुमि आमा जाओ प्रबोधिया' ॥२१॥
'जिज्ञा सह' गदाधर वलये वचन । प्रभु वले 'कह, देखि मुक्तिर लक्षण' ॥२२॥
शास्त्र अर्थ जेन गदाधर वाखानिला । प्रभु वलेन व्याख्या ना करिते जानिला ॥२३॥
गदाधर वले 'आत्यन्तिक दुःख नाश । इहारेइ शास्त्रे कहे मुक्तिर प्रकाश' ॥२४॥
नाना रूपे दोषे प्रभु सरस्वती पति । हेन नाहि तार्किक जे ताहा करे स्थिति ॥२५॥
हेन जन नाहि जे प्रभुर सने वले । गदाधर भावे 'आजि वर्त्ति पलाइले' २६॥
प्रभु बले 'गदाधर ! आज जाह घर । कालि वुझवाङ तुमि आसिह सत्वर ॥२७॥
नमस्करि गदाधर चलिलेन घरे । ठाकुर भ्रमेन सर्व्व नगरे नगरे ॥२८॥
परम पाण्डित्य ज्ञान हइल सभार । सभेइ करेन देखि सम्भ्रम अपार ॥२६॥
वैकाले ठाकुर सर्व्व पढ़ुयार सङ्गे । गङ्गातीरे आसिया वसेन महारङ्गे ॥३०॥
सिन्धु-सुता सेवित प्रभुर कलेबर । त्रिभुवने अद्वितीय मदन सुन्दर ॥३१॥
चतुर्द्दिके वेढ़िया वैसेन शिष्यगण । मध्ये शास्त्र वाखानेन श्री शची नन्दन ३२॥
वैष्णव सकल तवे सन्ध्या काल हैले । आसिया वैसेन गङ्गा तीरे कुतूहले ॥३३॥
दूरे थाकि प्रभुर व्याख्यान सभे शुने । हरिष विषाद सभे भावे मने मने ॥३४॥

ऐसा यह सुबुद्धिमान् व्यक्ति यदि कृष्ण-भक्त हो जाँय तब मैं इसका एक तिल भर के लिये भी सङ्ग-त्याग न करूँ' ॥ १६ ॥ इसी प्रकार वैकुण्ठनाथ श्रीविश्वम्भर ने विद्या-रस में भ्रमण करते हुए अन्य एक दिन श्रीगदाधर पण्डित को देखा ॥ २० ॥ प्रभु ने हँसकर दोनों हाथों से उनको पकड़ कर रोक लिया और कहने लगे कि–'तुम न्याय पढ़ते हो हमको समझाकर जाओ' ॥ २१ ॥ श्रीगदाधर ने कहा कि–'पूछो', प्रभु बोले-देखें, मुक्ति के लक्षण तो कहो ? ॥२२॥ श्रीगदाधर शास्त्र-सम्मत-अर्थ व्याख्या करने लगे प्रभु बोले–'तुमको व्याख्या करनी नहीं आती' ॥ २३ ॥ गदाधरजी ने कहा–'आत्यन्तिक दुःख के नाश' को ही शास्त्रों में मुक्ति का अर्थ प्रकट किया है' ॥ २४ ॥ सरस्वती-पति श्रीगौरसुन्दर प्रभु उस पर नाना प्रकार से दोषारोपण करने लगे, उस समय कोई भी तार्किक ऐसा नहीं था, जो अपने पक्ष को स्थिर कर सकता ॥२५॥ ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जो प्रभु के साथ सम्भाषण कर सकता, श्रीगदाधर जी विचारने लगे आज तो भागने से ही प्राण बचेंगे ॥ २६ ॥ तब प्रभु ने कहा कि–गदाधर ! तुम आज घर जाओ, कल समझ लेंगे शीघ्र आना' ॥ २७ ॥ श्रीगदाधर प्रभु को नमस्कार करके घर चले गये इधर ठाकुर पूर्ववत् शहर के प्रत्येक भाग में भ्रमण करते फिरते थे ॥ २८ ॥ प्रभु का 'परम पाण्डित्य' सबको मालूम पड़ गया; आपको देखकर लोग अपार सम्भ्रम करते थे ॥२६॥ ठाकुर तृतीय प्रहर हो जाने पर सब विद्यार्थियों के साथ बड़ी प्रसन्नता पूर्वक श्रीगङ्गा-तीर पर आकर बैठा करते थे ॥ ३० ॥ श्रीलक्ष्मी जी द्वारा सेवित प्रभु का (विग्रह) त्रिभुवन में कामदेव के समान अद्वितीय सुन्दर था ॥ ३१ ॥ आपके चारों ओर शिष्य गण बैठते और मध्यमें आप श्रीशची-नन्दन शास्त्र की व्याख्या करते थे ॥ ३२ ॥ समस्त वैष्णवगण भी सन्ध्या काल होने पर प्रसन्नता पूर्वक श्रीगङ्गा-तीर पर आकर बैठते

केह वले हेन रूप हेन विद्या जार । ना भजिले कृष्ण किछु नहे उपकार ॥३५॥
सभेइ वलेन भाइ इहाने देखिया । फाँकि जिज्ञासार भये जाइ पलाइया ॥३६॥
केह वले देखा पाइले ना देन एड़िया । महादानी प्राय जेन राखेन बान्धिया ॥३७॥
केह वले 'ब्राह्मणेर शक्ति अमानुषी । कोन महा पुरुष बा हय हेन वासि ॥३८॥
जद्यपिओ निरन्तर वाखानेन फाँकि । तथापि सन्तोष वड़ पाङ इहादेखि ॥३९॥
मनुष्येर एमन पाण्डित्य देखि नाञि । कृष्ण ना भजेन सबे एइ दुःखपाइ ॥४०॥
अन्योऽन्ये सभेइ साधेन सभा प्रति । सभे वले 'इहान हउक कृष्णे रति' ॥४१॥
दण्डवत् हइ सभे पड़िला गङ्गारे । सर्व्व भागवत मेलि आशीर्व्वाद करे ॥४२॥
'हेन कर कृष्ण जगन्नाथेर नन्दन । तोर रसे मत्त हय छाड़ि अन्य मन ॥४३॥
निरबधि प्रेम-भावे भजुक तोमारे । हेन सङ्ग कृष्ण देह आमा सभा कारे ॥४४॥
अन्तर्यामी प्रभु चित्त जानेन सभार । श्रीवासादि देखिलेइ, करे नमस्कार ॥४५॥
भक्त आशीर्व्वाद प्रभु शिरे करि लय । भक्त आशीर्व्वादे से कृष्णेर रति हय ॥४६॥
केह केह साक्षातेइ प्रभु देखि वले । 'कि कार्य्ये गोङाओ काल तुमि विद्या-भोले' ॥४७॥
केहो वले 'हेर शुन निमाञि पण्डित । विद्याय ना तरे, कृष्ण भजह त्वरित ॥४८॥
पढ़े केने लोक कृष्ण भक्ति जानिवारे । से जदि नहिल तवे विद्याय कि करे ' ॥४९॥

थे ॥ ३३ ॥ वह सब दूर से प्रभु का व्याख्यान सुनते एवं मन ही मन में बड़ा हर्ष व विषाद करते थे ॥ ३४ ॥ उनमें से कोई कहता कि-'जिसका ऐसा रूप एवं ऐसी विद्या हो बिना श्रीकृष्ण का भजन किये उसका कुछ भी उपकार नहीं है ॥ ३५ ॥ फिर सभी जन कहते कि-'भाई ! इनको तो देखते ही हम फाँकि पूछने के डर से भाग जाते हैं' ॥ ३६ ॥ कोई कहता कि 'यह हमको देख लेने पर फिर छोड़ता ही नहीं; बड़े कर (टैक्स) लेने वाले की भाँति बाँध कर रख लेता है' ॥ ३७ ॥ कोई कहता कि 'इस ब्राह्मण में अमानुषी शक्ति है, ऐसा प्रतीत होता है यानी इसमें किसी महापुरुष का आवेश है ॥ ३८ ॥ यद्यपि यह निरन्तर फाँकि व्याख्या ही करते हैं तथापि इनको देखकर अपने मनमें बड़ी प्रसन्नता होती है ॥ ३९ ॥ इनका जैसा पाण्डित्य मनुष्यों में कहीं देखने में नहीं आता, केवल दुःख इसी बात का है कि-यह श्रीकृष्ण को नहीं भजते ॥४०॥ सभी वैष्णव परस्पर में एक दूसरे के प्रति अपनी-अपनी इच्छा प्रकट करके कहते कि-'इसकी श्रीकृष्ण में रति हो' ॥ ४१ ॥ वह सब श्रीगङ्गा जी को दण्डवत् प्रणाम करके प्रभु के प्रति आशीर्वाद करते थे ॥४२॥ हे कृष्ण ! आप कृपा करके ऐसा कीजिये कि-'यह श्रीजगन्नाथ मिश्र का पुत्र सब ओर से मन हटाकर तुम्हारे ही रस में मत्त हो जाय ॥ ४३ ॥ यह निरन्तर तुमको प्रेम-भाव से भजे, हे कृष्ण ! तब इनका सङ्ग हम सब जनों को प्राप्त हो' ॥ ४४ ॥ अन्तर्यामी प्रभु सबके चित्त की जानने वाले हैं, आप श्रीवास आदि भक्तों को देखते ही उनको नमस्कार करते थे ॥ ४५ ॥ प्रभु भक्तों का आशीर्वाद सिर पर धारण करते, भक्तों के आशीर्वाद से ही श्री-कृष्ण में रति होती है ॥ ४६ ॥ कोई-कोई तो प्रभु के सामने ही उनसे कहते कि-'ए निमाइ ! तुम विद्या-रस में मत्त होकर अपने समय को क्यों नष्ट करते हो ?' ॥ ४७ ॥ कोई कहता कि-'ए निमाइ पण्डित ! सुनो । विद्या संसार-समुद्र से पार नहीं कर सकती इसलिये शीघ्र ही श्रीकृष्ण-भजन करना आरम्भ करो ॥४८॥ लोग पढ़ते

हासि वले प्रभु बड़ भाग्य से आमार । तोमरा शिखाओ मोरे कृष्ण-भक्ति सार ॥५०॥
तुमि सब जार कर शुभानुसन्धान । मोर चित्ते हेन लय सेइ भाग्यवान् ॥५१॥
कत दिन पढ़ाइया मोर चित्ते आछे । वुझिया चलिमु भाल वैष्णवेर काछे ॥५२॥
एत वलि हासे प्रभु सेवकेर सने । प्रभुर मायाय केह प्रभुरे ना चिने ॥५३॥
एइ मत ठाकुर सभार चित्त हरे । हेन नाहि जे जन अपेक्षा नाहि करे ॥५४॥
एइ मत क्षणे प्रभु वैसेन गङ्गा तीरे । कखन भ्रमेण प्रति नगरे नगरे ॥५५॥
प्रभु देखिलेइ मात्र नगरिया गण । परम आदर करि वन्देन चरण ॥५६॥
नारीगण देखि वले एइत मदन । स्त्री लोक पाउक जन्मे जन्मे हेन धन ॥५७॥
पण्डित देखये बृहस्पतिर समान । वृद्ध आसि पाद पद्मे करये प्रणाम ॥५८॥
जोगि गण देखे जेन सिद्ध कलेवर । दुष्ट जन देखे जेन महा भयङ्कर ॥५९॥
दिवसेक प्रभु जारे करेन सम्भाष । बन्दि प्राय हय जेन परे प्रेम फाँस ॥६०॥
विद्या-रसे जत प्रभु करे अहङ्कार । शुनेन तथापि प्रीत प्रभुरे सभार ॥६१॥
जवनेओ प्रभु देखि करे बड़ प्रीत । सर्व्वभूत कृपालता प्रभुर चरित ॥६२॥
पढ़ाय वैकुण्ठ-नाथ नवद्वीप पुरे । मुकुन्द सञ्जय भाग्यवन्तेर मन्दिरे ॥६३॥
पक्ष प्रति पक्ष सूत्र खण्डन स्थापन । बाखाने अशेष रूपे शचीर नन्दन ॥६४॥

किस लिये हैं ? 'कृष्ण भक्ति जानने के लिये'। यदि पढ़कर कृष्ण-भक्ति ही नहीं जानी गई तब विद्या से क्या लाभ हुआ ?' ॥ ४९ ॥ प्रभु हँसकर बोलते कि–'मेरा बड़ा भाग्य है, आप लोग 'श्रीकृष्ण-भक्ति सार सिखाइये' ॥५०॥ आप सब सज्जन जिसका शुभ अनुसन्धान करते हैं मुझे तो ऐसा लगता है कि–वही भाग्यवान है ॥ ५१ ॥ मेरे मन में ऐसा है कि–मैं कुछ दिन पढ़ाकर, विचार करके किसी अच्छे वैष्णव के पास जाऊँगा' ॥ ५२ ॥ इतना कहकर प्रभु भक्तों के साथ हँसते थे, प्रभु की माया के कारण उन्हें कोई भी नहीं पहिचान पाता था ॥ ५३ ॥ इस प्रकार ठाकुर सब का चित्त हरण कर लेते थे ऐसा कोई भक्त नहीं था, जो आपके सत्कार के लिये आपकी बाट न देखता हो ।' ॥ ५४ ॥ इस प्रकार प्रभु कभी तो क्षण भर श्रीगङ्गा-तीर पर बैठते तथा कभी नगर के प्रत्येक भाग में भ्रमण करते थे ॥५५॥ नगर-निवासी प्रभु को देखते मात्र ही परम आदर पूर्वक श्रीचरणों की बन्दना करने लगते थे ॥ ५६ ॥ आपके दर्शन करके रमणी-गण कहती कि–यही तो मदन हैं; सभी स्त्रियाँ जन्म-जन्म में इस धन (वर) को प्राप्त करें ॥५७॥ पण्डित लोग बृहस्पति जी के समान देखते थे; और उनमें से वृद्ध भी आ आ कर आपके चरण-कमलों में प्रणाम करते थे ॥ ५८ ॥ योगी-गण आपको सिद्ध पुरुष के रूप में देखते थे; दुष्ट मनुष्य आपको महा भयङ्कर स्वरूप में देखते थे ॥ ५९ ॥ प्रभु एक दिन भी जिसके साथ बात-चीत कर लेते वही पुरुष बन्दी की तरह होकर प्रेम के जाल में फँस जाता था ॥ ६० ॥ प्रभु विद्या-रस-क्रीड़ा में जितना भी अहङ्कार प्रदर्शित करते तो भी उनको सब लोग सुनकर प्रीति करते थे ॥६१॥ यवन भी प्रभु को देखकर बड़ी प्रीति दिखलाते थे; इस प्रकार प्रभु के चरित्र में प्राणि-मात्र पर प्रचुर प्रीति देखने में आती थी ॥ ६२ ॥ वैकुण्ठनाथ श्रीगौरसुन्दर श्रीनवद्वीप-पुर में भाग्यवान् श्रीमुकुन्द 'सञ्जय' के घर पर विद्यार्थियों को विद्या अध्ययन कराते थे ॥ ६३ ॥ श्रीशची-नन्दन प्रभु अनेक प्रकार से पक्ष एवं

गोष्ठी सह मुकुन्द 'सञ्जय' भाग्यवान् । भासये आनन्दे मर्म्म ना जानये तान ॥६५॥
विद्या जय करिया ठाकुर जाय घरे । विद्या रसे वैकुण्ठेर नायक विहरे ॥६६॥
एक दिन महा वायु मान्द्य करि छल । प्रकाशेन प्रेम-भक्ति विकार-सकल ॥६७॥
आचम्बिते प्रभु अलौकिक शब्द बोले । गड़ागड़ि जाय, हासे, घर भाङ्गि फेले ॥६८॥
हुङ्कार गर्ज्जन करे मालसाट पूरे । सम्मुखे देखये जारे ताहारेइ मारे ॥६९॥
क्षणे क्षणे सर्व्व अङ्ग स्तम्भाकृति हय । हेन मुर्च्छा हय लोक देखि पाय भय ।७०॥
शुनिलेन बन्धुगण वायुर विकार । धाइया आसिया सभे करे प्रतीकार ॥७१॥
बुद्धिमन्त खान आर मुकुन्द सञ्जय । गोष्ठी सह आइलेन प्रभुर आलय ॥७२॥
विष्णुतैल नारायणतैल देन शिरे । सभे करे प्रतीकार जार जेन स्फुरे ॥७३॥
आपन इच्छाय प्रभु नाना कर्म्म करे । से केमने सुस्थ हइबेक प्रतीकारे ॥७४॥
सर्व्व अङ्ग कम्प प्रभु करे आस्फालन । हुङ्कार शुनिञा भय पाय सर्व्व जन ॥७५॥
प्रभु बले 'मुञि सर्व्व लोकेर ईश्वर । मुञि विश्वधर मोर नाम विश्वम्भर ॥७६॥
मुञि सेइ मोरे त ना चिने कोन जने ।' एत बलि लड़देइ धरे सर्व्व गने ॥७७॥
आपना प्रकाश प्रभु करे वायु-छले । तथापि ना बुझे केह तार माया बले ॥७८॥
केह बले 'दानव हइल अधिष्ठान ।' केह बले 'हेन बुझि डाकिनीर काम' ॥७९॥

प्रतिपक्ष से लेकर सूत्रों के स्थापन-खण्डन की व्याख्या वर्णन करते रहते थे ॥ ६४ ॥ भाग्यवान् श्रीमुकुन्द 'सञ्जय' गोष्ठी के साथ आनन्दानुभव करते थे, परन्तु वह इसका मर्म कुछ भी नहीं जान पाते थे ॥ ६५ ॥ पश्चात् विद्या में विजय प्राप्त करके ठाकुर घर आते थे। इस प्रकार श्रीवैकुण्ठ नायक विद्या-रस में विहार करते थे ॥ ६६ ॥ एक दिन प्रभु महा वायु रोग के बहाने से (छल करके) प्रेम-भक्ति के सम्पूर्ण विकारों को प्रकट करने लगे ॥ ६७ ॥ उस दिन अकस्मात् प्रभु अलौकिक शब्द बोलने लगे-कभी लोटते-पोटते, कभी हँसते एवं घर को तोड़ फोड़ कर गिरा दिया॥६८॥कभी हुङ्कार एवं गर्जना करने लगे कभी खम्भ ठोंकते, कभी जिसको सामने देखते उसी को मारते ॥ ६९ ॥ और थोड़ी २ देर पश्चात् सर्व अङ्ग स्तम्भाकृति हो जाते और कभी ऐसी मूर्च्छा होती कि-जिसे देखकर लोग भय खाते थे ॥ ७० ॥ जब बन्धु वर्ग ने प्रभु के वायु-विकार की बात सुनी तब वे सब लोग दौड़े आये तथा रोग की रोक करने लगे ॥ ७१ ॥ श्रीबुद्धिमन्त खान एवं श्रीमुकुन्द 'सञ्जय' भी निज गोष्ठी के साथ प्रभु के घर पर आये ॥७२॥ सब लोग जिसको जैसा स्फुरण होता रोग का प्रतीकार करता था कोई सिर में विष्णु-तैल देता तो कोई नारायण तैल ॥ ७३ ॥ प्रभु अपनी इच्छा से नाना कर्म करते हैं फिर भला वह प्रतीकार करने से कैसे स्वस्थ हो सकते थे ॥ ७४ ॥ प्रभु सर्व अङ्ग से कँप कँपाते हुए आस्फालन (आत्म-प्रशंसा) करते थे एवं मध्य-मध्य में आपकी हुङ्कारें सुनकर सब लोग भय खाते थे ॥ ७५ ॥ प्रभु कहते कि-'मैं ही सर्व-लोकों का ईश्वर हूँ, मैं ही विश्व को धारण करने वाला हूँ, मेरा ही नाम विश्वम्भर है' ॥ ७६ ॥ 'मैं वही हूँ परन्तु मुझे कोई नहीं पहिचानता' ऐसा कहकर प्रभु दौड़ कर सब लोगों को पकड़ते थे ॥ ७७ ॥ प्रभु वायु के छल से इस प्रकार अपना प्रकाश दिखलाते थे तब भी आपकी माया के वशीभूत होकर कोई आपको नहीं समझ पाता था ॥ ७८ ॥ कोई कहता कि-'इनके ऊपर दानव का

केह वले 'सदाइ करये वाक्य व्यय । अतएव हइल वायु जानिह निश्चय' ।।८०।।
एइ मत सर्व्व जन करेन विचार । विष्णु-माया मोहे तत्त्व ना जानिया तार ।।८१।।
बहुविध पाकतैल सभे देन शिरे । तैल द्रोणे थुइ तैल देन कलेवरे ।।८२।।
तैल द्रोणे भासे प्रभु हासे खल खल । सत्य जेन महा वायु करियाछे बल ।।८३।।
एइ मत आपन इच्छाय लीला करि । स्वाभाविक हइला प्रभु वायु परि हरि ।।८४।।
सर्व्व गणे उठिल आनन्द हरि ध्वनि । के काहारे वस्त्र देय हेन नाहिं जानि ।।८५।।
सर्व्व लोके शुनिजा हइल हरषित । सभे वले 'जीओ जीओ एहेन पण्डित' ।।८६।।
एइ मत रङ्ग करे वैकुण्ठेर राय । के तारे जानिते पारे जदि ना जानाय ।।८७।।
प्रभुरे देखिया सर्व्व वैष्णवेर गण । सभे वले 'भज बाप कृष्णेर चरण ।।८८।।
क्षणेके नाहिक बाप अनित्य शरीर । तोमारे कि शिखाइवा तुमि महाधीर' ।।८९।।
हासि प्रभु सभारे करिया नमस्कार । पढ़ाइते चले शिष्य संहति अपार ।।९०।।
मुकुन्द सञ्जय पुण्यवन्तेर मन्दिरे । पढ़ायेन प्रभु चण्डी मण्डप भितरे ।।९१।।
परम सुगन्धि पाक तैल प्रभु शिरे । कोन पुण्यवन्त देय प्रभु व्याख्या करे ।।९२।।
चतुर्द्दिके महा पुण्यबन्त शिष्य-गण । माझे प्रभु व्याख्या करे जगत जीवन ।।९३।।
से शोभार महिमा कहिते नाहि पारि । उपमा कि दिव कोन ना देखि विचारि ।।९४।।

आवेश हो गया है' कोई कहता कि-'ऐसा प्रतीत होता है कि-'यह डाकिनी का काम है' ।। ७९ ।। कोई कहता कि-'यह निरन्तर वक-वक करते रहते थे अतएव वायु-विकार होगया है यह तुम निश्चय जानो' ।। ८० ।। सभी जन इस प्रकार के अनेक विचार करते थे वह सब विष्णु माया से मोहित होने के कारण उसके तत्त्व को न जान कर ऐसा कहते थे ।। ८१ ।। उस समय सब लोग अनेक प्रकार के पाक किये हुए तेल आपके सिर में लगा रहे थे और तैल के घड़े रखकर प्रभु के शरीर में मल रहे थे ।। ८२ ।। प्रभु तेल के घट को देख कर 'खल-खल' करके हँसते रहे थे मानो सत्य ही महा-वायु अपना बल दिखला रहा हो ।। ८३ ।। इस प्रकार प्रभु अपनी इच्छा से कुछ देर लीला करने के पश्चात् वायु-विकार को छोड़ कर अपनी उसी सहज प्रकृति में आ जाते थे ।। ८४ ।। तब सब गोष्ठी भर में आनन्द से 'हरि' 'हरि' ध्वनि करने लगे और आनन्द में फूले न समा कर कौन किसको वस्त्र देता है यह भी जाना नहीं जाता ।। ८५ ।। अन्य सब लोग भी यह सुनकर अति प्रसन्न होते और कहते कि-'ऐसे पण्डित चिरञ्जीवी हों, चिरञ्जीवी हों ।। ८६ ।। श्रीवैकुण्ठनाथ इसी प्रकार के खेल करते थे; यदि आप अपने को न जनावें तो आपको कौन जान सकता है ? ।। ८७ ।। सर्व वैष्णव-वृन्द प्रभु को देखकर कहते थे कि-'तात ! श्रीकृष्ण-चरणारविन्दों का भजन किया करो ।। ८८ ।। हे तात ! यह शरीर अनित्य है यह एक क्षण का भी नहीं है हम तुमको क्या सिखावें तुम तो स्वयं परम पण्डित हो' ।।८९।। उनकी बातें सुनकर प्रभु हँसकर उन सब को नमस्कार करके अनगिनत शिष्यों के साथ पढ़ाने के लिये चल दिये ।। ९० ।। प्रभु पुण्यवान् श्रीमुकुन्द 'सञ्जय' के घर चण्डी मण्डप के भीतर विद्याध्ययन कराते थे ।।९१।। प्रभु व्याख्या करते जाते हैं और कोई एक सुकृतिशाली छात्र प्रभु के सिर में परम-सुगन्धित पाक तैल लगा रहा है ।। ९२ ।। प्रभु के चारों ओर महा पुण्यशाली शिष्यगण विराजित थे एवं मध्य में जगत-जीवन आप

हेन बुझि जेन सनकादि शिष्य-गणे । नारायण बेढ़ि वैसे बदरिकाश्रमे ।।९५।।
ताह सभा लैया जेन से प्रभु पढ़ाय । हेन बुझि सेइ लीला करे गौर राय ।।९६।।
सेइ बदरिकाश्रमवासी नारायण । निश्चय जानिह एइ शचीर नन्दन ।।९७।।
अत एव शिष्य सङ्गे सेइ लीला करे । विद्या रसे वैकुण्ठेर नायक विहरे ।।९८।।
पढ़ाइया प्रभु दुइ प्रहर हइले । तवे शिष्य गण लैया गङ्गा-स्नाने चले ।।९९।।
गङ्गा जले विहार करिञा कथोक्षण । गृहे आसि करे प्रभु श्री विष्णु-पूजन ।।१००।।
तुलसीरे जल दिया प्रदक्षिण करि । भोजने बसिला गिया बलि 'हरि' 'हरि' ।।१०१।।
लक्ष्मी देन अन्न खान वैकुण्ठेर पति । नयन भरिञा देखे आइ पुण्यवती ।।१०२।।
भोजनेर अन्ते करि ताम्बूल चर्वण । शयन करिले लक्ष्मी सेवेन चरण ।।१०३।।
कथो क्षणे जोग निद्रा प्रति दृष्टि दिया । पुनः प्रभु चलिलेन पुस्तक लइञा ।।१०४।।
नगरे उठिया करे अशेष विलास । सभार सहिते करे हासिया सम्भाष ।।१०५।।
जद्यपि प्रभुर केह तत्त्व नाहि जाने । तथापि आनन्दे भासे देखि सर्व्वजने ।।१०६।।
नगरे भ्रमण करे शचीर-नन्दन । देवेर दुर्लभ वस्तु देखे सर्व्वजन ।।१०७।।
उठिलेन प्रभु तन्तुवायेर नगरे । देखिया सम्भ्रमे तन्तुवाय नमस्करे ।।१०८।।
'भाल वस्त्र आन' प्रभु वलये वचन । तन्तुवाय वस्त्र आनिलेन सेइ क्षण ।।१०९।।
प्रभु वले ए वस्त्रेर मूल्य कि लइबा । तन्तुवाय वले तुमि आपने जे दिबा ।।११०।।

विराजमान हुए व्याख्या करते थे ।।९३।। उस शोभा की महिमा कहने की मेरी सामर्थ्य नहीं है उसकी उपमा किससे दूँ, विचार करने पर भी कोई सामने नहीं आती ।। ९४ ।। ऐसे समझ पड़ता है कि जैसे-बदरिकाश्रम में सनकादि शिष्य-गण श्रीनारायण को घेर कर बैठे हुए हों ।। ९५ ।। मानो वही प्रभु उन सब शिष्यगण को लेकर पढ़ा रहे हैं ऐसा प्रतीत होता था कि—श्रीगौरचन्द्र उस समय वही लीला कर रहे थे ।। ९६ ।। निश्चय इन श्रीशचीनन्दन को वही बदरिकाश्रम-वासी श्रीनारायण जानिये ।। ९७ ।। इसीलिये शिष्यों के साथ वही लीला कर रहे थे इस प्रकार वैकुण्ठ-नायक श्रीगौरसुन्दर विद्या-रस-विहार करते थे ।। ९८ ।। दो पहर होने पर प्रभु पढ़ाना समाप्त कर शिष्यगण को साथ लेकर श्रीगङ्गा स्नान करने को जाते थे ।।९९।। कुछ समय श्रीगङ्गा-जल में विहार करके पश्चात् प्रभु घर आकर श्रीविष्णु-पूजन करते थे ।। १०० ।। फिर तुलसी में जल देकर एवं उनकी प्रदक्षिणा करके 'हरि' 'हरि' बोलते हुए भोजन करने बैठते ।। १०१ ।। श्रीलक्ष्मीजी अन्न परिवेशन करती और वैकुण्ठपति खाते बैठते तो पुण्यवती श्रीशची माता नयन भर-भर कर देखती थी ।। १०२ ।। भोजन के अन्त में ताम्बूल चर्वण कर शयन करने पर लक्ष्मीजी चरण-सेवा करतीं ।।१०३।। कुछ समय योग-निद्रा के प्रति दृष्टिपात करके अर्थात् सोकर प्रभु फिर पुस्तक लेकर चल देते थे ।।१०४।। और नगर में जाकर अनेक विलास करते थे एवं सबके साथ हँस कर बात-चीत करते थे ।। १०५ ।। यद्यपि कोई प्रभु का तत्त्व नहीं जानता तब भी सब लोग आपको देखकर आनन्द समुद्र में उतरते थे ।। १०६ ।। श्रीशची-नन्दन नगर में भ्रमण करते देवताओं को भी दुर्लभ वस्तु (आप) का जन-साधारण भी दर्शन पाते थे ।। १०७ ।। भ्रमण करते हुए प्रभु बुनकरों के मुहल्ले में जाते, बुनकर प्रभु को देखकर शीघ्रता से नमस्कार करते ।। १०८ ।। प्रभु

मूल्य करि वले प्रभु 'एवे कड़ि नाञि' । ताँति वले 'दसे पचे दिवा जे गोसाञि' ॥१११॥
वस्त्र लइया, पर, तुमि परम सन्तोषे । पाछे तुमि कड़ि मोरे दिओ समावेशे ॥११२॥
तन्तुवाय प्रति प्रभु शुभ दृष्टि करि । उठिलेन गिया प्रभु गोयालार पुरी ॥११३॥
वलिलेन महा प्रभु गोपेर दुआरे । ब्राह्मण सम्बन्धे प्रभु परिहास करे ॥११४॥
प्रभु वले 'आरे बेटा दधि दुग्ध आन । आजि तोर घरेर लइमु महादान' ॥११५॥
गोप वृन्द देखे जेन साक्षात् मदन । सम्भ्रमे दिलेन आनि उत्तम आसन ॥११६॥
प्रभु सङ्गे गोपगण करे परिहास । 'मामा' 'मामा' वलि सभे करेन सम्भाष ॥११७॥
केह वले 'चल मामा भात खाइ गिया' । कोन गोप कान्धे करि जाय घरे लैआ ॥११८॥
केह वले 'आमार घरेर जत भात । पूर्व्वे जे खाइला मने नाहिक तोमात' ? ॥११९॥
सरस्वती सत्य कहे गोप नाहि जाने । हासे महा प्रभु गोप-गणेर वचने ॥१२०॥
दुग्ध दधि घृत सर सुन्दर नवनी । सन्तोषे ताहारे सब गोप देय आनि ॥१२१॥
गोयाला कुलेरे प्रभु प्रसन्न हइया । गन्ध बणिकेर घरे उठिलेन गिया ॥१२२॥
सम्भ्रमे बणिक करे चरणे प्रणाम । प्रभु वले 'अरे भाइ ! भाल गन्ध आन' ॥१२३॥
दिव्य गन्ध वणिक् आनिल ततक्षण । 'कि मूल्य लइवा' वले श्रीशची-नन्दन ॥१२४॥
वणिक् वलये 'तुमि जान महाशय । तोमा स्थाने मूल्य कि वलिते युक्त हय ! ॥१२५॥

कहते कि-'एक अच्छा सा वस्त्र लाओ' सुनते ही एक बुनकर उसी क्षण वस्त्र लाकर देता ॥ १०९ ॥ प्रभु कहते कि-इस कपड़े का मूल्य क्या लोगे ? बुनकर कहता कि जो आप अपने हाथ से दे दें ॥११०॥ मूल्य ठहराकर प्रभु तब कहते कि-'भाई ! इस समय दाम नहीं हैं' तब बुनकर कहता कि-'प्रभो ! जब आपकी इच्छा हो १०-१५ दिन में दे देना ॥ १११ ॥ वस्त्र को लेकर आप परम प्रसन्नता पूर्वक पहनिये, आप पीछे धीरे-धीरे इकट्ठे करके मुझे दाम दे देना ॥ ११२ ॥ तन्तुवाय के प्रति प्रभु शुभ दृष्टिपात करके गोप-वृन्द के मुहल्ले में जा पहुँचे ॥ ११३ ॥ और एक गोप के द्वार पर जाकर श्री महाप्रभु ब्राह्मण होने के नाते परिहास करते हुए बोले ॥ ११४ ॥ 'अरे बेटा ! दूध दही ला, आज तेरे ही घर से महादान (कर) लूँगा ॥ ११५ ॥ गोप-वृन्द आपको साक्षात्-मदन ही देखते थे एवं शीघ्रता पूर्वक उत्तम आसन लाकर दिया ॥ ११६ ॥ गोप-गण भी प्रभु के साथ हास-परिहास करते वह सब प्रभु से 'मामा' 'मामा' कहकर बात-चीत करते थे ॥ ११७ ॥ कोई कहता कि-चलो मामा ! घर चलकर भात खाँय, तब कोई गोप आपको कन्धे पर बैठा कर भीतर घर ले जाता ॥ ११८ ॥ कोई कहता कि-'पूर्व काल में तो हमारे घर का जितना भात तुमने खाया था, क्या वह तुम्हें स्मरण नहीं है' ॥ ११९ ॥ श्रीसरस्वती जी उनकी वाणी से सत्य ही कहलवातीं रही थी गोपवृन्द उस बात को जानते नही थे । श्रीमहाप्रभु जी गोप-गण के वचनों को सुनकर हँसते थे ॥१२०॥ गोप-गण प्रसन्नता पूर्वक अपने अपने घरों से सुन्दर दूध, दही, घी, मलाई एवं मक्खन लाकर आपको देते थे ॥ १२१ ॥ जिसे प्रभु गोप-कुल के ऊपर प्रसन्न होकर इत्र बेचने वालों के घर पर जा पहुँचे ॥ १२२ ॥ गन्धी ने शीघ्रता से प्रभु के चरणों में प्रणाम की, प्रभु बोले कि-'अरे भाई ! एक अच्छी सी गन्ध लाओ' ॥ १२३ ॥ गन्धी ने तत्क्षण एक दिव्य गन्ध लाकर भेंट दी प्रभु उससे कहते थे कि-'इसका मूल्य क्या लोगे' ॥ १२४ ॥ गन्धी उत्तर देता

आजि गन्ध परि घरे जाह'त' ठाकुर। कालि जदि गाये गन्ध थाकये प्रचुर ॥१२६॥
धुइलेओ जदि गाये गन्ध नाहि छाड़े। तवे दिओ मूल्य जे तोमार चित्ते पड़े' ॥१२७॥
एत बलि आपने प्रभुर सर्व्व अङ्गे। गन्ध देय वणिक ना जाने कोन रङ्गे ॥१२८॥
सर्व्व भूत हृदये आकर्षे सर्व्व मन। से रूप देखिया मुग्ध नहे कोन जन ॥१२९॥
वणिकेरे अनुग्रह करि विश्वम्भर। उठिलेन गिया प्रभु मालाकारेर घर ॥१३०॥
परम अद्भुत रूप देखि मालाकार। सादरे आसन दिया करे नमस्कार ॥१३१॥
प्रभु बले 'भाल माला देह मालाकार। कड़ि पाति लागे किछु नाहिक आमार ॥१३२॥
सिद्ध पुरुषेर प्राय देखि मालाकार। माली बले 'किछु दाय नाहिक तोमार' ॥१३३॥
एत बलि माला दिल प्रभुर श्री अङ्गे। हासे महा प्रभु सर्व्व पढुयार सङ्गे ॥१३४॥
माला कार प्रति प्रभु शुभदृष्टि करि। उठिला ताम्बूली घरे गौराङ्ग श्री हरि ॥१३५॥
ताम्बूली देखये रूप मदन मोहन। चरणेर धूलि लइ दिलेन आसन ॥१३६॥
ताम्बूली कहये 'बड़ भाग्य से आमार। कोन भाग्ये तुमि आमा छारेर दुयार' ॥१३७॥
एत बलि आपने से परम सन्तोषे। दिलेन ताम्बूल आनि प्रभु देखि हासे ॥१३८॥
प्रभु बले 'कड़ि बिना केन गुया दिला'। ताम्बूली कहये 'चित्ते हेनइ लइला॥'१३९॥
हासे प्रभु ताम्बूलीर शुनिआ वचन। परम सन्तोषे करे ताम्बूल चर्वण ॥१४०॥

कि-'महाशय जी! आप तो जानते हो। क्या आप से मूल्य कहना उचित है? ॥१२५॥ ठाकुर! गन्ध लगाकर आज घर जाओ और कल यदि प्रचुर सुगन्धि इसकी तुम्हारे शरीर में रही आवे ॥ १२६ ॥ एवं धोने पर भी यदि शरीर से गन्ध दूर न हो, तब जो आपके चित्त में आवे वह मूल्य देना' इतना कहकर गन्धी स्वयं प्रभु के सर्व अङ्ग में न जाने किस रङ्ग में मत्त हुआ अपने हाथ से गन्ध (लेपन) मर्दन करने लगा ॥१२७-१२८॥ आप सब प्राणियों के हृदय में विराजमान हैं इसीलिये उन सब के मन को आकर्षित करते हैं, ऐसा कौन प्राणी है, जो आपके इस रूप को देख कर मुग्ध न हो ॥ १२९ ॥ इस प्रकार गन्धी के ऊपर प्रभु विश्वम्भर कृपा करके एक माली के घर पहुँचे ॥ १३० ॥ माली ने प्रभु का परम अद्भुत रूप देख कर सादर आसन देकर नमस्कार किया ॥ १३१ ॥ प्रभु कहने लगे कि-'भाई मालाकार! हमको एक अच्छी सी माला दो। परन्तु हमारे पास कौड़ी पैसा तो कुछ है नहीं ॥१३२॥ सिद्ध महात्मा पुरुष के अनुरूप आपको देख कर माली बोला कि-'प्रभो! आपको कुछ नहीं देना होगा' ॥ १३३ ॥ इतना कहकर माली ने प्रभु के श्रीअङ्ग में माला पहिना दी, श्री महाप्रभु सब छात्रों के साथ हँसने लगे ॥१३४॥ श्रीगौराङ्ग हरि, माली के प्रति शुभ दृष्टि करके एक तम्बोली के घर जा पहुँचे ॥ १३५ ॥ तम्बोली ने आपका मदनमोहन रूप देखकर श्रीचरणों की धूलि (मस्तक पर) लेकर प्रभु को आसन दिया ॥ १३६ ॥ तम्बोली ने कहा कि-'मेरा बड़ा भाग्य है। न जाने किस पुण्य भाग से आप मुझ तुच्छ के घर पधारे' ॥ १३७ ॥ इतना कह स्वयं ही उसने परम प्रसन्नता पूर्वक प्रभु को ताम्बूल निवेदन किया यह देखकर प्रभु हँस पड़े ॥ १३८ ॥ प्रभु ने कहा कि-'भाई! तुमने बिना कुछ लिये ही हमको ताम्बूल सुपाड़ी दे दिये?' तम्बोली ने उत्तर दिया कि-'मेरे चित्त में ऐसी ही आई' ॥१३९॥ तब तम्बोली की बात सुनकर प्रभु हँसे एवं परम प्रसन्नता पूर्वक ताम्बूल चर्वण करने लगे॥ १४० ॥ तम्बोली

दिव्य चूर्ण कर्पूरादि जत अनुकूल । श्रद्धा करि दिले तार नाहिनिल मूल ॥१४१॥
ताम्बूलीरे अनुग्रह करि गौरराय । हासिया हासिया सर्व्व नगरे वेड़ाय ॥१४२॥
मधु पुरी प्राय जेन नवद्वीप पुरी । एक जाति लक्ष लक्ष कहिते ना पारि १४३॥
प्रभुर विहार लागि पूर्व्वइ विधाता । सकल सम्पन्न करि थुइलेन तथा ॥१४४॥
पूर्व्वे जेन मधुपुरी करिला भ्रमण । सेइलीला करे एवे शचीर नन्दन ॥१४५॥
तवे गौर गेला शङ्ख वणिकेर घरे। देखि शङ्ख-वणिक सम्भ्रमे नमस्करे ॥१४६॥
प्रभु वले 'दिव्य शङ्ख आन देखि भाइ । के मने वा निव शङ्ख कपर्द्दक नाञि' १४७॥
दिव्य शङ्ख शाँखारि आनिञा सेइ क्षणे । प्रभुर श्री हस्ते दिया वले प्रीत मने ॥१४८॥
'शङ्ख लइ घरे तुमि चलह गोसाञि । पाछे कड़ि दिह, ना दिलेओ दाय नाञि' ॥१४९॥
तुष्ट हइ प्रभु शङ्ख-वणिक वचने । चलिलेन हासि शुभ दृष्टि करि ताने ॥१५०॥
एइमत नवद्वीपे जतनगरिया । सभार मन्दिरे प्रभु बुलेन भ्रमिया ॥१५१॥
सेइ भाग्ये अद्यापिओ नागरिक गण । गायेन चैतन्य नित्यानन्देर चरण ॥१५२॥
निज इच्छा मय गौरचन्द्र भगवान । सर्व्वज्ञेर घरे प्रभु करिला पयान ॥१५३॥
देखिया प्रभुर तेज सेइ 'सर्व्व-ज्ञान' । विनय सम्भ्रम करि करिला प्रणाम ॥१५४॥
प्रभु वले तुमि 'सर्व्व-ज्ञान' भाल शुनि । वल देखि आर जन्मे कि छिलाम आमि ॥१५५॥
भाल वलि सुकृति सर्व्वज्ञ चिन्ते मने । जपिते गोपाल मंत्र देखे सेइ क्षणे ॥१५६॥

ने प्रभु की इच्छा समझ कर श्रद्धा-पूर्वक दिव्य चूर्ण एवं कर्पूर आदि भी बिना मूल्य उन्हें दिया ॥ १४१ ॥ श्रीगौरसुन्दर तम्बाली के ऊपर अनुग्रह करके हँसते हुए सब नगर में विचरने लगे ॥ १४२ ॥ श्रीनवद्वीप-पुरी श्रीमधुपुरी के समान (सम्पन्न) भी जहाँ प्रत्येक जाति के लाखों-लाखों मनुष्य निवास करते थे ॥ १४३ ॥ विधाता ने पहले से ही प्रभु के विहार के लिये वहाँ सम्पूर्ण वस्तुएँ सम्पन्न कर रक्खी थी ॥ १४४ ॥ श्रीकृष्ण रूप से पूर्वकाल में जो श्रीमधुपुरी में भ्रमण लीला की थी, वही लीला अब श्रीशची-नन्दन (श्रीगौरसुन्दर) का रहे थे ॥ १४५ ॥ पश्चात् श्रीगौरचन्द्र शङ्ख-वणिक के घर गये, शङ्ख-वणिक ने प्रभु को देखकर शीघ्र पूर्वक नमस्कार किया ॥ १४६ ॥ प्रभु कहते हैं कि-'देखें, भाई ! एक दिव्य शङ्ख तो लाओ, लेकिन मैं तुम्हारे शङ्ख को लूँगा किस प्रकार ? मेरे पास तो कौड़ी नहीं हैं ॥ १४७ ॥ शङ्ख-वणिक उसी क्षण दिव्य शङ्ख लाकर प्रभु के श्रीहस्त में देकर प्रीति पूर्वक करने लगा ॥ १४८ ॥ 'प्रभो ! शङ्ख लेकर आप घर को जाँय, मूल्य की कौड़ी पीछे दे देना और यदि नहीं भी देओ तब भी आपको कुछ देना नहीं है' ॥ १४९ ॥ प्रभु शङ्ख-वणिक वचनों से सन्तुष्ट होकर एवं इसके ऊपर शुभ दृष्टि करके हँसते हुए आगे चले ॥ १५० ॥ प्रभु इस प्रकार श्री-नवद्वीप में सब मनुष्यों के घर भ्रमण करते फिरते थे ॥ १५१ ॥ उसी भाग्य से आज भी नवद्वीप-निवासी जन श्रीचैतन्य व नित्यानन्द के चरण-कमलों का यश गान करते हैं ॥ १५२ ॥ निज इच्छामय भगवान् श्री-गौरचन्द्र पश्चात् एक ज्योतिषी के घर पधारे ॥ १५३ ॥ वह ज्योतिषी प्रभु के तेज को देख कर विनय एवं सम्भ्रम पूर्वक प्रभु को प्रणाम करने लगा ॥ १५४ ॥ प्रभु ने कहा कि-हमने तुमको एक अच्छा ज्योतिषी सुना है, देखें, कहो तो पूर्व जन्म में कौन था ? ॥ १५५ ॥ 'अच्छा' कहकर उस सुकृतिशाली सर्वज्ञ ने श्रीगोपाल-

शङ्ख चक्र गदा पद्म चतुर्भुज श्याम । श्रीवत्स कौस्तुभ अङ्गे महा ज्योतिर्धाम ॥१५७॥
निशाभागे देखे अवतीर्ण वन्दि घरे । पिता माता देखये सम्मुखे स्तुति करे ॥१५८॥
सेइ क्षणे देखे पिता पुत्र लइया कोले । सेइ रात्रे गइलेन आनिया गोकुले ॥१५६॥
पुनः देखे मोहन द्विभुज दिगम्बरे । कटिते किङ्किणी नवनीत दुइ करे ॥१६०॥
निज इष्ट मूर्ति जाहा चिन्ते अनुक्षण । सर्वज्ञ देखये सेइ सकल लक्षण ॥१६१॥
पुनः देखे त्रिभङ्गिम मुरली वदन । चतुर्दिके जंत्रगीत गाय गोपी गण ॥१६२॥
देखिया अद्भुत चक्षु मेलि 'सर्व्व-ज्ञान' । गौराङ्गे चाहिया पुनः पुनः करे ध्यान ॥१६३॥
सर्व्वज्ञ कहये शुन श्री बाल गोपाल । के आछिला द्विज एइ देखाओ सकल ॥१६४॥
तवे देखे धनुर्द्धर दूर्व्वादल श्याम । वीरासने प्रभुरे देखये 'सर्व्व-ज्ञान' ॥१६५॥
पुनः देखे प्रभुरे प्रलय जल- माझे । अद्भुत वराह मूर्ति दन्ते पृथ्वी साजे ॥१६६॥
पुनः देखे प्रभुरे नृसिंह अवतार । महा उग्ररूपे भक्त वत्सल अपार ॥१६७॥
पुनः देखे ताहारे वामन रूप-धारी । वलि जज्ञ छलिते आछेन माया करि ॥१६८॥
पुनः देखे मत्स्यरूपे प्रलयेर जले । करिते आछेन जल क्रीड़ा कुतूहले ॥१६६॥
सुकृति सर्व्वज्ञ पुनः देखये प्रभुरे । मत्त हलधर रूप श्री मुषल करे ॥१७०॥
पुनः देखे जगन्नाथ मूर्त्ति सर्व्वज्ञान । मध्ये शोभे सुभद्रा दक्षिणे बलराम १७१॥

मन्त्र जपते हुए उसी क्षण ध्यानावस्था में मन में देखा कि ॥ १५६ ॥ शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज श्याम, श्रीअङ्ग में श्रीवत्स एवं कौस्तुभ मणिधारी, महा ज्योति-र्धाम निशा काल में वन्दि-घर में अवतीर्ण हो रहे हैं और सामने खड़े हुए माता-पिता आपकी स्तुति करते हैं ॥१५८॥ तत्काल ही फिर देखा कि-पिता जी पुत्र को गोदी में लेकर उसी रात गोकुल ले गये ॥ ५६॥ तथा फिर (दुबारा) देखा कि–मनमोहन स्वरूप, द्विभुजधारी, दिगम्बर मूर्त्ति, कटि में किङ्किणी धारण किये दोनों श्रीहस्तों में नवनीत लिये हुए हैं ॥ १६० ॥ सर्वज्ञ जी जिस निज इष्ट श्रीमूर्त्ति का निरन्तर चिन्तन करते थे वही सब लक्षण उस समय देखने को मिले ॥१६१॥ फिर त्रिभङ्गिम श्रीमुरलीधर देखने लगे जिनके चारों ओर गोपीगण यन्त्रों पर गीत गा रहे थे॥१६२॥ सर्वज्ञ ध्यान में आश्चर्यजनक बातें देखकर श्रीगौरचन्द्र की ओर देख देखकर आँखें बन्द कर करके बारम्बार ध्यान करने लगा ॥१६३॥ सर्वज्ञ अपने इष्ट श्रीबाल-गोपालजी से ध्यान में कहने लगा कि-हे श्रीबालगोपाल ! सुनो, यह विप्र पूर्व जन्म में कौन थे वह सब मुझे दिखलाओ ॥ १६४ ॥ तब सर्वज्ञ ने प्रभु को धनुर्धारी दूर्वादल श्याम (श्रीराम) स्वरूप में वीरासन पर बैठे हुए देख रहे ॥ १६५ ॥ पश्चात् प्रभु को प्रलय जल में, अद्भुत श्रीवाराह-मूर्त्ति के रूप में, जिनके दशनों पर पृथ्वी सुशोभित हो रही थी, देखा ॥ १६६ ॥ फिर प्रभुको महा उग्र एवं अपार भक्त-वत्सल श्रीनृसिंह रूप में देखा ॥ १६७ ॥ तदनन्तर आपका वामन-रूपधारी देखा जो बलि की यज्ञ में छलने के लिये माया करके आये हैं ॥ १६८ ॥ फिर देखता है कि–आप मत्स्य रूप से प्रलय के जल में आनन्द पूर्वक जल-क्रीड़ा परायण हैं ॥ १६६ ॥ सुकृति सर्वज्ञ पश्चात् प्रभु को श्रीहस्त में श्रीमुषल धारण किये हुए मत्त श्रीहलधर रूप में देखता है ॥ १७० ॥ सर्वज्ञ फिर श्रीजगन्नाथ मूर्त्ति दर्शन करता है जिनकी दाहिनी ओर श्रीबलराम एवं मध्य में श्रीसुभद्राजी सुशोभित हैं ॥ १७१ ॥ सर्वज्ञ इस प्रकार

एइ मत ईश्वर तत्त्व देखि सर्व्व जान । तथापि ना बुझे किछु हेन माया तान ॥१७२॥
चिन्तये सर्व्वज्ञ मने हइआ विस्मित । हेन बुझि ए ब्राह्मण महामन्त्र वित् ॥१७३॥
अथवा देवता कोन आसिया कौतुके । परीक्षिते आमारे वा छले द्विज रूपे ॥१७४॥
अमानुषी तेजः देखि द्विजेर शरीरे । सर्वज्ञ करिया किवा कदर्थे आमारे ॥१७५॥
एतेक चिन्तिते प्रभु बलिल हासिया । 'के आमि कि देख तुमि कह ना भाङ्गिया' ॥१७६॥
सर्वज्ञ बोलये 'तुमि चलह एखने । विकाले बलिब मंत्र जापि भाल मने' ॥१७७॥
भाल भाल बलि प्रभु हासिया चलिला । तवे प्रिय श्रीधरेर मन्दिरे आइला ॥१७८॥
श्रीधरेर बड़ प्रभु सन्तुष्ट अन्तरे । नाना छल करि आइसेन तान घरे ॥१७९॥
वाको वाक्य परिहास श्रीधरेर सङ्गे । दुइ चारि दण्ड करि चले प्रभु रङ्गे ॥१८०॥
प्रभु देखि श्रीधर करिया नमस्कार । श्रद्धा करि आसन दिलेन बसिवार ॥१८१॥
परम सुशान्त श्रीधरेर व्यवसाय । महा प्रभु विहरेन उद्धतेर प्राय ॥१८२॥
प्रभु वले 'श्रीधर तुमि जे अनुक्षण । 'हरि' 'हरि' बल तवे दुःख कि कारण !' ॥१८३॥
लक्ष्मी-कान्त सेवन करिया केने तुमि । अन्न वस्त्रे दुःख पाओ कह देखि शुनि ॥१८४॥
श्रीधर बलेन उपवास त ना करि । छोट हउक बड़ हउक वस्त्र देख परि ॥१८५॥
प्रभु वले देखिलाम गाँठ दश ठाञि । घरे बल देखितेछि खड़ मात्र नाञि ॥१८६॥

ईश्वर-तत्त्व देखता हुआ भी कुछ नहीं समझ पाता, प्रभु की माया ऐसी है ॥१७२॥ सर्वज्ञ विस्मित होकर मन ही मन सोचने लगा कि–'ऐसा समझ पड़ता है कि–यह ब्राह्मण महा मन्त्रवित् है ॥ १७३ ॥ अथवा वह कोई देवता है जो कौतुक से मेरी परीक्षा करने के लिये या मुझे छलने के लिये द्विज रूप धारण करके आया है ॥ १७४ ॥ इस ब्राह्मण के शरीर में अमानुषी तेज देख रहा हूँ ऐसा प्रतीत होता है कि स्यात् यह मुझे सर्वज्ञ जान कर मेरी अवहेलना करना चाहता है ॥ १७५ ॥ सर्वज्ञ जी इस विचार में लगे ही हुए थे कि–प्रभु ने हँसकर कहा—'मैं कौन हूँ ? तुम क्या देखते हो ? स्पष्ट खोलकर कहो ना' ॥ १७६ ॥ सर्वज्ञ कहने लगा कि–'इस समय तो आप जाइये, मैं अच्छी तरह मंत्र जप कर तृतीय प्रहर के समय आपको बताऊँगा' ॥ १७७ ॥ प्रभु 'अच्छा' 'अच्छा' कहकर हँसते हुए चल दिये । पश्चात् प्रिय श्री श्रीधर के घर पहुँचे ॥ १७८ ॥ प्रभु अन्तर में श्री श्रीधर के प्रति बड़े प्रसन्न थे, आप अनेक प्रकार के बहाने करके उनके घर पहुँचते थे ॥ १७९ ॥ प्रभु दो चार दण्ड श्रीधर के साथ परस्पर वाक्य युद्ध एवं परिहास (हँसी दिल्लगी) करके आनन्द पूर्वक फिर चले जाते थे ॥ १८० ॥ प्रभु को देखकर श्रीधर ने नमस्कार करके श्रद्धा पूर्वक बैठने के लिये आसन दिया ॥१८१॥श्रीधर का व्यवसाय परम सुशान्त था उधर श्रीमहाप्रभु उद्धत की भाँति भ्रमण करते फिरते थे॥१८२॥ प्रभु ने कहा कि–श्रीधर ! तुम जो निरन्तर 'हरि' 'हरि' भजते हो, फिर तुम्हें दुःख क्यों ? ॥१८३॥ श्रीलक्ष्मी-कान्त का सेवन करके भी तुम अन्न वस्त्र का कष्ट क्यों पाते हो ? कहो तो, देखें–सुनें ॥ १८४ ॥ श्रीधर ने उत्तर दिया कि–हम भूखे तो रहते नहीं और छोटा हो व बड़ा वस्त्र भी, देखो, पहने ही हुए हैं ॥ १८५ ॥ प्रभु ने कहा कि–देख लिया, इसमें दस जगह तो गाँठ लगी हुई हैं और घर में कभी सम्बल देख लिया कि–निरन्तर खड़ मात्र भी नहीं है । (खड़–चावलों की बाल काटने के पश्चात् जो शेष भाग रह जाता है उससे

देख एइ चण्डी विषहरि रे पूजिया । के ना घरे खाय-परे सब नगरिया ॥१८७॥
श्रीधर वलेन 'द्विज ! कहिला उत्तम । तथापि सभार काल जाय एक सम ॥१८८॥
रत्न घरे थाके राजा दिव्य खाय परे । पक्षी-गण थाके देख वृक्षेर उपरे ॥१८९॥
काल पूर्ण सभार समान हइञा जाय । सभे निज कर्म्म भुञ्जे ईश्वर इच्छाय' ॥१९०॥
प्रभु वले 'तोमार विस्तर आछे धन । ताहा तुमि लुकाइया करह भोजन ॥१९१॥
ताहा मुञि विदित करिमु कत दिने । तबे तुमि देखि लोक भाण्डाओ केमने' ॥१९२॥
श्रीधर वलेन 'घरे चलह पण्डित । तोमाय आमाय द्वन्द्व ना हय उचित' ॥१९३॥
प्रभु वले 'आमि तोमा ना छाड़ि एमने । कि आमारे दिबा ताहा वल एइ क्षणे' ॥१९४॥
श्रीधर वलेन 'आमि खोला बेचि खाइ । इहाते कि दिव ताहा वलह गोसाञि' ॥१९५॥
प्रभु वले 'जे तोमार पोता धन आछे । से थाकुक एखाने पाइव ताहा पाछे ॥१९६॥
एबे कला मूला थोड़* पात कड़ि बिने । दिले आमि कोन्दल ना करि तोमा सने' ॥१९७॥
मने भावे श्रीधर उद्धत द्विज बड़ । कोन दिन आमारे किलाय पाछे दड ॥१९८॥
मारिलेओ ब्राह्मणेर कि करिते पारि । कड़ि बिना प्रति दिन दिवारेओ नारि ॥१९९॥
तथापिह वले छले जे लय ब्राह्मणे । से आमार भाग्ये वटे दिव प्रति दिने ॥२००॥
चिन्तिया श्रीधर वले 'शुनह गोसाञि । कड़ि पाति तोमार कछुइ दाय नाञि ॥२०१॥

छप्पर बनते हैं) ॥ १८६ ॥ और इधर देखो कि यह सब शहर वाले चण्डी व विष-हरि देवी को पूज कर कौन मनुष्य ऐसा है जो अपने घर में अच्छा खाता पहिनता न हो' ॥ १८७ ॥ श्रीधर ने कहा है कि–'द्विज-वर! ठीक कहते हो तथापि सबका समय एक समान ही व्यतीत हो जाता है ॥ १८८ ॥ राजा रत्न जटित घर में निवास करते हैं, दिव्य भोजन करते एवं दिव्य वस्त्र पहिनते हैं और इधर पक्षी-गण को देखिये वह वृक्षों के ऊपर रहते हैं ॥ १८६ ॥ परन्तु दोनों का समय समान ही पूर्ण हो जाता है, ईश्वर की इच्छा से सभी अपने कर्म भोग करते हैं ॥ १६० ॥ प्रभु कहने लगे कि–'तुम्हारे पास धन तो बहुत है उसको तुम छिपाकर भोग करते हो ॥ १६१ ॥ मैं उसको कुछ दिन पीछे प्रगट कर दूँगा तब देखेंगे तुम लोगों को कैसे बहकाते हो ॥ १६२ ॥ श्रीधर बोले कि–पण्डितजी अपने घर जाओ, तुम्हारा हमारा परस्पर में द्वन्द्व करना उचित नहीं है ॥ १६३ ॥ प्रभु बोले–'मैं तुमको इस प्रकार नहीं छोड़ूँगा तुम इसी क्षण मुझको बतलाओ कि–तुम मुझको क्या दोगे ?' ॥ १६४ ॥ तब श्रीधर ने कहा कि–मैं केला पट्ट (केला वृक्ष का छिलका) या सागभाजी बेच कर अपना पेट पालन करता हूँ, हे गुसाईं ! आप बतलाइये इसमें से क्या दूँ ? ॥ १६५ ॥ प्रभु बोले–जो तुम्हारा प्रोथित (गड़ा हुआ) धन है उसको इस समय रहने दो, उसको तो पीछे लूँगा ॥ १६६ ॥ इस समय तो केला, मूल, थोड़ तथा पत्ते विना कुछ लिये देने से ही तुम्हारे साथ झगड़ा नहीं करूँगा ॥१६७॥ श्रीधर मन में विचारने लगा कि–यह द्विज बड़ा उद्धत है कहीं ऐसा न हो कि–किसी दिन पीछे से यह जोर से मुक्का मार कर भाग जाय ॥ १६८ ॥ मारने पर भी हम ब्राह्मण का क्या कर सकते हैं और बिना कौड़ी लिये प्रति दिन दे भी नहीं सकता ॥ १६६ ॥ तो भी यह ब्राह्मण बल एवं छल से जो ले लिया करेगा वह

* केले के तने के भीतर एक सफेद डण्डी होती है जिसका साग होता है ।

थोड़ कला-कला मूला दिव एइ मने । सर्व्वदाय कोन्दल ना कर आमा सने' ॥२०२॥
प्रभु वले 'भाल भाल आर द्वन्द्व नाहि । तवे थोड़ कला मूला भाल जेन पाइ' ॥२०३॥
जाहार खोलाय नित्य करेन भोजन । जार थोड़ कला मूला हय श्री व्यञ्जन ॥२०४॥
श्रीधरेर गाछे जेइ लाउ धरे चाले । ताहा खाय प्रभु दुग्ध मरिचेर झाले ॥२०५॥
प्रभु वले आमारे कि वासह श्रीधर । ताहा कहिलेइ आमि चलि जाइ घर । २०६॥
श्रीधर वलेन 'तुमि द्विज विष्णु अंश' । प्रभु वले 'ना जानिला आमि गोपवंश' ॥२०७॥
तुमि आमा देख जेन ब्राह्मण छाओयाल । आमि आपनारे वासि जे हेन गोओयाल॥२०८॥
हासेन श्रीधर शुनि प्रभुर वचन । ना चिनिल निज प्रभु मायार कारण ॥२०९॥
प्रभु वले 'श्रीधर तोमारे कहि तत्त्व । आमा हैते हय तोर गङ्गार महत्त्व' ॥२१०॥
श्रीधर वलेन 'ओहे पण्डित निमाञि । गङ्गा करियाओ कि तोमार भय नाञि ॥२११॥
वयस वाढ़िले लोक कत स्थिर हय । तोमार चाञ्चल्य आर द्विगुण वाढ़य ॥२१२॥
एइ मत श्रीधरेर सङ्गे रङ्ग करि । आइसेन निज गृहे गौराङ्ग श्रीहरि ॥२१३॥
विष्णु द्वारे वसिलेन गौराङ्ग सुन्दर । चलिला पढुयावर्ग जार जथा घर ॥२१४॥
देखि प्रभु पौर्णमासी चाँदेर उदय । वृन्दावन-चन्द्र भाव हइल उदय ॥२१५॥
अपूर्व्व मुरली ध्वनि लागिला करिते । 'आइ' वहि केह आर ना पाय शुनिते ॥२१६॥

सचमुच मेरे भाग्य में देना ही है, यह समझ कर उसको मैं प्रति दिन देता रहूँगा ॥ २०० ॥ सोच विचार के पश्चात् श्रीधर बोला—'गुसाईं ! सुनो, तुमको कौड़ी पैसा कुछ भी नहीं देना होगा ॥ २०१ ॥ मैं यह विचार कर तुमको थोड़, केला एवं केला-मूल यह विचार कर दूँगा कि—तुम पीछे कभी (सर्वदा के लिये) मेरे साथ झगड़ा न करोगे' ॥ २०२ ॥ प्रभु कहने लगे—'अच्छा' 'अच्छा' और झगड़ा नहीं होगा । परन्तु थोड़, केला, केला-मूल आदि अच्छे हों ! ॥ २०३ ॥ जिसके खोले का नित्य भोजन होता है एवं जिसके थोड़, केला, केला-मूल प्रभु के लिये लक्ष्मी द्वारा प्रस्तुत किये श्री व्यञ्जन हो जाते हैं ॥ २०४ ॥ उस श्रीधर के छप्पर के ऊपर बेल में जो लौकी लगती हैं उनको प्रभु दूध एवं मिर्च के चरपराहट के साथ खाते हैं ॥ २०५ ॥ प्रभु बोले श्रीधर ! मैं तुमको कौन मालूम होता हूँ ? इसका उत्तर पाते ही मैं अपने घर चला जाऊँगा ॥ २०६ ॥ श्रीधर जो कहने लगे कि—'तुम विष्णु-अंश ब्राह्मण हो' प्रभु बोले नहीं, तुम नहीं जानते हो, मैं गोप वंश हूँ' ॥ २०७ ॥ तुम तो मुझको ब्राह्मण बालक करके जानते हो और मैं अपने को गोप बालक करके मानता हूँ ॥ २०८ ॥ श्रीधर प्रभु के वचनों को सुनकर हँसने लगा, माया के कारण उसने अपने प्रभु को नहीं पहिचाना ॥ २०९ ॥ प्रभु फिर कहने लगे कि—'श्रीधर ! मैं तुमको अपना तत्त्व बतलाता हूँ (सुन) यह तेरी गङ्गा का महत्त्व मेरे कारण ही है' ॥ २१० ॥ श्रीधर बोला—अहो निमाञि पण्डित ! क्या श्रीगङ्गा जी से भी तुम भय नहीं करते ॥ २११ ॥ आयु बढ़ने पर बालक कितने स्थिर हो जाते ? परन्तु तुम्हारी चञ्चलता तो और द्विगुणित बढ़ती जाती है ॥ २१२ ॥ इस प्रकार गौराङ्ग श्रीहरि श्रीधर के साथ खेल करके अपने घर आये ॥ २१३ ॥ और आकर श्रीगौराङ्ग सुन्दर श्रीविष्णु-द्वार पर बैठ गये एवं विद्यार्थी वर्ग सब अपने-अपने घर चले गये ॥ २१४ ॥ प्रभु के मन में इस समय पौर्णमासी के चन्द्रमा को उदय हुआ देख कर श्रीवृन्दावन-चन्द्र भाव जागृत हो

त्रिभुवन मोहन मुरली शुनि 'आइ' । आनन्दे मगन मूर्च्छा गेला सेइ ठाञि ॥२१७॥
क्षणेके चैतन्य पाइ स्थिर करि मन । अपूर्व्व मुरली ध्वनि करये श्रवण ॥२१८॥
जे खाने वसियाछेन गौराङ्ग-सुन्दर । सेइ दिगे शुनेन मुरली मनोहर ॥२१९॥
अद्भुत शुनिञा आइ आइला बाहिरे । देखे पुत्र वसियाछे विष्णुर-दुआरे ॥२२०॥
आर नाहि पायेन शुनिते वंशी नाद । पुत्रेर हृदये देखे आकाशेर चाँद ॥२२१॥
पुत्र वक्षे देखे चन्द्र मण्डल साक्षाते । विस्मित हइञा आइ चाहे चारि भिते ॥२२२॥
गृहे आइ वसि गिया लागिला चिन्तिते । कि हेतु निश्चय किछु ना पारे वुझिते ॥२२३॥
एइ मत कत भाग्यवती शची आइ । जत देखे प्रकाश ताहार अन्त नाञि ॥२२४॥
कोन दिन निशा भागे शची आइ शुने । गीत वाद्य जन्त्र गाय कत शत जने॥२२५॥
बहु विध मुख वाद्य नृत्य पद ताल । जेन महा रासक्रीड़ा शुनेन विशाल ॥२२६॥
कोन दिन देखे सर्व्व रात्रि घर द्वार । ज्योतिर्म्मय वहि किछु ना देखये आर ॥२२७॥
कोन दिन देखे अति दिव्य नारी गण । लक्ष्मी प्राय सभे हस्ते पद्म विभूषण ॥२२८॥
कोन दिन देखे ज्योतिर्म्मय देव गण । देखि पुनः आर नाहि पाय दरशन ॥२२९॥
आइर ए सब दृष्टि किछु चित्र नहे । विष्णु भक्ति स्वरूपिणी जारे वेदे कहे ॥२३०॥
'आइ' जारे सकृत करेन दृष्टि पाते । सेइ हय अधिकारी ए सब देखिते ॥२३१॥

आया ॥ २१५ ॥ आप अपूर्व मुरली-ध्वनि करने लगे, जिसको माता जी के अतिरिक्त और कोई नहीं सुनता था ॥२१६॥ श्रीशची माता त्रिभुवन-मोहन मुरली-ध्वनि सुनकर आनन्द में मग्न हो उसी स्थान पर मूर्च्छित हो गईं ॥ २१७ ॥ क्षण भर पश्चात् चेतनता प्राप्त करने पर मन को स्थिर कर फिर वही अपूर्व मुरली ध्वनि श्रवण करने लगीं ॥ २१८ ॥ जहाँ पर श्रीगौराङ्ग-सुन्दर बैठे हुए थे श्रीशची माता जी उसी ओर मनोहर मुरली-रव सुन रही थी ॥ २१९ ॥ श्रीशची माता अद्भुत मुरली-ध्वनि सुनकर बाहर आईं आकर देखा कि-पुत्र विष्णुद्वार पर बैठा है ॥२२०॥ वंशी ध्वनि अब और सुनाई नहीं पड़ती (परन्तु) पुत्र के वक्ष पर आकाश के चन्द्र का दर्शन होता था ॥ २२१ ॥ पुत्र के वक्ष पर चन्द्रमण्डल को स्पष्ट देख कर श्रीमाता जी विस्मित होकर देखती थीं ॥ २२२ ॥ पश्चात् श्रीशची माता घर में जाकर विचार करने लगीं, परन्तु इसका कारण क्या है ? यह निश्चय न कर सकीं ॥ २२३ ॥ इस प्रकार अनन्त भाग्यवती श्रीशची माता जितना भी देखतीं थीं प्रकाश का अन्त नहीं दीखता था ॥ २२४ ॥ श्रीशची माता किसी दिन रात्रि में सुनतीं कि-सहस्रों मनुष्य बाजों के साथ गा रहे हैं ॥ २२५ ॥ वह बहुत प्रकार के मुँह से बजने वाले बाजे नाँच तथा ताल पर पैर पड़ने की विशाल ध्वनि सुनती थी मानो महा रासक्रीड़ा हो रही हो ॥ २२६ ॥ किसी दिन सब रात्रि घर-द्वार सब को केवल ज्योतिर्मय देखतीं, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं दीखता था ॥ २२७ ॥ किसी दिन अति दिव्य नारी-गण के दर्शन करतीं,जो सभी लक्ष्मी जी के समान हाथों में कमल-पुष्प धारण किये हुए होती थीं॥२२८॥ किसी दिन दिव्य प्रकाश युत देवगण का दर्शन करती थीं एक बार दीखने पर फिर दुबारा उनके दर्शन नहीं होते थे ॥ २२९ ॥ जिन श्रीशची माता को वेद श्रीविष्णु-भक्ति-स्वरूपिणी कहते हैं उनको यह सब दृश्य दिखलाई देना कोई विचित्र बात नहीं है ॥ २३० ॥ श्रीशची माता जिसके ऊपर एक बार शुभ दृष्टिपात करें

हेन मते श्रीगौर सुन्दर बन माली । आछे गूढ़ रूपे निजानन्दे कुतूहली ॥२३२॥
जद्यपि आपना प्रभु एतेक प्रकाशे । तथापि ओ चिनिते ना पारे कोन दासे ॥२३३॥
हेन से उद्धत प्रभु करेन कौतुके । ते मत उद्धत आर नाहि नवद्वीपे ॥२३४॥
जखने जे रूप लीला करेन ईश्वर । सेइ सर्व्व श्रेष्ठ तार नाहिक सोसर ॥२३५॥
युद्ध लीला प्रति इच्छा उपजे जखन । अस्त्र शिक्षा वीर आर ना थाके तेमन ॥२३६॥
काम लीला करिते जखन इच्छा हय । लक्षार्व्बुद बनिताते करेन विजय ॥२३७॥
धन विलासिते वा जखन इच्छा हय । प्रजार घेरेते हय निधि कोटि मय ॥२३८॥
ए मत उद्धत गौर सुन्दर एखने । एइ प्रभु विरक्ति आश्रयिवेन जखने ॥२३९॥
से विरक्ति-भक्ति-कण नाहि त्रिभुवने । अन्ये कि सम्भवे ताहा व्यक्त सर्व्व जने ॥२४०॥
एइ मत ईश्वरेर सर्व्व श्रेष्ठ कर्म्म । सभे सेवकेर हारे से ताहार धर्म्म ॥२४१॥
एक दिन प्रभु आइसेन राज पथे । सात पाँच पढ़ुया प्रभुर चारि भिते ॥२४२॥
व्यवहारे राज योग्य वस्त्र परिधान । अङ्गे पीत वस्त्र शोभे कृष्णेर समान ॥२४३॥
अधरे ताम्बूल कोटि चन्द्र श्रीवदन । लोके बले मूर्त्तिमन्त आइसे मदन ॥२४४॥
ललाटे तिलक ऊर्द्ध पुस्तक श्री करे । दृष्टि मात्र पद्म नेत्रे सर्व्व ताप हरे ॥२४५॥
स्वभाव चञ्चल पढ़ुयार वर्ग सङ्गे । बाहु दोलाइया प्रभु आइसेन रङ्गे ॥२४६॥

वही यह सब (लीलायें) देखने का अधिकारी हो जाता है ॥ २३१ ॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर बनमाली निजानन्द में आनन्द पूर्वक प्रछन्न रूप से विहार करते थे ॥ २३२ ॥ यद्यपि प्रभु अपने को इतना प्रकाशित करते थे तथापि कोई भी दास आपको पहिचान नहीं पाता ॥ २३३ ॥ प्रभु कौतुक से इतना उद्धतपना दिखलाते थे कि इतना उद्धत नवद्वीप भर में और कोई नहीं था ॥२३४॥ईश्वर श्रीगौरचन्द्र जिस समय जिस प्रकार की लीला करते थे वही सर्वश्रेष्ठ होती थी उसके तुल्य कोई नहीं होती थी ॥ २३५ ॥ आपके मन में जिस समय युद्ध-लीला के प्रति इच्छा उत्पन्न होती उस समय आपके समान युद्ध-शिक्षा में निपुण और कोई नहीं दिखलाई देता था ॥२३६॥ जिस समय आपकी काम-लीला की इच्छा होती, उस समय आप लक्ष एवं अरबों बनिताओं के मध्य विजय प्राप्त करते थे ॥२३७॥ एवं जिस समय आपके मन में धन विलास करने की इच्छा होती उस समय प्रजा वर्ग के घरों में करोड़ों के खजाने हो जाते थे ॥ २३८ ॥ उस समय तो श्रीगौरसुन्दर ऐसे उद्धत थे, परन्तु जिस समय यही प्रभु विरक्ति आश्रय करेंगे ॥ २३९ ॥ वैसी विरक्ति एवं भक्ति का एक कण भी त्रिभुवन में नहीं है, क्या ऐसा सम्भव है ? सब लोग जानते हैं ॥ २४० ॥ इसी प्रकार ईश्वर श्रीगौरचन्द्र के कर्म्म सर्वतोपरि थे केवल सेवक ही से हार जाते थे यह आपका स्वभाव था ॥ २४१ ॥ एक दिन प्रभु राज-पथ से जा रहे थे चारों ओर आपके पाँच-सात विद्यार्थी थे ॥ २४२ ॥ आप व्यवहार में राजाओं के योग्य वस्त्र-परिधान किया करते थे आपके श्रीअङ्ग में श्रीकृष्ण की तरह पीत-वस्त्र शोभित थे ॥ २४३ ॥ श्री-अधरों पर ताम्बूल एवं आपका श्रीमुखारविन्द कोटि चन्द्रमाओं के समान सुन्दर था आपको दूर से देख कर ही मनुष्य कहते थे कि—मूर्तिमान कामदेव आ रहे हैं ॥ २४४ ॥ ललाट प्रदेश में ऊर्द्ध पुण्ड्र तिलक एवं श्री कर में पुस्तक शोभा पाती थी, अपने नेत्र-कमलों की दृष्टि मात्र से सब ताप दूर करते थे ॥ २४५ ॥ चञ्चल

दैवे पथे आइसेन पण्डित श्रीवास । प्रभु देखि मात्र तान हइल महा-हास ॥२४७॥
ताने देखि प्रभु करिलेन नमस्कार । 'चिरजीवी हओ' बले श्रीवास उदार ॥२४८॥
हासिया श्रीवास बले 'कह देखि शुनि । कति चलियाछ उद्धतेर चूड़ामणि ॥२४९॥
कृष्ण ना भजिया काल कि कार्ये गोङाओ । रात्रि दिन निरवधि केन वा पढ़ाओ ॥२५०॥
पढ़े केन लोक कृष्ण भक्ति जानिवारे । से जदि नहिल तबे विद्याय कि करे ॥२५१॥
एतेक सर्व्वदा व्यर्थ ना गोङाओ काल । पढ़िला त एबे कृष्ण भजह सकाल' २५२॥
हासि बले गौर चन्द्र 'शुनह पण्डित । तोमार कृपाय सेहो हइब निश्चित' ॥२५३॥
एत बलि महाप्रभु हासिया चलिला । गङ्गातीरे आसि शिष्य सहिते मिलिला ॥२५४॥
गङ्गा तीरे वसिलेन श्री शची-नन्दन । चतुर्दिके वेढ़िया बसिला शिष्य गण ॥२५५॥
कोटि मुखे से शोभात ना पारि कहिते । उपमाओ तार नाहि देखि त्रिजगते ॥२५६॥
चन्द्र तारा गण वा बलिब ताहा नय । सकलङ्क तार कला क्षय वृद्धि हय ॥२५७॥
सर्व्वकाल परिपूर्ण ए ताहार कला । निष्कलङ्क तेञि से उपमा दूरे गेला ॥२५८॥
बृहस्पति उपमाओ दिते ना जुयाय । तिहों एक पक्ष देवगणेर सहाय ॥२५९॥
ए प्रभु सभार पक्ष सहाय सभार । अतएव से दृष्टान्त ना हय इहार ॥२६०॥
कामदेव उपमा वा दिब सेह नय । तिँहो चित्ते जागिले चित्तेर क्षोभ हय ॥२६१॥

स्वभाव प्रभु विद्यार्थी वर्ग के साथ हाथ हिलाते हुए आनन्द पूर्वक चल रहे थे ॥२४६॥ दैवयोग से उसी मार्ग से श्रीवास पण्डितजी आ रहे थे प्रभु को देखते ही उन्हें बड़ी जोर से हँसी आई ॥ २४७ ॥प्रभु ने उन्हें देख कर नमस्कार किया; उदार श्रीवास जी ने 'चिरञ्जीवी हो !' कहकर आशीर्वाद दिया ॥ २४८ ॥ श्रीवासजी ने हँसकर कहा कि–'उद्धत-मुकुट-मणि ! कहो, तनिक देर तो सुनाओ किधर जा रहे हो ? ॥ २४९ ॥ तुम श्री-कृष्ण का भजन न करके अपने समय को क्यों नष्ट करते हो ? और तुम रात्रि दिन निरन्तर किस लिये पढ़ाते हो ? ॥ २५० ॥ लोग पढ़ते किसलिये हैं ? कृष्ण-भक्ति जानने के लिये । वह यदि नहीं हुई तो फिर विद्या से क्या लाभ ? ॥ २५१ ॥ इसलिये तुम निरन्तर अपने समय को व्यर्थ नष्ट न करो, पढ़ तो लिये अब शीघ्र ही श्रीकृष्ण-भजन करना प्रारम्भ कर दो' ॥ २५२ ॥ तब श्रीगौरचन्द्र हँसकर बोले 'पण्डितजी ! सुनिये, आपकी कृपा से वह भी निश्चय होगा' ॥ २५३ ॥ इतना कह कर श्रीमहाप्रभु जी हँसते हुए चले गये हैं और शिष्य-वर्ग के साथ श्रीगङ्गा-तट पर पहुँचे॥२५४॥एवं आकर श्रीशचीनन्दन श्रीगङ्गा-तट पर बैठ गये और चारों ओर शिष्यगण घेर कर बैठ गये ॥ २५५ ॥ वह शोभा तो कोटि मुखों से भी मैं नहीं कह सकता एवं तीनों लोक में उसकी उपमा भी कोई नहीं देखी ॥ २५६ ॥ क्या चन्द एवं तारागण से उपमा दूँ ? नहीं, वह उचित नहीं है। क्योंकि चन्द्रमा तो सकलङ्क है एवं उसकी कला क्षय एवं वृद्धि को प्राप्त होती रहती है ॥ २५७ ॥ यह एवं इनकी कला सर्वकाल परिपूर्ण हैं और निष्कलङ्क हैं । इसलिये यह उपमा नहीं बैठती-दूर पड़ती है ॥ २५८ ॥ श्रीबृहस्पति जी से उपमा देना भी ठीक नहीं बैठता क्योंकि वह एकपक्षी हैं अर्थात् देव-गण ही के सहायक हैं ॥ २५९ ॥ परन्तु यह प्रभु सभी के पक्षी हैं एवं सभी के सहायक हैं अतएव यह दृष्टान्त भी उनमें योग्य नहीं है ॥ २६० ॥ यदि कामदेव से उपमा दूँ तो वह भी योग्य नहीं बैठती क्योंकि उसके चित्त में उठने पर क्षोभ

ए प्रभु जागिले चित्ते सर्व्व बन्ध क्षय। परम निर्मल चित्त सुप्रसन्न हय ॥२६२॥
एइ मत सकल दृष्टान्त जोग्य नय। सभे एक उपमा देखिये चित्ते लय ॥२६३॥
कालिन्दीर तीरे जेन श्रीनन्द-कुमार। गोप वृन्द मध्ये वसि करिला विहार ॥२६४॥
सेइ गोपवृन्द लइ सेइ कृष्ण चन्द्र। द्विज रूपे गङ्गा तीरे करे बुझि रङ्ग ॥२६५॥
गङ्गा तीरे जे जन देखये प्रभुर मुख। सेइ पाइ अति अनिर्व्वचनीय सुख ॥२६६॥
देखिया प्रभुर तेज अति विलक्षण। गङ्गा तीरे काना कानि करे सर्व्व जन॥२६७॥
केह बले 'एत तेज मनुष्येर नय'। केहो बले 'ए ब्राह्मण विष्णु अंश हय'॥२६८॥
केह बले विप्र राजा हइवेक गौड़े। सेइ बुझि एइ हेन कखन ना नड़े ॥२६९॥
राज श्री राजचिह्न देखिया सकल। एइ मत बले जार जत बुद्धि बल ॥२७०॥
अध्यापक-प्रति सब कटाक्ष करिया। व्याख्या करे प्रभु गङ्गा समीपे वसिया ॥२७१॥
हय व्याख्या नय करे नय करे हय। सकल खण्डिया शेषे सकल स्थापय ॥२७२॥
प्रभु बले तारे आमि बलिये पण्डित। एक बार व्याख्या करे आमार सहित ॥२७३॥
सेइ व्याख्या जदि वाखानिये आर बार। आमा प्रबोधिबे हेन देखि शक्ति कार ॥२७४॥
एइ मत ईश्वर व्यञ्जेन अहङ्कार। सर्व्व गर्व्व चूर्ण हय शुनिञा सभार ॥२७५॥
कत वा प्रभुर शिष्य तार अन्त नाञि। कतबा मण्डली हय पढ़े ठाञि ठाञि ॥२७६॥

पैदा होता है ॥ २६१ ॥ परन्तु इन प्रभु के चित्त में उठने पर सर्व बन्धन नष्ट हो जाते हैं, चित्त परम निर्मल हो जाता है एवं अति प्रसन्न रहता है ॥ २६२ ॥ इसी प्रकार अन्य सब ही दृष्टान्त योग्य नहीं बैठते, केवल एक उपमा देखने में आती है जो चित्त को अच्छी भी मालूम होती है ॥ २६३ ॥ वह यह कि-'पूर्व काल में जैसे श्रीनन्दकुमार, श्रीकृष्णचन्द्र ने गोप-वृन्द के मध्य बैठकर विराट् श्रीयमुनाजी के तीर विहार किया था' ॥ २६४ ॥ ऐसा प्रतीत होता था कि वही श्रीकृष्णचन्द्र उन्हीं गोपवृन्द को लेकर द्विज-बालक रूप से श्रीगङ्गा तीर पर आनन्द कर रहे हैं ॥ २६५ ॥ श्रीगङ्गा तीर पर जो मनुष्य प्रभु के श्रीमुख के दर्शन करते थे वही मनुष्य अति अनिर्वचनीय सुख प्राप्त करते थे ॥ २६६ ॥ श्रीगङ्गा तट पर सब मनुष्य प्रभु के अति विलक्षण तेज को देखकर आपस में काना फूँसी कर रहे थे ॥२६७॥ कोई कहता कि-इतना तेज मनुष्य में नहीं होता कोई कहता था कि-'यह ब्राह्मण विष्णु अंश है' ॥ २६८ ॥ कोई कहता कि गौड़ देश में ब्राह्मण राजा होगा, ऐसा प्रतीत होता है कि वह यही है प्रभु मेरा वाक्य कभी टलने का नहीं है ॥ २६९ ॥ प्रभु की राजश्री एवं राज चिह्नों को देखकर सब लोग अपने २ बुद्धि बल के अनुसार इसी प्रकार की अनेक बातें कहते थे॥२७०॥ श्रीगङ्गा-तट पर बैठ कर प्रभु सब अध्यापकों के प्रति कटाक्ष करते हुए व्याख्या करते थे॥२७१॥उचित व्याख्या को अनुचित कर देते हैं फिर उस गलत व्याख्या को सत्य करके दिखलाते थे सब कुछ खण्डन करके पश्चात् पुनः सबका स्थापन करते थे ॥ २७२ ॥ प्रभु कहते थे कि-हम उसको पण्डित मानें जो एक बार हमारे सामने व्याख्या करे ॥ २७३ ॥ उसकी उस व्याख्या को यदि हम फिर दूसरे प्रकार से वर्णन करें तो हमको उसका प्रबोध करें, देखें, ऐसी शक्ति किसमें है ? ॥ २७४ ॥ इस प्रकार श्रीगौरचन्द्र ईश्वर अपना अहङ्कार प्रकाश करते थे जिसको सुनकर सब का सम्पूर्ण गर्व चूर्ण होता था ॥ २७५ ॥ प्रभु के कितने शिष्य हैं, उनका अन्त

प्रति दिन दश विश ब्राह्मण कुमार । आसिया प्रभुर पाये करे नमस्कार ॥२७७॥
'पण्डित आमरा पढ़िबाङ तोमा स्थाने । किछु जानि हेन कृपा करिबा आपने' ॥२७८॥
'भाल भाल' हासि प्रभु बलेन बचन । एइ मत प्रति दिन बाढ़े शिष्य गण ॥२७९॥
गङ्गा तीरे शिष्य सङ्गे मण्डली करिआ । वैकुण्ठेर चूड़ा मणि आछेन बसिया ॥२८०॥
चतुर्दिके देखे सब भाग्यवन्त लोक । सर्व्व नवद्वीपे प्रभुर प्रभाव आलोक ॥२८१॥
से आनन्द जे जे भाग्यवन्त देखिलेक । कोन जन आछे तार भाग्य बलिबेक ॥२८२॥
से आनन्द देखिलेक जे सुकृति जन । तारे देखिलेओ खण्डे संसार बन्धन ॥२८३॥
हइल पापिष्ठ जन्म ना हइल तखने । हइलाङ वञ्चित से सुख दरशने ॥२८४॥
तथापिह एइ कृपा कर गौरचन्द्र । सेइ लीला स्फुर्त्ति मोर हउ जन्म जन्म ॥२८५॥
सपार्षदे तुमि नित्यानन्द जथा जथा । लीला कर मुञि जेन भृत्य हङ तथा ॥२८६॥
श्री चैतन्य नित्यानन्द चाँद पहुँ जान । बृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ॥२८७॥

इति श्रीचैतन्यभागवते आदिखण्डे श्रीगौराङ्ग-नगरभ्रमणादि वर्णनंनाम
अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमो अध्याय

जय जय द्विज कुल चन्द्र गौरचन्द्र । जय जय भक्त-गोष्ठी-हृदय-आनन्द ॥१॥
जय जय द्वार पाल गोविन्देर नाथ । जीव प्रति कर प्रभु शुभ दृष्टि पात ॥२॥

नहीं है वह सब पृथक्-पृथक् कितनी ही मण्डलियाँ बनाकर जगह-जगह पढ़ने बैठते थे ॥ २७६ ॥ प्रति दिन दस, बीस ब्राह्मण-कुमार आकर प्रभु के चरणों में नमस्कार करते थे ॥ २७७ ॥ एवं निवेदन करते थे कि—पण्डित जी ! हम आपके पास पढ़ेंगे, आप ऐसी कृपा कीजिये जिससे हम कुछ जान जाँय' ॥ २७८ ॥ हँसकर प्रभु कहते कि—'अच्छा' 'अच्छा' । इसी प्रकार प्रति दिन शिष्य गण बढ़ते रहते थे ॥ २७९ ॥ वैकुण्ठ चूड़ामणि श्रीगङ्गा-तट पर शिष्यों के साथ मण्डली बनाकर के बैठे हुए थे ॥ २८० ॥ चारों ओर से सब भाग्यवान् मनुष्य दर्शन करते थे; प्रभु के प्रभाव का प्रकाश समस्त नवद्वीप में हो रहा था ॥ २८१ ॥ वह आनन्द जिस किसी भाग्यवान् ने देखा, कौन मनुष्य है जो उसके भाग्य की प्रशंसा कर सके ॥ २८२ ॥ वह आनन्द जिस सुकृति जन ने देखा है उसके दर्शन करने से भी संसार-बन्धन नष्ट हो जाते हैं ॥ २८३ ॥ यह पापिष्ठ जन्म जो अब हुआ है उस समय नहीं हुआ । हाय ! मैं उस सुख-दर्शन से वञ्चित रहा ॥ २८४ ॥ हे श्रीगौरचन्द्र ! तब भी इतनी कृपा तो कीजिये कि—मेरे प्रत्येक जन्म में वह लीला मुझे स्फूर्त्ति हो ॥ २८५ ॥ सपार्षद आप एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु जहाँ लीला करें जिस प्रकार हो मैं वहाँ-वहाँ सेवक बन कर रहूँ ॥ २८६ ॥ श्रीचैतन्यचन्द्र एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को प्रभु जानकर श्रीवृन्दावनदास उनके युगल चरणों में उनके गुण-गान करते हैं ॥२८७॥

हे द्विज कुल-चन्द्र श्रीगौरचन्द्र आपकी जय हो, जय हो ! भक्त-गोष्ठी के हृदय के आनन्ददाता ! आपकी जय हो, जय हो ॥ १ ॥ द्वारपाल श्रीगोविन्द के नाथ आपकी जय हो, जय हो । हे प्रभो ! जीवन के

जय अध्यापक शिरो रत्न द्विजराज । जय जय चैतन्येर भकत समाज ॥३॥
हेन मते विद्या रसे श्री वैकुण्ठ नाथ । वैसेन सभार करि विद्या गर्व्व पात ॥४॥
जद्यपिओ नवद्वीपे पण्डित समाज । कोट्यर्व्वुद अध्यापक नाना शास्त्र राज ॥५॥
भट्टाचार्य चक्रवर्त्ती मिश्र वा आचार्य । अध्यापना बिना आर नाहि कोन काय ॥६॥
जद्यपिओ शास्त्रेते स्वतन्त्र सभे जयी । शास्त्र चिन्ता हैले ब्रह्मार ओ नाहि सहि ॥७॥
प्रभु जत निरवधि आक्षेप करेन । परस्पर साक्षाते ओ सभेइ शुनेन ॥८॥
तथापिह हेन जन नाहि प्रभु प्रति । द्विरुक्ति करिते कार नाहिक शकति ॥९॥
हेन से साध्वस जन्मे प्रभुरे देखिया । सभेइ जायेन एक दिके नम्र हइया ॥१०॥
जदि वा काहारे प्रभु करेन सम्भाष । सेइ जन हय जेन अति बड़ दास ॥११॥
प्रभुर पाण्डित्य बुद्धि शिशुकाल हइते । सभेइ जानेन गङ्गा तीरे भाल मते ॥१२॥
कोन मते केह प्रबोधिते नाहि पारे । इहाओ सभारे सदा जागये अन्तरे ॥१३॥
प्रभु देखि सभारेइ जन्मे जे साध्वस । स्वभावेइ प्रभु देखि हय सभे वश ॥१४॥
तथापिओ हेन तान मायार बड़ाञि । बुझिवारे पारे ताने हेन जन नाञि ॥१५॥
तेँहो जदि आपनाके ना करे विदित । तवे ताने केह ना जानेन कदाचित ॥१६॥
तेहोँ पुनः नित्य सुप्रसन्न सर्व्ववित् । ताहान मायाय पुनः सभे विमोहित ॥१७॥
हेन मते सभारे मोहिया गौरचन्द्र । विद्या रसे नवद्वीपे करेन आनन्द ॥१८॥

प्रति शुद्ध-दृष्टिपात कीजिये ॥ २ ॥ अध्यापक शिरोमणि द्विजराज श्रीविश्वम्भर चन्द्र ! आपकी जय हो और आप के भक्त समाज की जय हो, जय हो ॥ ३ ॥ इस प्रकार श्रीवैकुण्ठनाथ सब लोगों के विद्या-गर्व को नष्ट करके विद्या-रस में विराजते थे ॥ ४ ॥ यद्यपि नवद्वीप के पण्डित समाज में नाना शास्त्र-राज के कोटि एवं अरब अध्यापक थे ॥ ५ ॥ जो भट्टाचार्य, चक्रवर्त्ती, मिश्र एवं आचार्य आदि थे उनका पढ़ाने के सिवाय और कोई कार्य नहीं था ॥ ६ ॥ यद्यपि उनका सब शास्त्रों में अधिकार था एवं सभी उनमें विजय प्राप्त किये हुए थे, शास्त्र विचार करने पर वह ब्रह्मा की भी नहीं सहते थे ॥ ७ ॥ प्रभु निरन्तर जितना आक्षेप करते उसको वह सब लोग एक दूसरे के द्वारा एवं सम्मुख भी सुनते थे ॥ ८ ॥ तथापि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था, जो प्रभु प्रति द्विरुक्ति करने की शक्ति रखता हो ॥ ९ ॥ प्रभु को देखकर उनको ऐसा डर लगता था कि वह सब लोग उनके आगे नम्र बन कर एक ओर को चले जाते थे ॥ १० ॥ यदि उनमें से किसी के साथ प्रभु सम्भाषण करते हैं तो वही जन मानो आपका अति बड़ा दास बन जाता है ॥ ११ ॥ श्रीगङ्गा-तट पर शिशु-काल से ही प्रभु की पाडित्य-बुद्धि को सब लोग भली प्रकार जानते थे ॥१२॥ शास्त्रार्थ करके कोई भी किसी प्रकार से प्रभु को निरस्त नहीं कर सकता था यह बात भी सब के हृदय में जागरुक रहती थी ॥ १३ ॥ यद्यपि प्रभु को देख कर सबको भय लगता था एवं सब प्रभुको देखकर सहज में ही आप-आप वश हो जाते हैं॥१४॥ तथापि आपकी मायाकी ऐसी बड़ाई है कि—उसमें से किसीको ऐसी शक्ति नहीं जो आपको समझ सके ॥ १५॥ आप यदि अपने को बिदित न करें तो आपको कोई कभी न जान पावे ॥ १६ ॥ यद्यपि वह नित्य, सुप्रसन्न एवं सर्बवित् हैं, परन्तु आपकी माया से सभी विमोहित हो रहे हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार श्रीगौरचन्द्र सब को

हेन काले तथा एक महा दिग्विजयी । आइल परम अहङ्कार जुक्त हइ ॥१६॥
सरस्वती मन्त्रेर एकान्त उपासक । मन्त्र जपि सरस्वती करिलेन वश ॥२०॥
विष्णु भक्ति स्वरूपिणी विष्णु वक्षः स्थिता । मूर्त्ति भेदे रमा सरस्वती जगन्माता ॥२१॥
भाग्य वशे ब्राह्मणेर प्रत्यक्ष हइला । 'त्रिभुवन दिग्विजयि कर' वर दिला ॥२२॥
जाँर दृष्टि पात-मात्रे हय विष्णु भक्ति । दिग्विजयि वर वा ताहान कोन् शक्ति ॥२३॥
पाइ सरस्वतीर साक्षाते वर दान । संसार जिनिञा विप्र बुले स्थाने स्थान ॥२४॥
सर्व्व शास्त्र जिह्वाय आइसे निरन्तर । हेन नाहि जगते जे दिवेक उत्तर ॥२५॥
जार कक्षा मात्र नाहि बुझे कोन जने । दिग्विजयी हइ बुले सर्व्व स्थाने स्थाने ॥२६॥
शुनिलेन बड़ नवद्वीपेर महिमा । पण्डित समाज जत तार नाहि सीमा ॥२७॥
परम समृद्ध अश्व गज जुक्त हइ । सभा जिनि नवद्वीपे गेला दिग्विजयी ॥२८॥
प्रांत घरे घरे प्रति पण्डित सभाय । महा ध्वनि उठिल जे सर्व्व नदीयाय ॥२६॥
सर्व्व राज्य देश जिनि जय पत्र लइ । नवद्वीपे आसियाछे एक दिग्विजयी ॥३०॥
सरस्वती वर-पुत्र शुनि सर्व्व जने । पण्डित सभार बड़ चिन्ता हइल मने ॥३१॥
जम्बु द्वीपे जत आछे पण्डितेर स्थान । सभा जिनि नवद्वीप जगते बाखान ॥३२॥
हेन स्थान दिग्विजयी जाइबे जिनिञा । संसारेइ अप्रतिष्ठा घुषिब शुनिञा ॥३३॥

मोहित करके श्रीनवद्वीप में विद्या-रस में आनन्द करते थे ॥ १८ ॥ उसी समय श्रीनवद्वीप में एक महा दिग्विजयी पण्डित बड़े अहङ्कार रखता हुआ आया ॥ १६ ॥ वह 'सरस्वती-मन्त्र' का एकान्त उपासक था जिसने मन्त्र जप कर सरस्वती जी को वश में कर लिया था ॥ २० ॥ विष्णु-भक्ति-स्वरूपिणी एवं श्रीविष्णु भगवान् के वक्षस्थल में विराजिता श्रीलक्ष्मी जी की अन्य मूर्त्ति जगन्माता श्रीसरस्वती जी ॥ २१ ॥ उस ब्राह्मण के सौभाग्य से उसको दर्शन दिये थे एवं वरदान दिया था कि-'तुम त्रिभुवन दिग्विजय करो' ॥२२॥ जिन श्रीसरस्वती जी के दृष्टिपात मात्र से श्रीविष्णु-भक्ति-लाभ हो जाती है उनका दिग्विजय का वर देना कौनसी बड़ी शक्ति का द्योतक है ? ॥ २३ ॥ वह विप्र साक्षात् श्रीसरस्वती जी से वर प्राप्त कर संसार को जीतता हुआ जगह-जगह घूमता फिरता था ॥२४॥ निरन्तर सर्व शास्त्र उसकी जिह्वा पर आते रहते थे संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं था जो उसकी बात का उत्तर दे सके ॥ २५ ॥ जिसके पूर्वपक्ष मात्र को कोई कुछ नहीं समझता था,दिग्विजयी होकर वह ब्राह्मण प्रत्येक स्थान पर घूमता फिरता था ॥ २६ ॥ उसने श्रीनवद्वीप की बड़ी महिमा सुनी थी कि-वहाँ पण्डितों के समाज उनकी कोई सीमा नहीं है ॥२७॥ वह दिग्विजयी परम समृद्ध अश्व, गज आदि से युक्त होकर एवं सबको जीत कर श्रीनवद्वीप में आया है ॥ २८ ॥ श्रीनवद्वीप के प्रत्येक पण्डित समाज एवं घर-घर में यह महाध्वनि उठी हुई थी कि-॥ २६ ॥ 'सर्व राज्य व सर्व देश को जीत कर एवं सबसे 'जय-पत्र' लेकर एक दिग्विजयी पण्डित यहाँ आया है' ॥ ३० ॥ सब से उसको सरस्वती का वर-पुत्र सुनकर सब पण्डितों के मन में बड़ी चिन्ता हुई ॥ ३१ ॥ वह विचार करते थे कि-जम्बुद्वीप में पण्डितों के जितने स्थान हैं उन सबके विजेता रूप में श्रीनवद्वीप संसार में प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥ ऐसे स्थान को यदि दिग्विजयी जीत कर जायगा तो इस बात को सुनकर संसार में इसकी अप्रतिष्ठा फैल जायगी ॥ ३३ ॥

जुझिते वा कार शक्ति आछे तार सने । सरस्वती वर जारे दिलेन आपने ॥३४॥
सरस्वती वक्ता जार जिह्वाय आपने । मनुष्य विवादे कभू पारे तार सने ॥३५॥
सहस्र सहस्र महा महा भट्टाचार्य । सभे एइ चिन्तेन छाड़िया सर्व्व कार्य ॥३६॥
चतुर्दिके सभेइ करेन कोलाहल । बुझिबाङ एइ बार जत विद्या बल ॥३७॥
ए सब वृतान्त जत पढुयार गणे । कहिलेन निज गुरु गौराङ्गेर स्थाने ॥३८॥
'एक दिग्विजयी सरस्वती वश करि । सर्व्वत्र जिनिञा वुले जय पत्र धरि ॥३९॥
हस्ती घोड़ा दोला लोक अनेक संहति । सम्प्रति आसिया हैला नवद्वीपे स्थिति ॥४०॥
नवद्वीपे आपनार प्रति द्वन्द्वी चाय । नहे जय-पत्र मागे सकल सभाय' ॥४१॥
शुनि शिष्य गणेर वचन गौर-मणि । हासिया कहिते लागिलेन तत्त्व वाणी ॥४२॥
'शुन भाइ सब एइ कहि तत्त्व कथा । अहङ्कार ना सहेन ईश्वर सर्व्वथा ॥४३॥
जे जे गुणे मत्त हइ करे अहङ्कार । अवश्य ईश्वर ताहा करेन संहार ॥४४॥
फलवन्त वृक्ष आर गुणवन्त जन । नम्रता से ताहार स्वभाव अनुक्षण ॥४५॥
*हैहय, नहुष, वाण, नरक रावण । महा दिग्विजयी शुनियाछ जे जे जन ॥४६॥
वुझि देख कार गर्व्व चूर्ण नाहि हय । सर्व्वदा ईश्वर अहङ्कार ना सहय ॥४७॥
एतेक ताहार जत विद्या अहङ्कार । देखिबा एथाइ सब हइबे संहार ॥४८॥
एत वलि हासि प्रभु शिष्य गण सङ्गे । सन्ध्या काले गङ्गा तीरे चलिलेन रङ्गे ॥४९॥

स्वयं श्रीसरस्वती जी ने जिसको वर दिया है उसके साथ बोलने की किस में शक्ति है ॥ ३४ ॥ जिसकी जिह्वा पर स्वयं श्रीसरस्वती जी वक्ता हैं क्या मनुष्य कभी उसके साथ विवाद कर सकता है ? ॥३५॥ सहस्र-सहस्र महा भट्टाचार्य सब अपने अन्य कार्यों को छोड़कर इसी चिन्ता में थे ॥ ३६ ॥ एवं सब लोग चारों ओर कोलाहल करते थे व कहते थे कि–'अब की जान पड़ेगी कि इनमें कितना विद्या बल है' ॥३७॥ यह सब वृत्तान्त विद्यार्थी-वर्ग ने अपने गुरु श्रीगौराङ्ग देव से जाकर कहा ॥ ३८ ॥ उन्होंने कहा कि–'एक दिग्विजयी पण्डित श्रीसरस्वती जी को निज-वश करके सर्वत्र विजय प्राप्त करता हुआ एवं विजय-पत्र लेता हुआ घूमता फिरता है ॥ ३९ ॥ उसके साथ अनेक हाथी, घोड़े, पालकियाँ एवं मनुष्य हैं; अब वह नवद्वीप में आकर ठहरा है ॥ ४० ॥ वह नवद्वीप में अपना प्रति-द्वन्दी चाहता (खोजता) है नहीं तो समग्र सभाओं से जय-पत्र माँगता है' ॥ ४१ ॥ श्रीगौर-मणि शिष्य गण के वचन सुनकर हँसते हुए तत्त्व-वाणी बोले ॥ ४२ ॥ 'भाइयो ! सुनो, मैं यह तत्त्व की बात कहता हूँ कि–ईश्वर अहङ्कार को कभी सहन नहीं करते हैं' ॥ ४३ ॥ जो आदमी जिस गुण से मत्त होकर अहङ्कार करता है ईश्वर अवश्य उसको नाश करते हैं ॥४४॥ फल वाला वृक्ष और गुण-वाला मनुष्य इनका सदा नम्रता का स्वभाव होता है ॥ ४५ ॥ हैहय, नहुप, वेण, नरक एवं रावण आदि जो-जो महा दिग्विजयी जन तुमने सुने हैं ॥ ४६ ॥ समझ कर देखो उनमें से किसका गर्व चूर्ण नहीं हुआ ?

---

* हैहय देश का राजा कार्त्तवीर्य्यार्जुन इन्होंने भगवान् दत्तात्रेय से वर प्राप्त कर अपनी सहस्र भुजायों द्वारा रावण को भी हराया था पश्चात् परशुरामजी के द्वारा निहत हुआ था ।

गङ्गा जल स्पर्श करि गङ्गा नमस्करि । वसिलेन गङ्गातीरे गौराङ्ग श्री हरि ॥५०॥
अनेक मण्डली हइ सर्व्व शिष्य गण । वसिलेन चतुर्द्दिके परम शोभन ॥५१॥
धर्म्म कथा शास्त्र कथा अशेष कौतुके । गङ्गातीरे वसियाछेन प्रभु बड़ सुखे ॥५२॥
काहा के ना कहि मने भावेन ईश्वर । दिग्विजयी जिनिवाङ के मन प्रकार ॥५३॥
ए विप्रेर हइयाछे महा अहङ्कार । जगते मोहर प्रति द्वन्द्वी नाहि आर ॥५४॥
सभा मध्ये जदि जय करिये इहारे । मृत्यु तुल्य हइवेक संसार भितरे ॥५५॥
अनादर विप्रेर करिवे सर्व्वलोके । लुठिवे सर्वस्व विप्र मरिबेक शोके ॥५६॥
दुःख ना पाइवे विप्र गर्व्व हैवे क्षय । विरले से करिवाङ दिग्विजियी जय ॥५७॥
एइमत चिन्तिते ईश्वर सेइक्षणे । दिग्विजयी निशाये आइला सेइ स्थाने ॥५८॥
परम निर्म्मल निशा पूर्ण चन्द्रवती । कि शोभा हइयाछेन तथा भागीरथी ॥५९॥
शिष्य सङ्गे गङ्गातीरे आछेन ईश्वर । अनन्त ब्रह्माण्डे रूप सर्व मनोहर ॥६०॥
हास्य युक्त श्री चन्द्र-बदन अनुक्षण । निरन्तर दिव्य-दृष्टि दुइ श्री नयन ॥६१॥
मुक्ता जिनि श्री दशन, अरुण अधर । दयामय सुकोमल सर्व्व-कलेवर ॥६२॥
सुवलित श्रीमस्तके श्रीचाँचर केश । सिंह ग्रीव, गज-स्कन्ध, विलक्षण बेश ॥६३॥
सुप्रकाण्ड श्रीबिग्रह, सुन्दर हृदय । यज्ञ-सूत्र रूपे तँहि अनन्त विजय ॥६४॥

ईश्वर कभी अहङ्कार को सहन नहीं करते हैं ॥ ४७ ॥ इसलिये तुम देखना कि—यही पर उसका सब विद्या-अहङ्कार नष्ट होगा ॥ ४८ ॥ इतना कहकर प्रभु हँसकर सन्ध्या समय शिष्य-गण सहित आनन्द पूर्वक श्रीगङ्गा-तट पर पहुँचे ॥४६॥ वहाँ जल स्पर्श व श्रीगङ्गाजी को नमस्कार करके गौराङ्ग श्रीहरि तट पर बैठ गये ॥५०॥ एवं सर्व शिष्य-गण के अनेक मण्डलियां में विभक्त होकर चारों ओर से घेर कर बैठने से परम शोभा को प्राप्त हो रहे थे ॥ ५१ ॥ अशेष कौतुक पूर्ण धर्म-कथा एवं शास्त्र वार्त्तालाप करते हुए प्रभु अति सुख पूर्वक गङ्गा-तट पर बैठे हुए थे ॥ ५२ ॥ ईश्वर श्रीगौरचन्द्र किसी को भी न कहकर अपने मन में विचार करने लगे कि-मैं इस दिग्विजयी को किस प्रकार जीतूँ ? ॥ ५३ ॥ इस विप्र को बड़ा भारी अहङ्कार हो गया है कि—संसार में मेरा प्रतिद्वन्द्वी और कोई नहीं है ॥ ५४ ॥ यदि इसको सभा के बीच में जय किया जाय तो वह संसार में मृत-तुल्य हो जायगा ॥ ५५ ॥ एवं सब लोग इस विप्र का अनादर करेंगे,इसका सर्वस्व लुट जायगा और वह शोक में मर जायगा ॥ ५६ ॥ यह विप्र दुःख भी न पावे और इसका गर्व भी क्षय हो जाय इसलिये मैं दिग्विजयी को एकान्त में जय करूँगा ॥ ५७ ॥ श्रीगौरचन्द्र ईश्वर इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि-रात्रि में उसी क्षण वह दिग्विजयी वहाँ आ पहुँचा ॥ ५८ ॥ परम निर्मल पूर्णिमा की रात्रि में वहाँ श्रीगङ्गाजी पर क्या अद्भुत शोभा हो रही थी ॥ ५६ ॥ श्रीगौरचन्द्र शिष्य वर्ग के साथ श्रीगङ्गा तट पर विराजमान थे, आपका रूप अनन्त ब्रह्माण्ड में सब के मन को हरने वाला था ॥ ६० ॥ आपका श्रीचन्द्रमुख क्षण-क्षण में हास्ययुक्त हो रहा था तथा आपके युगल श्रीनेत्रों से निरन्तर दिव्य दृष्टि सुप्रकाशित हो रही थी॥६१॥ आपके श्रीदशन मुक्ताओं को भी जय कर रहे थे, आपके अधर अरुण थे एवं श्रीअङ्ग दयामय व अति कोमल थे ॥ ६२ ॥ आपके सुन्दर रेखाङ्कित श्रीमस्तक प्रदेश में चाँचर काले केश शोभित थे, सिंह की सी ग्रीवा,

श्रीललाटे ऊर्द्ध सुतिलक मनोहर। आजानुलम्बित दुइ श्रीभुज सुन्दर ॥६५॥
योग पट्ट-छान्दे वस्त्र करिया बन्धन। वाम उर माझे थुइ दक्षिण चरण ॥६६॥
करिते आछेन प्रभु शास्त्रेर व्याख्यान। हय नय करे, नय करेन प्रमाण ॥६७॥
अनेक मण्डली हइ सर्व्व शिष्य गण। चतुर्द्दिके वसिया आछेन सुशोभन ॥६८॥
अपूर्व्व देखिया दिग्विजयी सुविस्मित। मने भावे एइ बुझि निमाञि पण्डित ॥६९॥
अलक्षिते सेइ स्थाने थाकि दिग्विजयी। प्रभुर सौन्दर्य्य चाहे एक दृष्टि हइ ॥७०॥
शिष्य स्थाने जिज्ञासिला 'कि नाम इहान'। शिष्य बोले 'निमाञि पण्डित ख्याति जान'॥७१॥
तवे गङ्गा नमस्करि सेइ विप्रवर। आइलेन ईश्वरेर सभार भितर ॥७२॥
ताने देखि प्रभु कछु ईषत् हासिया। बसिते वलिला अति आदर करिया ॥७३॥
परम निशङ्क सेइ, दिग्विजयी आर। तभो प्रभु देखिञा साध्वस हैल तार ॥७४॥
ईश्वर स्वभाव शक्ति एइ मत हय। देखितेइ मात्र तार साध्वस जन्माय ॥७५॥
सात पाँच कथा प्रभु कहि बिप्र-सङ्गे। जिज्ञासिते ताँरे किछु आरम्भिला रङ्गे ॥७६॥
प्रभु कहे तोमार कवित्वेर नाहि सीमा। हेन नाहि, जाहा तुमि ना कर बर्णना ॥७७॥
गङ्गार महिमा किछु करह पठन। शुनिञा सभार हउ पाप-बिमोचन ॥७८॥
शुनि सेइ दिग्विजयी प्रभुर बचन। सेइ क्षणे करि वारे लागिला वर्णन ॥७९॥
द्रुत ये लागिला बिप्र करिते वर्णना। कत रूपे बोले तार के करिबे सीमा ॥८०॥

हाथी के से युगल-स्कन्ध एवं विलक्षण बेश शोभा पा रहा था ॥६३॥ आपका सुप्रकाण्ड श्रीविग्रह एवं सुन्दर वक्ष था, वहीं यज्ञोपवीत रूप में श्रीअनन्तजी विराज रहे थे ॥ ६४ ॥ श्रीललाट प्रदेश में ऊर्द्ध पुण्ड्र का मनोहर सुन्दर तिलक था जंघाओं तक लम्बे सुन्दर श्रीभुज-युगल थे ॥६५॥ योगपट्ट की रीति से वस्त्र बन्धन कर दक्षिण श्रीचरण को बायें जंघा पर रखकर प्रभु शास्त्र की व्याख्या करने में लगे हुए थे । 'हाँ' को 'ना' करते थे एवं ना को हाँ सिद्ध कर रहे थे !! ६६-६७ ॥चारों ओर सर्व शिष्य-गण अनेक मण्डलियों में विभक्त होकर बैठे हुए सुन्दर शोभा को पा रहे थे ॥ ६८ ॥ दिग्विजयी उस अपूर्व शोभा को देखकर अति विस्मित हुआ एवं मन में विचार करने लगा कि–'स्यात् यही निमाञि पण्डित हैं' ॥ ६९ ॥ दिग्विजयी उसी स्थान पर ओट में होकर टकटकी लगाकर प्रभु के सौन्दर्य को देख रहा था ॥ ७० ॥ पश्चत् एक शिष्य से पूछने लगा कि–'इनका नाम क्या है ?' शिष्य ने उत्तर दिया कि–'यह निमाञि पण्डित के नाम से प्रसिद्ध हैं' ॥ ७१ ॥ तब वह विप्रवर श्रीगङ्गा जी को नमस्कार करके ईश्वर की सभा में आ गया ॥ ७२ ॥ उसको देख कर महाप्रभुजी ने कुछ हास्य करते हुए आदर के साथ बैठने को कहा ॥ ७३ ॥ एक तो वह परम निशङ्क और दूसरे दिग्विजयी, तब भी प्रभु को देखकर उसको भय हो रहा था ॥ ७४ ॥ ईश्वर-स्वभाव की ऐसी शक्ति होती है कि दर्शन करते ही दर्शक को भय होने लगता है ॥ ७५ ॥ प्रभु ने उस विप्र से कुछ वार्त्तालाप करने के पश्चात् कौतुक ही से कुछ पूछना आरम्भ किया ॥ ७६ ॥ प्रभु ने कहा कि–आपनी कवित्व शक्ति की कोई सीमा नहीं है, ऐसा कोई विषय नहीं, जिसका आप वर्णन न कर सकते हों ॥ ७७ ॥ इसलिये आज आप श्रीगङ्गा जी की कुछ महिमा पाठ कीजिये, जिसे सुनकर सबके पाप-विमोचन हों ॥ ७८ ॥ उस

कत मेघे शुनि जेन करये गर्ज्जन । एइ मत कवित्वेर गाम्भीर्य पठन ॥८१॥
जिह्वाय आपनि सरस्वती अधिष्ठान । जे बोलये सेइ हये अत्यन्त-प्रमाण ॥८२॥
मनुष्येरे शक्ति ताहा दूषिबेक के । हेन विद्यावन्त नाहि बुझिबेक जे ॥८३॥
सहस्र सहस्र जत प्रभुर शिष्य गण । अवाक्य हइला सभे शुनिञा वर्णन ॥८४॥
राम राम अद्भुत स्मरेन शिष्य गण । मनुष्येर ए मत कि स्फुरये कथन ॥८५॥
जगते अद्भुत जत शब्द अलङ्कार । सेइ बहि कवित्वेर वर्णन नाहि आर ॥८६॥
सर्व्व शास्त्रे महा विशारद जे जे जन । हेन शब्द ताना बुझिबारे ओ विषम ॥८७॥
एइ मत प्रहर खानेक दिग्विजयी । पढ़े द्रुत वर्णना तथापि अन्त नाञि ॥८८॥
पढ़ि जदि दिग्विजयी हैला अवसर । तबे हासि बलिलेन श्री गौर सुन्दर ॥८९॥
'तोमार जे शब्देर ग्रन्थन अभिप्राय । तुमि विने बुझाइले बुझन ना जाय ॥९०॥
एतेके आपने किछु करह व्याख्यान । जे शब्दे जे बोल तुमि, सेइ से प्रमाण' ॥९१॥
शुनिञा प्रभुर वाक्य सर्व्व मनोहर । व्याख्या करि बारे लागिलेन विप्रवर ॥९२॥
व्याख्या करिलेइ मात्र प्रभु सेइ खाने । दूषिलेन आदि मध्य अन्ते तिन स्थाने ॥९३॥
प्रभु बोले 'ए सकल शब्द अलङ्कार । शास्त्र मते शुद्ध हैते विषम अपार ॥९४॥
तुमि बा दियाछ कोन् अभि प्राय करि । बोल देखि' कहिलेन गौराङ्ग श्री हरि ॥९५॥

दिग्विजयी ने प्रभु के वचन सुनते ही उसी क्षण वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया ॥७९॥ वह विप्र ऐसी तीव्र गति से वर्णन करता था कि उसकी कोई सीमा नहीं कर सकता है ॥ ८० ॥ उसकी कविता का पाठ इस प्रकार गाम्भीर्य से हो रहा था कि मानों कितने ही मेघ गर्जन करते हुए सुनाई देते हों॥८१॥उसकी जिह्वा पर स्वयं श्रीसरस्वतीजी का अधिष्ठान था वह जो कुछ वर्णन करता वही अत्यन्त प्रमाणित माना जाता था॥८२॥ किस मनुष्य की शक्ति है जो उसमें दोष निकाल सके और तो क्या ऐसा भी कोई विद्वान् नहीं था जो उसको समझ भी सके ॥ ८३ ॥ प्रभु के सहस्र-सहस्र जितने शिष्य-गण थे, वे सभी उसके वर्णन को सुनकर अवाक् हो गये ॥ ८४ ॥ वह शिष्यगण विस्मित होकर 'राम-राम' स्मरण करने लगे एवं विचारने लगे कि—क्या इस प्रकार का वर्णन मनुष्य को कभी स्फूर्त्ति हो सकता है ? ॥ ८५ ॥ संसार में जितने अद्भुत-अद्भुत शब्द एवं अलङ्कार हैं उसकी कविता में उनके वर्णन के अतिरिक्त और कुछ नहीं था ॥८६॥ उसने ऐसे-ऐसे शब्द प्रयोग किये कि जिनका समझना सब ही सर्व-शास्त्र-विशारद मनुष्यों के लिये भी एक विषम समस्या थी ॥ ८७ ॥ इसी प्रकार लगभग एक प्रहर तक दिग्विजयी पण्डित शीघ्र-गति से वर्णन करता ही चला जाता था, तब भी पाठ का अन्त नहीं होता था ॥ ८८ ॥ कुछ समय पश्चात् उसके वर्णन करते-करते अवसर जान कर हँसते हुए श्रीगौरसुन्दर उससे बोले कि-॥८९॥'आपका शब्द जोड़ने का जो अभिप्रायहै वह बिना आपके समझाये समझ में नहीं आता ? ॥९०॥ इसलिये आप उसकी कुछ व्याख्या कीजिये आप जो बोलते हो उसके वे ही प्रमाण हैं' ॥ ९१ ॥ प्रभु के अति मनहरण वाक्य सुन कर उस पण्डित ने व्याख्या करनी प्रारम्भ की ॥ ९२ ॥ उसके व्याख्या करने के साथ ही प्रभु उसकी कविता के आरम्भ-बीच एवं अन्त में तीनों स्थानों में दोष निकाले ॥ ९३ ॥ पश्चात् प्रभु गौराङ्ग श्रीहरि बोले—'यह सब शब्द व अलङ्कार शास्त्र के अनुसार शुद्ध कहना बड़ा

एत बड़ सरस्वती-पुत्र दिग्विजयी । सिद्धान्त ना स्फुरे किछु बुद्धि गेल कहि ॥६६॥
सात पाँच बोले विप्र प्रबोधिते नारे । जे बोलेन ताहि दोषे गौराङ्ग सुन्दरे ॥६७॥
सकल प्रतिभा पलाइल कोन स्थाने । आपने ना बुझे विप्र कि बोले आपने ॥६८॥
प्रभु बोले 'ए थाकुक पढ़ किछु आर' । पढ़ितेओ पूर्व्ववत् शक्ति नाहि आर ॥६६॥
कोन चित्र ताहार सम्मोह प्रभु-स्थाने । बेदेओ पायन मोह जाँर विद्यमाने ॥१००॥
आपने अनन्त, चतुर्म्मुख, पञ्चानन । जा सभार दृष्ट्ये हये अनन्त भुवन ॥१०१॥
तानाओ मानेन मोह जार विद्यमाने । कोन चित्र से विप्रेर मोह प्रभु स्थाने ॥१०२॥
लक्ष्मी-सरस्वती आदि जत योगमाया । अनन्त ब्रह्माण्ड मोहे जा सभार छाया ॥१०३॥
ताहारा पायेन मोह जार विद्यमाने । अतएव पाछे से थाकेन सर्व्व क्षणे ॥१०४॥
वेद कर्त्ता सब मोह पाय जार स्थाने । कोन चित्र दिग्विजयी मोह वा ताहाने ॥१०५॥
मनुष्ये ए सब कार्य असम्भव दढ़ । तेञि वलि, तान ए सकल कर्म्म बड़ ॥१०६॥
मूले जत किछु कर्म्म करेन ईश्वरे । सकल निस्तार हेतु दुःखित जीवेरे ॥१०७॥
दिग्विजयी जदि पराभवे प्रवेशिला । शिष्य गण हासिवारे उद्यत हइला ॥१०८॥
सभारेइ प्रभु करिलेन निवारण । विप्र प्रति बलिलेन मधुर वचन ॥१०६॥
'आजि चल तुमि शुभ कर वासा-प्रति । कालि विचारिव सब तोमार संहति ॥११०॥

कठिन काम है ॥ ६४ ॥ देखें, कहिये तो, आपने यह किस अभिप्राय से प्रयोग किये हैं ? ॥ ६५ ॥ इतने बड़े दिग्विजयी श्रीसरस्वती-पुत्र को कुछ भी सिद्धान्त स्फुरण नहीं होने लगा, न जाने उसकी बुद्धि कहाँ चली गई ॥६६॥ वह विप्र सात-पाँच (अट-पट) जो बोल रहे थे ठीक प्रकार से उनका समझा नहीं जाता था, श्रीगौराङ्ग-सुन्दर भी उसके सभी वाक्यों में दोष दर्शा देते थे ॥६७॥ न जाने उसकी सब प्रतिभा कहाँ चली गई वह विप्र स्वयं अपनी बात भी समझ नहीं रहा था कि-मैं क्या बोल रहा हूँ ॥ ६८ ॥ तब प्रभु बोले कि-'उसे छोड़ो' और कुछ सुनाइये, उस पण्डित की अब पूर्ववत् पढ़ने की भी शक्ति जाती रही ॥ ६६ ॥ जिन प्रभु के सम्मुख वेद भी मोह को प्राप्त हो जाते हैं उनके सम्मुख उसको मोह हो जाना कौनसी विचित्र बात थी ॥ १००॥ स्वयं श्रीअनन्तदेव, ब्रह्माजी एवं शिवजी (जिन सबकी दृष्टि से अनन्त भुवन सृजन, रक्षण एवं लय होते हैं) ॥ १०१ ॥ वह भी जिनके सम्मुख मोहित हो जाते हैं फिर उस विप्र का प्रभु के सामने मोह को प्राप्त हो जाना कौनसी विचित्र बात थी ॥ १०२ ॥ श्रीलक्ष्मी, सरस्वती आदि जितनी योगमाया देवियाँ हैं जिनकी छाया से अनन्त ब्रह्माण्ड मोहित होते हैं ॥ १०३ ॥ वे भी जिन प्रभु के सम्मुख मोहित हो जाती हैं, इसीलिये वे सदा उनके पीछे रहती हैं ॥ १०४ ॥ जिनके सम्मुख साथ ही वेद-कर्त्ता (ऋषिगण) मोह को प्राप्त होते हैं उनके सामने दिग्विजयी का मोह को प्राप्त हो जाना कौनसी विचित्र बात है ? ॥१०५॥ यह सब कार्य मनुष्य के द्वारा होने बड़े असम्भव हैं इसीलिये हम कहते हैं कि-उनके यह सभी कर्म सर्वोपरि हैं॥१०६॥ ईश्वर जो कुछ करते हैं वह सब मूलतः दुःखित जीवों के निस्तार के लिये करते हैं ॥ १०७ ॥ जब दिग्विजयी की पराजय होती देखी तो शिष्य गण हँसी उड़ाने के लिये उद्यत हुए ॥१०८॥ प्रभु ने सबको निवारण किया पश्चात् उस विप्र से मधुर वाणी में बोले कि ॥ १०६ ॥ 'अब आज आप अपने निवास-स्थान को जाँय, कल

तुमि ओ हइला श्रान्त अनेक पढ़िया । निशाओ अनेक जाय, शुजि थाक गिया ।।१११।।
एइमत प्रभुर कोमल व्यवसाय । जाहारे जिनेन सेहो दुःख नाहि पाय ।।११२।।
सेइ नवद्वीपे जत अध्यापक आछे । जिनिञा ओ सभारे तोषेन प्रभु पाछे ।।११३।।
'चल आजि घरे तुमि वसि पुँथि चाह । कालि जे जिज्ञासि, ताहा वलिवारे चाह' ।।११४।।
जिनिञा ओ कारो ना करेन तेज भङ्ग । सभेइ पायेन प्रीत हेन तान रङ्ग ।।११५।।
अत एव नवद्वीपे जतेक पण्डित । सभार प्रभुर प्रति मने बड़ प्रीत ।।११६।।
शिष्य गण सहित चलिला प्रभु घर । दिग्विजयी बड़ हैला लज्जित अन्तर ।।११७।।
दुःखित हैला विप्र चिन्ते मने मने । सरस्वती मोरे वर दिलेन आपने ।।११८।।
न्याय, सांख्य, पातञ्जल, मीमांसा दर्शन । वैशेषिक, वेदान्ते, निपुण जत जन ।।११९।।
हेन जन ना देखिल संसार भितरे । जिनिते कि दाय, मोर सने कक्षा करे ।।१२०।।
शिशु शास्त्र-व्याकरण पढ़ाये ब्राह्मण । से मोरे जिनिल हेन विधिर घटन ।।१२१।।
सरस्वती वरो 'त' अन्यथा देखि हय । एहो मोर चित्ते वड़ लागिल संशय ।।१२२।।
देवी स्थाने मोर वा जन्मिल कोन दोष । अतएव हैल मोर प्रतिभा सङ्कोच ।।१२३।।
अवश्य इहार आजि बुझिव कारण । एत बलि मन्त्र-जपे बसिला ब्राह्मण ।।१२४।।
मन्त्र जपि दुःखे विप्र शयन करिला । स्वप्ने सरस्वती विप्र-सन्मुखे आइला ।।१२५।।
कृपा दृष्ट्ये भाग्यवन्त-ब्राह्मणेर प्रति । कहिते लागिला अति गोप्य सरस्वती ।।१२६।।

आपके साथ फिर विचार होगा ।। ११० ।। आप भी बहुत वर्णन करने के कारण शान्त हो गये हैं और रात्रि भी बहुत बीत गई, इसलिये अब जाकर सोइये' ।। १११ ।। प्रभु का इसी प्रकार का कोमल व्यवहार है कि-जिसको जीतते हैं वह भी दुःख नहीं पाता था ।। ११२ ।। इसी नवद्वीप में जितने अध्यापक हैं प्रभु उन सबको जीतकर भी पश्चात् सबको तुष्ट करते थे ।। ११३ ।। 'आज आप घर जाकर एवं वहाँ बैठकर पुस्तक विचार करना, कल जो मैं आपसे पूछूँ उसको बतलाना' ।। ११४ ।। प्रभु जीत कर भी किसी का तेज भङ्ग नहीं करते आप ऐसा कौतुक करते हैं कि-सभी आपसे प्रीति करते हैं ।। ११५ ।। अतएव नवद्वीप में जितने पण्डित हैं, वे सब ही प्रभु के प्रति मन में बड़ी प्रीति रखते हैं ।। ११६ ।। शिष्य-गण को साथ लेकर प्रभु घर की ओर चले, उधर दिग्विजयी मन में बड़ा लज्जित हुआ ।। ।। २१७ ।। वह विप्र दुःखित होकर मन ही मन सोचने लगा कि-मुझे स्वयं श्रीसरस्वती जी ने वरदान दिया था ।। ११८ ।। एवं जो-जो जन न्याय, सांख्य, पातञ्जल, मीमांसा, वैशेषिक एवं वेदान्त दर्शन शास्त्रों में निपुण हैं ।। ११९ ।। उनमें से संसार में मैंने कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं देखा जो मुझे जीतने की तो क्या चले मेरे सम्मुख प्रतियोगिता में भी खड़ा नहीं हो सके।।१२०।। यह ब्राह्मण जो शिशु-शास्त्र व्याकरण पढ़ाता है, इसने मुझको जीत लिया,ऐसा विधि का विधान था।।१२१।। इस प्रकार से तो श्रीसरस्वती जी का वर भी झूँठा हुआ इससे भी मेरे चित्त में बड़ा संशय है ।। १२२ ।। अथवा देवी के प्रति मेरा कोई अपराध हो गया जिसके कारण मेरी प्रतिभा सङ्कुचित हो गई ।। १२३ ।।'आज इसका कारण अवश्य पूछुँगा' इतना कह कर वह विप्र श्रीसरस्वती-मन्त्र जप करने को बैठा ।। १२४ ।। मन्त्र-जप पूर्ण करके विप्र दुःखित होकर सो गया पश्चात् श्रीसरस्वती जी स्वप्न में विप्र के सामने आई ।।१२५।।

सरस्वती बोलेन 'शुनह बिप्र-वर । बेद गोप्य कहि एइ तोमार गोचर ॥१२७॥
कारो स्थाने भाङ्ग जदि ए सकल कथा । तवे तुमि शीघ्र हैवा अल्पायु सर्व्वथा ॥१२८॥
जार ठाञि तोमार हइल पराजय । अनन्त ब्रह्माण्ड-नाथ तिहो सुनिश्चय ॥१२६॥
आमि जार पाद-पद्मे निरन्तर दासी । सन्मुख हइते आपनारे लज्जा वासि ॥१३०॥
तथाहि-विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया । विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्द्धियः [भा.२।५।१३]
आमि से बलिये बिप्र ! तोमार जिह्वाय । ताहान सन्मुखे शक्ति ना बसे आमाय ॥१३१॥
आमार कि दाय, शेष देव भगवान । सहस्र बदने बेद जे करे व्याख्यान ॥१३२॥
अज भव आदि जार उपासना करे । हेन शेष मोह माने जाहार गोचरे ॥१३३॥
पर ब्रह्म नित्य-शुद्ध अखण्ड अव्यय । परिपूर्ण हइ वैसे सभार हृदय ॥१३४॥
भक्ति-ज्ञान-विद्या-शुभ अशुभादि जत । दृश्यादृश्य तोमारे वा कहिवाङ कत ॥१३५॥
सकल प्रवर्त्त हय शुन जाहा हैते । सेइ प्रभु बिप्र रूपे देखिला साक्षाते ॥१३६॥
आब्रह्मादि जत देखो सुख दुःख पाय । सकल जानिह बिप्र ! उहान आज्ञाय ॥१३७॥
मत्स्य कूर्म्म आदि जत शुन अबतार । ओइ प्रभु सर्व्व बिप्र ! दुइ नाहि आर ॥१३८॥
उहि से बराह रूपे क्षिति-स्थापयिता । उहि से नृसिंह-रूपे प्रहलाद रक्षिता ॥१३६॥
उहि से वामन रूपे बलिर जीवन । जार पाद-नख हैते गङ्गार जनम ॥१४०॥

और भाग्यशाली ब्राह्मण के प्रति कृपा दृष्टि करके अति गोपनीय बात करने लगीं ॥ १२६ ॥ उसने कहा कि-'हे द्विज-श्रेष्ठ ! सुनो, मैं तुम्हारे सामने यह वेद से गोप्य बात कहती हूँ ॥ १२७ ॥ यह सब बात यदि किसी के सामने तुम प्रकट करोगे तो निश्चय शीघ्र ही तुम अल्पायु हो जाओगे॥ १२८ ॥ जिनके सामने तुम्हारी पराजय हुई है।वह निश्चय ही अनन्त ब्रह्माण्डों के स्वामी हैं ॥ १२६ ॥ मैं जिनके चरण-कमलों की दासी हूँ एवं जिनके सम्मुख होते मुझे लज्जा आती है॥१३०॥अर्थ—'मेरे प्रभु मेरा कपट जानते हैं' ऐसा विचार कर, माया जिनकी दृष्टि-पथ पर स्थित होने में अति लज्जा करती है (प्रसङ्ग में इतना ही प्रयोजन है) मेरी भाँति के दुर्बुद्धि-गण उनकी उस माया के प्रभाव से मोहित होकर 'मैं' 'मेरा' इस प्रकार आत्म-श्लाघा करते हैं। (मैं उन भगवान् वासुदेव जी को नमस्कार एवं उनका ध्यान करता हूँ) ॥ क ॥ हे विप्र ! तुम्हारी जिह्वा पर मैं बोलती तो हूँ, किन्तु उनके सामने मेरी शक्ति कुछ काम नहीं करती ॥ १३१ ॥ मेरी तो क्या चले श्रीशेषदेव भगवान् भी जोकि अपने सहस्र मुखों से वेद का वर्णन करते हैं ॥ १३२ ॥ एवं श्रीब्रह्माजी व शिवजी जिनकी उपासना करते हैं ऐसे श्रीशेषदेव भगवान् भी जिनके सम्मुख मोह को प्राप्त हो जाते हैं, जो पर-ब्रह्म, नित्य-शुद्ध, अखण्ड, अव्यय एवं परिपूर्ण होकर सबके हृदय में विराजमान हैं ॥ १३३-१३४ ॥ भक्ति, ज्ञान, विद्या, शुभ, अशुभ, दृश्य, अदृश्य आदि वस्तुएँ, मैं कितनी तुम्हें गिनाऊँ ॥ १३५ ॥ यह सब जिनसे प्रवर्त्तित होती हैं उन्हीं प्रभु का तुमने विप्र रूप में साक्षात् दर्शन किया है ॥ १३६ ॥ ब्रह्मादि पर्यन्त जहाँ तक तुम देखते हो सब सुख-दुःख भोग रहे हैं, हे विप्र ! यह सब उनकी आज्ञा से ही हो रहा है ऐसा तुम जानो ॥ १३७ ॥ तुमने मत्स्य, कूर्म आदि जितने अवतार सुने हैं, विप्र ! सर्वत्र वही प्रभु हैं उनके सिवाय अन्य कोई नहीं है ॥ १३८ ॥ वही प्रभु वराह रूप से पृथ्वी स्थापन करने वाले हैं वही श्रीनृसिंह रूप से श्री-

उहि से हइया अवतीर्ण अयोध्याय । बधिला रावण दुष्ट अशेष लीलाय ॥१४१॥
उहाने से बसुदेव-नन्द-पुत्र बलि । एबे विप्र-पुत्र बिद्या-रसे कुतूहली ॥१४२॥
वेदेओ कि जाने न उहान अवतार । जानाइले जानेन अन्यथा शक्ति कार ॥१४३॥
जत किछु मन्त्र तुमि जपिले आमार । दिग्विजयी-पद फल ना हय ताहार ॥१४४॥
मन्त्रेर जे फल ताहा एबे से पाइला । अनन्त ब्रह्माण्ड नाथ साक्षाते देखिला ॥१४५॥
चल शीघ्र विप्र तुमि उहान चरणे । देह गिया समर्पण करह उहाने । १४६॥
स्वप्न हेन ना मानिह ए सब बचन । मन्त्र वशे कहिलाङ वेद सङ्गोपन ॥१४७॥
एत वलि सरस्वती हैला अन्तर्धान । जागिलेन विप्रवर महा भाग्यवान् ॥१४८॥
जागियाइ मात्र विप्रवर सेइ क्षणे । चलिलेन अति उषा काले प्रभु स्थाने ॥१४९॥
प्रभुरे आसिया विप्र दण्डवत् हैला । प्रभु ओ विप्रेरे कोले करिया तुलिला ॥१५०॥
प्रभु बोले 'केने भाइ ए कि व्यवहार' । विप्र बोले 'कृपा दृष्टि जेहेन तोमार' ॥१५१॥
प्रभु बोले 'दिग्विजयी हइया आपने । तवे तुमि आमारे एमत कर केने ॥१५२॥
दिग्विजयी बोलेन शुनह विप्रराज ! । तोमा भजिलेइ सिद्ध हय सर्व्व काज ॥१५३॥
विप्र रूपे कलिजुगे तुमि नारायण । तोमारे चिनिते शक्ति धरे कोन जन ॥१५४॥
तखनेइ मोर चित्ते हइल संशय । तुमि जिज्ञासिले मोर वाक्य ना स्फुरय ॥१५५॥
तुमि जे अगर्व्व सर्व्व-ईश वेदे कहे । ताहा सत्य देखिलु अन्यथा कभू नहे ॥१५६॥

प्रह्लाद जी की रक्षा करने वाले हैं ॥ १३९ ॥ वही प्रभु श्रीवामन रूप से बलि राजा के जीवन हैं जिनके पद-नख से श्रीगङ्गा जी की उत्पत्ति है ॥ १४० ॥ उन्हीं प्रभु ने श्रीअयोध्या जी में अवतीर्ण होकर अपनी अशेष लीला द्वारा दुष्ट रावण का वध किया ॥ १४१ ॥ उन्हें बसुदेव एवं नन्द पुत्र कहते हैं वह अब विप्र-पुत्र रूप से विद्या-रस में क्रीड़ा करते हुए विद्यमान हैं ॥ १४२ ॥ क्या वेद भी उनके अवतार को जानते ? उनके जताने से ही जान सकते हैं नहीं तो किस में शक्ति है कि जाने ॥१४३॥ तुमने हमारा जो कुछ मन्त्र जप किया है उसका फल तुम्हारे लिये दिग्विजयी-पद प्राप्त होना नहीं है ॥ १४४ ॥ मन्त्र जप का फल तुम्हें अब प्राप्त हुआ कि अनन्त ब्रह्माण्डनाथ का साक्षात् दर्शन मिला ॥ १४५ ॥ हे विप्र ! तुम शीघ्र ही उनके चरणों में पहुँचो और अपना शरीर उन्हें समर्पण कर दो ॥ १४६ ॥ मेरे यह सब वचन स्वप्न की बातें मत मान लेना, मन्त्र-वश होकर मैंने तुमसे वेद-साङ्गोपन-तत्त्व प्रकट कर दिया है ॥ १४७ ॥ इतना कहकर श्रीसरस्वती जी अन्तर्धान हो गईं और महा भाग्यवान् विप्रवर जग पड़े ॥ १४८ ॥ विप्रवर जागते ही उसी क्षण अति ऊषा काल में ही प्रभु के पास चल दिये ॥ १४९ ॥ और आकर प्रभु को दण्डवत् प्रणाम किया, प्रभु ने भी विप्र को गोद भर कर उठा लिया ॥ १५० ॥ प्रभु बोले 'क्यों भाई ! यह क्या व्यवहार ?' विप्र बोला 'जैसी आपकी कृपा दृष्टि' ॥ १५१ ॥ प्रभु ने कहा 'तब आप दिग्विजयी होकर हमारे साथ ऐसा क्यों करते हैं ? ॥१५२॥ दिग्विजयी कहने लगा—हे विप्रराज ! सुनिये, आपके भजन से ही सर्व कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥ १५३ ॥ कलियुग में विप्र रूप से आप ही श्रीनारायण हो, आपके जानने की किस मनुष्य में सामर्थ है ॥ १५४ ॥ मेरे चित्त में उसी समय संशय हुआ था जबकि आपके पूछने पर ऐसा वाक्य-स्फुरण नहीं हुआ था ॥ १५५ ॥ आपको वेद जो

तीन बारे आमारे करिला पराभव । तथापि आमार तुमि राखिला गौरव ॥१५७॥
एहो कि ईश्वर शक्ति बिने अन्ये हय । अतएव तुमि नारायण सुनिश्चय ॥१५८॥
गौड़ तिरहुत दिल्ली काशी आदि करि । गुजराट, विजया नगर-काञ्ची-पुरी ॥१५९॥
हैलङ्ग तैलङ्ग ओड्र देश आर कत । पण्डितेर समाज संसारे आछे जत ॥१६०॥
दूषिव आमार वाक्य से थाकुक दूरे । बुझितेइ कोन जन शक्ति नाहि धरे ॥१६१॥
हेन आमि तोमा स्थाने सिद्धान्त करिते । ना पारिल सर्व्व बुद्धि गेल कौन भिते ॥१६२॥
एहो कर्म्म तोमार आश्चर्य किछु नहे । सरस्वती पति तुमि सइ देवी कहे ॥१६३॥
बड़ शुभ लग्ने आइलाङ नवद्वीपे । तोमा देखिलाङ डुबियाङ भव कूपे ॥१६४॥
अविद्या वासना वन्धे मोहित हइया । बेडाङ पासरि तत्त्व आपना बञ्चिया ॥१६५॥
दैवात् भाग्ये पाइलुँ तोमार दरशन । एवे शुभ दृष्ट्ये मोरे करह मोचन ॥१६६॥
पर-उपकार-धर्म्म स्वभाव तोमार । तोमा बहि शरण्य-दयालु नाहि आर ॥१६७॥
हेन उपदेश मोरे कर महाशय । आरे जेन दुर्व्वासना मोर चित्ते नय ॥१६८॥
एइ मत काकुर्व्वाद अनेक करिआ । स्तुति करे दिग्विजयी अति नम्र हैआ ॥१६९॥
शुनिआ विप्रेर काकु श्री गौरसुन्दर । हासिया ताहाने किछु कहिला उत्तर ॥१७०॥
'शुन विप्रवर ! तुमि महा भाग्यवान् । सरस्वती जाहार जिह्वाय अधिष्ठान ॥१७१॥
दिग्विजय करिवा विद्यार कार्य नहे । ईश्वरे भजिले से विद्याय सभे कहे ॥१७२॥

गर्व-शून्य एवं सर्वेश्वर कहते हैं वह मैंने (स्वयं) देख लिया, वह कभी असत्य नहीं है ॥ १५६ ॥ आपने तीन बार मुझको पराजय किया, तब भी आपने मेरे गौरव नष्ट नहीं होने दिया ॥ १५७ ॥ यह भी क्या ईश्वर-शक्ति बिना किसी और से हो सकता है ? इसलिये आप निश्चय ही नारायण हैं।।१५८।। गौड़-देश, तिरहुत, दिल्ली आदि लेकर गुजरात, विजय नगर, काञ्ची-पुरी, हैलङ्ग, तैलङ्ग, उड़ीसा एवं अन्य कितने ही देश और संसार में जितने भी पण्डित-समाज हैं।।१५९-१६०।।मेरे वाक्यों में दोष निकालना तो दूर रहा, उनको समझने की भी शक्ति किसी में नहीं है ॥ १६१ ॥ ऐसा मैं आपके सम्मुख सिद्धान्त करते समय मेरी सब बुद्धि न जाने कहाँ चली गई ॥ १६२ ॥ आपका यह कार्य भी कोई आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि 'आप सरस्वती-पति हैं' यह स्वयं उन्हीं देवी ने कहा ॥ १६३ ॥ मैं नवद्वीप में बड़ी शुभ लग्न में आया हूँ जो आपके दर्शन पाये, प्रभो! मैं संसार-कूप में डूब रहा हूँ ॥ १६४ ॥ अविद्या जनित वासनाओं के बन्धन में मोहित होकर मैं तत्त्व को भूल कर अपने को ठगता हुआ घूमता फिरता हूँ ॥ १६५ ॥ अकस्मात् ही बड़े भाग्य से आपके दर्शन पाये, अब आप अपनी शुभ दृष्टि द्वारा मेरा उद्धार कीजिये ॥ १६६ ॥ परोपकार करना आपका स्वभाव है, आपके सिवाय शरणागत पर और कोई दयालु नहीं है ॥ १६७ ॥ हे महाशय ! मुझको आप ऐसा उपदेश कीजिये जिससे मेरे चित्त में अब और कोई दुर्वासना न उठे ॥ १६८ ॥ इस प्रकार दिग्विजयी अनेक अनुनय विनय करके अति नम्र होकर स्तुति करने लगा ॥ १६९ ॥ विप्र की चाटुता को सुन कर श्रीगौरसुन्दर हँसकर उससे कुछ बोले ॥ १७० ॥ वह कहने लगे कि–'हे विप्रवर ! सुनो, तुम महा भाग्यवान् हो, जो तुम्हारी जिह्वा पर श्रीसरस्वती का अधिष्ठान है ॥ १७१ ॥ 'दिग्विजय करना विद्या का कार्य नहीं है, विद्या वही है जिसके द्वारा

मनदिया बुझ देह छाड़िञा चलिले । धन वा पौरुष सङ्गे केहो नाहि चले ॥१७३॥
एतेके महान्त सब सर्व्व परिहरि । करेन ईश्वर सेवा दृढ़ चित्त करि ॥१७४॥
एतेके छाडिया विप्र सकल जञ्जाल । श्रीकृष्ण-चरण गिया भजह सकाल ॥१७५॥
जाबत मरण नाहि उपसन्न हय । तावत सेवह कृष्ण करिया निश्चय ॥१७६॥
सेइ से विद्यार फल जानिह निश्चय । कृष्ण पाद पद्मे जदि चित्त वृत्ति हय ॥१७७॥
महा उपदेश एइ कहिल तोमारे । सबे विष्णु-भक्ति सत्य अनन्त-संसारे ॥१७८॥
एत बलि महाप्रभु सन्तोषित हैञा । आलिङ्गन करिलेन विप्रेरे चापिञा ॥१७९॥
पाइया वैकुण्ठ नायकेर आलिङ्गन । विप्रेर हइल सर्व्व बन्ध विमोचन ॥१८०॥
प्रभु बोले 'विप्र ! सब दम्भ परि हरि । भज गिया कृष्ण सर्व्व भूते दया करि ॥१८१॥
जे किछु तोमारे कहिलेन, सरस्वती । से सकल किछु ना कहिबा काहा प्रति ॥१८२॥
वेद गुह्य कहिले हय परमायु क्षय । परलोके तार मन्द जानिह निश्चय ॥१८३॥
पाइया प्रभुर आज्ञा सेइ विप्रवर । प्रभुरे करिञा दण्ड प्रणाम विस्तर ॥१८४॥
पुनः पुन पाद पद्म करिञा बन्दन । महा कृत कृत्य हय चलिला ब्राह्मण ॥१८५॥
प्रभुर आज्ञाय भक्ति विरक्ति विज्ञान । सेइ क्षणे विप्र देहे हइला अधिष्ठान ॥१८६॥
कोथा गेल ब्राह्मणेर दिग्विजयी दम्भ । तृण हैते अधिक हइला विप्र नम्र ॥१८७॥
हस्ती-घोड़ा-दोला-धन जतेक सम्भार । पाँच सात करिया दिलेन सभा कार ॥१८८॥

ईश्वर का भजन हो' ऐसा सभी लोग कहते हैं ॥ १७२ ॥ मन देकर [एकाग्र करके] समझो, जब जीव देह को छोड़कर जाता है, तब उसके साथ धन व पौरुष कुछ भी नहीं चलता ॥१७३॥ इसीलिये सब महत् पुरुष सर्वस्व त्याग कर दृढ़ चित्त से ईश्वर सेवा [भजन] करते हैं ॥१७४॥ अतएव हे विप्र ! तुम भी सब जञ्जाल को छोड़कर शीघ्र ही श्रीकृष्ण-चरण का भजन-सेवा प्रारम्भ कर दो ॥ १७५ ॥ जब तक तुम्हारे निकट मृत्यु नहीं आवे तब तक निश्चित रूप से श्रीकृष्ण भजन करो॥१७६॥तुम निश्चय पूर्वक जानना कि विद्या का फल वही है जिससे श्रीकृष्ण-चरण-कमलों में चित्तवृत्ति हो ॥१७७॥ मैंने यह महा उपदेश तुमसे कहा । इस अनन्त संसार में केवल श्रीविष्णु-भक्ति ही सत्य है ॥१७८॥ इतना कहकर श्रीमहाप्रभु ने प्रसन्न होकर विप्र को छाती से लगाकर आलिङ्गन किया ॥ १७९ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ का आलिङ्गन पाकर विप्र सर्वबन्ध विमोचन हो गये (मुक्त होगये) ॥१८०॥ प्रभु फिर बोले 'हे विप्र ! सब दम्भ परित्याग करके, सब प्राणियों पर दया भाव रखते हुए जाकर श्रीकृष्ण का भजन करो ॥ १८१ ॥ सरस्वती ने जो कुछ तुमसे कहा है वह किसी से कुछ भी मत कहना ॥ १८२ ॥ वेद-गुह्य वस्तु कहने से परमायु क्षय होती है तुम निश्चय मानो, परलोक में भी उसका बुरा होता है ॥१८३॥ वह विप्र प्रभु की इस प्रकार की आज्ञा पाकर प्रभु को अनेक दण्डवत् प्रणामें करके ॥१८४॥ एवं बारम्बार प्रभु के चरण-कमलों की बन्दना करके महा कृतकृत्य होकर वहाँ से चल दिया ॥ १८५ ॥ प्रभु की आज्ञा से उसी क्षण उस विप्र के शरीर में भक्ति, विरक्ति एवं विज्ञान अधिष्ठित हो गये ॥ १८६ ॥ अब उस विप्र का दिग्विजयी होने का दम्भ न मालूम कहाँ चला गया । अब तो वह विप्र तृण से भी अधिक नम्र हो गया ॥ १८७ ॥ हाथी, घोड़ा, पालकी, धन एवं जो कुछ सामान था उसने सब को बाँट दिया (तितर

चलि लेन दिग्विजयी हइआ असङ्ग । हेन मत श्रीगौर सुन्दरेर रङ्ग ।।१८६।।
ताहान कृपार एइ स्वाभाविक धर्म्म । राज्य पद छाड़िकरे भिक्षुकेर कर्म्म ।।१६०।।
कलि जुगे तार साक्षी श्रीदबीर खास । राज्य-सुख छाड़ि जार अरण्ये बिलास ।।१६१।।
जे विभव निमित्त जगते काम्य करे । पाइया ओ कृष्णदासे ताहा परि हरे ।।१६२।।
तावत् राज्यादि पद सुख करि माने । भक्ति-सुख महिमा जावत् नाहि जाने ।।१६३।।
राज्यादि सुखेर कथा से थाकुक दूरे । मोक्ष सुख अल्प माने कृष्ण अनुचरे ।।१६४।।
ईश्वरेर शुभ दृष्टि बिना किछु नहे । अतएव ईश्वर-भजन वेदे कहे ।।१६५।।
हेन मते दिग्विजयी पाइला मोचन । हेन गौर सुन्दरेर अद्भुत कथन ।।१६६।।
दिग्विजयी जिनिलेन श्रीगौर सुन्दरे । शुनि लेन इहा सब नदिया नगरे ।।१६७।।
सकल लोकेर हैल महाश्चर्य ज्ञान । निमाञि पण्डित एत बड़ विद्यावान् ।।१६८।।
दिग्विजयी हारिया चलिला जार ठाञि । एत बड़ पण्डित ना जानि एइ ठाञि ।।१६६।।
सार्थक करेन गर्व्व निमाञि पण्डित । एवे से ताहान विद्या हइल विदित ।।२००।।
केह बोले ए ब्राह्मण यदि न्याय पढ़े । भट्टाचार्य हय तवे कखन ना नड़े ।।२०१।।
केह केहो बोले भाइ ! मिलि सर्व्व जने । ※'वादि-सिंह' वलिया पदवी दिव ताने ।।२०२।।
हेन से ताँहार अति मायार बड़ाञि । एत देखियाओ जानि वारे शक्ति नाञि ।।२०३।।
एइ मत सर्व्व नवद्वीपे सर्व्व जने । प्रचुर सत्कीर्त्ति सभे घोषे सर्व्व क्षणे ।।२०४।।

बितर कर दिया) ।। १८८ ।। दिग्विजयी एकाकी प्रसन्न होकर चल दिया, ऐसे श्रीगौरसुन्दर का [रङ्ग] खेल, क्रीड़ा बन जाता है ।। १८६ ।। आपकी कृपा का यही स्वाभाविक धर्म है कि–[उनका कृपापात्र] राज-पद छोड़कर भिक्षुक बन जाता है ।। १६० ।। इसके साक्षी कलियुग में श्रीदबीर खास [श्रीरूप गोस्वामी] हैं, राज्य सुख को छोड़कर जिनका अरण्य में विलास होता है ।।१६१।। जिस वैभव के लिये संसार इच्छा करता है कृष्ण के दास उसको पाकर भी छोड़ देते हैं ।। १६२ ।। जीव राज्यादि पद को तभी तक सुख रूप मानता है, जब तक कि वह भक्ति-सुख की महिमा से अवगत नहीं होता ।। १६३ ।। राज्यादि सुख की बात भी अलग रहने दो कृष्ण का दास मोक्ष-सुख को भी अल्प समझता है ।। १६४ ।। ईश्वर की शुभ दृष्टि के बिना कुछ नहीं होता है इसीलिये वेद में ईश्वर-भजन करने के लिये कहा गया है ।। १६५ ।। इस प्रकार दिग्विजयी ने बन्ध-मोचन पाया, ऐसी श्रीगौरसुन्दर की अद्भुत कथा है ।। १६६ ।। 'श्रीगौरसुन्दर ने दिग्विजयी को जीत लिया है' यह बात श्रीनवद्वीप-नगर में सबने सुनी ।। १६७ ।। सुन कर सब लोगों को महा आश्चर्य मालूम होने लगा है कि–निमाञि पण्डित इतने बड़े विद्यावान् हैं।।१६८।। जिनसे कि दिग्विजयी हार कर चला गया, हम नहीं जानते थे कि इस जगह इतना बड़ा पण्डित है ।। १६६ ।। निमाञि पण्डित ने गर्व सार्थक कर दिया उसकी विद्या अब विदित हुई है ।।२००।। कोई कहता कि–यह विप्र यदि न्याय पढ़े तो बड़ा भारी 'भट्टाचार्य' हो जाय तब तो कभी भी न डिगे ।। २०१ ।। कोई-कोई कहते कि–भाई ! चलो सब मिलकर उसको 'बादी-सिंह' नाम की पदवी दें ।। २०२ ।। उनकी माया की बड़ाई इतनी अधिक है कि–इतना देखने पर भी आपको

※ 'प्रतिवाद में सिंह सदृश विजय युक्त' ।

नवद्वीप वासीर चरणे नमस्कार । ए सकल लीला देखिबारे शक्ति जाँर ॥२०५॥
जे शुनये गौराङ्गेर दिग्विजयी जय । कोथा ओ ताहार पराभव नाहि हय ॥२०६॥
विद्या रस गौराङ्गेर अति मनोहर । इहा जेइ शुने हयं तार अनुचर ॥२०७॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जान । वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ॥२०८॥

इति श्रीचैतन्यभागवते आदिखण्डे दिग्विजयिविमोचनं नाम
नवमोऽध्यायः ॥६॥

दशमोऽध्यायः

जय जय महाप्रभु श्री गौरसुन्दर । जय नित्यानन्द-प्रिय नित्य-कलेवर ॥१॥
जय जय श्री प्रद्युम्न मिश्रेर जीवन । जय श्री परमानन्द पुरीर प्राणधन ॥२॥
जय जय सर्व्व वैष्णवेर धन प्राण । कृपा दृष्ट्ये कर प्रभु सर्व्व जीवे त्राण ॥३॥
आदि खण्ड कथा भाइ शुन एकमने । विप्ररूपे कृष्ण विहरिलेन जेमने ॥४॥

श्रीराग—देखह कृष्णेर ठाकुराली। कलि जीव उद्धारिते आपने भिखारी [क]

हेन मते वैकुण्ठ नायक सर्व्व क्षण । विद्या रसे विहरेन लइ शिष्य-गण ॥५॥
सर्व्व नवद्वीपे प्रति नगरे नगरे । शिष्य गण सङ्गे विद्या रसे क्रीड़ा करे ॥६॥
सर्व्व नवद्वीपे सर्व्व लोके हैल ध्वनि । 'निमाञि पण्डित अध्यापक शिरोमणि ॥७॥
बड़ बड़ विषयी सकल दोला हैते । नाम्बिया करेन नमस्कार बहुमते ॥८॥

जानने की शक्ति किसी में नहीं ॥ २०३ ॥ इसी प्रकार से सर्व नवद्वीप में सर्व जन सर्व क्षण प्रभु की सत्कीर्त्ति घोषण कर रहे हैं॥२०४॥श्रीनवद्वीप वासियों के चरणोंमें मेरा नमस्कार है जिनमें यह समस्त लीला देखने की शक्ति है।जो श्रीगौराङ्ग देव की 'दिग्विजयी-जय' लीला को सुनेंगे उनकी कहीं भी पराजय नहीं होगी॥२०५॥ श्रीगौराङ्ग देव की विद्या-रस-क्रीड़ा अत्यन्त मनोहर है जो कोई इसको सुनेगा वही उसका अनुचर हो जायगा ॥ २०६ ॥श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को जानकर श्रीवृन्दावनदास दोनों के श्रीचरणों में कुछ लीला गान करते हैं ॥ २०७ ॥

हे महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर ! आपकी जय हो जय हो, श्रीनित्यानन्दचन्द्र के प्रिय एवं नित्य कलेवर ! आपकी जय हो ॥ १ ॥ श्रीप्रद्युम्न मिश्र के जीवन ! आपकी जय हो, जय हो, श्रीपरमानन्दपुरी के प्राण धन ! आपकी जय हो ॥ २ ॥ सर्व वैष्णवों जनों के प्राण-धन आपकी जय हो जय हो, हे प्रभु ! आप अपनी कृपा दृष्टि द्वारा सब जीवों का उद्धार कीजिये ॥३॥ हे भाइयो ! आदिखण्ड की कथा जिसमें कि श्रीकृष्ण ने विप्र रूप से जिस प्रकार विहार किया है, एकाग्र होकर सुनिये ॥ ४॥ श्रीकृष्ण की प्रेम की ठकुराई तो देखिये कि कलि के जीवों के उद्धार के लिये आप भिखारी बने हैं (क) इस प्रकार श्रीवैकुण्ठ-नायक सदैव शिष्यगण साथ लेकर विद्या-रस में विहार करते थे ॥ ५ ॥ आप सर्व नवद्वीप के प्रत्येक मुहल्ले में शिष्य-गण के साथ विद्या-रस में क्रीड़ा करते थे ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण नवद्वीप में सब लोगों के मुख से यह बात सुनने में आती थी कि-'निमाञि पण्डित अध्यापक शिरोमणि हैं' ॥ ७॥ बड़े-बड़े सब ही संसारी पुरुष पालकी से उतर कर

प्रभु देखि मात्र जन्मे सभार साध्वस । नवद्वीपे हेन नाहि जे ना हये वश ॥६॥
नवद्वीपे जारा जत धर्म्म कर्म्म करे । भोज्य वस्त्र अवश्य पाठाये प्रभु-घरे ॥१०॥
प्रभु से परम व्ययी ईश्वर स्वभाव । दुःखितेरे निरवधि देन पुरस्कार ॥११॥
दुःखिते देखिले प्रभु बड़ दया करि । अन्न वस्त्र कपर्द्दक देन गौर हरि ॥१२॥
निरवधि अतिथि आइसे प्रभुघरे । जार जेन जोग्य प्रभु देन सभाकारे ॥१३॥
कोन दिन संन्यासी आइसे दश बीस । सभा निमन्त्रेन प्रभु हइआ हरिष ॥१४॥
सेइ क्षणे कहि पाठयेन जननीरे । कुड़ि संन्यासीर भिक्षा झाट करिबारे । १५॥
घरे किछु नाहि आइ चिन्ते मने मने । कुड़ि संन्यासीर भिक्षा हइब केमने ॥१६॥
चिन्तितेइ हेन नाहि जानि कोन जने । सकल सम्भार आनि देइ सेइ क्षणे ॥१७॥
तबे लक्ष्मी देवी गिया परम सन्तोषे । रान्धेन विशेष करि प्रभुर आदेशे ॥१८॥
संन्यासी गणेरे प्रभु आपने वसिआ । तुष्ट करि पाठायेन भिक्षा कराइआ ॥१६॥
एइ मत जतेक अतिथि आसि हय । सभारेइ जिज्ञासा करेन दयामय ॥२०॥
गृहस्थेर महा प्रभु शिखायेन धर्म्म । अतिथिर सेवा गृहस्थेर मूल कर्म्म ॥२१॥
गृहस्थ हइआ जदि अतिथि ना करे। पशु पक्षी हैते अधम बलि तारे ॥२२॥
जार वा ना थाके किछु पूर्व्वादृष्ट दोषे । सेह तृण जल भूमि दिबेक सन्तोषे ॥२३॥

तथाहि [मनु सहितायाम् ३।१०१]

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सुनृता । एतान्यपि सतां गेहे नो छिद्यन्ते कदाचन ॥ [ख]

आपको अनेक प्रकार से नमस्कार करते थे ॥ ८ ॥ प्रभु के देखते ही मात्र सब को डर पैदा हो जाता था; श्रीनवद्वीप में ऐसा कोई नर-नारी नहीं था जो आपके वश में न हुआ हो ॥ ६ ॥ श्रीनवद्वीप में लोग जो कुछ धर्म्म, कर्म करते थे वे उसमें से भोज्य वस्तुएँ एवं वस्त्र प्रभु के घर अवश्य भेजते थे ॥ १० ॥ प्रभु भी ईश्वर-स्वभाव-वश बड़े व्ययी थे, जो निरन्तर दीन दुखियों को पुरस्कार देते रहते थे ॥११॥ प्रभु श्रीगौर हरि दुखियों को देखकर बड़ी दया करते थे उनको अन्न, वस्त्र एवं कौड़ी-पैसा देते रहते थे ॥ १२ ॥ प्रभु के घर पर निरन्तर अतिथि आते रहते थे, उनके योग्य जो वस्तु होती प्रभु सबको देते थे ॥ १३ ॥ जब किसी दिन दस, बीस संन्यासी आ जाते तो प्रभु प्रसन्नता पूर्वक उन सबका निमन्त्रण करते थे ॥ १४ ॥ आप उसी समय माताजी को बीस संन्यासियों के लिये शीघ्र भोजन तैयार करने के लिये कहला भेजते ॥ १५ ॥ माता जी मन ही मन में विचार करतीं कि–घर में तो कुछ है नहीं, बीस संन्यासियों के लिये रसोई किस प्रकार होगी ? ॥ १६ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते ही न जाने कौन कैसा मनुष्य उसी समय सब सामिग्री लाकर दे जाता था ॥ १७ ॥ तब श्रीलक्ष्मी देवी जाकर परम प्रसन्न होकर प्रभु के आदेश से विशेष रूप से भोजन तैयार करती थीं ॥१८॥ प्रभु स्वयं बैठकर संन्यासियों को भोजन कराकर सन्तुष्ट करके भेजते थे ॥ १६ ॥ इस प्रकार जितने भी अतिथि आ जाते दयामय प्रभु सबको पूछते थे ॥ २० ॥ महाप्रभु ने यह गृहस्थ-धर्म सिखलाया कि-'गृहस्थों का मूल कर्म अतिथि सेवा है' ॥ २१ ॥ गृहस्थी होकर यदि कोई पुरुष अथिति–सत्कार नहीं करता है तो उसको पशु-पक्षी से भी अधम कहना चाहिए ॥ २२ ॥ पूर्व भाग्य-दोष से जिसके यहाँ अगर कुछ न हो वह भी प्रसन्नता-

सत्य वाक्य कहिवेक करि परि हार । तथापि अतिथि शून्य ना हय ताहार॥२४॥
अकैतवे चित्त-सुखे जार जेन शक्ति । ताहा करिलेइ वलि अतिथिर भक्ति ॥२५॥
अतएव अतिथिरे आपने ईश्वरे । जिज्ञासा करेन अति परम सादरे ॥२६॥
सेइ सब भिक्षुक परम भाग्यवान् । लक्ष्मी नारायणे जारे करे अन्न दान ॥२७॥
जार अन्ने ब्रह्मादिर आशा अनुक्षण । हेन से अद्भुत ताहा खाय जे ते जन ॥२८॥
केह केह इथि मध्ये कहे अन्य-कथा । से अन्नेर जोग्य अन्य ना हय सर्व्वथा ॥२९॥
ब्रह्मा-शिव-शुक-व्यास-नारदादि करि । सुर सिद्ध आदि जत स्वच्छन्द विहारी ॥३०॥
लक्ष्मी नारायण अवतीर्ण नवद्वीपे । जानि सभे आइसेन भिक्षुकेर रूपे ॥३१॥
अन्यथा से स्थाने जाइवार शक्ति कार । ब्रह्मा आदि विने किसे अन्न पाय आर ॥३२॥
केह बले दुःखित तारिते अवतार । सर्व्व मते दुःखितेर करेन निस्तार ॥३३॥
ब्रह्मादि देवता तार अङ्ग प्रति अङ्ग । सर्व्वदा ताँहारा ईश्वरेर नित्य सङ्ग ॥३४॥
तथापि प्रतिज्ञा तान एइ अवतारे । ब्रह्मादि दुर्ल्लभो दिव सकल जीवेरे ॥३५॥
अतएव दुःखितेरे ईश्वर आपने । निज गृहे अन्न देन उद्धार कारणे' ॥३६॥
एकेश्वर लक्ष्मी देवी करेन रन्धन । तथापिह परम सन्तोष युक्त मन ॥३७॥
लक्ष्मीर चरित्र देखि शची भाग्यवती । दण्डे दण्डे आनन्द विशेष बाढ़े अति ॥३८॥

पूर्वक आसन, भूमि एवं जल दे ॥ २३ ॥ जैसा कि मनुसंहिता में—[दरिद्रता के कारण अन्न-दान में असमर्थ होने पर अतिथि के लिये] शयन व बैठने के लिये तृणादि का आसन, भूमि व पीने को जल एवं सत्य वचन इन चार वस्तुओं का सज्जनों के घर में कभी अभाव नहीं होता है [ख] विनय पूर्वक सत्य वाक्य कहे तो अतिथि उससे निराश नहीं होता ॥ २४ ॥ निष्कपट भाव से एवं चित्त की प्रसन्नता से जिसकी जैसी शक्ति हो उसके अनुसार करने को अतिथि-सेवा कहते हैं ॥२५॥ अतएव स्वयं ईश्वर अति आदर पूर्वक अथितियों को पूछते थे ॥ २६ ॥ वह सब भिक्षुक परम भाग्यवान् हैं, जिनको श्रीलक्ष्मीनारायण अन्न दान करते हैं॥२७॥ जिसके अन्न के लिये ब्रह्मादि भी सर्वदा आशा रखते हैं, तो इसमें आश्चर्य है कि उसे अति साधारण मनुष्य खा रहे हैं ॥ २८ ॥ कोई-कोई इसके बीच में एक अन्य बात उठाते हैं कि–'उस अन्न के योग्य अन्य मनुष्य कदापि नहीं हो सकते ॥ २९ ॥ ब्रह्मा,शिव, शुक-व्यास एवं नारद आदि से लेकर देवता व सिद्ध पुरुष आदि तक जितने स्वच्छन्द विचरने वाले हैं ॥३०॥ वह सब नवद्वीप में श्रीलक्ष्मी नारायण को अवतीर्ण हुआ जान कर भिक्षुकों के रूप में आते हैं ॥ ३१ ॥ नहीं तो वहाँ जाने की किसकी शक्ति है । ब्रह्मा आदि के बिना अन्य पुरुष किस प्रकार अन्न पा सकेगा ॥ ३२ ॥ कोई-कोई कहते हैं कि–'यह अवतार दुःखियों के निस्सार के लिये हुआ है इसीलिये प्रभु सब प्रकार के दुःखियों का निस्तार करते हैं ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा आदि देवता तो उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग हैं वह तो सर्वदा ईश्वर के नित्य-सङ्गी हैं ॥ ३४ ॥ तथापि आपकी इस अवतार में यह प्रतिज्ञा है कि–'मैं ब्रह्मादि को भी दुर्लभ वस्तु प्राणिमात्र को प्रदान करूँगा' ॥ ३५ ॥ अतएव दुखियों के उद्धार हेतु ईश्वर स्वयं अपने घर पर उन्हें अन्न भोजन प्रदान करते थे ॥ ३६ ॥ श्रीलक्ष्मी देवी अकेली ही रसोई करती हैं तब भी मन परम सन्तोष युक्त रहता है ॥ ३७ ॥ श्रीलक्ष्मी देवी के चरित्र को देखकर भाग्यवती श्रीशची देवी

ऊषः काल हैते लक्ष्मी जत गृह कर्म्म । अपने करेन सब सेइ तान धर्म्म ॥३९॥
देव गृहे करेन से स्वस्तिक मण्डली । शङ्ख चक्र लिखेन हइञा कुतूहली ॥४०॥
गन्ध पुष्प धूप दीप सुवासित जल । ईश्वर पूजार सज्ज करेन सकल ॥४१॥
निरवधि तुलसीर करेन सेवन । ततोधिक शचीर सेवाय तान मन ॥४२॥
लक्ष्मीर चरित्र देखि श्री गौरसुन्दर । मुखे किछु ना बोलेन सन्तोष अन्तर ॥४३॥
कोन दिन लइ लक्ष्मी प्रभुर चरण । वसिया थाकेन पदमूले अनुक्षण ॥४४
अद्भुत देखेन शची पुत्र पद तले । महा ज्योतिर्म्मय अग्नि पुञ्ज शिखा ज्वले । ४५॥
कोन दिन महापद्म गन्ध शची आइ । घरे द्वारे सर्व्वत्र पायेन अन्त नाञि ॥४६॥
हेन मते लक्ष्मी नारायण नवद्वीपे । केह नाहि चिनेन आछेन गूढ़ रूपे ॥४७॥
तवे कथो दिने इच्छामय भगवान् । वङ्ग देश देखिते हइल इच्छा तान ॥४८॥
तवे प्रभु जननीरे वलिलेन आनि । कथो दिन प्रवास करिव माता आमि ॥४९॥
लक्ष्मी प्रति वलिलेन श्री गौरसुन्दर । आइर सेवन करिवारे निरन्तर ॥५०॥
तवे प्रभु कथो आप्त शिष्यवर्ग लय्या । चलिलेन बङ्ग देशे हरषित हैया ॥५१॥
ज़े जे जन देखे प्रभु चलिया आसिते । सेइ आर दृष्टि नाहि पारे सम्वारिते ॥५२॥
स्त्री लोके देखिया वले 'हेन पुत्र जार । धन्य तार जन्म, तार पाये नमस्कार ॥५३॥
जेवा भाग्यवती हेन पाइलेन पति । स्त्री जन्म सार्थक करिलेन सेइ सती' ॥५४॥

का पल-पल में अति विशेष आनन्द बढ़ता था ॥३८॥ श्रीलक्ष्मी देवी ऊषा काल से सर्व-गृह-कार्य स्वयं करती थी यही उसका धर्म था ॥ ३९ ॥ वह श्रीविष्णु मन्दिर में स्वस्तिक मण्डली रचना करती थी एवं आनन्द-युक्त होकर शङ्ख, चक्र आदि अङ्कित करती थी ॥ ४० ॥ और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, सुवासित जल अर्थात् ईश्वर-पूजा की समग्र सामिग्री प्रस्तुत कर देती थी ॥ ४१ ॥ निरन्तर तुलसी-सेवा करती रहती थीं, उससे भी अधिक श्रीशाची माता की सेवा में उसका मन था ॥ ४२ ॥ श्रीलक्ष्मी देवी के चरित्र को देखकर श्रीगौरसुन्दर मुख से कुछ कहते नहीं थे, परन्तु मन में बड़े प्रसन्न थे ॥ ४३ ॥ किसी दिन लक्ष्मीजी बहुत देर तक लगातार प्रभु के श्रीचरणों को निज-गोदी में धारण करके प्रभु के पद-मूल-प्रदेश में बैठी रहती थी ॥ ४४ ॥ किसी दिन श्रीशाची माता पुत्र के पद तल प्रदेश में एक आश्चर्यजनक दृश्य देखती थी कि—वहाँ महा ज्योतिर्मय अग्नि-पुञ्ज की शिखा ज्वाज्वल्यमान है ॥ ४५ ॥ किसी दिन श्रीशाची माता घर द्वार सर्वत्र निरन्तर महा-पद्म-गन्ध प्राप्त करती थी ॥४६॥ श्रीनवद्वीप में श्रीलक्ष्मीनारायण गुप्त रूप से विराजमान थे, जिन्हें पहिचानता न था ॥ ४७ ॥ कुछ दिन पश्चात् इच्छामय भगवान् की वङ्गदेश देखने की इच्छा हुई ॥ ४८ ॥ तब प्रभु माताजी को बुलाकर कहने लगे कि—माता जी ! मैं कुछ दिन के लिये प्रवास (परदेश-गमन) करूँगा ॥४९॥ पश्चात् श्रीगौरसुन्दर ने श्रीलक्ष्मी देवी को 'माताजी की सेवा निरन्तर करने के लिये' कहते ॥ ५० ॥ तब प्रभु कुछ आत्मीय शिष्य वर्ग लेकर प्रसन्न होकर बङ्गदेश को प्रयाण किया ॥ ५१ ॥ जो भी मनुष्य प्रभु को आते हुए देखते थे फिर इनका अपनी दृष्टि पर काबू नहीं रहता था ॥ ५२ ॥ स्त्रीगण प्रभु को देखकर कहती थीं कि—'जिनके इन जैसे पुत्र हैं उनका जन्म धन्य है; उनके चरणों में हमारा नमस्कार है' ॥ ५३ ॥ 'एवं जिस भाग्य-

एइ मत पथे जत देखे स्त्री पुरुषे । पुनः पुन सभे व्याख्या करेन सन्तोषे ॥५५॥
वेदेओ करेन काम्य जे प्रभु देखिते । जे ते जने हेन प्रभु देखे कृपा हैते ॥५६॥
हेन मते श्री गौरसुन्दर धीरे धीरे । कथो दिने आइलेन पद्मावती तीरे ॥५७॥
पद्मावती नदीर तरङ्ग शोभा अति । उत्तम पुलीन-बन जल बहु तथि ॥५८॥
देखि पद्मावती प्रभु महा कुतूहले । गण सह स्नान करिलेन तान जले ॥५६॥
भाग्यवती पद्मावती सेइदिन हैते । जोग्य हइला सर्व्व लोक पवित्र करिते ॥६०॥
पद्मावती-नदी बड़ देखिते सुन्दर । तरङ्ग पुलिन स्रोत अति मनोहर ॥६१॥
पद्मावती देखि प्रभु परम हरिषे । सेइ स्थाने रहिलेन तान भाग्य वशे ॥६२॥
जेन क्रीड़ा करिलेन जाह्नवीर जले । शिष्य गण सहिते परम कुतूहले ॥६३॥
सेइ भाग्य एवे पाइलेन पद्मावती । प्रति दिन प्रभु जल क्रीड़ा करे तथि ॥६४॥
बङ्ग देशे महाप्रभु हइला प्रवेश । अद्यापिह सेइ भाग्ये धन्य बङ्ग देश ॥६५॥
पद्मावती तीरे रहिलेन गौर चन्द्र । शुनि सर्व्व लोक बड़ हइल आनन्द ॥६६॥
निमाञि पण्डित अध्यापक शिरो मणि । आसिया आछेन सर्व्व दिके हैल ध्वनि ॥६७॥
भाग्यवन्त जत आछे ब्राह्मण सज्जन । उपायन हस्ते आइलेन सेइ क्षण ॥६८॥
सभे आसि प्रभुरे करिया नमस्कार । वलिते लागिला अति करि परिहार ॥६९॥
'आमा सभाकार महा-भाग्योदय हैते । तोमार विजय आसि हैल ए-देशेते ॥७०॥

वती ने इन्हें पति रूप से प्राप्त किया है उस सती ने अपने स्त्री जन्म को सार्थक कर लिया' ॥५४॥ इसी प्रकार से मार्ग में जितने स्त्री-पुरुष प्रभु को देखते थे सभी प्रसन्नता पूर्वक बारम्बार उनके गुण बखान करते थे ॥ ५५ ॥ वेद भी जिन प्रभु के देखने की कामना करते हैं उन्हीं प्रभु को उनकी कृपा से अति साधारण मनुष्य भी देख रहे थे ॥ ५६ ॥ इस प्रकार श्रीगौर सुन्दर धीरे-धीरे कुछ दिन में पद्मावली के तट पर पहुँचे ॥ ५७ ॥ पद्मावती नदी की तरङ्गों की अति मनोहर शोभा,श्रीतट पर सुन्दर बन और नदी में अथाह जल था ॥ ५८ ॥ पद्मावती को देखकर प्रभु ने परम आनन्द पूर्वक शिष्यगण सहित उसके जल में स्नान किया ॥ ५६ ॥ उसी दिन से भाग्यवती श्रीपद्मावती सब लोकों को पवित्र करने के योग्य हो गईं ॥ ६० ॥ श्रीपद्मावती नदी देखने में बड़ी सुन्दर थी जिसकी तरङ्ग तट एवं स्रोत सभी अति मनोहर थे ॥६१॥ पद्मावती को देखकर प्रभु परम प्रसन्नता पूर्वक उसके शुभ भाग्य के कारण वहीं ठहर गये ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार प्रभु ने आनन्द पूर्वक शिष्य गण सहित श्रीगङ्गाजी के जल में जलक्रीड़ा की थीं ॥ ६३ ॥ वही भाग्य अब पद्मावती ने भी प्राप्त किया क्योंकि प्रभु प्रति दिन वहाँ जल-क्रीड़ा करने लगे ॥ ६४ ॥ श्रीमहाप्रभु जी का बङ्गदेश में प्रवेश हुआ उसी सौभाग्य से आज भी बङ्गदेश धन्यवाद के योग्य है ॥ ६५ ॥ श्रीगौरचन्द्र पद्मावती के तट पर ठहरे हुए हैं यह सुनकर सब लोगों को बड़ा आनन्द हुआ ॥ ६६ ॥ चारों ओर यह ध्वनि फैल गई कि–'अध्यापक-शिरोमणि श्रीनिमाञि पण्डित आए हुए हैं' ॥ ६७ ॥ वहाँ जितने भाग्यवान् सज्जन थे वह सब तत्काल हाथों में भेंट ले लेकर उपस्थित हुए ॥ ६८ ॥ और सब ने प्रभु को नमस्कार करके अत्यन्त विनम्र होकर बोले–॥ ६६ ॥ 'हे द्विज-मणि ! हम सब लोगों के भाग्य उदय होने से ही आप इस देश में पधारे हैं ॥ ७० ॥ हम अर्थ सम्पत्ति

अर्थ वित्त लइ सर्व्व गोष्ठीर सहिते । जार स्थाने नवद्वीपे जाइब पढ़िते ॥७१॥
हेन निधि अनायासे आपने ईश्वरे । आनिञा दिलेन आमा सभार दुयारे ॥७२॥
मूर्त्तिमन्त तुमि बृहस्पति अवतार । तोमार सदृश अध्यापक नाहि आर ॥७३॥
बृहस्पति दृष्टान्त तोमार जोग्य नहे । ईश्वरेर अंश तुमि, हेन मने लये ॥७४॥
अन्यथा ईश्वर बिने एमन पाण्डित्य । अन्येर ना हय कभो लये चित्त-वृत्त ॥७५॥
सबे एक निवेदन करिये तोमारे । विद्या-दान कर किछु आमा सभा कारे ॥७६॥
उद्देशे आमरा सभे तोमार टिप्पणी । लइ पढ़ि पढ़ाइ शुनह द्विज मणि ॥७७॥
साक्षाते ओ शिष्य कर आमा सभा कारे । थाकुक तोमार कीर्त्ति सकल संसारे ॥७८॥
हासि प्रभु सभा प्रति करिया आश्वास । कथो-दिन वङ्ग देशे करिला विलास ॥७९॥
सेइ भाग्ये अद्यापिह सर्व्व बङ्ग देशे । श्रीचैतन्य-सङ्कीर्त्तन करे स्त्री पुरुषे ॥८०॥
मध्ये मध्ये मात्र कथो पापीगण गिया । लोक नष्ट करे आपनारे लओयाइया ॥८१॥
उदर भरण लागि पापिष्ठ सकले । 'रघुनाथ' करि आपनारे केह बोले ॥८२॥
कोन पापी सब छाड़ि कृष्ण सकीर्त्तन । आपनारे गाओयाय कत बा भूत गण ॥८३॥
देखितेछि दिने तीन अवस्था जाहार । कोन लाजे आपनारे गाओयाय से छार ॥८४॥
राढ़े आर एक महा ब्रह्म दैत्य आछे । अन्तरे राक्षस, विप्र काच मात्र काछे ॥८५॥
से पापिष्ठ आपनारे बोलाये गोपाल । अतएव तारे सभे बोलेन शियाल ॥८६॥*
श्रीचैतन्यचन्द्र बिने अन्येरे ईश्वर । जे अधमे बोले सेइ छार शोच्य तर ॥८७॥

लेकर अपनी समस्त गोष्ठी सहित नवद्वीप में जिसके पास पढ़ने के लिये जाते ॥ ७१ ॥ उस निधि को अनायास ही स्वयं ईश्वर हम सबके द्वार पर ही ले आये ॥ ७२ ॥ आप बृहस्पति जी के मूर्त्तिमन्त अवतार हो, आपके समान अन्य कोई अध्यापक नहीं है ॥ ७३ ॥ बृहस्पति का दृष्टान्त आपके योग्य नहीं है, हमारे मन में ऐसा प्रतीत होता है कि—'आप ईश्वर के अंश हैं' नहीं तो ईश्वर बिना ऐसा पाण्डित्य अन्य किसी में कभी नहीं होता है यह बात हमारी चित्त-वृत्त में जँचती है ॥ ७५ ॥ हम केवल एक निवेदन आपसे करते हैं कि—आप हम सबको कुछ विद्या-दान दीजिये ॥ ७६ ॥ हे द्विजमणि ! सुनिये इसी उद्देश्य से हम सबने आपकी रचित टिप्पणी तो पढ़ पढ़ा ली है ॥ ७७ ॥ 'अब साक्षात में भी हम सबको शिष्य बना लीजिये, समस्त संसार में आपका यश छा जायेगा' ॥ ७८ ॥ हँसकर प्रभु ने सबको आश्वासन दिया तथा कुछ दिन बङ्गदेश में विलास करने लगे ॥७९। उसी भाग्य से आज कल भी सर्व बङ्गदेश में स्त्री-पुरुष श्रीचैतन्य-सङ्कीर्त्तन करते हैं ॥८०॥ परन्तु बीच-बीच में कुछ पापीगण जाकर अपने को पुजवाकर लोक नष्ट करते हैं ॥ ८१ ॥ उन सब पापियों में से उदर भरने के लिये कोई अपने को 'रघुनाथ' कहकर बोलता ॥ ८२ ॥ कोई पापी कृष्ण सङ्कीर्त्तन आदि को छोड़कर अपने को एवं कितने ही भूतों को गवाता (गुण-गान कराता) ॥ ८३ ॥ हम जिसकी दिन में तीन अवस्था देखते हैं फिर वह तुच्छ किस लज्जा के आधार पर अपने को गवाता है ॥ ८४ ॥ राढ़ देश में एक और महा ब्रह्म दैत्य है जो अन्तर में राक्षस है विप्र का तो वेश मात्र ही पहने हुए है ॥ ८५ ॥ वह पापी

*श्रीभागवत के शृगाल वासुदेव के चरित्र के अनुसार इनका चरित्र देखकर लोग इसको कहते थे । (भा० १०।६६अ.)

दुइ बाहु तुलि एइ वलि सत्य करि । अनन्त ब्रह्माण्ड नाथ श्रीचैतन्य हरि ॥८८॥
जार नाम स्मरणे समस्त वन्ध क्षय । जार दास स्मरणेओ सर्व्वत्रे विजय । ८६॥
सकल भुवने देख जाँर यश गाय । विपथ छाड़िया भज हेन प्रभु पाय ॥६०॥
हेन मते श्रीवैकुण्ठ नाथ गौरचन्द्र । विद्या रसे करे प्रभु वङ्ग देशे रङ्ग ॥६१॥
महा प्रभु विद्या गोष्ठी करि लेन वङ्गे । पद्मावती देखि प्रभु भूलिलेन रङ्गे ॥६२॥
सहस्र सहस्र शिष्य हइल तथाइ । हेन नाहि जानि के पढ़ये कोन ठाँइ ॥६३॥
शुनि सब वङ्ग देशी आइसे धाइया । निमाञि-पण्डित स्थाने पढ़िबाङ गिया ॥६४॥
हेन कृपा दृष्ट्ये प्रभु करेन व्याख्यान । दुइ मासे सभेइ हइला विद्यावान् ॥६५॥
कत शत शत जन पदवी लभिया । घरे जाय आर कत आइसे शुनिञा ॥६६॥
एइ मते विद्या रसे वैकुण्ठेर पति । विद्या-रसे वङ्ग देशे करिलेन स्थिति ॥६७॥
एथा नवद्वीपे लक्ष्मी प्रभुर विरहे । अन्तरे दुःखिना देबी कारे नाहि कहे ॥६८॥
निरवधि करे देवी आइर सेवन । प्रभु गियाछेन हैते नाहिक भोजन ॥६६॥
नाम मात्र अन्न लक्ष्मी परिग्रह करे । ईश्वर विच्छेदे बड़ दुःखिता अन्तरे ॥१००॥
एकेश्वर सर्व्व रात्रि करेन क्रन्दन । चित्ते स्वास्थ्य नाहि दुःख पाय अनुक्षण ॥१०१॥
ईश्वर विच्छेद लक्ष्मी ना पारि सहिते । इच्छा करिलेन प्रभुर समीपे जाइते ॥१०२॥

अपने को 'गोपाल' कहलाता है अतएव सब लोग उसको शृगाल कहते हैं ॥ ८६ ॥ जो अधम श्रीचैतन्यचन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी को ईश्वर कहता है वही तुच्छ शोच्यतर पुरुष है ॥ ८७ ॥ मैं दोनों भुजा उठाकर यह कहता हूँ कि-श्रीचैतन्यहरि अनन्त ब्रह्माण्ड के नाथ हैं ॥ ८८ ॥ जिनके 'नाम' स्मरण से सर्व बन्धन क्षय हो जाते हैं जिसके दासों के स्मरण से भी सर्वत्र विजय प्राप्त होतो है ॥ ८६ ॥ एवं सभी भुवनों को जिनका यश-गान करते हुए देखते हो, हे भाइयो! विपथ को त्याग कर उन प्रभु के चरणों का भजन करो ॥ ६० ॥ इस प्रकार वैकुण्ठनाथ श्रीगौरचन्द्र प्रभु वङ्गदेश में विद्या-रस द्वारा आनन्द [रङ्ग] कर रहे थे ॥ ६१ ॥ श्रीमहा-प्रभु जी ने वङ्ग देश में अपनी विद्या-गोष्ठी बना ली आप श्रीपद्मावती नदी को देखकर आनन्द में भूले हुए थे ॥ ६२ ॥ वहीं पर आपके सहस्रों शिष्य हो गये। यह भी नहीं जान पड़ता था कि-कौन किस जगह पढ़ रहा है ॥ ६३ ॥ प्रभु की यह सब कीर्त्ति एवं उनका आगमन सुन कर सब वङ्ग-देशी यह विचार करके कि-'चलो-चलें, निमाञि पण्डित के पास पढ़ेंगे' दौड़ कर आते थे ॥ ६४ ॥ प्रभु ऐसी कृपा दृष्टि से व्याख्या करते थे कि-'वह सब दो महीने में ही विद्वान् हो गये ॥ ६५ ॥ कितने ही सैकड़ों मनुष्य पदवियाँ उपाधि [डिग्रियाँ] प्राप्त करके घर चले जाते थे और कितने ही सुनकर आते थे ॥ ६६ ॥ इस प्रकार वैकुण्ठ पति श्रीगौरचन्द्र विद्या-रस में मजे वङ्ग देश में ठहरे हुए थे ॥ ६७ ॥ इधर श्रीनवद्वीप में श्रीलक्ष्मी देवी प्रभु के विरह से अन्तर में दुखित थी वह यह बात किसी से प्रकट नहीं करती थीं ॥ ६८ ॥ वह देवी निरन्तर माता जी की सेवा तो करती थी, परन्तु जब से प्रभु गये तब से भोजन छोड़ दिया था ॥ ६६ ॥ लक्ष्मीजी नाम-मात्र को अन्न ग्रहण करती थी वह प्रभु के विच्छेद से अन्तर में बड़ी दुःखित रहती थी ॥ १०० ॥ अकेली रात्रि भर क्रन्दन करती थी, चित्त में सुख नहीं था बरन् अनुक्षण दुःख पाती थी ॥ १०१ ॥ लक्ष्मी जी प्रभु का विरह सह नहीं सकीं

निज प्रति कृति देह थुइ पृथिवी ते। चलिलेन प्रभु पाशे अति अलक्षिते× ॥१०३॥
प्रभु पाद पद्म लक्ष्मी करिया हृदय। ध्याने गङ्गा तीरे देवी करिला विजय ॥१०४॥
ए खाने शचीर दुःख ना पारि कहते। काष्ठ पाषाण द्रवे क्रन्दन शुनिते ॥१०५॥
से सकल दुःख रस ना पारि वर्णिते। अतएव किछु कहिलाङ सूत्र मते ॥१०६॥
आप्त गण शुनि बड़ हइला दुःखित। सभे आसि कार्य करिलेन यथोचित ॥१०७॥
ईश्वर थाकिया कथो दिन बङ्ग देशे। आसिते हैल इच्छा निज गृह वासे ॥१०८॥
तवे प्रभु गृहे आसिबेन हेन शुनि। जार जेन शक्ति सभे दिला धन आनि ॥१०९॥
सुवर्ण-रजत-जल-पात्र, दिव्यासन। सुरङ्ग-कम्बल, बहु प्रकार वसन ॥११०॥
उत्तम पदार्थ जत छिल जार घरे। सभेइ सन्तोषे आनि दिलेन प्रभुरे ॥१११॥
प्रभुओ सभार प्रति कृपा दृष्टि करि। परिग्रह करिलेन गौराङ्ग श्रीहरि ॥११२॥
सन्तोषे सभार स्थाने हइया विदाय। निज-गृहे चलिलेन श्रीगौराङ्ग राय ॥११३॥
अनेक पढुया सब प्रभुर सहिते। चलिलेन प्रभु स्थाने तथाइ पढ़िते ॥११४॥

※ अथ केवल मुद्रित पुस्तक में अधिक अंश पाठ है ※

हेन समये एक सुकृति-ब्राह्मण। अति सार-ग्राही नाम मिश्र-तपन ॥११५॥
साध्य साधन तत्त्व निरूपिते नारे। हेन जन नाहि तथा जिज्ञासिबे तारे ॥११६॥
निज इष्ट मन्त्र सदा जपे रात्रि दिने। सोयास्ति नाहिक चित्ते साधनाङ्ग बिने ॥११७॥

तथा प्रभु के समीप जाने की इच्छा करने लगीं ॥ १०२ ॥ अतएव निज स्थूल देह पृथ्वी पर छोड़कर अति अलक्षित रूप से प्रभु के पास पहुँचीं ॥ १०३ ॥ लक्ष्मी जी ने प्रभु के चरण-कमलों को हृदय में धारण करके ध्यान योग से श्रीपद्मावती के तट पर प्रभु के समीप विजय प्राप्त की ॥ १०४ ॥ यहाँ पर मैं श्रीशची देवी का दुःख वर्णन नहीं कर सकता उनके क्रन्दन को सुन कर काष्ट एवं पाषाण भी द्रवित होते थे ॥ १०५ ॥ मेरी सामर्थ्य नहीं है कि-मैं उस सब दुःख-रस का वर्णन कर सकूँ अतएव संक्षेप से कुछ कहा है ॥ १०६ ॥ लक्ष्मी की विजय(गमन)सुनकर आत्मीय जन बड़े दुःखित हुए हैं और वह सब आकर समयानुयायी यथोचित कार्य करने लगे ॥ १०७ ॥ प्रभु कुछ दिन वङ्ग देश में रहकर अपने घर की ओर आने की इच्छा करने लगे ॥१०८॥ जब बङ्ग निवासियों ने यह सुना कि-प्रभु अब अपने घर को जाँयगे तब वह सब निज-निज शक्ति के अनुसार धन वस्त्र आदि ला लाकर प्रभु को समर्पण करने लगे ॥ १०९ ॥ स्वर्ण एवं चाँदी के जल के बर्तन, दिव्यासन, सुन्दर रंगों वाले कम्बल एवं बहुत प्रकार के सुन्दर वस्त्र अर्थात् जिसके घर में जो-जो उत्तम वस्तुएँ थीं वह सब प्रसन्नता पूर्वक ला-लाकर प्रभु की भेंट कीं ॥ ११०-१११ ॥ प्रभु श्रीगौराङ्ग हरि ने भी सबके प्रति कृपा-दृष्टि पूर्वक वह सब वस्तुएँ ग्रहण कीं ॥ ११२ ॥ पश्चात् प्रसन्नता पूर्वक सब से बिदा होकर श्रीगौराङ्ग राय अपने घर के लिये प्रस्थान किया ॥ ११३ ॥ प्रभु के साथ ही अनेक विद्यार्थी भी वहीं प्रभु के पास ही पढ़ने के लिये चल दिये ॥ ११४ ॥ उसी समय अति सार-ग्राही तपन 'मिश्र' नाम के एक सुकृति ब्राह्मण जो स्वयं साध्य साधन के तत्त्व का निर्णय नहीं कर पाता था एवं उसके निकट ऐसा कोई पुरुष भी नहीं था जिससे

× श्रीलक्ष्मी देवी नर-लीला के व्यक्तित्व के कारण अपनी अप्राकृत देह के अनुरूप एक स्थूल देह छोड़ गईं।

भाविते चिन्तिते एक दिन रात्रि शेषे । सुस्वप्न देखिल द्विज निज भाग्य-वशे ॥११८॥
सम्मुखे आसिया एकदेव मूर्त्तिमान् । ब्राह्मणेरे कहे गुप्त चरित्र आख्यान ॥११६॥
"शुन शुन ओहे द्विज परम सुधीर । चिन्ता ना करिह आर, मन कर स्थिर ॥१२०॥
निमाञि पण्डित पास करह गमन । तिहों कहिवेन तोमा साध्य-साधन ॥१२१॥
मनुष्य नहेन तिहों नर नारायण । नर रूपे लीला ताँर जगत्-कारण ॥१२२॥
वेद गोप्य ए सकल ना कहिवे कारे । कहिले पाइवे दुःख जन्म जन्मान्तरे' ॥१२३॥
अन्तर्द्धान हैला देव ब्राह्मण जागिला । सुस्वप्न देखिया विप्र कान्दिते लागिला ॥१२४॥
अहो भाग्य मानि पुन चेतन पाइया । सेइक्षणे चलिलेन प्रभु धेयाइया ॥१२५॥
वसिया आछेन जथा श्रीगौरसुन्दर । शिष्य गण सहित परम मनोहर ॥१२६॥
आसिया पड़िला विप्र प्रभुर चरणे । जोड़ हस्ते दाण्डाइल सभार सदने ॥१२७॥
विप्र बोले 'आमि अति दीन हीन जन। कृपा दृष्ट्ये कर मोर संसार मोचन ॥१२८॥
साध्य-साधन तत्त्व किछुइ ना जानि । कृपा करि आमा प्रति कहिवा आपनि ॥१२६॥
विषयादि-सुख मोर चित्ते नाहि लय । किसे जुड़ाइवे प्राण कह दयामय' ॥१३०॥
प्रभु बोले 'विप्र तोमार भाग्येर कि कथा । कृष्ण भजिवारे चाह सेइ से सर्व्वथा ॥१३१॥
ईश्वर भजन अति दुर्गम अपार । जुगधर्म्म स्थापियाछे करि परचार ॥१३२॥
चारि जुगे चारि धर्म्म राखि क्षिति तले । स्वधर्म्म स्थापिया प्रभु निज स्थाने चले ॥१३३॥

पूछें ॥ ११५-११६ ॥ जो रात्रि-दिन निरन्तर निज इष्ट-मन्त्र का जप करना था परन्तु उनके चित्त में साधन-अङ्ग जाने बिना शान्ति नहीं आती थी ॥ ११७ ॥ सोच-विचार करते-करते एक दिन शेष रात्रि में उन्होंने निज सौभाग्य से एक स्वप्न देखा कि– ॥ ११८ ॥ एक मूर्त्तिमान् देव सामने आकर उनसे एक गुप्त चरित्र का वर्णन करता हुआ कहने लगा कि– ॥ ११६ ॥ 'हे परम सुधीर द्विज ! सुनो, सुनो, अब तुम चिन्ता मत करो, मन को स्थिर करो ॥१२०॥ तुम निमाञि पण्डित के पास जाओ वह तुम्हारे प्रति साध्य-साधन कहेंगे ॥१२१॥ वह मनुष्य नहीं हैं, वह नर-नारायण भगवान् हैं, उनकी नर रूप में लीला, जगत् के उद्धार हेतु है ॥ १२२ ॥ यह सब वेद गोप्य बात है इसे किसी से मत कहना, इसके कहने से तुम जन्म-जन्मान्तर में दुःख पाओगे ॥ १२३ ॥ इतना कह कर देव अन्तर्धान होगये और ब्राह्मण जग पड़े । वह विप्र सुस्वप्न देखकर क्रन्दन करने लगा ॥ १२४ ॥ फिर चेतना पाकर अपने अहो भाग्य मान कर उसी क्षण प्रभु का ध्यान करता हुआ चल दिया ॥ १२५ ॥ जहाँ पर श्रीगौर सुन्दर शिष्य गण के साथ परम मनोहर रूप से बैठे हुए थे ॥१२६॥ आकर विप्र प्रभु के चरणों में पड़ गया और सभा को दण्डवत् करके हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया ॥ १२७ ॥ ब्राह्मण प्रार्थना करने लगा कि–'हे प्रभो ! मैं अति दीन जन हूँ, कृपादृष्टि द्वारा मेरा संसार मोचन करो ॥ १२८ ॥ मैं साध्य-साधन का कुछ भी तत्त्व नहीं जानता हूँ आप कृपा करके मुझसे कहें ॥ १२६ ॥ विषयादि सुख मुझे अच्छे नहीं लगते, हे दयामय ! कहिये, मेरे प्राण कैसे शान्ति पावें ? ॥ १३० ॥ प्रभु बोले 'विप्र ! तुम्हारे भाग्य का क्या कहना है जो इस प्रकार तुम निरन्तर श्रीकृष्णचन्द्र का भजन करना चाहते हो ॥ १३१ ॥ ईश्वर-भजन अति दुर्गम एवं अपार है और वे प्रचार करके युग के अनुसार धर्म स्थापन करते हैं ॥१३२॥ चारों युगों के

तथाहि गीतायाम् ४।८ भगवद्वाक्यम्

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥क॥

तथाहि [भा० १०।१८।९] श्रीनन्दं प्रति श्रीगर्ग वाक्यं

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनू: । शुक्लो रक्त स्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गत: ॥ख॥

कलिजुग धर्म्म हय नाम-सङ्कीर्त्तन । चारिजुगे चारि धर्म्म जीवेर कारण ॥१३४॥

तथाहि [भा० १२।३।४३]

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखै: । द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात् ॥ग॥

अतएव कलिजुगे नाम-जज्ञ सार । आर कोन कर्म्म कैले नाहि हय पार ॥१३५॥

रात्रि दिन नाम लय खाइते शुइते । ताहार महिमा वेदे नाहि पारे दिते ॥१३६॥

शुन मिश्र कलिजुगे नाहि तप जज्ञ । जेइ जन भजे कृष्ण तार महा भाग्य ॥१३७॥

अतएव गृहे तुमि कृष्ण भज गिया । कुटि नाटि परिहरि एकान्त हइया ॥१३८।

साध्य-साधन तत्त्व जे किछु सकल । हरि नाम सङ्कीर्त्तने मिलिवे सकल ॥१३९॥

तथाहि हरिभक्तिविलासधृतवृहन्नारदीयवचनम्–११।२४२

हरे र्नाम हरे र्नाम हरेर्नामैव केवलम् । कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥घ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥१४०॥

एइश्लोक नाम वलि लय महामन्त्र । षोल नाम वत्रिस अक्षर एइ तन्त्र ॥१४१॥

लिये चारों प्रकार के धर्मों को संसार में प्रकाश करके तथा अपने निज धर्म का [जिस धर्म-स्थापन के लिये आप अवतार लेते हैं उसका] स्थापन करके प्रभु अपने लोक को चले जाते हैं ॥ १३३ ॥ जैसा कि–श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है—साधुगण के परित्राण, असाधु-गण के विनाश एवं धर्म-संस्थापन के लिये मैं प्रति युग में जगत में अपने को आविर्भूत करता हूँ ॥ क ॥ एवं जैसा कि श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध अठारहवें अध्याय के नवें श्लोक में श्रीनन्दजी के प्रति श्रीगर्ग जी का वचन है कि–हे नन्द ! प्रति युग में देह को धारण करते हुए इनके पूर्व-काल में शुक्ल, रक्त तथा पीत तीन वर्ण हो चुके हैं अब यह तुम्हारे घर में कृष्णता को धारण कर आविर्भूत हुए हैं ॥ ख ॥ जीव उद्धार के हेतु चार युगों के पृथक् २ चार धर्म हैं, उनमें कलियुग का धर्म है 'श्रीहरि-नाम सङ्कीर्त्तन' ॥ १३४ ॥ जैसा कि श्रीमद्भागवत् द्वादश स्कन्ध तृतीय अध्याय के ४३वें श्लोक में लिखा है कि–सत्य युग में भगवान् विष्णु के ध्यान-परायण,त्रेत्रा युग में यज्ञादि द्वारा यजन-परायण एवं द्वापर में भगवत्-सेवा-परायण मनुष्यों को जो फल मिलता है वह फल कलियुग में एक मात्र भगवत्-कीर्त्तन करने से ही मिल जाता है ॥ ग ॥ अतएव कलियुग में श्रीहरि नाम-यज्ञ ही सार है, इस युग में अन्य धर्म पालन करने से कोई पार नहीं होता है॥१३५॥जो खाते,सोते रात्रि-दिन नाम लेता उसकी महिमा वेद भी वर्णन नहीं कर सकते हैं ॥ १३५ ॥ मिश्र जी ! सुनो, तप एवं यज्ञ कलियुग में नहीं हैं इस काल में तो जो जन कृष्ण-भजन करता है उसी का महाभाग्य है ॥ १३७ ॥ अतएव तुम घर जाकर छल-कपट त्याग कर, एकान्त होकर श्रीकृष्ण का भजन करो ॥ १३८ ॥ साध्य-साधन का जो कुछ सम्पूर्ण तत्त्व है, वह सब तुमको श्रीहरि नाम सङ्कीर्त्तन से ही मिल जायगा ॥ १३९ ॥ जैसा कि श्रीनारदपुराण में लिखा है–'कलियुग में श्रीहरि नाम ही, श्रीहरि नाम ही, श्रीहरि नाम ही एक मात्र उपाय है, श्रीहरि नाम को छोड़कर जीवों के लिये **और दूसरी गति नहीं है, नहीं है,** निश्चित रूप से नहीं है ॥ घ ॥ 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे,

साधिते साधिते जबे प्रेमाङ्कुर हवे । साध्य-साधन तत्त्व जानिबा से तबे ।।१४२।।
प्रभुर श्री मुखे शिक्षा शुनि द्विजवर । पुनः पुन प्रणाम करये बहुतर ।।१४३।।
मिश्र कहे 'आज्ञा हय आमि सङ्गे आसि' । प्रभु कहे 'तुमि शीघ्र जाओ वाराणसी ।।१४४।।
तथाइ आमार सङ्गे हइब मिलन । कहिब सकल तत्त्व साध्य ओ साधन' ।।१४५।।
एत बलि प्रभु तारे दिला आलिङ्गन । प्रेमे पुलकित अङ्ग हइल ब्राह्मण।।१४६।।
पाइया वैकुण्ठ नायकेर आलिङ्गन । परानन्द सुख पाइल ब्राह्मण तखन ।।१४७।।
विदाय-समये प्रभुर चरणे धरिया । सुस्वप्न बृतान्त कहे गोपने वसिया ।।१४८।।
शुनि प्रभु कहे 'सत्य जे हय उचित । आर कारे ना कहिवा ए सब चरित ।।१४९।।
पुनः निषेधिल प्रभु सयत्न करिया । हासिया उठिला शुभक्षण लग्न पाञा।।१५०।।[इति अधिक पाठ]
हेन मते प्रभु वङ्गदेश धन्य करि । निज गृहे आइलेन गौराङ्ग श्री हरि ।।१५१।।
व्यवहारे अर्थ-वित्त अनेक लइया । सन्ध्या काले गृहे प्रभु उत्तरिलासिया ।।१५२।।
दण्डवत् करि प्रभु जननी-चरणे । अर्थ-वित्त सकल दिलेन तान स्थाने ।।१५३।।
सेइ क्षणे प्रभु शिष्य गणेर सहिते । चलिलेन शीघ्र गङ्गा-मज्जन करिते ।।१५४।।
सेइ क्षणे गेला आइ करिते रन्धन । अन्तरे दुःखित हैल सर्व्व परिजन ।।१५५।।
शिक्षा गुरु प्रभु सर्व्व गणेर सहिते । गङ्गारे हइला दण्डवत् बहु मते ।।१५६।।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' ।। १४० ।। तन्त्रोक्त इस श्लोक को बोल कर १६ नाम व ३२ अक्षर वाले इस महामन्त्र का जाप [जप] किया जाय ।। १४१ ।। श्रीहरि नाम का जप करते-करते जिस समय प्रेमाङ्कुर होगा उस समय तुम साध्य-साधन के तत्त्व को जानोगे ।। १४२ ।। द्विजवर प्रभु के श्रीमुख से शिक्षा सुन कर बारम्बार प्रणाम करने लगा ।।१४३।। मिश्रजी फिर कहने लगे कि–'प्रभो ! आज्ञा दीजिये, मैं भी सङ्ग चलूँ' प्रभु ने कहा कि–'तुम शीघ्र वाराणसी चले जाओ ।।१४४।। वहीं मेरे साथ मिलना होगा और वहीं मैं तुमसे समस्त साध्य व साधन का तत्त्व कहूँगा ।। १४५ ।। इतना कहकर प्रभु ने उसको आलिङ्गन दिया, द्विज श्रेष्ठ उस समय प्रेम से पुलकित-अङ्ग हो गया ।। १४६ ।। वह विप्रवर श्रीवैकुण्ठ नायक के आलिङ्गन को पाकर उस समय परमानन्द का अनुभव प्राप्त करने लगा ।।१४७।। जाते समय वह विप्रवर प्रभु के चरणों को पकड़ कर एकान्त में बैठकर अपने सुस्वप्न वृत्तान्त को प्रभु के प्रति निवेदन करने लगा ।। १४८ ।। सुन कर प्रभु कहते कि—वह सत्य एवं उचित ही है, किन्तु यह सब चरित्र और किसी से मत कहना।।१४९।।प्रभु ने यत्नपूर्वक विप्र को फिर निषेध किया और विप्र शुभक्षण एवं लग्न पाकर हँसते हुए चल दिये ।।१५१।। इस प्रकार प्रभु गौराङ्ग श्रीहरि वङ्गदेश को धन्य करके अपने घर आये ।। १५१ ।। व्यवहार के अनुसार अनेक धन सम्पत्ति लेकर प्रभु सन्ध्या के समय अपने घर पर आकर उतरे ।। १५२ ।। और माता जी के चरणों में दण्डवत् करके प्रभु ने वह सम्पूर्ण धन-सम्पत्ति माताजी के चरणों में रख दी ।। १५३ ।। प्रभु वहाँ से तत्काल ही शिष्य-गण सहित श्रीगङ्गा-स्नान करने के लिये चल दिये ।। १५४ ।। उधर माताजी तुरन्त रसोई करने लगीं । प्रभु को देख कर पूर्व कालीन शोक स्मरण हो आने से सब कुटुम्बी जन मन में दुखित हो गये ।। १५५ ।। शिक्षा-गुरु प्रभु सर्व शिष्य वृन्द के साथ बहु प्रकार से श्रीगङ्गाजी को दण्डवत् प्रणाम करने लगे ।। १५६ ।। कुछ समय श्रीगङ्गा-

कथोत्तण जाह्नवीते करि जल-खेला । स्नान करि गङ्गा देखि गृहेते आइला ॥१५७॥
तवे प्रभु यथोचित नित्यकर्म्म करि । भोजने वसिला गिया गौराङ्ग श्री हरि ॥१५८॥
सन्तोषे वैकुण्ठ नाथ भोजन करिया । विष्णु गृह द्वारे प्रभु वसिला आसिया ॥१५६॥
तवे आप्त वर्ग आइलेन सम्भाषिते । सभेइ वेढ़िया वसिलेन चारि भिते ॥१६०॥
सभार सहित प्रभु हास्य-कथा रङ्गे । कहिलेन जेन मत आछिलेन बङ्गे ॥१६१॥
बङ्गदेशि वाक्य अनुकरण करिया । बाङ्गालेर कदर्थेन हासिया हासिया ॥१६२॥
दुःख बड़ हइवेक लागि आप्त गण । लक्ष्मीर विजय केहो ना करे कथन ॥१६३॥
कथो क्षण थाकिया सकल आप्त गण । विदाय हइया गेला जार जे भवन ॥१६४॥
वसिया करेन प्रभु ताम्बूल भोजन । नाना हास्य-परिहास्य करेन कथन ॥१५५॥
शची देवी अन्तरे दुःखिता हइ घरे । काछे नाहि आइसेन पुत्रेर गोचरे ॥१६६॥
आपनि चलिला प्रभु जननी सम्मुखे । दुःखित बदन प्रभु जननीरे देखे ॥१६७॥
जननीरे बोले प्रभु मधुर वचन । दुःखिता तोमारे माता देखि कि कारण ॥१६८॥
कुशले आइलुँ आमि दूर देश हैते । कोथा तुमि मङ्गल करिवा भाल मते ॥१६६॥
आरो तोमा देखि अति दुःखित बदन । सत्य कहो देखि माता इहार कारण ॥१७०॥
शुनिजा पुत्रेर वाक्य आइ अधो मुखे । कान्दे मात्र, उत्तर ना करे किछु दुःखे ॥१७१॥
प्रभु बोले 'माता ! आमि जानिल सकल । तोमार वधुर किछु शुनि अमङ्गल ॥१७२॥

जल में जल-क्रीड़ा तथा स्नान करके एवं श्रीगङ्गा जी के दर्शन करके प्रभु घर आये ॥ १५७ ॥ तब प्रभु गौराङ्ग श्रीहरि यथोचित नित्य कर्म करके भोजन करने बैठे॥ १५८ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ प्रभु प्रसन्नता पूर्वक भोजन करके आकर श्रीविष्णु-गृह के द्वार पर बैठ गये ॥ १५६ ॥ उसी समय सब आत्मीय जन प्रभु से बात-चीत करने के लिये आये और प्रभु को घेर कर उनके चारों ओर बैठ गये ॥ १६० ॥ प्रभु उन सबके साथ आमोद-प्रमोद करते हुए आनन्द से जिस प्रकार बङ्गदेश में रहे वह सब बातें कहने लगे ॥ १६१ ॥ प्रभु बङ्गदेशीय वाक्य अनुकरण करके हँस-हँस कर बङ्गालियों की कदर्थना (विडम्बना) कर रहे थे ॥१६२॥ आत्मीय जन मनमें यह बिचार करके कि—इनको सुनकर बड़ा दुःख होगा इसलिये उनमें से कोई भी लक्ष्मी देवी की विजय प्रभु से नहीं कहते थे ॥ १६३ ॥ कुछ देर रहकर सभी आत्मीय जन बिदा होकर अपने-अपने घर चले गये ॥१६४॥ नाना हास्य-परिहास्यमयी बातें करने के पश्चात् प्रभु बैठे हुए ताम्बूल सेवन करने लगे थे ॥ १६५ ॥ इधर श्री-शचीदेवी मन में दुखी हो घर में ही बैठी रहीं, पुत्र के दृष्टिगोचर नहीं हुईं ॥ १६६ ॥ प्रभु स्वयं माताजी के सम्मुख आये; प्रभु ने माताजी का चेहरा (मुखारविन्द) दुःखित देखा ॥ १६७ ॥ तब प्रभु माताजी से मधुर वचन बोले कि—हे माताजी ! मैं तुमको दुःखिता क्यों देख रहा हूँ ? ॥ १६८ ॥ 'मैं दूर देश से कुशल पूर्वक आ गया हूँ' इसके लिये कहाँ तो तुमको भली प्रकार मङ्गल मनाना चाहिए था ॥ १६६ ॥ और कहाँ तुमको दुःखित वदन देख रहा हूँ। हे माता जी ! सत्य करके इसका कारण कहिये ॥ १७० ॥ अपने पुत्र के वाक्य सुनकर श्रीशची माता अधोमुख करके केवल रोने लगीं (अति) दुःख के कारण उत्तर नहीं देती थीं॥१७१॥ प्रभु फिर बोले कि—हे माता जी ! मैंने सब जान लिया, मैंने तुम्हारी बधू का कुछ अमङ्गल सुना है ॥ १७२ ॥

तबे सभे कहिलेन शुनह पण्डित । तोमार ब्राह्मणी गङ्गा पाइला निश्चित ॥१७३॥
पत्नीर विजय शुनि गौराङ्ग श्री हरि । क्षणेक रहिला किछु हेट माथा करि ॥१७४॥
प्रियार विरह दुःख करिया स्वीकार । तुष्णी हइ रहिलेन सर्व्व-वेद-सार ॥१७५॥
लोकानुकरण दुःख क्षणेक करिया । कहिते लागिला निज धैर्य चित्त हइया ॥१७६॥
तथाहि [भा० ८।१६।१६] कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम् । [ङ]
प्रभु बोले 'माता दुःख भाव कि कारणे । भवितव्य जे आछे से घुचिव केमने ॥१७७॥
एइ मत काल गति-केहो कारो नहे । अतएव 'संसार अनित्य' वेदे कहे ॥१७८॥
ईश्वरेर अधीन से सकल संसार । संयोग वियोग के करिते पारे आर ॥१७९॥
अतएव जे हइल ईश्वर इच्छाय । हइल से कार्य आर दुःख केने ताय ॥१८०॥
स्वामीर अग्रेते गङ्गा पाय जे सुकृति । तारे बड़ आर केबा आछे भाग्यवती' ॥१८१॥
एइ मत प्रभु जननीरे प्रबोधिया । रहिलेन निज कृत्ये आप्त गण लैया ॥१८२॥
शुनिञा प्रभुर अति अमृत वचन । सभार हइल सर्व्व-दुःख विमोचन ॥१८३॥*
हेन मते वैकुण्ठ नायक गौर हरि । कौतुके आछेन विद्या रसे क्रीड़ा करि ॥१८४॥
सन्ध्या वन्दनादि प्रभु करि ऊषः काले । नमस्करि जननीरे पढ़ाइते चले ॥१८५॥
अनेक जन्मेर भृत्य मुकुन्द सञ्जय । पुरुषोत्तम दास हेन जाहार तनय ॥१८६॥
प्रति दिन सेइ भाग्यवन्तेर आलय । पढ़ाइते गौरचन्द्र करेन विजय ॥१८७॥

तब सब उपस्थित जन बोले–हे पण्डितजी ! सुनिये, निश्चय ही तुम्हारी ब्राह्मणी ने श्रीगङ्गा-प्राप्ति कर ली है ॥ १७३ ॥ निज पत्नी की विजय सुनकर श्रीगौराङ्ग हरि कुछ देर के लिये कुछ नीचा सिर करके रह गये । १७४ ॥ सर्व-वेद-सार प्रभु प्रिया-विरह के दुःख को स्वीकार करके चुप होकर रह गये ॥ १७५ ॥ आप क्षण भर लोकानुसार शोक करने के पश्चात् धैर्य चित्त होकर माता जी से कहने लगे ॥ १७६ ॥ जैसा कि श्रीमद्भागवत अष्टम स्कन्ध सोलहवें अध्याय के उन्नीसवें श्लोक में है—'पति पुत्र आदि कौन किसका है ?' [अर्थात् कोई किसी का नहीं है] मोह ही इन सब की प्रतीति का कारण है ॥ङ॥ 'माता जी ! तुम दुःखित क्यों होती हो ?' जो होनहार है, वह किस प्रकार टल सकती है ? ॥ १७७ ॥ काल की गति इसी प्रकार की है; कोई किसी का नहीं है इसीलिये वेद संसार को अनित्य कहते हैं ॥ १७८ ॥ यह सम्पूर्ण संसार ईश्वर के आधीन है अन्य किसी की सामर्थ्य नहीं है कि–वह किसी का संयोग एवं वियोग कर सके ॥ १७९ ॥ अतएव ईश्वर-इच्छा से जो कार्य हो गया, वह हो गया उसके लिये दुःख क्या ॥ १८० ॥ जिस सुकृतिशालिनी की अपने स्वामी के आगे ही श्रीगङ्गा प्राप्ति हो जाय, उससे बढ़कर और भाग्यवती कौन है ?' ॥१८१॥ इस प्रकार से प्रभु माता जी को समझाकर, स्वजनों को लेकर अपने कार्य में लग गये ॥१८२॥ प्रभु के अति अमृतमयी वचन सुनकर सबका समस्त दुःख दूर हो गया है ॥ १८३ ॥ इस प्रकार वैकुण्ठ नायक श्रीगौर हरि आनन्द पूर्वक विद्या-रस की लीला कर रहे थे ॥ १८४ ॥ प्रभु ऊषा-काल में ही सन्ध्या बन्दनादि करके माता जी को नमस्कार करके पढ़ाने के लिये चल दिये ॥ १८५ ॥ आपके जो अनेक जन्मों के सेवक श्रीमुकुन्द सञ्जय हैं,

---

* किसी-किसी पुस्तक में इसी स्थान पर अध्याय समाप्त किया है ।

चण्डी-गृहे गिया प्रभु बसेन प्रथमे । तव शेषे शिष्य गण आइसेन क्रमे ॥१८८॥
इथि मध्ये कदाचित केहो कोन दिने । कपाले तिलक ना करिया थाके भ्रमे ॥१८९॥
धर्म्म सनातन प्रभु स्थापे सर्व्व धर्म्म । लोक रक्षा लागि कभु ना लङ्घेन कर्म्म ॥१९०॥
हेन लज्जा ताहारे देहेन सेइ क्षणे । से आर ना आइसे कभु सन्ध्या करि बिने ॥१९१॥
प्रभु बोले 'केने भाइ ! कपाले तोमार । तिलक ना देखि केने, कि युक्ति इहार ॥१९२॥
तिलक ना देखि यदि विप्रेर कपाले । तवे तारे श्मशान सदृश वेदे बोले ॥१९३॥
बुझिलाङ आजि तुमि नाहि कर सन्ध्या । आजि भाइ तोमार हइल सन्ध्या बन्ध्या ॥१९४॥
चल सन्ध्या करो गिया गृहे पुनर्व्वार । सन्ध्या करि तवे से आसिह पढ़िवार' ॥१९५॥
एइमत प्रभुर जतेक शिष्य गण । सभेइ अत्यन्त निज धर्म्म परायण ॥१९६॥
एतेक औद्धत्य प्रभु करेन कौतुके । हेन नाहि जाके ना चालेन नाना रूपे ॥१९७॥
सवे परस्त्रीर प्रति नाहि परिहास । स्त्री देखिले दूरे प्रभु हय एक पाश ॥१९८॥
विशेषे चालेन प्रभु देखि श्री हट्टिया । कदर्थेन सेइ मत वचन वलिया ॥१९९॥
क्रोधे श्री हट्टिया गण बोले हय हय । तुमि कोन्-देशी ताहा कहत निश्चय ॥२००॥
पिता माता-आदि करि जतेक तोमार । बोल देखि श्री हट्टे ना हय जन्म कार ? ॥२०१॥
आपने हइया श्री हट्टियार तनय । तवे ढोलकर, कोन् युक्ति इथे हय ॥२०२॥
जत जत बोले, प्रभु प्रबोध ना माने । नाना मत कदर्थेन से-देशी-वचने ॥२०३॥

जिनका पुरुषोत्तमदास जैसा पुत्र है ॥ १८६ ॥ आप श्रीगौरचन्द्र प्रति दिन उन्हीं भाग्यवन्त के घर पढ़ाने के लिये गमन करते थे ॥१८७॥ प्रथम प्रभु चण्डी-मण्डप पर जाकर विराजमान होते पश्चात् धीरे २ शिष्य सब आते थे ॥ १८८ ॥ इस बीच में यदि कोई किसी दिन भूल से अपने ललाट में तिलक किये हुए नहीं होता ॥ १८९ ॥ तो सनातन धर्म प्रभु, जो सब धर्मों की स्थापना करते हैं एवं लोक धर्म-रक्षार्थ कभी-कर्म्मोलङ्घन नहीं करते ॥ १९० ॥ उसको उसी समय ऐसा लज्जित करते थे कि वह फिर कभी बिना सन्ध्या किये नहीं आता था ॥ १९१ ॥ प्रभु उससे इस प्रकार कहते कि-'क्यों भाई ! तुम्हारे ललाट पर तिलक क्यों नहीं दिखलाई देता इसकी युक्ति तो बतलाओ ॥ १९२ ॥ यदि ब्राह्मण के मस्तक पर तिलक न हो तो उसके ललाट प्रदेश को वेद श्मशान सदृश कहते हैं ॥ १९३ ॥ हम समझ गये आज तुमने सन्ध्या नहीं की है, हे भाई! तब तो तुम्हारी संध्या सब बंध्या हो गई अर्थात् फलवती न होगी ॥ १९४ ॥ जाओ, अब फिर जाकर सन्ध्या करो, सन्ध्या करने के पश्चात् पढ़ने के लिये आना ॥१९५॥ इस प्रकार प्रभु के सब शिष्य-गण अत्यन्त निज-धर्म-परायण थे ॥ १९६ ॥ प्रभु कौतुक पूर्वक इतनी उद्दण्डता करते थे कि-किसी को भी किसी न किसी प्रकार से बिना छेड़े नहीं छोड़ते थे ॥ १९७ ॥ केवल पर-स्त्री के प्रति हास-परिहास नहीं करते थे-स्त्री देखकर प्रभु एक ओर हो जाते थे ॥ १९८ ॥ विशेषतया प्रभु श्रीहट्ट निवासी को देखकर छेड़ते थे उसकी बोली का अनुकरण करके उसकी 'कदर्थना करते' [चिढ़ाते] थे ॥ १९९ ॥ तब श्रीहट्टिया-गण क्रोध में आकर 'है' 'है' करते और कहते कि-तुम कौन देश के हो ? यह सत्य बताओ ॥ २०० ॥ 'पिता-माता आदि से लेकर तुम्हारे जितने सम्बन्धी हैं बतलाओ, देखें, श्रीहट्ट में किसका जन्म नहीं हुआ ? ॥ २०१ ॥ आप स्वयं श्रीहट्टिया के

तावत चालेन श्री हट्टियार ठाकुर । जावत ताहार क्रोध ना हय प्रचुर ॥२०४॥
महा क्रोधे केह लइ जाय खेदाड़िया । लागालि ना पाय जाय तर्ज्जिया गर्ज्जिया ॥२०५॥
केह वा धरिया लय शिकदार स्थाने । लैया जाय महा क्रोधे धरिया देयाने ॥२०६॥
तबे शेषे आसिया प्रभुर सखा गणे । समञ्जस कराइ चलेन सेइ क्षणे ॥२०७॥
कोन दिन थाकि कोन बाङ्गालेर आड़े । बाओयास भाङ्गिया तार पलायेन रड़े ॥२०८॥
एइ मत चापल्य करेन सभा सने । सबे स्त्री मात्र नाहि देखेन दृष्टि कोणे ॥२०९॥
स्त्री हेन नाम प्रभु एइ अवतारे । श्रवणो ना करिला विदित संसारे ॥२१०॥
अतएव जत महा महिम सकले । गौराङ्ग नागर हेन स्तव नाहि बोले ॥२११॥
यद्यपि सकल स्तव सम्भबे ताहाने । तथापिह स्वभावे से गाय बुध गणे ॥२१२॥
हेन मते 'श्रीमुकुन्द सञ्जय' मन्दिरे । विद्या रसे श्रीवैकुण्ठ नायक विहरे ॥२१३॥
चतुर्द्दिके शोभे शिष्य गणेर मण्डली । मध्ये पढ़ायेन प्रभु महा-कुतूहली ॥२१४॥
विष्णु तैल शिरे दिते आछे कौन दासे । अशेष प्रकारे व्याख्या करे निज रसे ॥२१५॥
ऊषः काल हैते दुइ-प्रहर अवधि । पढ़ाइया गङ्गा-स्नाने चले गुण निधि ॥२१६॥
निशारो अर्द्धेक एइ मत प्रति दिने । सेइ पढ़ा चिन्तायेन सभारे आपने ॥२१७॥
अतएव प्रभु स्थाने वर्षेक पढ़िया । पण्डित हयेन सभे सिद्धान्त जानिया ॥२१८॥

पुत्र होकर फिर ढोल पीटते हो कहो तो इसका क्या कारण है ? ॥ २०२ ॥ वह जितना-जितना बोलते तो भी प्रभु उनकी बात नहीं मानते थे स्वयं निरन्तर उस देश की बोली का अनुकरण करके उनकी कदर्थना ही करते जाते ॥ २०३ ॥ आप उस समय तक लगातार श्रीहट्टियाओं की कदर्थना ही करते जाते जब तक कि उनका क्रोध प्रचुर परिमाण में न हो जाता ॥ २०४ ॥ महा क्रोध में कोई तो प्रभु को खदेड़ कर ले जाता, परन्तु जब प्रभु हाथ नहीं आते तो तर्जन-गर्जन करता हुआ चला जाता था ॥ २०५ ॥ कोई पकड़ कर शिकदार (पुलिस कर्मचारी विशेष) के पास ले चलता और कोई पकड़ कर महा क्रोध-वश होकर विचारालय में ले चलता ॥ २०६ ॥ तब उस समय प्रभु के सखा-गण आकर दोनों में समझौता कराकर ले आते ॥ २०७ ॥ किसी दिन प्रभु किसी के बँगला (कमरा विशेष) की ओट में होकर उसके शुष्क अलाबु (तुम्बा) को तोड़कर जोर से भाग जाते ॥ २०८ ॥ इस प्रकार प्रभु सबके साथ चपलता करते थे केवल स्त्री मात्र की ओर दृष्टिपात नहीं करते थे ॥ २०९ ॥ संसार में प्रसिद्ध है कि—इस अवतार में प्रभु ने 'स्त्री' नाम श्रवण भी नहीं किया ॥२१०॥ इसीलिये जितने महिमाशाली महत्पुरुष हैं उन सब में से कोई 'गौराङ्ग नागर' ऐसा स्तव में वर्णन नहीं करता है ॥ २११ ॥ यद्यपि आपके लिये सर्व प्रकार के स्तव सम्भव हो सकते हैं तब भी विद्वद्गगण आपके स्वभाव के अनुसार ही वर्णन किया करते हैं ॥ २१२ ॥ इस प्रकार श्रीवैकुण्ठ-नायक 'श्रीमुकुन्द सञ्जय' के घर विद्या-रस-विहार करते थे ॥ २१३ ॥ चारों ओर शिष्यों की मण्डली शोभा पाती थी और बीच में श्रीगौरचन्द्र अति आनन्द में पढ़ाते थे ॥ २१४ ॥ कोई एक शिष्य (दास) आपके सिर में विष्णु-तेल लगाता और आप अपने रस में अशेष प्रकार से व्याख्या करते रहते ॥ २१५॥ ऊषा काल से लेकर दो प्रहर तक गुण-निधान श्रीप्रभु पढ़ाकर तब श्रीगङ्गा-स्नान को जाते थे ॥ २१६ ॥ इस प्रकार आप सब शिष्यों को नित्य के पाठ को

हेन मते बिद्या रसे आछेन ईश्वर । विवाहेर कार्य शची चिन्ते निरन्तर ॥२१६॥
सर्व्व नवद्वीपे शची निरवधि मने । पुत्रेर सदृश कन्या चाहे अनुक्षणे ॥२२०॥
सेइ नबद्वीपे वैसे महा भाग्यवान् । दया-शील-स्बभाब-श्रीसनातन नाम ॥२२१॥
अकैतव, परम उदार, विष्णु-भक्त । अतिथि सेवन पर उपकारे रत ॥२२२॥
सत्यवादी, जितेन्द्रिय, महावंश जात । पदवी 'राज-पण्डित' सर्व्वत्र विख्यात ॥२२३॥
व्यबहारेओ परम सम्पन्न एक जन । अनायासे अनेकेर करेन पोषण ॥२२४॥
तार कन्या आछेन परम सुचरिता । मूर्त्तिमती लक्ष्मी-प्राय सेइ जगन्माता ॥२२५॥
शची देवी ताने देखिलेन जेइ क्षणे । सेइ कन्या पुत्र योग्या बुझिलेन मने ॥२२६॥
शिशु हैते दुइ-तिन बार गङ्गा-स्नान । पितृ-मातृ-विष्णु-भक्ति बइ नाहि आन ॥२२७॥
आइरे देखिया घाटे प्रति दिने दिने । नम्र हइ नमस्कार करेन चरणे ॥२२८॥
आइओ करेन महा प्रीते आशीर्व्वाद । 'योग्य-पति कृष्ण तोमार करुन प्रसाद' ॥२२९॥
गङ्गा-स्नाने आइ मने करेन कामना । 'ए कन्या आमार पुत्रे हउक घटना' ॥२३०॥
राज पण्डितेर इच्छा सर्व्व-गोष्ठी सने । प्रभुरे करिते कन्या-दान निज मने ॥२३१॥
दैवे शची काशीनाथ पण्डितेरे आनि । बलिलेन ताँरे बाप ! शुन एक वाणी ॥२३२॥
राज पण्डितेरे कहो, इच्छा थाके तान । आमार पुत्रेरे तबे करु कन्या दान ॥२३३॥

प्रति दिन आधी रात तक विचरवाते थे ॥ २१७ ॥ इसीलिये प्रभु के निकट एक वर्ष ही पढ़कर सब सिद्धान्तों के जानकार होकर सब शिष्य पण्डित हो जाते थे ॥ २१८ ॥ इस प्रकार प्रभु विद्या-रस-विहार में मत्त थे, उधर श्रीशची देवी अपने पुत्र के विवाह-कार्य की निरन्तर चिन्ता करती थी ॥ २१९ ॥ आप निरन्तर सम्पूर्ण श्री-नवद्वीप भर में पुत्र के सदृश-कन्या का विचार किया करती रहती थी ॥ २२० ॥ इस नवद्वीप में एक महा भाग्यवान् , दयाशील-स्वभाव श्रीसनातन नाम के विप्र निवास करते थे ॥ २२१ ॥ जो छल कपट-रहित, परम उदार, विष्णु-भक्त, अतिथि-सेवन व परोपकार में रत [लगे हुए] ॥ २२२ ॥ सत्य-वादी, जितेन्द्रिय, महान्-वंशज में उत्पन्न थे जिनकी 'राज पण्डित' पदवी थी एवं जो सर्वत्र विख्यात थे ॥ २२३ ॥ व्यवहार में एक मात्र कुशल व्यक्ति व अनायास अनेकों का पोषण करने वाले थे ॥ २२४ ॥ कन्या अत्यन्त सुन्दर चरित्र वाली थी जो प्राय जगत्-माता मूर्त्तिमती लक्ष्मी जैसी ही थी ॥ २२५ ॥ श्रीशचीदेवी जी ने जिस समय उस कन्या को देखा वैसे ही मन में उसे निज-पुत्र के योग्य निश्चय कर लिया ॥ २२६ ॥ वह बालपन से ही दो-तीन बार श्रीगङ्गा-स्नान करती एवं पितृ, मातृ-विष्णु-भक्ति के सिवाय कुछ नहीं जानती थी ॥ २२७ ॥ प्रति दिन श्री-शची माता को घाट पर देखकर नम्र हो उनके चरणों में नमस्कार करती थी ॥ २२८ ॥ श्रीशची 'मा' भी महा प्रीति-पूर्वक उसको आशीर्वाद देती हैं कि–'कृष्ण तुम्हारे लिये योग्य-पति की कृपा करें' ॥ २२९ ॥ श्री-शची माता प्रति दिन श्रीगङ्गा-स्नान के समय कामना करतीं कि–'इस कन्या का संयोग मेरे पुत्र के साथ हो जाय' ॥ २३० ॥ इधर श्री सनातन 'राज पण्डित' एवं उनके आत्मीय जन सब के मन में इस कन्या का 'पाणि-ग्रहण' प्रभु के साथ करने की इच्छा लगी हुई थी ॥ २३१ ॥ दैवयोग से एक दिन श्रीशची देवी काशी-नाथ पण्डित को बुलाकर उनसे कहने लगीं कि–'वत्स ! एक बात सुनो ॥ २३२ ॥ 'तुम जाकर राज पण्डित से

काशी नाथ पण्डित चलिला सेइ क्षणे । 'दुर्गा' 'कृष्ण' वलि राज पण्डित भवने ॥२३४॥
काशी नाथे देखि राजपण्डित आपने । वसिते आसन आनि दिलेन सम्भ्रमे ॥२३५॥
परम गौरवे बिधि करे यथोचित । 'कि कार्ये आइला' जिज्ञासिलेन पण्डित ॥२३६॥
काशी नाथ बोलेन आछये एककथा । चित्ते लय यदि तवे करह सर्व्वथा ॥२३७॥
तोमार कन्यार जोग्य सेइ दिव्य पति । ताहान उचित पत्नी सेइ महा सती ॥२३८॥
विश्वम्भर पण्डितेरे तोमार दुहिता । दान कर-ए सम्बन्ध उचित सर्व्वथा ॥२३९॥
जेन कृष्ण रुक्मिणीतं अन्योऽन्य उचित । सेइ मत विष्णु-प्रिया-निमाञि पण्डित ॥२४०॥
शुनि विप्र पत्नी आदि आप्त वर्ग सहे । लागिला करिते युक्ति 'देखि के कि कहे' ॥२४१॥
सभे वलिलेन 'आर कि कार्य विचारे । सर्व्वथा ए कर्म्म गिया करह सत्वरे ॥२४२॥
तवे राज पण्डित हइया हर्ष मति । वलिलेन काशीनाथ पण्डितेर प्रति ॥२४३॥
'विश्वम्भर पण्डितेरे दिव कन्यादान । करिव सर्व्वथा विप्र इथे नाहि आन ॥२४४॥
भाग्य थाके यदि सर्व्व वंशेर आमार । तवे हेन सम्बन्ध हइव ए कन्यार ॥२४५॥
'चल तुमि तथा गिया कह सर्व्व कथा । आमि पुन दढ़ाइलुँ-करिव सर्व्वथा' ॥२४६॥
शुनिञा सन्तोषे काशीनाथ मिश्रवर । सकल कहिल आसि शचीर गोचर ॥२४७॥
कार्य-सिद्धि शुनि 'आइ' सन्तोष हइला । सकल उद्योग तवे करिते लागिला ॥२४८॥

बात-चीत करो, यदि उनकी इच्छा हो तो हमारे पुत्र के साथ अपनी कन्या का पाणि ग्रहण करदे' ॥ २३३ ॥ यह सुनकर श्रीकाशीनाथ पण्डित उसी क्षण 'दुर्गा' 'दुर्गा' व 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलते हुए श्रीराज पण्डित के भवन को चल दिये ॥ २३४ ॥ श्रीकाशीनाथ को देखकर श्रीराज पण्डित ने स्वयं शीघ्रता से उसके बैठने के लिये आसन लाकर दिया एवं परम गौरव के साथ यथोचित सत्कारोपचार करने लगे। पश्चात् श्रीराज पण्डित जी ने पूछा कि–'कहिये आप कैसे पधारे ?'॥२६५-२३६॥ श्रीकाशीनाथ जी ने उत्तर दिया कि–'मैं एक बात कहूँगा, यदि सर्व प्रकार से वह आपके चित्त को भावे तो करना ॥ २३७ ॥ [मैं जिनका नाम लूँगा] तुम्हारी कन्या के योग्य वही दिव्य-पति है और महासती यह आपकी कन्या उनकी उचित पत्नी है ॥ २३८ ॥ सुनिये बात यह है कि–आप अपनी पुत्री का पाणि-ग्रहण श्रीविश्वम्भर पण्डित के साथ कर दीजिये। यह सम्बन्ध सब प्रकार से योग्य ही है ॥ २३९ ॥ जिस प्रकार श्रीकृष्ण व रुक्मिणी परस्पर योग्य थे उसी प्रकार विष्णुप्रिया व श्रीनिमाञि पण्डित परस्पर एक दूसरे के योग्य हैं ॥२४०॥ सुनकर श्रीसनातन राज पण्डितजी ने मन में यह विचार करके कि–देखें कौन क्या कहता है अपनी पत्नी आदि स्वजनों से परामर्श लिया ॥२४१॥ वह सब कहने लगे कि–'इसमें विचारने का और क्या काम है शीघ्र ही जिस प्रकार से हो यह कार्य करो' ॥ २४२ ॥ तब श्रीराज पण्डित चित्त में अति प्रसन्न होकर श्रीकाशीनाथ पण्डित जी से बोले कि–॥ २४३ ॥ हे विप्रवर ! मैं अवश्य श्रीविश्वम्भर पण्डित को अपनी कन्या दान दूँगा, मैं अवश्य इस कार्य को सम्पन्न करूँगा इसमें अन्यथा नहीं है ॥ २४४ ॥ यदि हमारे सब वंश के सौभाग्य हों तब इस कन्या का ऐसा सम्बन्ध घटन होगा ॥ २४५ । अब तुम जाओ, वहाँ जाकर सब बात कह दो। मैंने भी पूछकर फिर दृढ़ कर लिया है, यह सम्बन्ध सर्व्वथा अवश्य करूँगा ॥ २४६ ॥ मिश्रवर श्रीकाशीनाथ ने सुनकर प्रसन्न चित्त हो श्रीशची

प्रभुर विवाह शुनि सर्व्व शिष्य गण । सभेइ हइला अति परानन्द मन ॥२४६॥
प्रथमे वलिला वुद्धिमन्त महाशय । मोर भार ए विवाहे जत लागे व्यय ॥२५०॥
मुकुन्द सञ्जय बोले शुन सखा भाइ । तोमार सकल भार मोर किछु नाञि ॥२५१॥
बुद्धिमन्त खान वोले शुन सब भाइ । वामनिञा* मत ए विवाहे किछु नाञि ॥२५२॥
ए विवाहे पण्डितेर कराइव हेन । राज कुमारेर मत लोके देखे जेन ॥२५३॥
तबे सभे मिलि शुभ-दिन शुभ क्षणे । अधिवास लग्न करिलेन हर्ष-मने ॥२५४॥
बड़ बड़ चन्द्रातप सब टानाइया । चतुर्द्दिके रुइलेन कदली आनिया ॥२५५॥
पूर्ण घट, दीप, धान्य, दधि, आम्र सार । जतेक मङ्गल द्रव्य आछये अपार ॥२५६॥
सकल एकत्रे आनि करि समुच्चय । सर्व्व भूमि करिलेन आलिपना मय ॥२५७॥
जतेक वैष्णव आर जतेक ब्राह्मण । नवद्वीपे आछये जतेक सुसज्जन ॥२५८॥
सभारेइ निमन्त्रण करिला सकाले । अधिवासे गुया आसि खाइवा विकाले ॥२५६॥
अपराह्न काल मात्र हइल आसिया । वाद्य आसि करिते लागिल वाजनिया ॥२६०॥
मृदङ्ग, सानाञि, जय ढाक, करताल । नाना विध वाद्य ध्वनि उठिल विशाल ॥२६१॥
भाट गणे पढ़िते लागिला रायवार । पतिव्रता-गण करे जय जय कार ॥२६२॥
विप्र गणे करिते लागिला वेदध्वनि । मध्ये आसि वसिला द्विजेन्द्र-कुल-मणि ॥२६३॥

देवी के सामने आकर सब बातें कहीं ॥ २४७ ॥ श्रीशची माता कार्य सिद्धि को सुनकर प्रसन्न हुईं और उसके अनुसार सब कार्य में जुट गईं ॥ २४८ ॥ प्रभु के विवाह की बातें सुनकर सभी शिष्य-गण परम प्रसन्न चित्त हुए ॥ २४६ ॥ महाशय श्रीबुद्धिमन्त खान पहले ही कह उठे कि—इस विवाह में जितना व्यय होगा वह सब मेरे ऊपर है ॥ २५० ॥ [इसी प्रकार और २-४ जन के भार लेने की बातें सुनकर] श्रीमुकुन्द सञ्जय कहने लगे कि—हे बन्धुओ ! सुनिये, सब भार आप ही लोग ले लेंगे, मुझे कुछ भी नहीं देंगे ? ॥ २५१ ॥ बुद्धिमन्त खान जी बोले कि—हे सब भाइयो ! सुनिये, (बमनऊआ) ब्याह की तरह इस बिवाह में कोई कार्य नहीं होगा ॥ २५२ ॥ मैं निमाञि पण्डित के इस विवाह को ऐसा कराऊँगा जैसा राजकुमार का, जिसको सब दुनियाँ देखे ॥ २५३ ॥ तब सबने मिलकर प्रसन्नता पूर्वक शुभ दिन एवं शुभ क्षण में अधिवास-लग्न की आयोजना की ॥ २५४ ॥ वह इस प्रकार कि—प्रथम सब बड़े-बड़े चद्रातपों [शामियानों] को टँगवाकर उनके चारों ओर केला मँगवाकर आरोप किये ॥ २५५ ॥ पश्चात् पूर्ण घट, दीप, धान, दधि, आम्र-पल्लव आदि जितने अपार माङ्गलिक द्रव्य हैं ॥ २५६ ॥ उन सबको एक जगह ला लाकर ढेर करके मानो सर्व पृथ्वी को आलेपन-मय कर दिया ॥२५७॥ नवद्वीप में जितने वैष्णव व ब्राह्मण एवं जितने सभ्यपुरुष निवास करते थे ॥ २५८ ॥ उन सब का प्रातःकाल ही निमन्त्रण कर दिया कि—'आप लोग तृतीय प्रहर के समय अधिवास में पधार कर पान, सुपाड़ी में सम्मिलित हों' ॥२५६॥ ज्योंही अपराह्न-काल हुआ कि—बाजे बाले आकर बाजे बजाने लगे ॥ २६० ॥ तब तो मृदङ्ग, शहनाई, जय ढाक एवं करताल [मँजीरे] आदि नाना प्रकार के वाद्यों की विशाल ध्वनि उठी ॥ २६१ ॥ उधर राय-भाट गण स्तुति-गान करने लगे हैं एवं पतिव्रता-

---

* वामनिया ब्याह-जो ब्राह्मणों का विवाह मामूली से द्रव्य में हो जाता है ।

चतुर्दिके वसिलेन ब्राह्मण मण्डली । सभेइ हइला चित्ते महा-कुतूहली ॥२६४॥
तवे गन्ध, चन्दन, ताम्बूल, दिव्य माला । ब्राह्मण गणेरे सभे दिवारे लागिला ॥२६५॥
शिरे माला, सर्व्व अङ्गे लेपिला चन्दने । एको बाटा ताम्बूल से देन एको जने ॥२६६॥
विप्रकुल नदियाय विप्रेर अन्त नाञि । कत जाय कत आइसे अवधि ना पाइ ॥२६७॥
तथि मध्ये लोभिष्ठ अनेक जन आछे । एक बार लैया पुन आर काच काचे ॥२६८॥
आर बार आसि महा-लोकेर गहले । चन्दन, गुवाक, माला निञा निञा चले ॥२६९॥
सभेइ आनन्दे मत्त के काहारे चिने । प्रभुओ हासिया आज्ञा करिला आपने ॥२७०॥
'सभारे ताम्बूल माला देह तिन बार । चिन्ता नाहि, व्ययकर, जे इच्छा जाहार' ॥२७१॥
एक बार निञा जे जे लेइ आर बार । ए आज्ञाय ताहार कैलेन प्रतिकार ॥२७२॥
पाछे केहो चिनिञा विप्रेरे मन्द बोले । परमार्थे दोष हय शाठ्य करि निले ॥२७३॥
विप्र-प्रिय प्रभुर चित्तेर एइ कथा । तिन-बार दिले पूर्ण हइव सर्व्वथा ॥२७४॥
तिन बार पाइया सभेइ हर्ष मन । शाठ्य करि आर नाहि लय कोन जन ॥२७५॥
एइमत मालाय, चन्दने, गुया,पाने । हइल अनन्त, मर्म्म केहो नाहि जाने ॥२७६॥
मनुष्ये पाइल जत से थाकुक दूरे । पृथ्वीते पड़िल जत दिते मनुष्येरे ॥२७७॥

गण जय-जय ध्वनि करने लगीं ॥ २६२ ॥ विप्र-गण वेद-ध्वनि करने लगे उस समय द्विजेन्द्र-कुल मणि श्री-विश्वम्भरचन्द्र उनके बीच में आकर बैठे ॥ २६३ ॥ उनके चारों ओर ब्राह्मण-मण्डली बैठी हुई देखकर सभी लोगों को परम आनन्द हुआ ॥ २६४ ॥ तब श्रीसनातन के स्वजन, ब्राह्मणों को [इत्र] चन्दन, ताम्बूल एवं दिव्य माला देने लगे ॥ २६५ ॥ सिर में माला देकर सब अङ्ग को चन्दन से अनुलेपन कर करके एक-एक व्यक्ति को एक-एक डिब्बा ताम्बूल देने लगे ॥ २६६ ॥ विप्रों की बस्ती श्रीनवद्वीप में विप्रों की कोई संख्या सीमित नहीं थी, कितने आते और कितने जाते इसकी कोई सीमा नहीं मिलती थी ॥ २६७ ॥ उनमें अनेक लोभी-जन भी थे, जो एक बार लेकर फिर दूसरा वेश बनाकर ॥ २६८ ॥ महा लोक–सङ्कट में दुबारा आ-आकर चन्दन, पान-सुपाड़ी एवं माला ले लेकर चले जाते थे ॥ २६९ ॥ सब लोग आनन्द में मत्त हो रहे थे, कौन किसको पहिचाने ? तब प्रभु ने भी स्वयं हँसकर आज्ञा दी कि ॥ २७० ॥ 'सब लोगों को ताम्बूल व माला तीन-तीन बार दो, कुछ चिन्ता नहीं जिसकी जो इच्छा हो व्यय करो ॥ २७१ ॥ जो मनुष्य एक बार ले रहे थे, प्रभु ने उक्त आज्ञा से उन सबका प्रतिकार कर दिया ॥ २७२ ॥ विप्र-प्रिय प्रभु के मन में यह बात है कि–'पीछे पहिचान कर स्यात् कोई उन ब्राह्मणों से अपशब्द कहे व दूसरे चोरी करके लेने से परमार्थ-पथ में दोष होता है । तीन-तीन बार देने से इन दोनों बातों से वे बच जाँयगे और सब प्रकार से उनकी मनः संतुष्टि हो जायगी ॥२७३-२७४॥ तीन-तीन बार माला ताम्बूल पाकर सभी लोग प्रसन्न चित्त थे फिर किसी भी मनुष्य ने छल पूर्वक नहीं लिया ॥ २७५ ॥ इसी प्रकार से देते-देते माला, चन्दन, पान-सुपाड़ी आदि सब वस्तुएँ अनन्त हो गईं, परन्तु इस मर्म को किसी ने नहीं जाना अथवा माला, चन्दन, पान एवं सुपाड़ियों में सेवा-विग्रह श्रीअनन्त देव के अधिष्ठान होने से सब वस्तुएँ अनन्त हो जाती हैं इस मर्म को कोई नहीं जानता है ॥ २७६ ॥ जितनी माला, पान आदि मनुष्यों ने पाये वह तो दूर रहे मनुष्यों को वितरण करने में जो

सेइ जदि प्राकृत लोकेर घरे हये । ताहातेइ तार पाँच विवाह निवाहे ॥२७८॥
सकल लोकेर चित्ते हइल उल्लास । सभे बोले 'धन्य धन्य धन्य अधिवास' ॥२७९॥
लक्षेश्वरो देखियाछि एइ नवद्वीपे । हेन अधिवास नाहि करे कारो बापे ॥२८०॥
ए मत चन्दन, माला, दिव्य गुया, पान । अकातरे केहो कभो नाहि करे दान ॥२८१
तवे 'राज पण्डित' आनन्द चित्त हैया । आइलेन अधिवास-सामग्री लइया ॥२८२॥
विप्र वर्ग आप्त वर्ग करि निज सङ्गे । बहुविध वाद्य-नृत्य-गीत महारङ्गे ॥२८३॥
वेद विधि पूर्व्वक परम हर्ष मने । ईश्वरेर गन्ध स्पर्श कैला शुभ क्षणे ॥२८४॥
ततक्षणे महा जय-जय-हरि-ध्वनि । करिते लागिला सभे महा स्वस्ति वाणी ॥२८५॥
पतिव्रता गण देइ जय जय कार । वाद्य गीते हैल महानन्द-अवतार ॥२८६॥
हेन मते करि अधिवास शुभ काज । गृहे चलिलेन सनातन विप्र राज ॥२८७॥
एइ मत गिया ईश्वरेर आप्त गणे । लक्ष्मीरे* करिला अधिवास शुभ क्षणे ॥२८८॥
आर जत किछु लोके लोकाचार वले । दोहाराइ सब करिलेन कुतूहले ॥२८९॥
तवे सुप्रभाते प्रभु करि गङ्गा-स्नान । आगे विष्णु पूजि गौरचन्द्र भगवान ॥२९०॥
तवे शेषे सर्व्व-आप्त गणेर सहिते । वसिलेन नान्दी मुख कर्म्मादि करिते ॥२९१॥
वाद्य-नृत्य-गीते हैल महा कोलाहल । चतुर्दिके जय-जय उठिल मङ्गल ॥२९२॥

सामान पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ २७७ ॥ वही यदि प्राकृत लोक के घर में होता तो उससे ही पाँच विवाहों का निर्वाह हो जाता ॥ २७८ ॥ सब लोगों के चित्त परम उल्लासमय थे सभी लोग कहते थे कि–'इस अधिवास का धन्य है, धन्य है ॥ २७९ ॥ हमने इस नवद्वीप में लखपति भी देखे हैं, परन्तु किसी के बाप ने भी ऐसा अधिवास नहीं किया ॥ २८० ॥ इस प्रकार निडर होकर चन्दन, माला एवं दिव्य पान-सुपाड़ी कभी किसी ने यह नहीं दिये ॥ २८१ ॥ तब इधर से 'श्रीराज पण्डित' प्रसन्न चित्त होकर अधिवास सामिग्री लेकर श्री-जगन्नाथ मिश्र के घर आते हैं ॥ २८२ ॥ विप्र वर्ग एवं बन्धु-बान्धवों को साथ लेकर अनेक प्रकार के वाद्य, नृत्य, गीत के महारङ्ग में ॥ २८३ ॥ परम प्रसन्न चित्तयुत शुभ क्षण में विधि पूर्वक ईश्वर श्रीविश्वम्भरचन्द्र के अङ्ग में सुगन्धि चन्दन एवं इत्र आदि लगाते ॥ २८४ ॥ उस समय सब लोग जय-जयकार व 'हरि' 'हरि' की ध्वनि एवं महामङ्गल-प्रदायक 'स्वस्ति वाचन' करने लगे ॥ २८५ ॥ पतिव्रता-गण जय-जयकार करने लगीं इस प्रकार वाद्य, गीत द्वारा महा आनन्द का प्राकट्य हुआ ॥ २८६ ॥ इस प्रकार अधिवास का शुभ काज करके श्रीसनातन विप्रराज अपने घर को गये ॥२८७॥ इसी प्रकार प्रभु के आत्मीय जन भी जाकर शुभक्षण में लक्ष्मी जी का अधिवास किया ॥२८८॥और लोक में जितने 'लोकाचार' कहे जाते हैं दोनों ने ही आनन्द पूर्वक वे सब किये ॥ २८९ ॥ दूसरे दिन सुप्रभात काल में श्रीगौरचन्द्र भगवान् श्रीगङ्गा-स्नान करके, प्रथम श्रीविष्णु-पूजन करके॥२९०॥पश्चात् अपने सब आत्मीयजनों के साथ नान्दीमुख कर्मादि करने को बैठे॥२९१॥ उस समय वाद्य, नृत्य एवं गीतों का महा कोलाहल होने लगा और चारों ओर मङ्गलमयी जय–जय ध्वनि

---

* प्रभु के इस दूसरे विवाह प्रसङ्ग में भी श्रीग्रन्थकार के 'विष्णु-प्रिया' नाम के पहले 'लक्ष्मी' नाम देने से, इस अर्थ में भी कहीं-कहीं 'लक्ष्मी' नाम लिख दिया गया है ।

पूर्ण-घट, धान्य, दधि, दीप, आम्रसार । स्थापिलेन घरे द्वारे अङ्गने अपार ॥२९३॥
चतुर्दिके नाना-वर्ण उड़ये पताका । कदलक रोपि बान्धिलेन आम्र-पाता ॥२९४॥
तवे आइ पतिव्रता गण लइ सङ्गे । लोकाचार करिते लागिला महा रङ्गे ॥२९५॥
आगे गङ्गा पूजिया परम हर्ष मने । तवे वाद्य बाजने गेलेन षष्ठी स्थाने ॥२९६ ।
षष्ठी पूजि तवे बन्धु-मन्दिरे-मन्दिरे । लोकाचार करिया आइला निज घरे ॥२९७॥
तवे खइ, कला, तैल, ताम्बुल सिन्दूरे । दिया दिया पूर्ण करिलेन स्त्री गणेरे ॥२९८ ।
ईश्वर प्रभावे द्रव्य हैल असंख्यात । शचीओ सभारे देन बार पाँच सात ॥२९९॥
तैले स्नान करिलेन सर्व्व नारी-गणे । हेन नाहि परिपूर्ण नहिल जे मने ॥३००॥
एइ मत महानन्द लक्ष्मीर भवने । लक्ष्मीर जननी करिलेन हर्ष मने ॥३०१॥
श्री राज पण्डित अति चित्तेर उल्लासे । सर्व्वस्व निक्षेप करि महानन्दे भासे ॥३०२॥
सर्व्व-विधि-कर्म्म करि श्री गौर सुन्दर । वसिलेन खानिक हइया अवसर ॥३०३॥
तवे सव ब्राह्मणेरे भोज्य वस्त्र दिया । करिलेन सन्तोषे परम नम्र हैया ॥३०४॥
जे जेमन पात्र जार जोग्य जेन दान । सेइ मते करिलेन सभार सम्मान ॥३०५॥
महा प्रीते आशीर्व्वाद करि विप्र गण । गृहे चलिलेन सभे करिते भोजन ॥३०६॥
अपराह्ण वेला आसि लागिला हइते । प्रभुर सभेइ वेश लागिला करिते ॥३०७॥
चन्दने लेपित करि सकल श्री अङ्ग । मध्ये मध्ये सर्व्वत्र दिलेन तथि गन्ध ॥३०८॥

उठ खड़ी हुईं ॥ २९२ ॥ घर, द्वार एवं आँगन में अपार पूर्ण-घट, धान, दधि, दीप और आम्र-पल्लव स्थापित कर दिये गये थे ॥ २९३ ॥ चारों ओर नाना रङ्गों की पताकायें उड़ रही थीं कदली वृक्ष रोपण करके उनके ऊपर आम के पत्ते बाँध दिये गये थे ॥ २९४ ॥ उसी समय श्रीशची माता पतिव्रता गण को साथ लेकर परम आनन्द युक्त होकर लोकाचार करने लगी ॥ २९५ ॥ प्रथम परम प्रसन्न-चित्त से श्रीगङ्गाजी का पूजन करके बाजों की घोर के साथ श्रीषष्ठी देवी के मन्दिर को गईं ॥ २९६ ॥ वहाँ श्रीषष्ठी पूजन करके अपने बन्धुओं के प्रत्येक घर पर लोकाचार करती हुईं अपने घर लौटीं ॥ २९७ ॥ यहाँ आकर स्त्री-गण को खील,केला,तेल, पान एवं सिंदूर दे देकर उनको प्रसन्न कर रही थीं ॥ २९८ ॥ प्रभु के प्रभाव से द्रव्य [वस्तुएँ] असीम हो गईं थीं, श्रीशची 'मा' भी सबको पाँच-पाँच, सात-सात बार दे रही थी ॥ २९९ ॥ सब स्त्रियाँ तेल में नहा गईं थीं ऐसी कोई भी स्त्री नहीं थी जो अपने मन में भरपूर सन्तुष्ट न हुई हो ॥ ३०० ॥ इसी प्रकार श्रीविष्णु प्रिया की माताजी भी अपने यहाँ प्रफुल्ल चित्त से महा आनन्द मना रही थी ॥ ३०१ ॥ यहाँ श्रीराज-पण्डित जी चित्त के उल्लास में आकर सब कुछ निक्षेप कर महा आनन्द सागर में प्रवाहित हो रहे थे ॥ ३०२ ॥ इधर श्रीगौर सुन्दर सब विधि-कर्म पूर्ण करके जब अवसर पाकर थोड़ी देर बैठे ॥ ३०३ ॥ तब परम नम्रता पूर्वक विप्र वर्ग को भोजन एवं वस्त्र देकर उन्हें प्रसन्न करने लगे ॥ ३०४ ॥ जो जैसा पात्र था अथवा जिसको जैसा दान उचित था प्रभु उसी प्रकार से सब का सत्कार कर रहे थे ॥ ३०५ ॥ विप्रगण भी महा प्रीतिपूर्वक भोजन करके आशीर्वादें देकर अपने-अपने घरों को गये ॥ ३०६ ॥ जब तृतीय प्रहर का समय हुआ तो सब लोग आकर प्रभु की वेश-रचना करना प्रारम्भ करने लगे ॥३०७॥ आपके समस्त श्रीअङ्ग में चन्दन अनुलेपित कर

अर्द्ध चन्द्राकृति करि ललाटे चन्दन । तथि मध्ये गन्धेर तिलक सुशोभन ॥३०६॥
अद्भुत मुकुट शोभे शिरेर ऊपर । सुगन्धि मालाय पूर्ण हैल कलेवर ॥३१०॥
दिव्य सूक्ष्म पीत वस्त्र त्रिकच्छ विधाने । पराइया कज्वल दिलन श्री नयाने ॥३११॥
धान्य दूर्व्वा सूत्र करे करिया बन्धन । धरिते दिलेन रम्भा मञ्जरी दर्पण ॥३१२॥
सुवर्ण कुण्डल दुइ श्रुति मूले साजे । नवरत्न हार वान्धि लेन बाहु माझे ॥३१३॥
एइ मत जे जे शोभा करे जे जे अङ्गे । सकल घटना सभे करिलेन रङ्गे ॥३१४॥
ईश्वरेर मूर्त्ति देखि जत नर नारी । मुग्ध हइलेन सभे आपना पासरि ॥३१५॥
प्रहरेक बेला आछे हेनइ समय । सभेइ बोलेन 'शुभ कराह विजय ॥३१६॥
प्रहरेक सर्व्व नवद्वीपे बेडाइया । कन्या घरे जाइवेन गोधूलि करिया ॥३१७॥
तबे दिव्य दोला साजि बुद्धिमन्त खान । हरिषे आनिजा करिलेन उपस्थान ॥३१८॥
वाद्य गीते उठिल परम कोलाहल । विप्र गणे करे वेद-ध्वनि सुमङ्गल ॥३१९॥
भाट गणे पढ़िते लागिल राइवार । सर्व्व दिके हइल आनन्द अवतार ॥३२०॥
तबे प्रभु जननीरे प्रदक्षिणा करि । विप्र गणे नमस्करि बहुमान्य करि ॥३२१॥
दोलाय वसिला श्रीगौराङ्ग महाशय । सर्व्व दिके उठिल मङ्गल जय जय ॥३२२॥
नारी गण दिते लागिलेन जय कार । शुभ-ध्वनि वइ कोनो दिके नाहिं आर ॥३२३॥
प्रथमे विजय करिलेन गङ्गातीरे । पूर्ण चन्द्र धरिलेन शिरेर उपरे ॥३२४॥

बीच-बीच में इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य लगाते थे ॥३०८॥ ललाट प्रदेश में अर्द्ध-चन्द्र की आकृति का चन्दन रचना कर उसके बीच में सुगन्धित कर्पूर, केशर आदि वस्तुओं का मिश्रित तिलक सुशोभित किया ॥३०९॥ सिर के ऊपर अद्भुत शोभाशाली मुकुट सजाया, सुगन्धित मालाओं द्वारा आपके गल देश एवं वक्षस्थल को परिपूर्ण कर दिया ॥ ३१० ॥ त्रिकच्छ विधान से दिव्य, सूक्ष्म एवं पीली धोती पहनाकर श्रीनयनों में काजल लगाया ॥ ३११ ॥ एक सूत्र में धान एवं दूब बाँधकर फिर उसको आपके हाथ में बाँधा व केले की मञ्जरी और दर्पण हाथ में रखने के लिये दिये ॥ ३१२ ॥ दोनों कर्ण-मूलों में दो सोने के कुण्डल सजाकर पहनाये बाहुओं में नवीन-नवीन रत्नों के हार के केयूर बाँध दिये ॥ ३१३ ॥ इसी प्रकार जो वस्तु व अलङ्कार जिस-जगह फब सकते थे रङ्ग पूर्वक वह सब वस्तुएँ व अलङ्कार वहीं-वहीं संयोजित किये ॥ ३१४ ॥ प्रभु की मूर्त्ति के दर्शन करके सब नर-नारी अपने को भूलकर मुग्ध हो रहे थे ॥३१५॥ जब लगभग एक प्रहर समय अवशेष जाना, उस समय सब लोगों ने कहा कि-'अब विश्वम्भरचन्द्र की शुभ-विजय (यात्रा) कराओ ॥ ३१६ ॥ लगभग एक पहर नवद्वीप में घूम कर गोधूलि के समय कन्या के घर पहुँचना है ॥ ३१७ ॥ तब श्रीबुद्धिमन्त खान ने एक दिव्य पालकी सजवाकर आनन्द-पूर्वक लाकर उपस्थित की ॥ ३१८ ॥ उस समय वाद्यों एवं गीतों द्वारा परम कोलाहल उठ खड़ा हुआ विप्र-गण सुमङ्गल वेद-ध्वनि करने लगे ॥ ३१९ ॥ राय-भाट-गण स्तुति गान करने लगे इस प्रकार चारों ओर आनन्द का अवतरण हुआ ॥३२०॥ तब प्रभु श्रीगौराङ्ग महाशय माताजी की परिक्रमा करके व परम सत्कार पूर्वक विप्र-गण को नमस्कार करके पालकी में विराजे और चारों ओर मङ्गलमयी जय-जय की ध्वनि उमड़ पड़ी ॥ ३२१-३२२ ॥ नारीगण भी जय जयकार करने लगी; शुभ ध्वनियों

सहस्र-सहस्र दीप लागिला ज्वलिते । नाना विध बाजि सब लागिल करिते ॥३२५॥
आगे जत पदातिक बुद्धिमन्त खाँर । चलिला हइया दुइ सारि पाटोयार ॥३२६॥
नाना-वर्णे पताका चलिल तार पाछे । विदूषक सकल चलिला नाना-काचे ॥३२७॥
नर्त्तक वा ना जानि कतेक सम्प्रदाय । परम उल्लासे दिव्य नृत्य करि जाय ॥३२८॥
जय ढाक,वीर ढाक, मृदङ्ग काहाल । पटह, दगड, शङ्ख, बंशी, करताल ॥३२९॥
वरगों, शिङ्गा, पञ्च शब्दी,वाद्य बाजे जत । के लिखिबे वाद्य-भाण्ड बाजि जाय कत॥३३०॥
लक्ष लक्ष शिशु वाद्य-भाण्डेर भितरे । रङ्गे नाचि जाय, देखि हासेन ईश्वरे ॥३३१॥
से महा कौतुक देखि शिशुर कि दाय । ज्ञानवान सभे लज्जा छाड़ि नाचि जाय ॥३३२॥
प्रथमे आसिया गङ्गा-तीरे कथो क्षण । करिलेन नृत्य-गीत-आनन्द-बाजन ॥३३३॥
तबे पुष्प वृष्टि करि गङ्गा नमस्करि । अमेन कौतुके सर्व्व-नवद्वीप पुरी ॥३३४॥
देखि अति अमानुषी विवाह-सम्भार । सर्व्व लोक चित्ते महा पाय चमत्कार ॥३३५॥
'बड़ बड़ विवाह देखियाछि' लोके वले । 'ए मत समृद्ध नाहि देखि कोनो काले' ॥३३६॥
एइ मत स्त्री पुरुषे प्रभुरे देखिया । आनन्दे भासये सब सुकृति नदिया ॥३३७॥
सभे जार रूपवती कन्या आछे घरे । सेइ सव विप्र सभे विमरिष करे ॥३३८॥
'हेन वरे कन्या नाहि पारिलाङ दिते । आपनार भाग्य नाहि, हइब केमते' ॥३३९॥

के अतिरिक्त किसी ओर कभी अन्य कोई शब्द सुनने में नहीं आता था ॥ ३२३ ॥ प्रथम प्रभु ने श्रीगङ्गा-तट की यात्रा की, पूर्ण चन्द्रमा के आकार का मुकुट [मौहर] सिर पर धारण कर रक्खा है ॥ ३२४ ॥ सहस्रों-सहस्रों मसालें जलने लगीं, सब नाना प्रकार की आतिशबाजी छोड़ने लगे ॥ ३२५ ॥ श्रीबुद्धिमन्त खान के जितने पैदल एवं शस्त्रधारी सिपाही थे आगे-आगे दो लाइनों में होकर चल रहे थे ॥ ३२६ ॥ उनके पीछे रङ्ग-बिरङ्गी पताकायें चल रहीं थीं—समस्त विदूषक [स्वांग] बना २ कर अनेक वेशों में चल रहे थे ॥ ३२७ ॥ और न जाने कितने सम्प्रदायों के [प्रकार के] नर्त्तक परम उल्लास पूर्वक दिव्य नृत्य करते हुए चलते थे॥३२८॥ जय ढाक, वीर ढाक, मृदङ्ग, काहाल, पटह, दुन्दुभि, शङ्ख, बंशी, करताल, वरगों, शिङ्गा, पञ्च शब्दी आदि जितने प्रकार के बाजे बजते चलते थे उनकी गणना करके लिखा नहीं जा सकता था ॥३३०॥बाजों के बीच में लाखों-लाखों शिशु अपूर्व रङ्ग दिखलाते हुए नाचते चलते थे उनको देख कर प्रभु हँसते जाते थे ॥ ३३१ ॥ उस महा कौतुक को देखकर शिशुओं की तो क्या चले बड़े २ ज्ञानवान् भी लज्जा त्याग कर नाचने लगते थे ॥३३२॥प्रथम श्रीगङ्गा तट पर आकर कुछ समय आनन्द-प्रद नृत्य-गीत एवं बाजों की ध्वनि करते रहे ॥३३३॥ तत्पश्चात् पुष्प-वृष्टि करके एवं श्रीगङ्गा जी को नमस्कार करके आनन्द पूर्वक सब नवद्वीप पुरी का भ्रमण किया ॥ ३३४ ॥ इस अमानुषी विवाह के ठाट-बाट को देखकर सब लोगों के चित्त में परम आश्चर्य होता था ॥ ३३५ ॥ वे कहते थे कि—'हमने बड़े-बड़े विवाह देखे हैं, परन्तु इस प्रकार का समृद्धशाली विवाह किसी काल में भी हमने नहीं देखा' ॥ ३३६ ॥ इस प्रकार श्रीनवद्वीपवासी सुकृतिवान् सब स्त्री-पुरुष प्रभु को देख-कर आनन्द में भास रहे थे ॥३३७॥ वह सब विप्र जिनके घरों में रूपवती कन्यायें थीं वे मन में कुछ दुःख करते थे कि ॥ ३३८ ॥ हम ऐसे वर को अपनी कन्या नहीं दे सके, अपने भाग्य में नहीं था, होता किस प्रकार

नवद्वीप वासीर चरणे नमस्कार । ए सब आनन्द देखिवारे शक्ति जार ॥३४०।
एइ मत रङ्गे प्रभु नगरे नगरे । भ्रमेन कौतुके सर्व्व नवद्वीप पुरे ॥३४१॥
गोधूलि समय आसि प्रवेश हइते । आइलेन राज पण्डितेर मन्दिरेते ॥३४२॥
महा जय जयकार लागिल हइते । दुइ वाद्य भाण्डवादे लागिल वाजिते ॥३४३॥
परम सम्भ्रमे राज पण्डित आसिया । दोला हैते कोले करि वसाइला निञा ॥३४४॥
पुष्प बृष्टि करिलेन सन्तोषे आपने । जामाता देखिया हर्षे देह नाहि जाने ॥३४५॥
तवे वरणेर सज्ज सामिग्री लइया । जामाता वरिते विप्र वसिला आसिया ॥३४६॥
पाद्य, अर्घ्य, आचमनी, वस्त्र, अलङ्कार । यथाविधि दिया कैल वरण व्यभार ॥३४७॥
तवे तान पत्नी नारी गणेर सहिते । मङ्गल विधान आसि लागिला करिते ॥३४८॥
धान्य दूर्व्वा दिलेन प्रभुर श्रीमस्तके । आरति करिया सप्त-घृतेर प्रदीपे ॥३४९॥
खइ कड़ि फेलि करिलेन जय कार । एइ मत जत किछु करि लोकाचार ॥३५०॥
तवे सर्व अलङ्कारे भूषित करिया । लक्ष्मी देवी आनिलेन आसने धरिया ॥३५१॥
तवे हर्षे प्रभुर सकल आप्त गणे । प्रभुरेओ तुलिलेन धरिया आसने ॥३५२॥
तवे मध्ये अन्तःपट धरि लोकाचारे । सप्त प्रदक्षिण कराइलेन कन्यारे ॥३५३॥
तवे लक्ष्मी प्रदक्षिण करि सात वार । रहिलेन सम्मुखे करिया नमस्कार ॥३५४॥
तवे पुष्प केला फेलि लागिल हइते । दुइ वाद्य भाण्ड महा लागिल वाजिते ॥३५५॥

॥ ३३९ ॥ श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि–श्रीनवद्वीपवासियों के चरणों में मेरा नमस्कार है जिनको यह सब आनन्द देखने की शक्ति थी एवं है ॥३४०॥ इसी प्रकार से प्रभु रङ्ग पूर्वक व आनन्दित हुए श्रीनवद्वीपपुरी के [नौ नगरों के बाजारों में] प्रत्येक मुहल्ले में भ्रमण करने लगे ॥ ३४१ ॥ गोधूलि समय [प्रवेश होते-होते चाहता है कि] प्रभु श्रीराज पण्डित के घर पर पहुँच गये ॥ ३४२ ॥ उस समय महा जय-जयकार होने लगा दोनों ओर के बाजे स्पर्द्धा से बज रहे थे ॥ ३४३ ॥ राज-पण्डित जी ने परम शीघ्रता पूर्वक आकर प्रभु को पालकी से स्वयं गोद में लेकर उतार कर बिठलाया ॥ ३४४ ॥ और प्रसन्न होकर आप स्वयं पुष्प-वृष्टि करने लगे, जामाता को देखकर हर्ष के कारण देह-ज्ञान नहीं रहा ॥ ३४५ ॥ पश्चात् 'वरण' की सामिग्री लेकर श्रीराज-पण्डित आकर जामाता को वरण करने के लिये बैठे ॥ ३४६ ॥ और यथा-विधि पाद्य, अर्घ्य, आचमनी, वस्त्र एवं अलङ्कार आदि देकर 'वरण' व्यवहार सम्पन्न किया ॥ ३४७ ॥ पश्चात् उनकी पत्नी नारी-गण के साथ आकर मङ्गल विधान करने लगीं ॥ ३४८ ॥ प्रथम प्रभु के श्रीमस्तक में धान एवं दूब दी, फिर सात घी के दीपकों से आरती करके खील एवं कौड़ी गिरा कर जय-जयकार किया; इसी प्रकार सब लोकाचार करके ॥३४९–३५०॥ पश्चात् लक्ष्मी देवी को सब अलङ्कारों से भूषित करके आसन पर बैठाकर विवाह मण्डप में ले आईं उधर प्रभु के आत्मीय-जन हर्ष पूर्वक प्रभु को भी आसन पर बैठाकर ऊपर उठा लिया॥ ३५१-३५२॥ पश्चात् लोकाचार के अनुसार लोगों एवं वर-कन्या के बीच में १ पर्दा लगाकर कन्या द्वारा वर की सात परिक्रमा कराईं ॥ ३५३ ॥ तब लक्ष्मी जी सात प्रदक्षिणायें पूर्ण करके नमस्कार पूर्वक प्रभु के सम्मुख खड़ी हो गईं ॥ ३५४ ॥ उस समय वर-कन्या के ऊपर पुष्प-वृष्टि होने लगी दोनों ओर के बाजे परम उच्च ध्वनि

चतुर्दिके स्त्री पुरुषे करे जय ध्वनि । आनन्द आसिया अवतरिला आपनि ।।३५६।।
आगे लक्ष्मी जगन्माता प्रभुर चरणे । माला दिया करिलेन आत्म समर्पणे ।।३५७।।
तबे गौर चन्द्र प्रभु ईषत् हासिया । लक्ष्मीर गलाय माला दिलेन तुलिया ।।३५८।।
तबे लक्ष्मी नारायणे पुष्प-फेला फेलि । करिते लागिला हइ महा-कुतूहली ।।३५९।।
ब्रह्मादि-देवता सब अलक्षित रूपे । पुष्प वृष्टि लागिलेन करिते कौतुके ।।३६०।।
'आनन्द बिवादे' लक्ष्मी-गणे प्रभु गणे । उच्चकरि वर कन्या तोले हर्ष मने ।।३६१।।
क्षणे जिने प्रभु-गणे, क्षणे लक्ष्मी-गणे । हासि हासि प्रभुरे बोलये सर्व्व जने ।।३६२।।
ईषत् हासिला प्रभु सुन्दर श्री मुखे । देखि सर्व्व लोक भासे परानन्द सुखे ।।३६३।।
सहस्र सहस्र महाताप दीप ज्वले । कर्णे किछु नाहि शुनि वाद्य कोलाहले ।।३६४।।
मुख चन्द्रिकार महा वाद्य जय ध्वनि । सकल ब्रह्माण्ड स्पर्शिलेक हेन शुनि ।।३६५।।
हेन मते श्री मुख-चन्द्रिका करि रङ्गे । बसिलेन श्री गौर सुन्दर लक्ष्मी सङ्गे ।।३६६।।
तबे राज पण्डित परम हर्ष मने । बसिलेन करिबारे कन्या सम्प्रदाने ।।३६७।।
पाद्य अर्घ्य आचमनी यथा-विधि मते । क्रियाकरि लागिलेन सङ्कल्प करिते ।।३६८।।
विष्णु प्रीति काम्य करि श्रीलक्ष्मीर पिता । प्रभुर श्रीकरे समर्पिलेन दुहिता ।।३६९।।
तबे दिव्य-धेनु, भूमि शय्या, दासी, दास । अनेक जौतुक दिया करिला उल्लास ।।३७०।।
लक्ष्मी बसाइलेन प्रभुर बाम पाशे । होम कर्म्म करिते लागिला तबे शेषे ।।३७१।।

के साथ बजने लगे ।। ३५५।। चारों ओर से स्त्री-पुरुष 'जय' जय' की ध्वनि करते थे, ज्ञात होता था, मानो आनन्द ही स्वयं आकर अवतीर्ण हुआ है ।।३५६।। प्रथम जग-माता लक्ष्मी देवी ने प्रभु के श्रीचरणों में माला देकर आत्म-समर्पण किया ।। ३५७ ।। पश्चात् श्रीगौरचन्द्र तनक हँसते हुए वह माला उठाकर लक्ष्मी जी के गले में दे दी ।। ३५८ ।। पश्चात् (मध्य में रक्खी हुई फूलों भरी थाली में पुष्प ले लेकर) परम आनन्द पूर्वक 'लक्ष्मी-नारायण' परस्पर एक दूसरे के ऊपर पुष्प-वृष्टि करने लगे ।। ३५९ ।। उस समय ब्रह्मा आदि देवता भी अलक्षित रूप से कौतुक पूर्वक पुष्प-वृष्टि करने लगे ।। ३६० ।। पश्चात् 'आनन्द बिवाद' होने लगा, जिसमें लक्ष्मी जी के पक्ष वाले लक्ष्मी जी को और प्रभु के पक्ष वाले प्रभु को श्रेष्ठतम् पदवी पर बिठलाते थे ।।३६१।। कभी वर-पक्ष जीत जाता तो कभी कन्या-पक्ष । जब कन्या-पक्ष की जीत होती तो सब जन (युवतियाँ) हँस-हँस कर प्रभु से बातें हँसी की करती थीं ।। ३६२ ।। उस समय प्रभु सुन्दर श्रीमुख से ईषत् [तनिक] हँस देते उसको देखकर सब लोग परम-आनन्द-सुख में प्रवाहित होते थे ।। ३६३ ।। हजारों-हजारों महाप्रकाशमान मसालें जल रही थीं, बाजों के कोलाहल में कानों से कुछ सुनाई नहीं देता था ।। ३६४ ।। 'मुख-चन्द्रिका' के समय बाजों की एवं जयकारों की महाध्वनि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को स्पर्श करने वाली हो रही थी ।। ३६५ ।। इस प्रकार श्रीगौर सुन्दर रङ्गपूर्वक 'मुख-चन्द्रिका' करके श्रीविष्णु-प्रिया जी के साथ बैठे ।। ३६६ ।। तब श्रीराज-पण्डित परम प्रसन्न मन से 'कन्या-दान' के लिये बैठे ।। ३६७ ।। यथाविधि पाद्य, अर्घ्य, आचमन की क्रिया पूर्ण करके संकल्प करने लगे ।। ३६८ ।। श्रीविष्णु प्रिया जी के पिता ने बिष्णु-प्रीति की कामना करके प्रथम अपनी पुत्री को प्रभु के श्रीकरों में समर्पण किया ।। ३६९ ।। पश्चात् दिव्य-दिव्य गौऐं, भूमि, शय्या, दासी

वेदाचार लोकाचार जत किछु आछे। सब करि वर-कन्या घरे निला पाछे ।।३७२।।
वैकुण्ठ हइल राज-पण्डित आवासे। भोजन करिते जाइ बसिलेन शेषे ।।३७३।।
भोजन करिया सुख रात्रि सुमङ्गले। लक्ष्मी-कृष्ण एकत्र रहिलेन कुतूहले ।।३७४।।
सनातन पण्डितेर गोष्ठीर सहिते। जे सुख हइल, ताहा, के पारे कहिते ।।३७५।।
नग्नजित, जनक, भीष्मक, जाम्बुवन्त। पूर्व्वे ताना जे हेन हइल भाग्यवन्त ।।३७६।।
सेइ भाग्य एवे गोष्ठी सह सनातन। पाइलेन पूर्व्वे विष्णु-सेवार कारण ।।३७७।।
तवे रात्रि प्रभाते जे छिल लोकाचार। सकल करिला सर्व्व भुवनेर सार ।।३७८।।
अपराह्ने गृहे आसिवार हैल काल। वाद्य नृत्य गीत हैते लागिल विशाल ।।३७९।।
चतुर्दिके जय-ध्वनि लागिल हइते। नारी गणे जयकार लागिलेन दिते ।।३८०।।
विप्रगण आशीर्व्वाद लागिला करिते। यात्रा योग्य श्लोक सभे लागिला पढ़िते ।।३८१।।
ढाक, पढ़ा, सानाजि, वरगों, करताल। अन्योऽन्येवाद करि वाजाय विशाल ।।३८२।।
तवे प्रभु नमस्करि सर्व्व मान्य गण। लक्ष्मी सङ्गे दोलाय करिला आरोहन ।।३८३।।
हरि हरि वलि तवे करि जय ध्वनि। चलिलेन लइया द्विजेन्द्र-कुल-मणि ।।३८४।।
पथे जत लोक देखे चलिया आसिते। धन्य धन्य प्रशंसे सभेइ बहु मते ।।३८५।।
स्त्रीगण देखिया बोले 'एइ भाग्यवती। कत जन्म सेविलेन कमला पार्व्वती ।।३८६।।

एवं दास आदि अनेक दहेज में देकर उल्लास मनाने लगे ।। ३७० ।। तब विष्णु-प्रियाजी के वाम भाग बैठाया पश्चात् होम-कर्म किया ।। ३७१ ।। सब वेदाचार एवं लोकाचार पूर्ण करके फिर वर व कन्या को घर में ले गये ।। ३७२ ।। श्रीराज पण्डित का घर वैकुण्ठ हो रहा था पश्चात् अन्त में वर-कन्या भोजन करने के लिये जाकर बैठे ।। सुख पूर्वक भोजन करके लक्ष्मी जी एवं श्रीकृष्ण ने आनन्द, उल्लास के साथ रात्रि में एक ही जगह वास किया ।। ३७४ ।। श्रीसनातन पण्डित को निज बन्धु-बान्धवों के सहित जो सुख हुआ है उसे कौन वर्णन कर सकता है ? ।। ३७५ ।। पूर्व काल में नग्नजित, जनक, भीष्मक एवं जाम्बुवन्त जितने भाग्यशाली हुए ।। ३७६ ।। उतना ही सौभाग्य निज आत्मीय जनों के सहित श्रीसनातन जी को पूर्व जन्म की श्रीविष्णु-सेवा के कारण प्राप्त हुआ।।३७७।।पश्चात् प्रभात कालीन रात्रि के अवसर में जो लोकाचार उन्हें किया।।३७८।। जब तीसरे पहर घर आने की वेला आई है तब विशाल वाद्य, नृत्य एवं गीत फिर आरम्भ हुए ।। ३७९ ।। चारों ओर में 'जय' 'जय' की ध्वनि होने लगी। स्त्रीगण भी 'जय' 'जयकार' करने लगे ।। ३८० ।। विप्र-गण आशीर्वाद करने लगे और सब ही पण्डित-गण यात्रा के योग्य श्लोक पाठ करने लगे। बाजे वाले परस्पर में स्पर्द्धा के साथ ढाक (ढोल) पड़ा (पड़व-ताशे) शहनाई, वरगों (तुरही) एवं करताल आदि बाजों को विशाल ध्वनि के साथ बजाते थे ।।३८२।। तब प्रभु सब माननीय-वृन्द को नमस्कार करके लक्ष्मी जी के सहित पालकी में विराजे ।। ३८३ ।। 'हरि'-'हरि' एवं 'जय'-'जय' की ध्वनियाँ करके द्विजेन्द्र-कुल-मणि श्रीगौरचन्द्र को लेकर चले ।। ३८४ ।। पथ में जितने लोग प्रभु को जाते हुए देखते थे वह सभी अनेक प्रकार से इनकी प्रशंसा करते थे ।। ३८५ ।। स्त्रीगण देखकर कहती थीं कि—'इस भाग्यवती ने न जाने कितने जन्म पर्यन्त लक्ष्मी जी एवं पार्वती जी की सेवा की है' ।। ३८६ ।। कोई कहती कि—'ऐसा मालूम होता है कि–यही श्रीमहेश व पार्वती

केह बोले 'एइ हेन बुझि हर गौरी' । केह बोले 'हेन बुझि कमला श्री हरि' ॥३८७॥
केहो बोले 'एइ दुइ—कामदेव-रति । केहो बोले 'इन्द्र-शची लय मोर मति' ॥३८८
केह बोले 'हेन बुझि रामचन्द्र-सीता' । एइ मत बोले सर्व्व सुकृति वनिता ॥३८९॥
हेन भाग्यवन्त स्त्री पुरुष नदियार । ए सब सम्पत्ति देखिवारे शक्ति जार ॥३९०॥
लक्ष्मी नारायणेर मङ्गल-दृष्टिपाते । सुख मय सर्व्व लोक हैल नदियाते ॥३९१॥
नृत्य, गीत, वाद्य, पुष्प वर्षिते वर्षिते । परम आनन्दे आइसेन सर्व्व-पथे ॥३९२॥
तवे शुभ क्षणे प्रभु सकल मङ्गले । आइलेन गृहे लक्ष्मी-कृष्ण कुतूहले ॥३९३॥
गृहे आसि वसिलेन लक्ष्मी-नारायण । जय ध्वनि मय हैल सकल भुवन ॥३९४॥
कि आनन्द हइल से अकथ्य कथन । से महिमा कोन जने करिव वर्णन ॥३९५॥
जाहार मूर्त्तिर विभा देखिले नयने । सर्व्व-पाप युक्तो जाय वैकुण्ठ-भुवने ॥३९६॥
से प्रभुर विभा लोक देखये साक्षाते । तेञि तान नाम दयामय दीनानाथे ॥३९७॥
तवे जत नट, भाट, भिक्षुक गणेरे । तुषिलेन वस्त्र-धन वचने सभारे ॥३९८॥
विप्रगण-आप्त गण सभारे प्रत्येके । आपने ईश्वर वस्त्र दिलेन कौतुके ॥३९९॥
बुद्धिमन्त खाने प्रभु दिला आलिङ्गन । ताहान आनन्द अति अकथ्य कथन ॥४००॥
ए सब लीलार कभु नाहि परिच्छेद । 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' सबे कहे वेद ॥४०१॥

हैं' । कोई कहती कि—उसको तो ऐसा समझ पड़ता है कि—'यह श्रीलक्ष्मी-नारायण हैं' ॥ ३८७ ॥ कोई कहती थी 'यह दोनों कामदेव व रति हैं' और कोई कहती थी—'मेरी बुद्धि के अनुसार तो यह इन्द्र-शची हैं' ॥३८८॥ कोई कहती थी कि—'यह तो ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे श्रीरामचन्द्र व सीताजी हों' तब सुकृति-शीला वनिताएँ इसी प्रकार से अपनी-अपनी मति के अनुसार कहती थीं ॥ ३९० ॥ श्रीनवद्वीप के ऐसे भाग्यवान् स्त्री-पुरुष हैं, जिनमें यह सब सम्पत्ति देखने की शक्ति है ॥ ३९० ॥ लक्ष्मी-नारायण के शुभ दृष्टिपात से श्रीनवद्वीप के सब लोग सुखमय होगये ॥ ३९१ ॥ सब लोग सम्पूर्ण-पथ में नृत्य, गीत, वाद्य एवं पुष्प-वृष्टि करते-करते परम आनन्द पूर्वक चले आ रहे थे ॥ ३९१ ॥ पश्चात् सकल मङ्गल के साथ आनन्द पूर्वक लक्ष्मी-कृष्ण [श्री-विष्णु प्रिया-श्रीगौरचन्द्र] शुभ क्षण में घर के निकट आ पहुँचे ॥ ३९२ ॥ तब श्रीशची माता पतिव्रता स्त्री-गण साथ लेकर हृष्ट-चित्त से पुत्र एवं पुत्र-बधू को द्वार पर से घर लिवा लाईं ॥ ३९४ ॥ जब श्रीलक्ष्मी-नारायण घर में आकर बैठे उस समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में 'जय' 'जय' की ध्वनि गूँजने लगी ॥ ३९४ ॥ उस समय जो अद्भुत आनन्द हुआ वह अकथनीय है उस समय के सुख की महिमा को कौन मनुष्य वर्णन कर सकता है ॥ ? ३९५ ॥ जिसकी श्रीमूर्त्ति का विवाह भी नेत्रों से देख लेने पर सर्व-पाप युक्त भी श्रीवैकुण्ठ-धाम को जाता है ॥ ३९६ ॥ उसी प्रभु का विवाह लोग प्रत्यक्ष देखते थे (आश्चर्य) इसीलिये उनका नाम दयामय एवं दीनानाथ है ॥ ३९७ ॥ पश्चात् श्रीशची माता ने नट, भाट, भिक्षुक आदिकों को वस्त्र, धन एवं मीठी वाणी द्वारा प्रसन्न किया था ॥ ३९८ ॥ उधर विप्र-गण एवं आत्मीय बन्धु-बान्धवों को प्रभु स्वयं अपने हाथों से वस्त्र दे देकर उन्हें प्रसन्न कर रहे थे ॥ ३९९ ॥ श्रीबुद्धिमन्त खान को प्रभु ने आलिङ्गन दिया उसका आनन्द भी अति अकथनीय है ॥ ४०० ॥ इन सब लीलाओं का कभी विराम नहीं है वेद केवल इनको

दण्डेके ए सब लीला जत हइयाछे । शत वर्षे ताहाके वर्णिब हेन आछे ? ॥४०२॥
नित्यानन्द स्वरूपेर आज्ञा करि शिरे । सूत्र-मात्र लिखि आमि कृपा अनुसारे ॥४०३॥
ए सब ईश्वर लीला जे पढ़े जे शुने । से अवश्य विहरये गौरचन्द्र सने ॥४०४॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जान । बृन्दावनदास तछु पद युगे गान ॥४०५॥

इति श्रीचैतन्य भागवते आदिखण्डे श्रीविष्णु-प्रिया-परिणय वर्णनं नाम
दशमोऽध्याय: ॥ १० ॥

एकादशोऽध्याय:

जय जय दीनबन्धु श्रीगौर सुन्दर । जय जय लक्ष्मीकान्त सभार ईश्वर ॥१॥
जय जय भक्त-रक्षा हेतु अवतार । जय सर्व्व काल सत्य कीर्त्तन-विहार ॥२॥
भक्त-गोष्ठी सहित गौराङ्ग जय जय । शुनिले चैतन्य-कथा भक्ति लभ्य हय ॥३॥
आदि खण्ड कथा अति अमृतेर धार । जहि गौराङ्गेर सर्व्व-मोहन विहार ॥४॥
हेन मते वैकुण्ठ नायक नवद्वीपे । गृहस्थ हइया पढ़ायेन विप्र रूपे ॥५॥
प्रेम-भक्ति-प्रकाश-निमित्त अवतार । ताहा किछु ना करेन इच्छा से ताँहर ॥६॥
अति परमार्थ-शून्य-सकल संसार । तुच्छ-रस विषये से आदर सभार ॥७॥
गीता भागयत वा पढ़ाय जे जे जन । ताराओ ना वोले ना बोलाये कीर्त्तन ॥८॥
हाथे तालि दिया वा सकल भक्त गण । आपना आपनि मेलि करेन कीर्त्तन ॥९।

आविर्भाव एवं तिरोभाव नाम से पुकारते हैं ॥ ४०१ ॥ इन सब लीला में से एक घड़ी के भीतर जितनी लीलायें हुईं, ऐसा कौन मनुष्य है जो उनको १०० वर्ष में भी वर्णन कर सके ? ॥४०२॥ श्रीनित्यानन्द स्वरूप की आज्ञा सिर पर धारण करके मैंने उनकी कृपा से ही प्रभु की लीला को सूत्र-मात्र से ही लिखा है ॥४०३॥ प्रभु की इन सब लीलाओं को जो पढ़ते एवं सुनते हैं वह मनुष्य अवश्य श्रीगौरचन्द्र के साथ विहार करते हैं ॥ ४०४ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को जान कर श्रीवृन्दावनदास उनके युगल चरणों में उनके गुण-गान करता है ॥ ४०५ ॥

हे दीनबन्धु श्रीगौर सुन्दर ! आपकी जय हो जय हो, हे लक्ष्मीकान्त ! हे सब प्राणियों के ईश्वर श्री-गौर सुन्दर ! आपकी जय हो, जय हो ॥ १ ॥ हे भक्त-रक्षा-हेतु अवतार धारण करने वाले प्रभो ! आपकी जय हो, जय हो । हे सर्व काल सत्य ! हे कीर्त्तन-विहारी ! आपकी जय हो ॥ २ ॥ हे श्रीगौर सुन्दर ! भक्त मण्डली के सहित आपकी जय हो, जय हो [हे भाई श्रोताओ !] श्रीचैतन्यचन्द्र की कथा श्रवण करने से भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ आदि खण्ड की कथा जिसमें श्रीगौरचन्द्र के सर्व-मुग्धकारी विहार वर्णन हैं, अति मधुर अमृत की धारा है ॥ ४ ॥ इस प्रकार श्रीवैकुण्ठ-नायक श्रीनवद्वीप में गृहस्थ होकर विप्ररूप से पढ़ाते हैं ॥ ५ ॥ यद्यपि आपने प्रेम-भक्ति का प्रकाश करने के लिये अवतार लिया है तो भी उस कार्य में से कुछ भी नहीं करते हैं यह आपकी इच्छा है ॥ ६ ॥ इस समय सकल संसार नितान्त धर्म-रहित है, सब लोग तुच्छ विषय-रस का आदर करते हैं ॥ ७ ॥ बहुत से आदमी ऐसे भी हैं, जो श्रीगीता एवं श्रीभागवत् रटाते

ताहाते ओ उपहास करये सभारे । इहारा कि कार्यें डाक छाड़े निरन्तरे ॥१०॥
आमि ब्रह्म आमातेइ वैसे निरञ्जन । दास-प्रभु भेद वा करेन कि कारण ॥११॥
संसारि सकल बोले 'मागिया खाइते । डाकिया बोलये हरि लोक जानाइते' ॥१२॥
'ए गुलार घर-द्वार फेलाइ भाङ्गिया' । एइ युक्ति करे सब-नदिया मिलिया ॥१३॥
शुनिञा पायेन दुःख सर्व्व भक्त-गणे । सम्भाषा करेन हेन ना पायेन जने ॥१४॥
शून्य देखे भक्त-गण सकल-संसार । हा कृष्ण ! बलिया दुःख भावेन अपार ॥१५॥
हेन काले तथाइ आइला हरिदास । शुद्ध विष्णु-भक्ति जार विग्रहे प्रकाश ॥१६॥
एबे शुन हरिदास ठाकुरेर कथा । जाहार श्रवणे कृष्ण पाइये सर्व्वथा ॥१७॥
बूढ़न ग्रामेते अवतीर्ण हरिदास । से भाग्ये से-सब-देशे कीर्त्तन-प्रकाश ॥१८॥
कथो दिन थाकिया आइला गङ्गातीरे । आसिया रहिला फुलियाय-शान्तीपुरे ॥१९॥
पाइया ताहान सङ्ग आचार्य गोसाञि । हुङ्कार करेन, आनन्देर अन्त नाञि ॥२०॥
हरिदास ठाकुरो अद्वैत देव सङ्गे । भासेन गोविन्द-रस-समुद्र तरङ्गे ॥२१॥
निरवधि हरिदास गङ्गा तीरे तीरे । भ्रमेन कौतुके कृष्ण बलि उच्च स्वरे ॥२२॥
विषय सुखेते विरक्तेर अग्र गण्य । कृष्ण नामे परिपूर्ण श्रीवदन धन्य ॥२३॥

हैं किन्तु वह भी श्रीहरि-कीर्त्तन न करते हैं और न कराते हैं ॥ ८ ॥ और यदि सब भक्त-गण आपस में मिलकर हाथों से ताली बजा-बजाकर कीर्त्तन भी करते हैं ॥ ९ ॥ तो उस पर भी वह लोग इन सब लोगों की हँसी उड़ाते हैं और कहते हैं कि–'यह लोग न मालूम क्यों निरन्तर चिल्लाते हैं ? ॥ १० ॥ 'हम ब्रह्म हैं और हमारे ही भीतर ब्रह्म का निवास है' फिर यह लोग न मालूम क्यों दास और प्रभु का भेद करते हैं' ? ॥११॥ संसारी सब मनुष्य भक्तों के प्रति कहते हैं कि–'यह लोग माँगने खाने व लोगों को जनाने के लिये चिल्ला-चिल्लाकर 'हरि' 'हरि' बोलते हैं ॥ १२ ॥ सब नवद्वीपवासी अभक्त-गण आपस में यह युक्ति करते हैं कि–'चलो भाई ! इन सब लोगों के घर-द्वार तोड़ फोड़कर फेंक दें' ॥ १३ ॥ इन बातों को सुन कर भक्त-गण मन में बड़े दुःखी होते हैं । वह किसी आदमी को भी इस योग्य नहीं देखते हैं जिससे कुछ सम्भाषण करलें॥१४॥ इस प्रकार भक्त-गण सब संसार को भक्ति-शून्य देखते हैं और हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! बोलकर मनों में अपार दुःखित हो रहे हैं ॥ १५ ॥ उसी समय वहाँ श्रीहरिदास 'ठाकुर' आये जिनके शरीर से शुद्ध विष्णु-भक्ति प्रकाशित होती थी ॥ १६ ॥ अब श्रीहरिदास ठाकुर का चरित्र सुनिये जिसके सुनने से निश्चय 'श्रीकृष्ण की प्राप्ति' होती है ॥ १७ ॥ श्रीहरिदास जी बूढ़न ग्राम में अवतीर्ण हुए थे, उन्हीं के कारण उस सब देश में अभी तक कीर्त्तन होता हुआ दृष्टि पड़ता है ॥ १८ ॥ कुछ दिन वहाँ रहकर श्रीगङ्गा-तट पर आये और शान्ति पुर के निकटवर्त्ती फुलिया नामक ग्राम में रहने लगे ॥१९॥ वहाँ उनका सङ्ग पाकर श्रीअद्वैताचार्य प्रभु के आनन्द की सीमा नहीं रही और वह प्रेम से हुङ्कार करने लगे ॥ २० ॥ श्रीहरिदास ठाकुर भी अद्वैताचार्य जी के सङ्ग श्रीगोविन्द-रस-समुद्र की तरङ्गों में प्रवाहित होते थे ॥ २१ ॥ श्रीहरिदास जी निरन्तर आनन्द पूर्वक श्रीगङ्गा जी के किनारे किनारे उच्च स्वर से 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलते हुए भ्रमण करते रहते थे ॥ २२ ॥ आप विषय-सुख से विरक्तों के अग्रगण्य थे, आपका श्रीमुख निरन्तर 'कृष्ण' नाम से भरपूर रहने के कारण धन्य है ॥ २३ ॥

क्षणेको गोविन्द नामे नाहिक विरति। भक्ति-रसे अनुक्षण हय नाना मूर्ति ।।२४।।
कखनो करेन नृत्य आपना आपनि। कखनो करेन मत्तसिंह प्राय ध्वनि ।।२५।।
कखनो वा उच्च स्वरे करेन रोदन। अट्ट अट्ट महा हास्य हासेन कखन ।।२६।।
कखनो गर्ज्जेन अति हुङ्कार करिया। कखनो मूर्च्छित हइ थाकेन पड़िया ।।२७।।
क्षणे अलौकिक-शब्द बोलेन डाकिया। क्षणे ताहि वाखानेन उत्तम करिया ।।२८।।
अश्रु-पात, रोमहर्ष, हास्य, मूर्च्छा घर्म्म। कृष्ण-भक्ति विकारेर जत आछे मर्म्म ।।२६।।
प्रभु हरिदास मात्र नृत्ये प्रवेशिले। सकल आसिया तान श्रीविग्रहे मिले ।।३०।।
हेन से आनन्द धारा तिते सर्व्व अङ्ग। अति पाखण्डिओ देखि पाय महा रङ्ग ।।३१।।
किबा से अद्भुत अङ्गे श्रीपुलकावलि। ब्रह्मा शिवो देखिया हयेन कुतूहली ।।३२।।
फुलिया ग्रामेर जत ब्राह्मण-सकल। सभेइ ताहाने देखि हइला विह्वल ।।३३।।
सभार ताहाने वड़ जन्मिल विश्वास। फुलियाये रहिलेन प्रभु हरिदास ।।३४।।
गङ्गा-स्नान करि निरवधि हरि नाम। उच्च करि लइया बुलेन सर्व्व स्थान ।।३५।।
काजि गिया मुलुकेर अधिपति स्थाने। कहि लेन ताहान सकल विवरणे ।।३६।।
जवन हइया करे हिन्दुर आचार। भाल मते तारे आनि करह विचार ।।३७।।
पापीर वचन शुनि सेह पाप मति। धरि आनाइल ताने अति शीघ्र गति ।।३८।।
कृष्णेर प्रसादे हरिदास महाशय। जवनेर कि दाय कालेरो नाहि भय ।।३६।।

क्षण भर के लिये भी कृष्ण नाम से विरति नहीं होती थी आप भक्ति-रस द्वारा निरन्तर अनेक रूपों में परिवर्तित होते रहते थे ।। २४ ।। कभी अपने आप ही नृत्य करते तो कभी मत्त सिंह की तरह गर्जना करते थे ।। २५ ।। कभी उच्च-स्वर से रोते व कभी खूब जोर से हँसते थे ।। २६ ।। कभी खूब जोर की हुङ्कार मार कर गर्जते थे, कभी मूर्च्छित होकर पड़ जाते थे ।। २७ ।। कभी चिल्लाकर कोई अलौकिक शब्द बोलते तो फिर कभी उसी शब्द की श्रेष्ठ व्याख्या करते थे ।। २८ ।। अश्रु, पुलक, हँसी, मूर्च्छा, प्रस्वेद आदि जो श्रीकृष्ण-भक्ति विकार के जितने मर्म हैं ।। २६ ।। श्रीहरिदास ठाकुर के नृत्य आरम्भ करते मात्र ही वह सब उनके श्रीअङ्ग में दिखाई देने लगते थे ।। ३० ।। ऐसी अद्भुत आनन्द धारा उठती थी कि—आपका सब शरीर तर हो जाता था और अति पाखण्डी को भी देखकर परम आश्चर्य होता था ।। ३१ ।। आपके श्रीअङ्ग में कैसी अद्भुत पुलकावलि होती थी कि—जिनको देखकर ब्रह्मा व शिवजी भी चकित हो जाते थे ।। ३२ ।। फुलिया ग्राम के सब ब्राह्मण लोग आपके गुणों को देखकर मुग्ध हो गये ।। ३३ ।। उन सब लोगों को आपके प्रति बड़ा विश्वास हो गया, इस प्रकार श्रीहरिदास ठाकुर को फुलिया में रहते हुए अनेक दिन व्यतीत हो गये ।। ३४ ।। आप श्रीगङ्गा-स्नान करके निरन्तर उच्च स्वर से 'श्रीहरि नाम' बोलते हुए सर्वत्र विचरण करते रहते थे।।३५।। एक दिन एक काजी ने उस देश के अधिपति के पास जाकर आपका सब विवरण उसको कह सुनाया ।। ३६ ।। 'हरिदास यवन होकर हिन्दुओं का सा आचरण करता है आप उसको बुलवाकर अच्छी तरह से उसका दण्ड-विधान कीजिये' ।। ३७ ।। पापी काजी के वचनों को सुन कर उस पाप-बुद्धि वाले देश-पति ने अति शीघ्रता पूर्वक आपको पकड़वे को बुलाया ।।३८।। कृष्ण-कृपा से श्रीहरिदास महाशय को यवन-राज की तो क्या चले

कृष्ण कृष्ण वलिते चलिला सेइ क्षणे । मुलुक पतिर द्वारे दिला दरशने ॥४०॥
हरिदास ठाकुरेर शुनि आगमन । हरिष विषाद हैल जत सुसज्जन ॥४१॥
बड़ बड़ लोक जत आछे बन्दि घरे । तारा सब हृष्ट हैला शुनिञा अन्तरे ॥४२॥
परम वैष्णव हरिदास महाशय । ताने देखि वन्दि-दुःख हइबेक क्षय ॥४३॥
रक्षक लोकेरे सभे साधन करिया । रहिलेन बन्दि गण एक दृष्टि हैया ॥४४॥
हरिदास ठाकुर आइला सेइ स्थाने । वन्दि-गण देखि कृपा दृष्टि हैल मने ॥४५॥
हरिदास ठाकुरेर चरण देखिया । रहिलेन बन्दि-गण प्रणति करिया ॥४६॥
आजानुलम्बित भुज, कमल-नयान । सर्व्व मनोहर मुख-चन्द्र अनुपाम ॥४७॥
भक्ति करि सभे करि लेन नमस्कार । सभार हैल कृष्ण-भक्तिर विकार ॥४८॥
ताहार सभार भक्ति देखि हरिदास । वन्दि सब प्रति करिलेन आशीर्व्वाद ॥४९॥
थाक थाक एखन आछह जेन रूपे । गुप्त आशीर्व्वाद करि हासेन कौतुके ॥५०॥
ना बुझिया तान अति दुर्ज्ञेय वचन । बन्दि सब हैला किछु विषादित मन ॥५१॥
तबे पाछे कृपा-युक्त हइ हरिदास । गुप्त आशीर्व्वाद कहे करिया प्रकाश ॥५२॥
'आमि तोमा' सभारे जे कैल आशीर्व्वाद । तार अर्थ ना बुझिया भावह विषाद ॥५३॥
मन्द आशीर्वाद आमि कखनो ना करि । मन दिया सभे इहा बुझह विचारि ॥५४॥
एबे कृष्ण प्रति तोमा सभा कार मन । जेन आछे एइ मत रहु सर्व्व क्षण ॥५५॥

काल का भी डर नहीं था ॥ ३९ ॥ वह तत्काल ही 'कृष्ण' 'कृष्ण' उच्चारण करते हुए चल दिये और थोड़ी देर में देश-पति के द्वार पर जा पहुँचे ॥ ४० ॥ श्रीहरिदास ठाकुर का आना सुनकर सब सुसज्जन लोग हर्ष एवं विषाद को प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ तथा वन्दि-घर में पड़े हुए सब बड़े-बड़े लोग मनमें प्रसन्न होते थे ॥ ४२ ॥ वह मन ही मन विचार करते थे कि—हरिदास महाशय परम वैष्णव हैं उनके दर्शन से हमारी जेल छूट जायगी ॥ ४३ ॥ वह वन्दि-गण (कैदी) अपनी देख भाल करने वाले अफसरों की थोड़ी सी मिनती करके आपकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगे ॥ ४४ ॥ पश्चात् श्रीहरिदास ठाकुर उनके पास पहुँचे तथा वन्दीगण को देखकर उनके मन में बड़ी दया आई ॥४५॥ श्रीहरिदास ठाकुर के चरण दर्शन कर बन्दि-गण उन्हें प्रणाम कर ही रह गये ॥ ४६ ॥ उनकी भुजाएँ जंघा तक लम्बी थीं, नेत्र कमल जैसे थे तथा सबके मन को हरने वाला अनौखा चन्द्रमा के समान मुख था ॥ ४७ ॥ सब ने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया तो उन सब में श्रीकृष्ण-भक्ति का उदय हो गया ॥ ४८ ॥ श्रीहरिदास जी ने सब की भक्ति देखकर प्रीति पूर्वक [बन्दियों को] आशीर्वाद दिया ॥ ४९ ॥ 'इस समय जिस रूप में हो वैसे ही रहो' यह गुप्त आशीर्वाद करके वे कौतुक पूर्वक हँसने लगे ॥ ५० ॥ उनके इस अति कठिनता से भी न समझ में आने वाले [दुर्ज्ञेय] वाक्य को न समझ पाकर बन्दी-जन मन में कुछ दुखी हुए ॥ ५१ ॥ तब पीछे से श्रीहरिदास जी ने कृपा करके अपने गुप्त आशीर्वाद को स्पष्ट करके कहा ॥५२॥ उन्होंने कहा कि—मैंने तुम्हारे लिये जो आशीर्वाद किया उसका तात्पर्य न जानकर तुम मन में दुखी हो रहे हो ॥ ५३ ॥ मैंने मन्द [कमजोर] आशीर्वाद कभी नहीं किया करता, तुम सब लोग इस बात को एकाग्र मन से समझो ॥ ५४ ॥ मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि—'इस समय तुम सबका मन जिस

एवे लञो कृष्ण नाम कृष्णेर चिन्तन । सभे मेलि करिते आछह अनुक्षण ॥५६॥
एवे हिंसा नाहि, नाहि प्रजार पीडन । 'कृष्ण' वलि काकुर्व्वादे करह चिन्तन ॥५७॥
आर बार गिया विषयेते प्रवर्त्तिले । सभे इहा पासरिवे, गेले दुष्ट मेले ॥५८॥
सेइ सब अपराध हैव पुनर्व्वार । विषयेर धर्म्म एइ शुन कथा सार ॥५६॥
'बन्दी थाक' हेन आशीर्व्वाद नाहि करि । विषय पासर, अहर्निश बोलो हरि ॥६०॥
छले करिलाङ आमि एइ आशीर्व्वाद । तिलार्द्धेक ना भाविह तोमरा विषाद ॥६१॥
सर्व्व-जीव प्रति दया दर्शन आमार । कृष्णे दृढ़ भक्ति हउ तोमरा सभार ॥६२॥
चिन्ता नाहि-दिन-दुइ-तिनेर भितरे । बन्धन घुचिव एइ कहिलुँ तोमारे ॥६३।
विषयेते थाक, किवा थाक यथा तथा । एइ बुद्धि कभो ना पासरिह सर्व्वथा ॥६४॥
बन्दि सकलेर करि शुभानुसन्धान । आइलेन मुलुकेर अधिपति स्थान ॥६५॥
अति मनोहर तेज देखिया ताहान । परम गौरबे वसिवारे दिला स्थान ॥६६
आपने जिज्ञासे ताने मुलुकेर पति । केने भाइ ! तोमार कि रूप देखि मति ॥६७॥
कत भाग्ये देख तुमि हयाछ जवन । तवे केने हिन्दुर आचारे देह मन ॥६८॥
आमरा हिन्दुरे देखि नाहि खाइ भात । ताहा तुमि छोड़ हइ महा वंश जात ॥६६॥
जाति-धर्म्म-लङ्घि कर अन्य व्यवहार । पर लोके के मते वा पाइवा निस्तार ॥७०॥

भाँति श्रीकृष्ण में लगा हुआ है इसी प्रकार से सर्वदा लगा रहे' ॥ ५५ ॥ इस समय तुम लोग कृष्ण नाम ले रहे हो तथा साथ-साथ कृष्ण-चिन्तवन भी कर रहे हो ॥ ५६ ॥ इसमें हिंसा नहीं है प्रजा का पीड़न भी नहीं है, इस समय तो तुम सब लोग 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहते हुए कार्पण्य युक्त हो [अनुनय-विनय पूर्वक] प्रभु का चिन्तवन कर रहे हो ॥ ५७ ॥ पश्चात् यहाँ से जाने पर विषयों में प्रवृत्ति होने के कारण, दुष्ट संग में पड़कर तुम सब ही इसे भूल जाओगे ॥ ५८ ॥ फिर वे ही सब अपराध तुमसे होंगे, सुनो ! बात यह है कि-विषयों का स्वाभाविक गुण-धर्म ऐसा है ॥ ५६ ॥ 'तुम बन्दी ही रहो' मैंने यह आशीर्वाद नहीं किया था। मैंने छल पूर्वक यह आशीर्वाद किया था कि-'तुम सब लोग इस समय की भाँति विषयों को भूलकर रात-दिन 'हरि' 'हरि' बोलते रहो।' उस बात से तुम लोग मनमें तनिक भी दुःख मत पाना ॥६०-६१॥ हमारी तो सब जीवों के प्रति दया-दृष्टि ही रहती है। तुम सबकी कृष्ण में दृढ़-भक्ति हो ॥ ६२ ॥ कोई चिन्ता की बात नहीं है, दो-तीन दिन के भीतर ही तुम्हारे बन्धन टूट जाँयगे, मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ६३ ॥ चाहे तुम विषयों के मध्य में रहना अथवा अन्य किसी स्थान पर या सङ्ग में, मैं यह चाहता हूँ कि-किसी भी अवस्था में तुम्हारी यह बुद्धि नष्ट न हो ॥ ६४ ॥ इस प्रकार श्रीहरिदास जी सब बन्दियों का शुभ अनुसन्धान करके देश-पति के पास पहुँचे ॥ ६५ ॥ देश-पति ने उनका अति मनोहर तेज देख कर, परम गौरव पूर्वक उनको बैठने के लिये आसन दिया ॥ ६६ ॥ स्वयं देश-पति आपसे पूँछने लगा कि-क्यों भाई ! हम तुम्हारी यह कैसी बुद्धि देखते हैं ? ॥ ६७ ॥ कितने भाग्य से तुम देखो ! यवन हुए हो, फिर तुम हिन्दुओं के आचरण करने में अपना मन क्यों लगाते हो ? ॥ ६८ ॥ हम लोग भी हिन्दू को देखकर भात नहीं खाते हैं जिसमें तुम तो बड़े खान्दान में से हो फिर तुम उस रीति को क्यों त्यागते हो ? ॥ ६६ ॥ जब तुम जाति-धर्म के विपरीत आचरण करते हो तो परलोक

ना जानिञा जे किछु करिला अनाचार । से पाप घुचाह करि *कलिमा उच्चार ॥७१॥
शुनि माया-मोहितेर वाक्य हरि दास । 'अहो विष्णु माया' बलि हैल महाहास ॥७२॥
बलिते लागिला तारे मधुर उत्तर । 'शुन बाप ! सभारइ एकइ ईश्वर ॥७३॥
नाम मात्र भेद करे हिन्दुये यवने । परमार्थे एक कहे कोराणे पुराणे ॥७४॥
एक शुद्ध नित्य वस्तु अखण्ड अव्यय । परिपूर्ण हइ बैसे सभार हृदय ॥७५॥
सेइ प्रभु जारे जेन लओयायेन मन । सेइ मत कर्म्म करे सकल-भुवन ॥७६॥
से प्रभुर नाम-गुण सकल जगते । बोलेन सकल मात्र निज शास्त्र मते ॥७७॥
जे ईश्वर से पुनि सभार भार लय । हिंसा करिले ओ से ताहान हिंसा हय ॥७८॥
एतेके आमारे से ईश्वर जेहेन । लओयाछेन चित्ते, करिं आमि तेन ॥७९॥
हिन्दु कुले केहो जेन हइया ब्राह्मण । आपनेइ गिया हय इच्छाय यवन ॥८०॥
हिन्दु वा कि करे तारे जार जेइ कर्म्म । आपने जे मैल तारे मारिया कि धर्म्म ? ॥८१॥
महाशय तुमि एबे करह विचार । जदि दोष थाके, शास्ति करह आमार' ॥८२॥
हरिदास ठाकुरेर सुसत्य वचन । शुनिञा सन्तोष हैल सकल यवन ॥८३॥
सबे एक पापी काजी मुलुक पतिरे । बलिते लागिला शास्ति करह इहारे ॥८४॥
एइ दुष्ट आरो दुष्ट करिव अनेक । यवन कुलेर अमहिमा आनिवेक ॥८५॥

में कैसे उद्धार पाओगे ? ॥ ७० ॥ अनजाने में जो कुछ अनाचार तुम से हो गया है, कलमा पढ़कर उसका प्रायश्चित कर लो ॥ ७१ ॥ माया से मोहित यवन-पति के वाक्यों को सुनकर श्रीहरिदास जी 'विष्णु-माया के लिये धन्य है' कहकर जोर से हँसे ॥७२॥ पश्चात् मधुर वाक्यों से उसको उत्तर देने लगे कि-'हे महाराज ! सुनिये, सब का एक ही ईश्वर है ॥ ७३ ॥ 'हिन्दू और मुसलमानों ने केवल नाम का भेद कर लिया है, वास्तव में कुरान एवं पुराण एक ही परमार्थ वस्तु का प्रतिपादन कर रहे हैं ॥ ७४ ॥ वह ईश्वर एक, शुद्ध, नित्य वस्तु, अखण्ड, अव्यय, परिपूर्ण होकर सबके हृदय में निवास करते हैं ॥ ७५ ॥ तब ब्रह्माण्डों में वही प्रभु जिसके मन को जिधर फेर देते हैं वह उसी प्रकार का कर्म करने लगता है ॥ ७६ ॥ उन प्रभु के नाम एवं गुण सब संसार के लोग अपने-अपने शास्त्र के अनुसार वर्णन करते हैं ॥ ७७ ॥ वह ईश्वर होकर भी सब प्राणियों का सब प्रकार का दायित्त्व अपने ऊपर लिये हुए हैं, इसलिये किसी प्राणी की हिंसा करना उन्हीं की हिंसा करना है ॥ ७८ ॥ इस प्रकार वह प्रभु मुझ से जिस प्रकार करा रहे हैं मैं भी उसी प्रकार कर रहा हूँ' ॥ ७९ ॥ जैसे कोई हिन्दू कुल का ब्राह्मण होकर अपनी इच्छा से जाकर मुसलमान हो जाय ॥ ८० ॥ तो हिन्दू उसका क्या करें ? 'जिसके जैसे कर्म्म हैं वह स्वयं उसको मार रहे हैं' फिर उसको और मारना क्या धर्म है' ॥ ८१ ॥ 'श्रीमान् जी अब आप सोचिये, यदि इसमें मेरा दोष हो तो दण्ड दीजिये' ॥ ८२ ॥ श्रीहरिदासजी के सुन्दर वचनों को सुनकर सब मुसलमान प्रसन्न हुए॥८३॥केवल एक पापी काजी देश-पति से कहने लगा कि-'इसको दण्ड दीजिये क्योंकि यह एक दुष्ट और अनेकों को भी दुष्ट बनावेगा इस रीति से यह यवन-कुल का नाश

* कलमा-कुरान शरीफ की एक आयत है, लाइलाइल्लिल्लाह मुहम्मदुर्रसूलल्लाह-अर्थात् ईश्वर एक है और मुहम्मद उसका रसूल (पैगम्बर) है ।

एतेके उहार शास्ति कर भाल मते । नहे वा आपन शास्त्र वलुक मुखेते॥८६॥
पुन बोले मुलुकेर पति 'आरे भाइ । आपनार शास्त्र बोल तबे चिन्ता नाञि ॥८७॥
अन्यथा करिब शास्ति सब काजी गणे । बलिबाओ पाछे आर लघु हैबा केने ? ॥८८॥
हरिदास बोलेन 'जे करान ईश्वरे । ताहा वइ आर केहो करिते ना पारे ॥८९॥
अपराध अनुरूप जार जेन फल । ईश्वर से करे इहा जानिह सकल ॥९०॥
खण्ड खण्ड हइ देह जदि जाय प्राण । तभो आमि वदने ना छाड़ि हरि नाम॥९१॥
शुनिञा ताहान वाक्य मुलुकेर पति । जिज्ञासिल 'एबे कि करिबा इहा प्रति' ॥९२॥
काजी बोले 'बाइश बाजारे निञा मारि । प्राण लह आर किछु विचार ना करि ॥९३॥
बाइश बाजारे मारिलेह यदि जीये । तबे जानि ज्ञानि सब साँचा कथा कहे' ॥९४॥
पाइक-सकले डाकि तर्ज्ज करि कहे । 'ए मत मारिबि जेन प्राण नाहि रहे ॥९५॥
जवन हइया जेन हिन्दुयानि करे । प्राणान्त हइले शेषे ए पापेते तरे' ॥९६॥
पापीर वचने सेह पापी आज्ञा दिल । दुष्ट गणे आसि हरिदासेरे धरिल ॥९७॥
बाजारे बाजारे सब बेढ़ि दुष्ट गणे । मारये निर्जीव करि महा क्रोध मने ॥९८॥
'कृष्ण' 'कृष्ण' स्मरण करेन हरिदास । नामानन्दे देह दुःख ना हय प्रकाश ॥९९॥
देखि हरिदास देहे अत्यन्त प्रहार । सज्जन सकल दुःख भावेन अपार ॥१००॥

कर देगा' ॥ ८४-८५ ॥ 'इसलिये इसको अच्छी प्रकार से दण्ड दीजिये, नहीं तो वह अपने मुँह से कुरान पाठ करे' ॥ ८६ ॥ तब देश-पति ने फिर कहा कि-'अरे भाई ! अपने शास्त्र का (कुरान) पाठ करो तो तुम्हारे लिये कोई चिन्ता की बात नहीं ॥८७॥ 'नहीं तो यह सब काजी लोग तुमको दण्ड देंगे । तब भी तो बोलना पड़ेगा फिर क्यों इस प्रकार नीचा दिखाते हो ?' ॥ ८८ ॥ श्रीहरिदास जी बोले कि जो ईश्वर कराते हैं वही होता है, उसके अतिरिक्त और कोई कुछ नहीं कर सकता' ॥ ८९ ॥ अपराध के अनुसार जिसका जो फल है वह ईश्वर ही देता है, यह सब ही जानते हैं ॥ ९० ॥ यदि मेरे शरीर के टुकड़े २ हो जाँय तथा प्राण भी चले जावें तब भी मैं अपने मुख से श्रीहरि नाम नहीं छोड़ूँगा ॥ ९१ ॥ उनके वाक्य सुनकर देश-पति (काजी से) पूछने लगा कि-'अब इसके प्रति क्या करना है ?' ॥ ९२ ॥ काजी ने कहा कि-अब और कुछ विचार नहीं करना है, उसको यहाँ के बाईसों बाजारों में घुमाते हुए मारते-मारते प्राण निकलवा दीजिये ॥ ९३ ॥ बाईस बाजारों में मारने पर भी यदि यह जीवित रह जाय तो समझेंगे कि—यह ज्ञानी है और सब सच्ची बातें कहता है ।॥ ९४ ॥ पश्चात् वह सब प्रहारियों को बुलाकर तर्ज कर बोला कि-'तुम लोग इसको इस प्रकार मारना जिससे इसके प्राण न रहें' ॥ ९५ ॥ 'मुसलमान होकर जो हिन्दुओं के से कर्म करता है-प्राणान्त होने पर इस पाप से छूट जावेगा' ॥ ९६ ॥ पापी काजी के कहने से उस पापी यवन पति ने भी आज्ञा दे दी तब दुष्ट गण ने आकर श्रीहरिदास जी को पकड़ लिया ॥ ९७ ॥ वे सब दुष्ट-गण उन्हें चारों ओर से घेरकर प्रत्येक बाजार में घुमाते हुए महा क्रोधित मन हो निर्जीव की तरह मारने लगे ॥ ९८ ॥ श्रीहरिदासजी निरन्तर 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोल रहे थे, श्रीहरि नाम के आनन्द में वे देह-दुःख प्रगट नहीं करते थे ॥ ९९ ॥ श्रीहरिदास जी के शरीर पर अत्यन्त प्रहार देखकर सब सज्जन वृन्द अपार दुःखित होते थे ॥ १०० ॥ उनमें से कोई

केहो बोले 'उभिष्ट हइब सर्व्व राज्य । से निमित्ते हेन सुजनेर हेन कार्य ॥१०१॥
राजा उजीरेरे केहो शापे क्रोध मने । मारा मारि करितेओ उठे कोनो जने ॥१०२॥
केहो गिया जवन गणेर पाये धरे । 'किछु दिव अल्प करि मारह उहारे' १०३॥
तथापिह दया नाहि जन्मे पापि गणे । बाजारे बाजारे मारे महा क्रोध मने १०४॥
कृष्णेर प्रसादे हरिदासेर शरीरे । अल्प दुःखो नाहि जन्मे एतेक प्रहारे ।१०५॥
असुर प्रहारे जेन प्रह्लाद विग्रहे । कोनो दुःख ना जन्मिल सर्व्व-शास्त्रे कहे ॥१०६॥
एइ मत यवनेर अशेष प्रहारे । दुःख ना जन्मये हरिदास ठाकुरेरे ॥१०७॥
हरि दास स्मरणेओ ए दुःख सर्व्वथा । छिराडे सेइ क्षणे, हरिदासेर कि कथा ॥१०८॥
सबे जे सकल पापि गण ताँ रे मारे । तार लागि दुःख मात्र भावेन अन्तरे ॥१०९॥
'ए सब जीवेरे कृष्ण ! करह प्रसाद । मोर द्रोहे नहु ए सभार अपराध' ॥११०॥
एइ मत पापि गण नगरे नगरे । प्रहार करये हरिदास ठाकुरेरे ॥१११॥
दृढ़ करि मारे तारा प्राण लइवारे । मनस्पथो नाहि हरिदासेर प्रहारे ॥११२॥
विस्मित हइया भावे सकल यवने । 'मनुष्येर प्राण कि रहे ए मारणे ॥११३॥
दुइ तिन बाजारे मारिले लोक मरे । बाइश बाजारे मारिलाङ जे इहारे ।।११४॥
मरे ओ ना आरो देखि हासे क्षणे क्षणे । ए पुरुष पीर वा' सभेइ भावे मने ॥११५॥

कहता कि-सब राज्य का नाश होने वाला है इसीलिये तो ऐसे सज्जन की ऐसी विक्रिया की जा रही है ॥ १०१ ॥ कोई क्रोधित होकर राजा एवं उसके मन्त्री को शाप देता था । कोई मनुष्य मार-पीट करने के लिये भी उद्यत होता था ॥ १०२ ॥ कोई यवनों के पैर पकड़ कर कहता कि-'आप लोग इनको धीरे-धीरे मारिये, मैं आपको कुछ दे दूँगा' ॥१०३॥ तब भी पापियों को दया नहीं आती थी वह महान् क्रोध पूर्वक प्रत्येक बाजार में मारते ही चले जाते थे ॥ १०४ ॥ श्रीकृष्ण कृपा से श्रीहरिदास जी के शरीर में इतनी मार से भी किञ्चिन्मात्र दुःख नहीं हुआ ॥ १०५ ॥ 'राक्षस हिरण्यकश्यप की मार से जैसे श्रीप्रह्लाद जी के शरीर में कोई दुःख नहीं हुआ था' ऐसा सब शास्त्र कहते हैं ॥ १०६ ॥ उसी प्रकार से इन यवनों के अनेक प्रहारों से भी श्रीहरिदास ठाकुर को कोई कष्ट नहीं हुआ ॥ १०७ ॥ स्वयं श्रीहरिदास जी की बात तो रहने दीजिये, 'श्रीहरिदास' ऐसा स्मरण करने से भी दुःख तत्काल विनाश हो जाता है ॥ १०८ ॥ श्रीहरिदास जी तो केवल आपके मारने वाले पापियों के लिये हृदय में दुःखी हो रहे थे ॥ १०९ ॥ आप प्रभु से प्रार्थना करते थे कि—'हे कृष्ण ! इन सब जीवों के ऊपर कृपा कीजिये, मुझ से द्रोह करने के कारण इनका अपराध न हो' ॥ ११० ॥ इस प्रकार पापी-गण नगर के प्रत्येक बाजार में श्रीहरिदास ठाकुर को मारते हुए चले जा रहे थे ॥१११॥ वह उनके प्राण लेने के लिये जोर-जोर से प्रहार करते थे, परन्तु उन प्रहारों की श्रीहरिदासजी के मन पर तनिक भी भाँय नहीं होती थी ॥ ११२ ॥ कुछ समय पश्चात् सब मुसलमान विस्मित होकर विचार करने लगे कि—'ऐसे प्रहारों से भी क्या मनुष्य के प्राण रह सकते हैं ? ॥ ११३ ॥ लोग प्रायः दो-तीन बाजारों में मारने पर ही मर जाते हैं परन्तु इसको तो हमने बाईस बाजारों में मारा है ॥ ११४ ॥ यह मरता तो है ही नहीं उल्टा क्षण-क्षण में हँसता है; स्यात् यह पुरुष पीर है (भगवत् पार्षद) सभी मन में ऐसी भावना करने लगे ॥ ११५ ॥ तब सब

यवन सकल बोले 'अये हरिदास । तोमा हैते आमा सभार हइवेक नाश ॥११६॥
एत प्रहारे ओ प्राण ना जाय तोमार । काजि प्राण लइवेक आमा सभाकार' ॥११७॥
हासिया बोलेन हरिदास महाशय । 'आमि जीले जदि तोमा सभार मन्द हय ॥११८॥
तवे आमि मरि एइ देख विद्य मान' । एत वलि आविष्ट हइला करि ध्यान ॥११९॥
सर्व्व-शक्ति समन्वित प्रभु हरिदास । हइलेन अचेष्ट कोथाओ नाहि श्वास ॥१२०॥
देखिया यवनगण विस्मित हइल । मुलुक पतिर द्वारे निञा फेलाइल ॥१२१॥
'माटि देह निञा' बोले मुलुकेर पति । काजी कहे 'तवेत पाइव भाल-गति ॥१२२॥
वड़ हइजेन करिलेक नीच-कर्म्म । अतएव इहारे जुयाय एइ धर्म्म ॥१२३॥
माटि दिले परलोके हइवेक भाल । गाङ्गे फेल, जेन दुःख पाय चिरकाल' ॥१२४॥
काजीर वचने सव धरिया जवने । गाङ्गे फेलाइते सभे तोले गिया ताने ॥१२५॥
गाङ्गे निते तोले यदि जवन सकल । वसिलेन हरिदास हइया निश्चल ॥१२६॥
ध्यानानन्दे वसिला ठाकुर हरिदास । विश्वम्भर देहे आसि करिला प्रकाश ॥१२७॥
विश्वम्भर अधिष्ठान हैल शरीरे । कार शक्ति आछे हरिदासे नाड़िवारे ॥१२८॥
महावलवन्त सब चतुर्दिके ठेले । महा स्तम्भ प्राय प्रभु आछेन निश्चले ॥१२९॥
कृष्णानन्द-सुधा सिन्धु मध्ये हरिदास । मग्न हइ'आछेन' वाह्य नाहि परकाश १३०॥
किवा अन्तरिक्षे, किवा पृथ्वीते गङ्गाय । ना जानेन हरिदास आछेन कोथाय ॥१३१॥

यवन बोले 'ऐ हरिदास ! तुम्हारे कारण हम सबका नाश होगा ॥११६॥ इतने मारने पर भी जो तुम्हारे प्राण नहीं निकले, तब तो काजी निश्चय ही हम सब के प्राण ले लेगा' ॥ ११७ ॥ श्रीहरिदास महाशय हँसकर बोले कि-'मेरे जीने से यदि तुम सबका अनिष्ट होता हो तो यह देखो, मैं तुम्हारे सामने ही मरता हूँ' इतना कहकर ध्यान योग द्वारा आविष्ट हो गये॥११८-११९॥इस प्रकार सर्व शक्ति समन्वित प्रभु हरिदासजी चेतना रहित हो गये, कहीं भी श्वास चलता हुआ प्रतीत नहीं होता था ॥ १२० ॥ यवन-गण यह देखकर बड़े विस्मित हुए और उन्हें देश-पति के द्वार पर लाकर डाल दिया ॥१२१॥ यवन-पति कहने लगा कि—'इसे ले जाकर पृथ्वी में दाब दो' तब काजी बोला कि-महाराज ! तब तो यह सद्गति प्राप्त करेगा ॥१२२॥ इसने बड़े होकर जैसा नीच कर्म किया है उसके अनुसार यह व्यवहार क्या उचित है ? ॥ १२३ ॥ महाराज ! मिट्टी ही देने से तो इसकी परलोक में सद्गति होगी । अतएव इसको गङ्गा में फिकबा दो जिससे यह चिरकाल तक दुःख पावे' ॥ १२४ ॥ काजी के वचन मान कर सब यवन आपको श्रीगङ्गा जी में फेंकने के लिये पकड़ कर उठाने लगे ॥१२५॥ यवन गण ने ज्योंही उनको गङ्गाजी में ले जाने के लिये उठाया त्योंही श्रीहरिदास जी निश्चल होकर बैठ गये॥१२६॥जब श्रीहरिदास ठाकुर ध्यानानन्दमें बैठे थे,उसी समय श्रीविश्वम्भरचन्द्रने उनके शरीरमें अधिष्ठित होकर अपने का प्रकाश किया ॥१२७॥ जब श्रीविश्वम्भर शरीर में अधिष्ठित हो गये तो अब किसकी शक्ति है, जो हरिदासजी को हिला भी सके ॥ १२८ ॥ सभी बड़े-बड़े वलवान् यवन उन्हें चारों ओर ठेलने का प्रयत्न करते थे, परन्तु वे विशाल-स्तम्भ की तरह अटल थे ॥ १२९ ॥श्रीहरिदासजी कृष्णानन्द-सुधा-सिन्धु में मग्न हो रहे थे उनको वाह्य ज्ञान का तनिक भी प्रकाश नहीं था ॥ १३० ॥ श्रीहरिदासजी यह बिल्कुल नहीं

प्रह्लादेर जे हेन स्मरण कृष्ण भक्ति । सेइ मत हरिदास ठाकुरेर शक्ति ॥१३२॥
हरिदासे ए सकल किछु चित्र नहे । निरवधि गौरचन्द्र जाहार हृदये ॥१३३॥
राक्षसेर बन्धन जे हेन हनुमान । आपने लइया करि ब्रह्मार सम्मान ॥१३४॥
एइ मत हरिदासो जवन प्रहार । जगतेर शिक्षा लागि करिला स्वीकार ॥१३५॥
अशेष दुर्गति हय जदि जाय प्राण । तथापि वदने ना छाड़िब हरिनाम ॥१३६॥
अन्यथा गोविन्द हेन रक्षक थाकिते । कार शक्ति आछे हरिदासेरे लङ्घिते ॥१३७॥
हरिदास-स्मरणेओ ए दुःख सर्व्वथा । खण्डे सेइ क्षणे, हरिदासेर कि कथा ॥१३८॥
सत्य सत्य हरिदास जगत ईश्वर । चैतन्य चन्द्रेर-महा मुख्य अनुचर ॥१३९॥
हेन मते हरिदास भासेन गङ्गाय । क्षणेके हइल बाह्य ईश्वर इच्छाय ॥१४०॥
चैतन्य पाइया हरिदास महाशय । तीरे आसि उठिलेन परानन्द मय ॥१४१॥
सेइ मते आइलेन फुलिया नगरे । कृष्ण नाम वलिते वलिते उच्च स्वरे ॥१४२॥
देखिया अद्भुत शक्ति सकल जवन । सभार खण्डिल हिंसा भाल हैल मन ॥१४३॥
पीर ज्ञान करि सभे कैल नमस्कार । सकल जवन-गण पाइल निस्तार ॥१४४॥
कथोक्षणे बाह्य पाइलेन हरिदास । मुलुक पतिरे चाहि हैल कृपा हास ॥१४५॥
सम्भ्रमे मुलुक पति जुड़ि दुइ कर । वलिते लागिला किछु विनय उत्तर ॥१४६॥

जानते थे कि–मैं अन्तरिक्ष में हूँ अथवा पृथ्वी पर हूँ, गङ्गाजी में हूँ अथवा अन्य किसी जगह हूँ ॥ १३१ ॥ पूर्व काल में जैसे श्रीप्रह्लादजी में श्रीकृष्ण-स्मरण भक्ति की शक्ति थी उसी प्रकार की शक्ति ठाकुर हरिदासजी में भी थी ॥ १३२ ॥ जिनके शरीर में श्रीगौरचन्द्र निरन्तर विद्यमान रहते थे, उन हरिदासजी के लिये यह सब कोई विचित्र बात नहीं थी ॥ १३३ ॥ जिस प्रकार श्रीहनुमानजी ने सम्मान की रक्षा के हेतु स्वयं राक्षस मेघनाद का बन्धन (ब्रह्मास्त्र) स्वीकार कर लिया था ॥ १३४ ॥ उसी प्रकार हरिदासजी ने भी संसार को शिक्षा के लिये यवनों के प्रहार स्वीकार किये ॥ १३५ ॥ केवल यह दिखलाने के लिये कि–यदि मेरी असीम दुर्गति हो अथवा प्राण भी जाँय तब भी मैं अपने मुख से 'हरि' नाम कहना नहीं छोड़ूँगा॥१३६॥नहीं तो, गोविन्द जैसे रक्षक के होते हुए श्रीहरिदासजी के कुछ भी अनिष्ट करने की किसकी सामर्थ्य थे ॥१३७॥ श्रीहरिदासजी के स्मरण मात्र से ही इस प्रकार के दुःख निश्चय ही तत्काल नष्ट हो जाते हैं फिर स्वयं श्रीहरिदास जी तो बात ही क्या ? ॥१३८॥ सत्य ही श्रीहरिदास ठाकुर जगत्-ईश्वर श्रीचैतन्यचन्द्र के सर्व-प्रधान पार्षद हैं॥१३९॥ (पश्चात् श्रीहरिदासजी गङ्गाजी में डाल दिये जाते हैं वहाँ आप धारा में बहते रहते हैं) इस प्रकार श्री-ठाकुर हरिदास के कुछ देर श्रीगङ्गाजी में बहने के पश्चात् प्रभु की इच्छा से उनको बाह्य-ज्ञान हो आया ॥ १४० ॥ श्रीहरिदास महाशय चेतना पाकर परानन्द दशा में श्रीगङ्गा-तट पर उठ आये ॥ १४१ ॥ उच्च स्वर से कृष्ण नाम बोलते २ उसी (परानन्द दशा में) वे फुलिया ग्राम में आये ॥ १४२ ॥ उनकी अद्भुत शक्ति को देखकर सभी यवनों का हिंसा-भाव नष्ट होकर मन निर्मल हो गया ॥ १४३ ॥ वे सब उन्हें पीर समझ कर नमस्कार करने लगे तथा समस्त यवन-गण का निस्तार हो गया ॥ १४४ ॥ कुछ क्षण में श्रीहरिदास जी को बाह्य-ज्ञान हुआ और कृपामय हास्य करते हुए देश-पति की ओर देखने लगे ॥१४५॥ तब तो देश-पति शीघ्रता

सत्य सत्य जानिलाङ तुमि महा पीर । एक ज्ञान तोमार से हइयाछे स्थिर ।।१४७।।
जोगी ज्ञानी सब जत मुखे मात्र बोले । तुमि से पाइला सिद्धि महा कुतूहले ।।१४८।।
तोमारे देखिते मुञि आनिलुँ एथारे । सब दोष महाशय क्षमिबे आमारे ।।१४९।।
सकल तोमार सम शत्रु मित्र नाञि । तोमा चिने हेन जन त्रिभुवने नाञि ।।१५०।।
चल तुमि शुभ कर आपन इच्छाय । गङ्गातीरे-थाक गिया आपन गुफाय ।।१५१।।
आपन इच्छाय तुमि थाक जथा तथा । जे तोमार इच्छा ताहि करह सर्व्वथा ।।१५२।।
हरिदास ठाकुरेर चरण देखिले । उत्तमेर कि दाय जवन देखि भूले ।।१५३।।
एत क्रोधे आनिलेक मारिबार तरे । पीर ज्ञान करि आर पाये पाछे धरे ।।१५४।।
जवनेरे कृपा दृष्टि करिया प्रकाश । फुलियाय आइलेन ठाकुर हरिदास ।।१५५।।
उच्च करि हरि नाम लइते लइते । आइलेन हरिदास ब्राह्मण सभाते ।।१५६।।
हरिदासे देखि फुलियार विप्रगण । सभेइ हइला अति परानन्द-मन ।।१५७।।
हरिध्वनि विप्रगण लागिला करिते । हरिदास लागिलेन आनन्दे नाचिते ।।१५८।।
अद्‌भुत अनन्त हरिदासेर विकार । अश्रु, कम्प, हास्य, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार ।।१५९।।
आछाड़ खायेन हरिदास प्रेम रसे । देखिया ब्राह्मण गण महानन्दे भासे ।।१६०।।
स्थिर हइ क्षणेके वसिला हरिदास । विप्रगण बसिलेन वेढ़ि चारि पाश ।।१६१।।

पूर्वक दोनों हाथ जोड़कर विनय पूर्वक कुछ नम्र निवेदन करने लगा कि-महाशयजी ! मैंने निश्चय पूर्वक जान लिया कि आप बड़े पीर हैं, आपकी एक निष्ठता स्थिर हो गई है ।। १४६-१४७ ।। योगी व ज्ञानी तो (योगी, ज्ञानी करके) केवल मुख से ही बोलते हैं, परन्तु आपने तो बड़े कुतूहल में ही उसको सिद्धि पा ली है ।।१४८।। आपके दर्शन करने के लिये मैंने आपको बुलवाया था, हे महाशय जी ! हमारे सब दोषों को आप क्षमा करना ।। १४९ ।। आपके लिये सब बराबर हैं, आपका न कोई शत्रु है, न कोई मित्र, आपको पहिचाने ऐसा मनुष्य त्रिभुवन में कोई नहीं है ।। १५० ।। अब आप शुभ प्रस्थान कीजिये और अपनी इच्छा से जहाँ चाहें श्रीगङ्गा-तट पर अथवा अपनी गुफा में रहिये ।। १५१ ।। अथवा अपनी इच्छानुसार जहाँ चाहें आप रहिये और सदैव अपनी इच्छानुसार जो कुछ चाहें कीजिये ।। १५२ ।। श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि—श्रीहरिदास ठाकुर के चरण दर्शन करने पर उत्तम मनुष्य की क्या चले यवन भी मुग्ध हो जाते हैं ।। १५३ ।। जिस यवन पति ने इतने क्रोध में आकर श्रीहरिदास जी को मरवाने के लिये बुलवाया था वही यवन-पति श्रीहरिदास जी को पीर समझ कर बारम्बार चरणों को पकड़ता है ।। १५४ ।। यवन के ऊपर कृपा करके श्रीहरिदास ठाकुर फुलिया में आये ।। १५५ ।। श्रीहरिदास जी उच्च स्वर से 'श्रीहरि नाम' लेते-लेते फुलिया ग्राम के ब्राह्मणों की समाज में आये ।। १५६ ।। श्रीहरिदास जी को देखकर फुलिया के विप्रगण सभी चित्त में अति परमानन्दित हुए ।।१५७।। 'हरि' 'हरि' ध्वनि करने लगे तथा श्रीहरिदासजी आनन्द में मत्त होकर नाचने लगे।।१५८।।हरिदासजी को उस समय अश्रु,कम्प हास्य,मूर्च्छा,पुलक एवं हुङ्कार आदि अष्ट सात्विक विकार असीम एवं अद्भुत प्रकारसे होने लगे ।। १५९ ।। वे प्रेमरस में डूबकर पछाड़ खाने लगे जिसे देखकर ब्राह्मणगण महानन्द में भासने लगे ।। १६० ।। कुछ समय पश्चात् श्रीहरिदासजी स्थिर होकर बैठ गये,विप्रगण भी उनको चारों ओर से घेरकर बैठ गये।।१६१।

हरिदास बोलेन 'शुनह विप्र गण । दुःख ना भाविह किछु आमार कारण ॥१६२॥
प्रभु निन्दा आमि शुनिलाङ जे अपार । उचित ताहार शास्ति हइल आमार ॥१६३॥
भाल हैल, इथे बड़ पाइलुँ सन्तोष । अल्प शास्ति करि च्मिलेन बड़ दोष ॥१६४॥
कुम्भीपाक हय विष्णु-निन्दन श्रवणे । ताहा आमि विस्तर शुनिल पाप-काने ॥१६५॥
योग्य शास्ति करिलेन ईश्वर ताहार । हेन पाप आर जेन नहे पुनर्व्वार' ॥१६६॥
हेन मते हरिदास विप्र-गण सङ्गे । निर्भये करेन सङ्कीर्त्तन महा रङ्गे ॥१६७॥
ताहानेओ दुःख दिल जे सब यवने । सवंशे उभिष्ट तारा हैल कथो दिने ॥१६८॥
तवे हरिदास गङ्गा तीरे गोफा करि । थाकेन विरले अहर्निश 'कृष्ण' स्मरि ॥१६९॥
तीन लच्च नाम दिने करेन ग्रहण । गोफाइ हइल तान वैकुण्ठ भवन ॥१७०॥
महा नाग वैसे सेइ गोफार भितरे । तार ज्वाला प्राणि-मात्र सहिते ना पारे ॥१७१॥
हरिदास ठाकुरेर सम्भाषा करिते । जतेक आइसे केह ना पारे रहिते ॥१७२॥
परम विषेर ज्वाला सभेइ पायेन । हरिदास पुनि इहा किछु ना जानेन ॥१७३॥
वसिया करेन युक्ति सर्व्व विप्र गणे । 'हरिदास आश्रमे एतेक ज्वाला केने' ॥१७४॥
सेइ फुलियाय वैसे महा वैद्य गण । तारा आसि जानिलेक सर्पेर कारण ॥१७५॥
वैद्य वलिलेक 'एइ गोफार तलाय । महा एक नाग आछे ताहार ज्वालाय ॥१७६॥
रहिते ना पारे केह कहिल निश्चय । हरिदास ! सत्वरे चलुन अन्याश्रय ॥१७७॥

तब श्रीहरिदास जी बोले कि-'हे विप्र-गण ! सुनिये, मेरे लिये आप अपने मन में कुछ दुःख न मानना ॥ १६२ ॥ तत्त्व बात यह है कि-मैंने जो असीम प्रभु-निन्दा सुनी थी उसकी उचित ताड़ना ही मुझे मिली है ॥ १६३ ॥ अच्छा हुआ, इसमें मुझको बड़ा सन्तोष हुआ कि-(प्रभु ने) थोड़ा सा दण्ड देकर मेरे बड़े भारी अपराध को क्षमा कर दिया ॥ १६४ ॥ भाइयो ! विष्णु-निन्दा श्रवण करने से कुम्भीपाक नरक भोगना पड़ता है । उस विष्णु-निन्दा को मैंने इन पापी कानों से खूब सुना था ॥ १६५ ॥ ईश्वर ने उसका उचित दण्ड मुझको दिया जिससे फिर दुबारा ऐसा पाप मुझ से न हो ॥ १६६ ॥ इस प्रकार श्रीहरिदास जी निर्भय होकर महान् आनन्द पूर्वक विप्रों को साथ लेकर 'श्रीहरि-सङ्कीर्त्तन' करते थे ॥ १६७ ॥ जिन यवनों ने श्रीहरिदास ठाकुर को दुःख दिया था कुछ दिन उपरान्त वे सब यवन अपने कुल सहित नष्ट भ्रष्ट हो गये ॥ १६८ । तत्-पश्चात् (श्रीहरिदास ठाकुर) श्रीगङ्गा जी के किनारे एकान्त में गुफा बनाकर रात दिन 'कृष्ण' 'कृष्ण' स्मरण करते हुए रहने लगे ॥ १६६ ॥ प्रति दिन ३ लक्ष 'नाम' लेते थे उनकी गुफा ही वैकुण्ठ-भवन बन गई ॥१७०॥ उसी गुफा के भीतर एक महा नाग सर्प रहता था उसकी विष-ज्वाला कोई भी प्राणी सहन नहीं कर सकता था ॥ १७१ ॥ श्रीहरिदासजी से बात-चीत करने के लिये जितने मनुष्य वहाँ आते थे कोई भी वहाँ ठहर नहीं पाता था ॥ १७२ ॥ उस परम विष की महान् ज्वाला सभी को लगती थी परन्तु श्रीहरिदास जी को उसका तनिक भी भान नहीं होता था ॥ १७३ ॥ एक दिन सब विप्रगण बैठकर विचार करने लगे कि-श्रीहरिदासजी के आश्रम में इतनी ज्वाला क्यों है' ॥ १७४ ॥ उसी फुलिया में बड़े-बड़े नामी वैद्य-गण भी रहते थे, उन्होंने आकर जान लिया कि उस ज्वाला का कारण सर्प है ॥ १७५ ॥ वैद्य बोले कि-'इस गुफा के नीचे एक महा

सापेर सहित वास कभु युक्त नहे। चल सभे कहि गिया ताहान आलये' ॥१७८॥
तबे सभे आसि हरिदास ठाकुरेरे। कहिला बृतान्त सेइ गोफा छाड़िबारे ॥१७६॥
'महा नाग वैसे एइ गोफार भितरे। ताहार ज्वालाय केहो रहिते ना पारे ॥१८०॥
अतएव ए खाने रहिते योग्य नहे। अन्य स्थाने आसि तुमि करह आश्रये ॥१८१॥
हरिदास बोलेन 'अनेक दिन आछि। कोनो ज्वालारिष्ट ए गोफाय नाहि बासि ॥१८२॥
सबे दुःख तोमरा जे ना पार सहिते। एतेके चलिब कालि आमि जे से भिते ॥१८३॥
सत्य यदि इहाते थाकेन महाशय। तिहोँ यदि कालि ना छाड़ेन ए आलय ॥१८४॥
तबे आमि कालि छाड़ि जाइब सर्व्वथा। चिन्ता नाहि तोमरा बोलह कृष्ण गाथा ।।१८५॥
एइ मत कृष्ण-कथा मङ्गल-कीर्त्तने। थाकिते, अद्भुत अति हैल सेइ त्तणे ॥१८६॥
'हरिदास छाड़िबेन' शुनिञा वचन। महा नाग स्थान छाड़िलेन सेइ त्तण ॥१८७॥
गर्त हैते उठि सर्प सन्ध्यार प्रवेशे। सभेइ देखेन चलिलेन अन्यदेशे ॥१८८॥
परम अद्भुत सर्प महा भयङ्कर। पीत नील शुक्ल वर्ण-परम सुन्दर ॥१८६॥
महा मणि ज्वलित छे मस्तक उपरे। देखि भये विप्रगण 'कृष्ण' 'कृष्ण' स्मरे ॥१६०॥
सर्प से चलिया गेल ज्वाला नाहि आर। विप्र-गण हइलेन सन्तोष अपार ॥१६१॥
देखि हरिदास ठाकुरेर महाशक्ति। विप्र गणेर जन्मिल विशेष ताँरे भक्ति ॥१६२॥

नाग रहता है जिसकी ज्वाला से वहाँ कोई ठहर नहीं पाता। यह बात हम निश्चय करके कहते हैं-हे श्रीहरिदासजी ! आप शीघ्र ही दूसरे स्थान को चलिये ॥ १७६-१७७ ॥ सर्प के निकट वास करना कभी उचित नहीं है सभी उनके स्थान पर जाकर उनसे कहो' ॥ १७८ ॥ तब सबने श्रीहरिदासजी के आश्रम पर पहुँच कर उनसे गुफा छोड़ने का वृत्तान्त कहा ॥१७६॥ कि-'इस गुफा के भीतर एक महा नाग रहता है, उसके विष की ज्वाला से कोई भी ठहर नहीं पाता है ॥ १८० ॥ अतएव यह स्थान रहने के योग्य नहीं है आप किसी दूसरे स्थान पर चलकर निवास कीजिये ॥ १८१ ॥ श्रीहरिदासजी बोले कि-मैं तो यहाँ पर अनेक दिन से रहता हूँ, परन्तु किसी प्रकार की ज्वाला का अनुभव मैंने इस गुफा में नहीं किया ॥ १८२ ॥ मुझे सब दुःख यही है कि तुम उसे सहन नहीं कर पाते हो अतएव मैं कल इधर-उधर कहीं चला जाऊँगा ॥ १८३ ॥ सचमुच ही यदि इसमें नाग महाशय रहते हैं और वह यदि कल इस स्थान को नहीं छोड़ेंगे ॥ १८४ ॥ तो फिर निश्चय ही मैं कल इस आश्रम को छोड़कर चला जाऊँगा, कोई चिन्ता की बात नहीं है, तुम लोग कृष्ण-वार्त्ता करो ॥ १८५ ॥ इस प्रकार जब कृष्ण-कथा-वार्त्ता एवं मङ्गलकारी कीर्त्तन हो रहा था उसी त्तण एक अति अद्भुत बात हुई ॥ १८६ ॥ 'हरिदासजी इस स्थान को छोड़ देंगे' यह बात सुनकर महा नाग ने तत्काल ही स्थान छोड़ दिया ॥ १८७ ॥ वह सर्प सन्ध्या होने पर गर्त में से निकल कर दूसरी जगह चला गया, इस बात को सब लोगों ने देखा ॥ १८८ ॥ वह सर्प परम अद्भुत एवं महा भयङ्कर था और उसका नीला, पीला व श्वेत परम सुन्दर वर्ण था । १८६ ॥ उसके सिर में महा मणि जल रही थी। विप्रगण देखकर भय से 'कृष्ण' 'कृष्ण' स्मरण करने लगे ॥ १६० ॥ सर्प के चले जाने पर पुनः ज्वाला नहीं रही जिससे विप्र-गण को अपार प्रसन्न हुई ॥ १६१ ॥ श्रीहरिदास ठाकुर की महान शक्ति देखकर विप्र-गण को उसमें विशेष भक्ति बढ़ी ॥ १६२ ॥

हरिदास ठाकुरेर ए कोन प्रभाव । जार वाक्य मात्र स्थान छाड़िलेन नाग ॥१९३॥
जार दृष्टि मात्र छाड़े अविद्या-बन्धन । कृष्ण ना लङ्घेन हरिदासेर वचन ॥१९४॥
आर एक शुन तान अद्भुत आख्यान । नाग राज जे कहिला महिमा ताहान ॥१९५॥
एक दिन एक बड़ लोकेर मन्दिरे । सर्प-क्षत डङ्क नाचे विविध प्रकारे ॥१९६॥
मृदङ्ग-मन्दिरा गीत-तार मन्त्र घोरे । डङ्क वेढ़ि सभेइ गायेन उच्च स्वरे ॥१९७॥
दैव गति तथाय आइला हरिदास । डङ्क नृत्य देखेन हइया एक पाश ॥१९८॥
मनुष्य शरीरे नाग राज मन्त्र बले । अधिष्ठान हइया नाचेन कुतूहले ॥१९९॥
कालि दहे करिलेन जे नाट्य ईश्वरे । सेइ गीत गायेन कारुण्य उच्च स्वरे ॥२००॥
शुनि निज प्रभुर महिमा हरिदास । मूर्च्छित हइया पड़िलेन (कोथा) नाहि श्वास ॥२०१॥
क्षणेके चैतन्य पाइ करिया हुङ्कार । आनन्दे लागिला नृत्य करिते अपार ॥२०२॥
हरिदास ठाकुरेर आवेश देखिया । एक भित हइ डङ्क रहिलेन गिया ॥२०३॥
गड़ागड़ि जायेन ठाकुर हरिदास । अद्भुत पुलक अश्रु-कम्पेर प्रकाश ॥२०४॥
रोदन करेन हरिदास महाशय । शुनिञा प्रभुर गुण हइला तन्मय ॥२०५॥
हरिदासे वेढ़ि सभे गायेन हरिषे । जोड़ हस्ते रहि डङ्क देखे एक पाशे॥२०६॥
क्षणेके रहिला हरिदासेर आवेश । पुन आसि डङ्क नृत्ये करिला प्रवेश ॥२०७॥
हरिदास ठाकुरेर देखिया आवेश । सभेइ हइला अति आनन्द विशेष ॥२०८॥

श्रीहरिदास ठाकुर का यह कैसा प्रभाव है 'जिनके वाक्य-मात्र से नाग स्थान को छोड़ गया' ॥१९३॥ भाइयो ! जिनकी दृष्टि मात्र से अविद्या-बन्धन छूट जाते एवं जिन (श्रीहरिदासजी) की बात को श्रीकृष्ण कभी नहीं मेटते उनका एक और अद्भुत चरित्र सुनिये, जिसमें नाग-राज ने जिस प्रकार से आपकी महिमा गाई है, उसका वर्णन है ॥१९४-१९५॥ एक दिन एक बड़े आदमी के घर में एक सर्प-क्षत [साँप से डसा हुआ मनुष्य] व डंक झाड़ने वाला अनेक प्रकार से नाच रहे थे ॥१९६॥ सब लोग चिकित्सक के मन्त्रों की लहर में आकर उसको घेरे हुए मृदङ्ग, मंजीरे व सितार बनाकर ऊँचे स्वर से गा रहे थे ॥ १९७ ॥ दैवयोग से उसी समय श्रीहरिदासजी वहाँ जा पहुँचे वे एक ओर खड़े होकर एक टक चिकित्सक का नृत्य देखने लगे ॥१९८॥ मन्त्रोबल से नाग राज मनुष्य शरीर में अधिष्ठान करके आनन्द पूर्वक नाच रहा था ॥ १९९ ॥ श्रीकृष्ण ने कालीदह में जो नाट्य किया था उसी के गीत सब लोग करुणापूर्ण उच्च स्वर से गा रहे थे ॥२००॥ श्रीहरिदासजी अपने प्रभु की महिमा सुनकर मूर्च्छित होकर ऐसे गिर पड़े कि-कहीं श्वास नहीं थी ॥ २०१ ॥ एक क्षण के पश्चात् चेतनता प्राप्त करके हुङ्कार मारकर आनन्द से अद्भुत नृत्य करने लगे ॥ २०२ ॥ श्रीहरिदास ठाकुर के इस आवेश को देखकर चिकित्सक एक ओर जाकर खड़ा रह गया ॥ २०३ ॥ इधर श्रीहरिदास ठाकुर लोटपोट होने लगे, उनके शरीर में अद्भुत पुलक, अश्रु एवं कम्प प्रकट हो रहे थे ॥ २०४ ॥ श्रीहरिदास महाशय रोदन करने लगे एवं प्रभु के गुणों को सुन कर तन्मय हो गये ॥ २०५ ॥ सब लोग चारों ओर से श्रीहरिदास जी को घेर कर परम प्रसन्नता पूर्वक गान करने लगे। यह सब दृश्य [हाथ जोड़े हुए] डंक-चिकित्सक एक ओर खड़े होकर देखता था ॥ २०६ ॥ जब क्षण भर में श्रीहरिदासजी का आवेश टूट गया तो चिकित्सक ने

जे खाने पड़ये तान चरणेर धूलि । सभेइ लेपेन अङ्गे हइ कुतूहली ॥२०६॥
आर एक ढङ्ग विप्र थाकि सेइ खाने । 'मुजिओ नाचिमु आजि' गणे मने मने ॥२१०॥
वुझिलाङ नाचिलेइ अवोध वर्वरे । अल्प मनुष्येरे ओ परम भक्ति करे ॥२११॥
एत भावि सेइ खाने आछाड़ खाइया । पड़िल जेहेन महा-अचेष्ट हइया ॥२१२॥
जेइ मात्र पड़िल डङ्केर नृत्य स्थाने । मारिते लागिला डङ्क महा क्रोध मने ॥२१३॥
आशे पाशे घाड़े मुँडे वेत्रेर प्रहार । निर्घात मारये डङ्क रक्षा नाहि आर ॥२१४॥
वेत्रेर प्रहारे विप्र जर्ज्जर हइया । बाप ! बाप ! वलि त्रासे गेल पलाइया ॥२१५॥
तवे डङ्क निज-सुखे नाचिला विस्तर । सभार जन्मिल बड़ विस्मय अन्तर ॥२१६॥
जोड़ हस्ते सभे जिज्ञासेन डङ्क स्थाने । 'कह देखि ए विप्रेरे मारिले वा केने ॥२१७॥
हरिदास नाचिते वा जोड़ हस्त केने । रहिल, ए सब कथा कहत आपने' ॥२१८॥
तवे सेइ डङ्क-मुखे विष्णु भक्त-नाग । कहिते लागिला हरिदासेर प्रभाव ॥२१६॥
तोमरा जे जिज्ञासिला ए बड़ रहस्य । जद्यपि अकथ्य तभो कहिव अवश्य ॥२२०॥
हरिदास ठाकुरेर देखिया आवेश । तोमरा जे भक्ति बड़ करिला विशेष ॥२२१॥
ताहा देखि ओ ब्राह्मण आहार्य करिया । पड़िला मात्सर्य वुद्धये आछाड़ खाइया ॥२२२॥
आमारो कि नृत्य-सुख भङ्ग करिवारे । आहार्य्ये मात्सर्य्ये कोन जन शक्ति-धरे ॥२२३॥

पुनः आकर नृत्य में प्रवेश किया ॥२०७॥ श्रीहरिदास ठाकुर का आवेश देखकर सब लोग अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ २०८ ॥ जिस २ स्थान पर उनके चरणों की धूलि पड़ती थी, लोग वहाँ से उठा उठाकर परम आनन्द-पूर्वक अपने शरीर में लेपन करते थे ॥२०६॥ और एक ढोंगी विप्र वहीं पर खड़ा हुआ मन ही मन में सोचता था कि—'आज मैं भी नाचूँ' ॥ २१० ॥ 'मैं समझ गया अवोध एवं पागल जंगली लोग नाचने से ही एक तुच्छ मनुष्य के प्रति भी परम भक्ति प्रदर्शित करते हैं' ॥२११॥ इतना विचार कर वह वहीं पर पछाड़ खाकर अचेतन की तरह गिर पड़ा ॥ २१२ ॥ ज्योंही वह चिकित्सक के नृत्य करने की जगह में गिरा कि डंक-चिकित्सक मन में महा क्रोधित हो उसे मारने लगा ॥ २१३ ॥ अगल-बगल में, गर्दन में, सिर में बड़े प्रचण्ड रूप से वेत्रों के प्रहार मारता था जिससे रक्षा नहीं थी ॥ २१४ ॥ वेत्रों के प्रहारों से विप्र जर्जर होकर बाप रे! बाप रे ! चिल्लाता हुआ डर के मारे भाग गया ॥ २१५ ॥ तब डंक-चिकित्सक स्वयं आनन्द में मत्त होकर खूब नृत्य करने लगा। यह देखकर सब के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ २१६ ॥ वह सब हाथ जोड़कर चिकित्सक से पूछने लगा कि—'श्रीमान् जी कहिये, आपने इस विप्र को क्यों मारा ? ॥ २१७ ॥ और हरिदासजी के नाचने पर हाथ जोड़कर एक ओर को क्यों खड़े हो गये थे ?' कृपा करके इस बात का रहस्य हमको बतलाइये ॥ २१८ ॥ तब उस चिकित्सक के मुख से विष्णु-भक्त नाग श्रीहरिदासजी की महिमा का वर्णन करने लगा ॥ २१६ ॥ वह बोला कि—तुम लोगों ने जो बात पूछी है वह बड़ी रहस्यमय है यद्यपि वह कहने योग्य नहीं है तथापि मैं तुमसे अवश्य कहूँगा ॥ २२० ॥ तुम लोगों ने जो श्रीहरिदास ठाकुर का आवेश देखकर उनके प्रति जो विशेष भक्ति प्रदर्शित की थी ॥ २२१ ॥ उसको देखकर वह विप्र ढोंग बनाकर मत्सरता से पछाड़ खाकर गिर पड़ा था ॥ २२२ ॥ तुम जानते हो ? ईर्ष्या एवं मत्सर पूर्वक हमारे नृत्य के आनन्द को नष्ट करने की किस

हरिदास सङ्गे स्पर्द्धा मिथ्या करि करे। अत एव शास्ति बहु करिल उहारे ॥२२४॥
बड़ लोक करि लोके जानुक् आमारे। आपनारे प्रकटाइ धर्म्म कर्म्म करे ॥२२५॥
ए सकल दाम्भिकेर कृष्णे प्रीति नाइ। अकैतव हइले से कृष्ण-भक्ति पाइ ॥२२६॥
एइ जे देखिले नाचिलेन हरिदास। ओ नृत्य देखिले सर्व्व बन्ध हय नाश ॥२२७॥
हरिदास नृत्ये कृष्ण नाचेन आपने। ब्रह्माण्ड पवित्र हये ओ नृत्य देखने ॥२२८॥
उहाने से योग्य पद हरिदास नाम। निरवधि कृष्ण बद्ध हृदये उहान ॥२२९॥
सर्व्व भूत वत्सल सभार उपकारी। ईश्वरेर सङ्गे प्रति जन्मे अवतारी ॥२३०॥
उञि से निरपराध विष्णु वैष्णवेते। स्वप्नेओ उहान दृष्टि ना जाय विपथे ॥२३१॥
तिलार्द्ध उहान सङ्ग जे जीवेर हय। से अवश्य पाय कृष्ण पाद पद्माश्रय ॥२३२॥
ब्रह्मा शिवो हरिदास हेन भक्त-सङ्ग। निरबधि करिते चित्तेर बड़ रङ्ग ॥२३३॥
जाति कुल सर्व निरर्थक बुझाइते। जन्मिलेन नीच कुले प्रभुर आज्ञाते ॥२३४॥
अधम कुलेते यदि विष्णु भक्त हय। तथापि सेइ से पूज्य सर्व्व शास्त्रे कय ॥२३५॥
उत्तम कुलेते जन्मि श्री कृष्ण ना भजे। कुले तार कि करिबे नरकेते मजे ॥२३६॥
से सकल वेद वाक्येर साक्षी देखाइते। जन्मिलेन हरिदास अधम कुलेते ॥२३७॥
प्रह्लाद जे हेन दैत्य, कपि हनुमान। सेइ मत हरिदास नीच जाति नाम ॥२३८॥

में सामर्थ्य ? ॥ २२३ ॥ उसने तो श्रीहरिदासजी के साथ मिथ्या-स्पर्द्धा करके यह सब लीला की थी अतएव मैंने उसको खूब दण्ड दिया ॥ २२४ ॥ जो लोग यह सोचकर कि—संसार में हम को लोग बड़ा आदमी करके जानें अथवा अपने को प्रगट करने के लिये धर्म-कर्म करते हैं ॥ २२५ ॥ उन सब दम्भी लोगों की श्रीकृष्ण में प्रीति कभी नहीं होती है, श्रीकृष्ण-भक्ति तो छल-कपट शून्य होने पर ही मिलती है ॥ २२६ ॥ यही जो तुमने श्रीहरिदास ठाकुर को नृत्य करते हुए देखा था, उस नृत्य के दर्शन करने से जीव के सब बन्धन नष्ट हो जाते हैं ॥२२७॥ श्रीहरिदासजी के नृत्य में कृष्ण स्वयं नाचते हैं उस नृत्य-दर्शन से ब्रह्माण्ड पवित्र होता है॥२२८॥ 'श्रीहरिदास नाम' उनके लिये योग्य पद वही है उनके हृदय में कृष्ण निरन्तर बद्ध रहते हैं ॥ २२९ ॥ वह सब प्राणियों पर दया रखने वाले, सब का उपकार करने वाले एवं प्रति अवतार में ईश्वर के साथ अवतीर्ण होने वाले हैं ॥ २३० ॥ वही विष्णु एवं वैष्णवों के निकट अपराध-शून्य हैं। स्वप्न में भी उनकी दृष्टि विषय पर नहीं जाती है ॥ २३१ ॥ जिस जीव को तिलार्द्ध के लिये भी उनका सङ्ग प्राप्त हो जाता है, वह जीव अवश्य श्रीकृष्ण-चरण-कमल आश्रय पाता है ।। २३२ ॥ ब्रह्मा-शिव भी श्रीहरिदास जैसे भक्त का सङ्ग करने के लिये वे निरन्तर बड़े इच्छुक रहते हैं ॥ २३४ ॥ श्रीहरिदासजी यह दिखलाने के लिये कि—'जाति-कुल सब निरर्थक है' प्रभु की आज्ञानुसार नीच कुल में पैदा हुए ॥ २३४ ॥ 'यदि कोई विष्णु-भक्त नीच कुल में उत्पन्न हो तो भी वह पूजने योग्य है' इस बात को सर्व शास्त्र वर्णन करते हैं ॥ २३५ ॥ 'यदि कोई पुरुष उत्तम कुल में पैदा होकर श्रीकृष्ण भजन नहीं करता है तो कुल उसकी क्या सहायता कर सकता है, वह नरक में पड़ेगा ॥२३६॥ शास्त्रों के इन सब वाक्यों की साक्षी दिखलाने के लिये श्रीहरिदासजी ने नीच कुल में जन्म लिया॥२३७॥जिस प्रकार प्रह्लादजी दैत्य तथा हनुमानजी कपि हुए उसी प्रकार श्रीहरिदासजी नाममात्र से नीच जाति के हैं॥२३८॥

हरिदास स्पर्श वाञ्छा करे देव गण । गङ्गाओ वाञ्छेन हरि दासेर मज्जन ॥२३९॥
स्पर्शेर कि दाय देखिले ओ हरिदास । छिण्डे सर्व्व जीवेर अनादि कर्म-पाश ॥२४०॥
हरिदास आश्रय करिब जेइ जन । ताने देखिले ओ खण्डे संसार बन्धन ॥२४१॥
शत वर्ष शत मुखे उहान महिमा । कहिलेओ नाहि पारि करिबोर सीमा ॥२४२॥
भाग्यवन्त तोमरा से तोमा 'सभा' हैते । उहान महिमा किछु आइला मुखेते ॥२४३॥
सकृत जे बलिबेक हरिदास नाम । सत्य-सत्य सेह जाइबेक कृष्ण धाम ॥२४४॥
एत बलि मौन हइलेन नाग-राज । तुष्ट हइलेन शुनि सज्जन समाज ॥२४५॥
हेन हरिदास ठाकुरेर अनुभाव । कहिया आछेन पूर्व्वे श्रीवैष्णव नाग ॥२४६॥
सभार परम प्रीति हरिदास प्रति । नाग मुखे शुनिञा विशेष हैल अति ॥२४७॥
हेन मते वैसेन ठाकुर हरिदास । गौरचन्द्र ना करेन भक्तिर प्रकाश ॥२४८॥
सर्व्वदिके विष्णु-भक्ति-शून्य सर्व्व जन । उद्देश ना जाने केहो केमन कीर्त्तन ॥२४९॥
कोथाओ नाहिक विष्णु भक्तिर प्रकाश । वैष्णवेर सभेइ करये परिहास ॥२५०॥
आपना आपनि सब साधु गण मेलि । गायेन श्रीकृष्ण नाम दिया करतालि ॥२५१॥
ताहातेओ दुष्ट गण महा क्रोध करे । पाखण्डे-पाखण्डे मेलि बल्गियाइ मरे ॥२५२॥
ए बामन गुला राज्य करिबेक नाश । इहा सभा हैते हैब दुर्भिक्ष प्रकाश ॥२५३॥
ए बामनगुला सब मागिया खाइते । भावुक कीर्त्तन करि नाना छला पाते ॥२५४॥

श्री हरिदासजी के स्पर्श की देवगण भी इच्छा करते हैं श्री गङ्गाजी भी 'श्री हरिदासजी का अपने जल में स्नान' चाहती हैं ॥ २३९ ॥ स्पर्श की तो क्या बात हरिदासजी के दर्शन करने से भी सब जीवों के अनादि काल के कर्म-पाश नष्ट हो जाते हैं ॥ २४० ॥ जो मनुष्य श्री हरिदास जी का आश्रय ग्रहण करेगा उसके दर्शन से भी संसार बन्धन खण्डन हो जायगा ॥२४१॥ मैं १०० वर्ष तक १०० मुखों से वर्णन करने पर भी उनकी महिमा की सीमा नहीं पा सकता हूँ ॥ २४२ ॥ आप लोग बड़े भाग्यवान् हैं, जो तुम्हारी सभा में उनकी कुछ महिमा मेरे मुख पर आई ॥ २४३ ॥ जो मनुष्य एक बार भी 'श्री हरिदास' नाम बोलेंगे, निश्चय ही वह श्री कृष्ण धाम को जायँगे' ॥ २४४ ॥ इतना कह कर नागराज चुप हो गया । यह प्रशंसा को सुनकर सब सज्जन-वृन्द प्रसन्न हुए ॥ २४५ ॥ ऐसे श्री हरिदास ठाकुर की महान् महिमा, श्री वैष्णव-नाग पहले ही कह चुके हैं ॥ २४६ ॥ श्री हरिदासजी के प्रति सब लोगों की एक तो प्रथम से ही परम प्रीति थी, अब नाग-राज के मुख से उनकी महिमा सुनकर विशेष रूप से बढ़ी ॥ २४७ ॥ इस प्रकार श्रीहरिदास ठाकुर जीवन व्यतीत कर रहे थे । इधर श्रीगौरचन्द्र ने अभी अपनी भक्ति का प्रकाश नहीं किया था ॥ २४८ ॥ सब दिशाओं के मनुष्य विष्णु-भक्ति शून्य थे किसी को भी यह पता नहीं कि–'कीर्त्तन कैसा होता है' उसका क्या उद्देश्य है ॥२४९॥ विष्णु-भक्ति कहीं भी देखने में नहीं आती । सब लोग वैष्णवों की हँसी करते हैं ॥ २५० ॥ केवल साधु-गण आपस में मिलकर हाथों से तालियाँ बजा-बजाकर 'श्रीकृष्ण' नाम गा लेते थे ॥२५१॥ ऐसा करने से भी दुष्ट-गण महा क्रोधित होते थे, पाखण्डी-पाखण्डी सब मिलकर क्रोध व ईर्ष्या के आवेश में उफनते थे ॥ २५२ ॥ वह कहते कि–'यह बामनों का झुण्ड राज्य का नाश करेगा ।' ऐसा मालूम होता है कि–यह सब होने से

गोसाञिर शयन हय वर्षा चारि मास । इहाते कि जुयाय डाकिते बड़ डाक ॥२५५॥
निद्रा भङ्ग हैले क्रुद्ध हैवे गोसाञि । दुर्भिक्ष करिव देशे इथे द्विधा नाञि' ॥२५६॥
केहो बोले यदि धान्ये किछु मूल्य चढ़े । तवे ए गुलारे धरि किलाइमु घाड़े ॥२५७॥
केहो बोले 'एकादशी निशि-जागरण । करिव गोविन्द नाम करि उच्चारण ॥२५८॥
प्रति दिन उच्चारण करिया कि काज' । एइमत बोले जत मध्यस्थ समाज ॥२५९॥
दुःख पाय शुनिञा सकल भक्त-गण । तथापि ना छाड़े केहो उच्च सङ्कीर्त्तन ॥२६०॥
भक्ति योगे लोकेर देखिया अनादर । हरिदासो दुःख बड़ पायेन अन्तर ॥२६१॥
तथापिह हरिदास उच्च स्वर करि । बोलेन प्रभुर सङ्कीर्त्तन मुख भरि ॥२६२॥
इहाते ओ अत्यन्त दुष्कृति पापिगण । ना पारे शुनिते उच्च हरि सङ्कीर्त्तन ॥२६३॥
हरिनदी-ग्रामे एक ब्राह्मण दुर्ज्जन । हरिदास देखि क्रोधे बोलये वचन ॥२६४॥
'अये हरिदास ! ए कि व्यभार तोमार । डाकिया जे नाम लह कि हेतु इहार ॥२६५॥
मने मने जपिवा एइ से धर्म्म हय । डाकिया लइते नाम कोन शास्त्रे कय ॥२६६॥
कार शिक्षा हरिनाम डाकिया लइते । एइत पण्डित्य सभा बोलह इहाते ॥२६७॥
हरिदास बोलेन 'इहार जत तत्त्व । तोमरा से जान हरिनामेर महत्व ॥२६८॥
तोमरा सभार मुखे शुनिञा से आमि । वलितेछि, वलिवाङ जेवा किछु जानि ॥२६९॥
उच्च करि लइले शतगुण पुण्य हय । दोषत ना कहे शास्त्रे गुण से वर्णय ॥२७०॥
तथाहि—"उच्चैः शतगुणं भवेत्" इति ।

दुर्भिक्ष पड़ेगा ॥ २५२-२५३ ॥ यह सब बामनों का झुण्ड माँगने खाने के लिये भाव की दुहाई देकर कीर्त्तन करके अनेक प्रकार से छल-कपट के जाल बिछाता है ॥ २५४ ॥ वर्षा के चार महीने प्रभु का शयन होता है ऐसे समय में इनका जोर-जोर से चिल्लाना क्या उचित है ॥ २५५ ॥ निद्रा-भङ्ग होने पर प्रभु क्रोधित हो जाँयगे, तब वह देश में अकाल डाल देंगे, इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५६ ॥ कोई कहता कि—'यदि अन्न का मूल्य कुछ तेज हो जाय तो पकड़ कर इन सबकी गर्दन ठोकूँगा' ॥२५७॥ कोई कहता कि–'एकादशी में रात्रि जागरण करके उच्च स्वर से 'श्रीगोविन्द' नाम करलें ॥ २५८ ॥ प्रति दिन चिल्ला २ कर नाम करने से क्या लाभ है' मध्यस्थ समाज के सब मनुष्य इसी प्रकार की बातें करते थे ॥ २५९ ॥ यह सुन-सुनकर सब भक्त गण बड़ा दुःख पाते थे तब भी कोई उच्च-सङ्कीर्त्तन नहीं छोड़ता था ॥ २६० ॥ संसार में इस प्रकार भक्ति-योग का अनादर देखकर श्रीहरिदासजी भी मन में बड़े दुःखित होते थे ॥ २६१ ॥ तब भी श्रीहरिदासजी मुख भरकर उच्च-स्वर द्वारा प्रभु का नाम-सङ्कीर्त्तन करते थे ॥ २६२ ॥किन्तु अत्यन्त दुष्कृति पापी-गण इस उच्च हरि-सङ्कीर्त्तन को सुन नहीं सकते थे ॥ २६३ ॥ एक दिन 'हरिनदी' गाँव का एक दुष्ट ब्राह्मण श्रीहरिदासजी को देखकर क्रोधित होकर यों बोला कि–॥ २६४ ॥ 'ऐ हरिदास ! यह तुम्हारी क्या रीति है, जो चिल्ला २ कर नाम लेते हो ? इसका क्या कारण है ॥ २६५ ॥ विधान तो यह कहता है कि–मन-मन में जप करे। चिल्ला कर नाम लेना कौन शास्त्र कहता है ? ॥ २६६ ॥ उच्च स्वर से हरि नाम लेना तुमको किसने सिखलाया है ? (देखो !) यह पण्डितों की सभा है, इसमें तुम बोलो॥२६७॥श्रीहरिदासजी ने उत्तर दिया कि–इस विषय का जितना तत्त्व है एवं श्रीहरि नाम का जो महत्व है वह सब आप लोग जानते हो ॥ २६८ ॥ आप सब लोगों

विप्र बोले 'उच्च नाम करिले उच्चार। शत-गुण पुण्य हय किहेतु इहार ॥२७१॥
हरिदास बोलेन 'शुनह महाशय। जे तत्त्व इहार वेदे भागवते कय ॥२७२॥
सर्व्व शास्त्र स्फुरे हरिदासेर श्रीमुखे। लागिला करिते व्याख्या कृष्णानन्द सुखे ॥२७३॥
शुन विप्र! सकृत शुनिले कृष्ण नाम। पशु, पक्षि, कीट जाय श्रीवैकुण्ठ धाम ॥२७४॥

तथाहि श्रीभागवते १०।३४।१७ सुदर्शनवाक्यम्—

यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतृनात्मानमेव च। सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥क॥

पशु पक्षी कीट आदि वलिते ना पारे। शुनिले से हरि नाम तारा सब तरे ॥२७५॥
जपिले से कृष्ण नाम आपने से तरे। उच्च सङ्कीर्त्तने पर-उपकार करे ॥२७६॥
अतएव उच्च करि कीर्त्तन करिले। शतगुण फल हय सर्व्व शास्त्रे बोले ॥२७७॥

तथाहि श्रीनारदीये श्रीप्रह्लादवाक्यम्-

जपतो हरि नामानि स्थाने शत गुणाधिकः। आत्मानं च पुनात्युच्चै र्जपन् श्रोतृन्पुनाति च ॥ख॥

जप कर्त्ता हैते उच्च सङ्कीर्त्तनकारी। शतगुण अधिक पुराणे केने धरि ॥२७८॥
शुन विप्र! मन दिया इहार कारण। जपि आपनारे सबे करये पोषण ॥२७९॥
उच्च करि करिले गोविन्द सङ्कीर्त्तन। जन्तु मात्र शुनिआइ पाय विमोचन ॥२८०॥
जिह्वा पाइयाओ नर बिने सर्व्व प्राणी। ना पारे वलिते कृष्ण नाम हेन ध्वनि ॥२८१॥

के मुख से सुनकर मैंने जो कुछ जाना है वह आपके सम्मुख कहता हूँ और कहूँगा ॥ २६९ ॥ उच्च स्वर से नाम लेने से सौ गुना पुण्य होता है। शास्त्रों ने इसमें दोष तो कुछ नहीं बतलाया, हाँ गुण अवश्य वर्णन किये हैं ॥ २७० ॥ विप्र ने कहा कि-'उच्च स्वर से हरि नाम करने से सौगुना पुण्य होता है' इसका क्या कारण है ॥ २७१ ॥ श्रीहरिदासजी ने उत्तर दिया कि-हे महाशय! इसका जो तत्त्व वेदों एवं श्रीभागवत् में वर्णन है वह सुनिये ॥ २७२ ॥ श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि-हरिदासजी के श्रीमुख से सब शास्त्र स्फुरित होने लगे अतएव वे कृष्णानन्द सुख में मग्न हो व्याख्या करने लगे ॥ २७३ ॥ वे बोले-हे विप्र! सुनो, एक बार भी कृष्ण नाम सुनने पर पशु-पक्षी एवं कीट श्रीवैकुण्ठ धाम को जाते हैं ॥ २७४ ॥ जैसा कि श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध चौंतीसवें अध्याय के सत्रहवें श्लोक में श्रीसुदर्शनजी का वाक्य है—'हे प्रभो! लोक जिनके मङ्गलमय नाम को लेते हुए सभी सुनने वालों (जीवों) के साथ शीघ्र ही अपने को पवित्र करते हैं, आप वही पुरुष हो। फिर आपके चरण-स्पर्शित-जन के सम्बन्ध में और कहना ही क्या है ॥ क ॥ पशु, पक्षी, कीट आदि तो श्रीहरि नाम नहीं बोल सकते अतएव वे सब सुनकर ही उद्धार पाते हैं॥२७५॥ कृष्ण नाम जप करने से जप करने वाला स्वयं ही उद्धार पाता है, किन्तु उच्च-सङ्कीर्त्तन से पर-उपकार भी करता है ॥२७६॥ अतएव उच्च स्वर से कीर्त्तन करने से सौगुना फल होता है, यह सब शास्त्र वर्णन करते हैं ॥ २७७ ॥ जैसा श्रीनारदपुराण में श्रीप्रह्लादजी का वाक्य है-'हरि नाम जप-परायण की अपेक्षा उच्च स्वर से जप करने वाला सौगुना श्रेष्ठ है (यह युक्ति युक्त है) क्योंकि जप करने वाला केवल अपने को ही पवित्र करता है, किन्तु उच्च स्वर से जप-कर्त्ता सुनने वालों को भी पवित्र करता है ॥ ख ॥ आप लोग जानते हो, पुराण में जप करने वाले से उच्च सङ्कीर्त्तन करने वालों को सौगुना अधिक क्यों रक्खा है? ॥ २७८ ॥ हे विप्रो! मन लगाकर इसका कारण सुनिये, जप करके लोग केवल अपना पोषण करते हैं ॥ २७९ ॥ किन्तु श्रीगोविन्द का उच्च सङ्कीर्त्तन

व्यर्थ जन्मा इहारा निस्तरे जाहा हैते । बोल देखि कोन दोष से कर्म्म करिते ॥२८२॥
केहो आपनारे मात्र करये पोषण । केहो वा पोषण करे सहस्रेक जन ॥२८३॥
दुइते के बड़ भावि बुझह आपने । एइ अभिप्राय गुण उच्च सङ्कीर्त्तने' ॥२८४॥
सेइ विप्र शुनि हरिदासेर कथन । वलिते लागिल क्रोधे महा दुर्व्वचन ॥२८५॥
दरशन कर्त्ता एवे हैल हरिदास । काले काले वेद पथ हय देखि नाश ॥२८६॥
युगशेषे शूद्रे वेद करिब बाखाने । एखनेइ ताहा देखि शेषे आर केने ॥२८७॥
एइ रूपे आपनारे प्रकट करिया । घरे घरे भाल भोग खाइस बुलिया ॥२८८॥
जे व्याख्या करिलि तुइ ए यदि ना लागे । तबे तोर नाक कान काटि पुनः आगे ॥२८९॥
शुनि विप्राधमेर वचन हरिदास । 'हरि' वलि ईषत् हइल किछु हास ॥२९०॥
प्रत्युत्तर आर किछु तारे ना करिया । चलिलेन उच्च करि कीर्त्तन गाइया ॥२९१॥
जेवा पापी सभासद सेह पाप मति । उचित उत्तर किछु ना करिल इथि ॥२९२॥
ए सकल राक्षस ब्राह्मण नाम मात्र । एइ सब जन जम-जातनार पात्र ॥२९३॥
कलियुगे राक्षस सकल विप्र घरे । जन्मिवेक सुजनेर हिंसा करिवारे ॥२९४॥

तथाहि वराहपुराणे महेशवाक्यम्—

'राक्षसाः कलिमाश्रित्य जायन्ते ब्रह्मयोनिषु । उत्पन्ना ब्राह्मणकुले वाधन्ते श्रोत्रियान् कृत्स्नान्' ॥ग॥

ए सब विप्रेर स्पर्श-कथा-नमस्कार । धर्म शास्त्रे सर्व्वथा निषेध करिवार ॥२९५॥

करने से जन्तु-मात्र भी सुनकर उद्धार पाते हैं ॥ २८० ॥ मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य प्राणी जिह्वा पाकर भी श्रीकृष्ण-नाम उच्चारण नहीं कर पाते ॥ २८१ ॥ जिस कर्म से व्यर्थ जीवनधारी जीव उद्धार पावें, उसके करने में बतलाइये क्या दोष है ? ॥ २८२ ॥ कोई तो केवल अपना पोषण करता है और कोई सहस्रों मनुष्यों का पोषण करता है ॥ २८३ ॥ अब आप अपने मन में विचार कर देखिये कि—दोनों में कौन बड़ा है ? बस, इसी अभिप्राय से उच्च सङ्कीर्त्तन सौगुना श्रेष्ठ है ॥ २८४ ॥ श्रीहरिदासजी के वचनों को सुनकर वह विप्र क्रोधित होकर महा दुर्वचन बोलने लगा ॥ २८५ ॥ अब यह हरिदास दर्शन-कर्त्ता हुआ है। विदित होता है कि-इसी प्रकार धीरे-धीरे वेद-पथ नाश होगा ॥ २८६ ॥ युग के अन्त में शूद्र लोग वेदों की व्याख्या करने लगेंगे। अन्त में ही क्या ? इस समय ही वह प्रत्यक्ष देख रहे हैं ॥ २८७ ॥ ऐ हरिदास ! तू इसी प्रकार से अपने को प्रकट करके घर-घर में उत्तम-उत्तम भोग-द्रव्य खाता फिरता है ॥ २८८ ॥ तू ने जो व्याख्या की है यदि वह ठीक न हुई तो फिर मैं तेरे नाक-कान काट दूँगा ?॥२८९॥उस अधम विप्र के वचन सुनकर श्रीहरिदासजी को 'हरि' 'हरि' कहकर कुछ हँसी आई ॥ २९० ॥ उसको और कुछ प्रत्युत्तर न करके उच्च स्वर से कीर्त्तन करते हुए चल दिये ॥ २९१ ॥ जो पापी सभासद थे उन्होंने भी पाप बुद्धि के कारण इस पर कुछ भी उचित उत्तर नहीं दिया ॥ २९२ ॥ यह सब राक्षस नाम मात्र के ब्राह्मण हैं । यही सब मनुष्य यमराज की यातना के पात्र हैं ॥ २९३ ॥ कलियुग में राक्षस लोग सुजनों की हिंसा करने के लिये विप्र-घर में जन्म लेते हैं ॥ २९४ ॥ जैसा कि श्रीवराहपुराण में श्रीमहेश वाक्य है कि—'कलियुग का आश्रय लेकर राक्षस-गण ब्रह्म योनि में जन्म ग्रहण करते हैं । ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर वे (विद्या-श्रोत्रिय ब्राह्मणों को बाधा पहुँचाकर धर्म-क्षीण करते हैं ॥ ग ॥ इस प्रकार के विप्रों से स्पर्श करना, उनसे बात-चीत करना एवं नमस्कार करने को भी धर्म-

तथाहि पद्मपुराणे महेशवाक्यम्–

किमत्र बहुनोक्तेन ब्राह्मणा ये ह्यवैष्णवाः । तेषां सम्भाषणं स्पर्शं प्रमादेनापि वर्जयेत ।।घ।।

ब्राह्मण हइया जदि अवैष्णव हय । तवे तारे आलापेओ जाय पुण्य क्षय ।।२९६।।
से विप्राधमेर कथो दिवस थाकिया । वसन्ते नासिका तार पड़िल खसिया ।।२९७।।
हरिदास ठाकुरेर वलिलेक जेन । कृष्ण ओ ताहार शास्ति करिलेन तेन ।।२९८।।
भक्ति शून्य जगत देखिया हरिदास । दुःखे कृष्ण-कृष्ण वलि छाड़ेन निश्वास ।।२९९।।
कथो दिन वैष्णव देखिते इच्छा करि । आइलेन हरिदास नवद्वीप पुरी ।।३००।।
हरिदासे देखिया सकल भक्त गण । हइलेन अतिशय परानन्द मन ।।३०१।।
आचार्य गोसाञि हरिदासेरे पाइया । राखिलेन प्राण हैते अधिक करिया ।।३०२।।
सर्व्व वैष्णवेर प्रीति हरिदास प्रति । हरिदासो करेन सभारे भक्ति अति ।।३०३।।
पाखण्डी सकले जत देइ वाक्य ज्वाला । अन्योऽन्ये सब ताहा कहिते लागिला ।।३०४।
गीता भागवत लइ सर्व्व भक्त-गण । अन्योऽन्ये विचारे थाकेन सर्व्वक्षण ।।३०५।।
जे जने शुनये पढ़े ए सब आख्यान । ताहारे मिलिव गौरचन्द्र भगवान् ।।३०६।।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । बृन्दावनदास तछु पद जुगे गान ।।३०७।।

इति श्रीचैतन्यभागवते आदिखण्डे श्रीहरिदासमहिमावर्णनं नाम
एकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

द्वादशोऽध्यायः

जय जय श्रीगौर सुन्दर महेश्वर । जय नित्यानन्द प्रिय नित्य-कलेवर ।।१।।

शास्त्रों में बिल्कुल निषेध है ।। २९५ ।। जैसा कि पद्मपुराण में श्रीमहेशजी का वाक्य है कि–यहाँ बहुत कहने से क्या प्रयोजन है। तात्पर्य यह है कि—जो अवैष्णव ब्राह्मण हों उससे बात-चीत करना, स्पर्श करना, भूल कर भी निषेध है ।। घ ।। ब्राह्मण होकर भी यदि कोई पुरुष अवैष्णव हो तो उसके साथ आलाप करने से भी पुण्य क्षय हो जाता है ।। २९६ ।। कुछ दिन पश्चात् उस अधम विप्र की नाक बसन्त (चेचक) रोग से गिर पड़ी ।। २९७ ।। उसने श्रीहरिदास के प्रति जैसा कहा था, श्रीकृष्ण ने भी उसी प्रकार का दण्ड उसको दिया ।। २९८ ।। श्रीहरिदासजी संसार को भक्ति-शून्य देखकर दुःखित होकर 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलकर दीर्घ श्वास छोड़ते थे ।। २९९ ।। कुछ दिन पश्चात् श्रीहरिदासजी वैष्णव-दर्शन की इच्छा से श्रीनवद्वीपपुरी में आये ।। ३०० ।। वहाँ पर सब भक्त-गण श्रीहरिदासजी को देखकर अत्यन्त परमानन्द-चित्त हुए ।। ३०१ ।। श्रीअद्वैत आचार्य जी श्रीहरिदासजी को पाकर उन्हें प्राणों से भी अधिक करके रक्खा ।। ३०२ ।। श्रीहरिदासजी के प्रति सब वैष्णवों की परम प्रीति थी एवं श्रीहरिदासजी भी उन सबके प्रति परम भक्ति करते थे ।।३०३।। पाखण्डी लोगों द्वारा जितनी वाक्य-ज्वाला प्राप्त होती थी उसे परस्पर में सब कथोपकथन करते थे ।। ३०४ ।। सब भक्त-गण गीता एवं भागवत् लेकर निरन्तर विचार करते रहते थे ।। ३०५ ।। जो मनुष्य इन चरित्रों को पढ़ें व सुनें उन्हें भगवान् श्रीगौरचन्द्र प्राप्त होंगे ।। ३०६ ।। श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को प्रभु जानकर श्रीवृन्दावनदास ग्रन्थकार उनके युगल चरणों में उन्हीं की कुछ महिमा निवेदन करता है ।। ३०७ ।।

जय जय सर्व्व वैष्णवेर धन प्राण । कृपा दृष्ट्ये कर प्रभु सर्व्व जीवे त्राण ॥२॥
आदि खण्ड कथा भाइ ! शुन सावधाने । श्री गौर सुन्दर गया चलिला जेमने ॥३॥
हेन मते नवद्वीपे श्री वैकुण्ठ नाथ । अध्यापक शिरोमणि रूपे करे वास ॥४॥
चतुर्द्दिके पाषण्ड वाढ़ये गुरु तर । भक्ति योग नाम हैल शुनिते दुष्कर ॥५॥
मिथ्या रसे देखि अति लोकेर आदर । भक्त सब दुःख बड़ भावेन अन्तर ॥६॥
प्रभु से आविष्ट हइआछेन अध्ययने । भक्त सभे दुःख पाय देखेन आपने ॥७॥
निरवधि वैष्णवेर सब दुष्ट गणे । निन्दा करे बोले ताहा शुनेन आपने ॥८॥
चित्ते इच्छा हैल आत्म प्रकाश करिते । भाविलेन आगे आसिगिया गया हैते ॥६॥
इच्छा मय श्री गौर सुन्दर भगवान् । गया भूमि देखिते हइल इच्छा तान ॥१०॥
शास्त्र विधि मत श्राद्ध कर्म्मादि करिया । जात्रा करि चलिला अनेक शिष्य लैया ॥११॥
जननीर आज्ञा लइ महा हर्ष मने । चलिलेन महा प्रभु गया दरशने ॥१२॥
सर्व्व देश ग्राम करि पुण्य तीर्थ मय । श्री चरण हैल गया देखिते विजय ॥१३॥
धर्म्म कथा वाकोवाक्य परिहास रसे । मन्दारे आइला प्रभु कथोक दिवसे ॥१४॥
देखिया मन्दार मधुसूदन तथाय । भ्रमिलेन सकल पर्व्वत स्वलीलाय ॥१५॥
एइ मत कथो पथ आसिते आसिते । आर दिन ज्वर प्रकाशिलेन देहेते ॥१६॥
प्राकृत लोकेर प्राय वैकुण्ठ ईश्वर । लोक शिक्षा देखाइते धरिलेन ज्वर ॥१७॥

हे महाईश्वर भगवान् श्रीगौरसुन्दर ! आपकी जय हो, जय हो । हे नित्य कलेवर ! हे श्रीनित्यानन्द-प्रिय ! आपकी जय हो ॥ १ ॥ हे वैष्णव जनों के धन एवं प्राण ! आपकी जय हो, जय हो । हे प्रभो ! कृपा-दृष्टि पूर्वक सब जीवों का उद्धार कीजिये ॥ २ ॥ हे भाइयो ! आदिखण्ड की कथा, जिसमें श्रीगौर सुन्दर जिस प्रकार से 'गया' गये थे, एकाग्र चित्त होकर सुनिये ॥३॥ पूर्व प्रसङ्गानुसार नवद्वीप में श्रीवैकुठनाथ अध्यापक-शिरोमणि रूप से निवास करते थे ॥ ४ ॥ चारों ओर पाखण्ड बहुत बढ़ रहा था । भक्ति-योग का नाम तक सुनना दुष्कर हो रहा था ॥५॥ लोगों का मिथ्या रस (अनित्य विषय-भोग) में अति आदर देखकर भक्त-जन मन में बड़े दुःखित होते थे ॥ ६ ॥ इधर प्रभु अध्ययन में आविष्ट हो रहे थे, उधर भक्त-जन दुःख पा रहे थे, यह उन्हें पता था ॥ ७ ॥ सब दुष्ट जन निरन्तर वैष्णवों की निन्दा करते थे उसे भी वे सुनते थे ॥ ८ ॥ अब आपके मन में आपको प्रकाशित करने की इच्छा हुई । परन्तु सोचते हैं कि—'पहले 'गया' हो आऊँ'॥६॥ श्रीगौर सुन्दर भगवान् इच्छामय हैं, अब उनकी श्री गया-धाम दर्शन करने की इच्छा हुई ॥१०॥ शास्त्र-विधि के अनुसार श्राद्ध कर्म आदि करके बहुत से शिष्यों को साथ लेकर शुभ यात्रा करने लगे ॥११॥ माताजी की आज्ञा लेकर मनमें महा हर्षित होते हुए श्रीगया दर्शन के लिये चल दिये ॥ १२ ॥ मार्ग के सब नगर व गाँवों को पुण्य तीर्थमय करते हुए आप श्रीचरण दर्शन करने के लिये गया-धाम में पधारे ॥१३॥ धर्म-कथा आलाप, एवं उत्तर-प्रत्युत्तर करते हुए एवं परस्पर के परिहास रस में मग्न होते हुए प्रभु कुछ दिन में श्रीमन्दार पर आये ॥ १४ ॥ मन्दार पर्वत पर श्रीमधुसूदनजी के दर्शन कर लीलामय आनन्द पूर्वक सब पर्वत के ऊपर भ्रमण करने लगे ॥१५॥ इस प्रकार कुछ रास्ता आते-आते एक दिन अपने शरीर में ज्वर प्रकाशित कर लिया ॥१६॥

मध्य पथे ज्वर प्रकाशिलेन ईश्वरे । शिष्य गण हइलेन चिन्तित अन्तरे ।।१८।।
पथे रहि करिलेन बहु प्रतिकार । तथापि ना छाड़े ज्वर हेन इच्छा ताँर ।।१९।।
तवे प्रभु व्यवस्थिला औषध आपने । सर्व्व दुःख खण्डे विप्र पादोदक पाने ।।२०।।
विप्र पादोदकेर महिमा बुझाइते । पान करिलेन प्रभु आपने साक्षाते ।।२१।।
विप्र पादोदक पान करिया ईश्वर । सेइ क्षणे सुस्थ हैला आर नाहि ज्वर ।।२२।।
ईश्वर जे करे विप्र-पादोदक पाने । ए तान स्वभाव वेद पुराण बाखाने ।।२३।।

तथाहि श्रीभगवद्गीतायाम् (४।११)

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् । मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।। क ।।

जे ताहान दास्य-पद भावे निरन्तर । ताहारो अवश्य दास्य करेन ईश्वर ।।२४।।
अतएव नाम तान सेवक वत्सल । आपने हारिया बाढ़ायेन भृत्य-बल ।।२५।।
सर्वत्र रक्षक हेन प्रभुर चरण । बोल देखि केमते छाड़िब भक्त गण ।।२६।।
हेन मते करि प्रभु ज्वरेर विनाश । 'पुनः पुना' तीर्थे आसि हइला प्रकाश ।।२७।।
स्नान करि पितृ देव करिया अर्च्चन । गयाते प्रविष्ट हैला श्री शची नन्दन ।।२८।।
गया तीर्थ राजे प्रभु प्रविष्ट हइया । नमस्करिलेन प्रभु श्रीकर जुड़िया ।।२९।।
ब्रह्म कुण्डे आसि प्रभु करिलेन स्नान । यथोचित कैला पितृदेवेर सम्मान ।।३०।।
तवे आइलेन चक्रवेढ़ेर भितरे । पाद पद्म देखिवारे चलिला सत्वरे ।।३१।।

वैकुण्ठ ईश्वर श्रीगौरचन्द्र ने संसार को शिक्षा प्रदान करने के लिये प्राकृत मनुष्यों की तरह अपने ऊपर ज्वर ले लिया ।। १७ ।। प्रभु ने मार्ग में जब ज्वर प्रकट किया तब सब शिष्यगण मनमें बड़े चिन्तित हुए ।। १८ ।। एवं रास्ते में ठहर कर बहुत से प्रतिकार किये, तब भी आपको ज्वर ने नहीं छोड़ा, प्रभु की इच्छा ऐसी ही थी ।। १९ ।। तब कुछ समय पश्चात् प्रभु ने स्वयं ही औषधि की व्यवस्था की कि–'ब्राह्मणों का चरणामृत' पान करना ही सब दुःख नाश करेगा ।। २० ।। 'विप्र-पादोदक' की महिमा समझाने के लिये ही प्रभु ने सब के सम्मुख 'विप्र-पादोदक' पान कर लिया ।। २१ ।। 'विप्र-चरण-जल' पीकर प्रभु तत्काल स्वस्थ हो गये और ज्वर नहीं रहा ।। २२ ।। प्रभु ने जो विप्र-पादोदक पिया यह उनका स्वभाव है इसको वेद-पुराण भी कहते हैं ।।२३।। जैसा कि श्रीगीताजी के चतुर्थ अध्याय के ग्यारहवें श्लोक में श्रीकृष्ण कहते हैं कि—जो लोग मुझको जिस प्रकार से भजते हैं, मैं भी उन्हें उसी प्रकार से भजता हूँ । हे पार्थ ! मनुष्य-गण सब प्रकार से मेरे ही पथ का अनुसरण करते हैं ।। क ।। जो उनकी दास पदवी प्राप्त करने के लिये निरन्तर भावना करता है, ईश्वर उन्हें अवश्य ही अपना दासत्व देते हैं ।। २४ ।। इसीलिये उनका नाम भक्त-वत्सल है । आप स्वयं अपने को हराकर सेवकों का गौरव बढ़ाते हैं ।। २५ ।। श्रीप्रभु के सर्वत्र रक्षा करने वाले ऐसे चरणों को बताओ भक्त-गण किस प्रकार छोड़ देंगे ? इस प्रकार प्रभु ज्वर को दूर करके 'पुनः-पुना' नामक तीर्थ में आये ।।२६-२७।। वहाँ स्नान करके पितृ-देवों का पूजन कर श्रीशची नन्दन श्री गया में आये ।। २८ ।। 'गया तीर्थराज' में पहुँचकर प्रभु ने श्रीकर जोड़कर नमस्कार की ।। २९ ।। और ब्रह्म-कुण्ड पर आकर स्नान करके पितृ देवों का यथोचित सम्मान किया ।। ३० ।। तब वहाँ से चक्रवेढ़ के भीतर पहुँचे व शीघ्र ही श्रीविष्णु पाद-पद्म देखने के लिये चल दिये

विप्र गण वेढ़ियाछे श्रीचरण स्थान । श्रीचरणे माला जेन देउल प्रमाण ॥३२॥
गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, अलङ्कार । कत पड़ियाछे लेखा जोखा नाहि तार ॥३३॥
चतुर्द्दिके दिव्य रूप धरि विप्र गण । करि तेछे पाद पद्म प्रभाव वर्णन ॥३४॥
काशीनाथ हृदये धरिला जे चरण । जे चरण निरवधि लक्ष्मीर जीवन ॥३५॥
बलि शिरे आविर्भाव हैल जे चरण । सेइ एइ देख जत भाग्यवन्त जन ॥३६॥
तिलार्द्धेको जे चरण ध्यान कैले मात्र । यम तार ना हयेन अधिकार पात्र ॥३७॥
योगेश्वर सभेरो दुर्ल्लभ जे चरण। सेइ एइ देख जत भाग्यवन्त जन ॥३८॥
जे चरणे भागीरथी हइला प्रकाश । निरवधि हृदये ना छाड़े जारे दास ॥३९॥
अनन्त-शय्याय अति प्रिय जे चरण । सेइ एइ देख जत भाग्यवन्त जन ॥४०॥
चरण प्रभाव शुनि विप्र-गण मुखे । आविष्ट हइला प्रभु प्रेमानन्द सुखे ॥४१॥
अश्रु-धारा बहे दुइ श्रीपद्म नयने । लोम-हर्ष,कम्प हैल चरण दर्शने ॥४२॥
सर्व्व जगतेर भाग्ये प्रभु गौरचन्द्र । प्रेम भक्ति प्रकाशेर करिला आरम्भ ॥४३॥
अविच्छिन्न गङ्गा बहे प्रभुर नयने । परम अद्भुत रहि देखे विप्र गणे ॥४४॥
दैवजोगे ईश्वर पुरीओ सेइ क्षणे । आइलेन ईश्वर इच्छाय सेइ स्थाने ॥४५॥
ईश्वर पुरीरे देखि श्रीगौर सुन्दर । नमस्करि लेन बड़ करिया आदर ॥४६॥
ईश्वर पुरीओ गौरचन्द्रेरे देखिया । आलिङ्गन करिलेन महा हर्ष हैया ॥४७॥

॥ ३१ ॥ वहाँ पहुँचकर आपने देखा कि—विप्रगण श्रीचरण स्थान को घेरकर बैठे हुए हैं तथा श्रीचरणों के ऊपर माला राशि का सुन्दर वृत्ताकार मन्दिर सदृश शोभायमान हो रहा है ॥ ३२ ॥ वहाँ कितनी ही गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र एवं अलङ्कार पड़े हुए हैं जिनका कोई हिसाब किताब नहीं है॥ ३३ ॥ दिव्य रूप धारण किये हुए ब्राह्मणगण चारों ओर से श्रीचरण-कमलों का वर्णन कर रहे थे, जिन श्रीचरणों को काशी-पति शिवजी हृदय में धारण किये हुए हैं,जो चरण सर्वदा लक्ष्मीजी के जीवन हैं ॥३४-३५॥ जो चरण राजा बलि के सिर पर आविर्भूत हुए थे उन्हीं श्रीचरणों को हे भाग्यवान् जनो ! यह दर्शन करो ॥ ३६ ॥ जो आधे तिल (काल) मात्र भी इसका ध्यान करता है वह यमराज का अधिकार पात्र नहीं रहता अर्थात् यम उस पर आज्ञा नहीं चला सकते ॥३७॥ जो चरण योगेश्वरों के लिये भी दुर्लभ हैं वही श्रीचरण को हे भाग्यशाली पुरुषो ! यह दर्शन करो ॥ ३८ ॥ जिन चरणों से श्रीगङ्गाजी का जन्म हुआ, जिन चरणों को भगवत दास हृदय से कभी नहीं त्यागते ॥३९॥ जो चरण श्रीअनन्त-शय्या पर अति प्रिय प्रतीत होते हैं वही श्रीचरण को हे भाग्यशालियो ! यह दर्शन करो ॥ ४० ॥ विप्रों के मुख से चरणों का प्रभाव सुनकर प्रभु प्रेमानन्द सुख में आविष्ट हो गये ॥ ४१ ॥ आपके दोनों श्रीकमल नेत्रों से अश्रु धारा प्रवाहित होने लगी एवं चरण-दर्शनों से रोमाञ्च व कम्प हो रहा था ॥ ४२ ॥ सब संसार के सौभाग्य से प्रभु श्रीगौरचन्द्र ने प्रेम-भक्ति प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया ॥ ४३ ॥ आपके नेत्रों से अटूट अश्रु गङ्गा बह रही थी। विप्रगण इस परम अद्भुत दृश्य को स्थगित होकर देख रहे थे ॥ ४४ ॥ दैवयोग से ईश्वरेच्छा से श्रीईश्वर पुरी भी उसी समय वहाँ पर आ पहुँचे ॥ ४५ ॥ श्रीईश्वरपुरी को देखकर श्रीगौर सुन्दर ने बड़े सत्कार पूर्वक उन्हें नमस्कार किया ॥ ४६ ॥

दोँहार विग्रह दोँहाकार प्रेम जले । सिञ्चित हइला प्रेमानन्द कुतूहले ॥४८॥
प्रभु बोले 'गया यात्रा सफल आमार । जतं क्षणे देखिलाङ चरण तोमार ॥४९॥
तीर्थे पिण्ड दिले से निस्तरे पितृ गण । सेइ जारे पिण्ड दिये तरे सेइ जन ॥५०॥
तोमा देखिलेइ मात्र कोटि पितृ-गण । सेइ क्षणे सर्व्व-बन्ध पाय विमोचन ॥५१॥
अतएव तीर्थ नहे तोमार समान । तीर्थे रो परम तुमि मङ्गल-प्रधान ॥५२॥
संसार समुद्र हैते उद्धारो आमारे । एइ आमि देह समर्पिलाङ तोमारे ॥५३॥
कृष्ण पाद पद्मे र अमृत रस पान । आमारे कराओ तुमि एइ चाहि दान' ॥५४॥
बोलेन ईश्वर पुरी 'शुनह पण्डित । तुमि जे ईश्वर अंश अति सुनिश्चित ॥५५॥
जे तोमार पाण्डित्य जे चरित्र तोमार । सेह कि ईश्वर अंश वइ हय आर ॥५६॥
जेन आजि आमि शुभ स्वप्न देखिलाङ । साक्षाते ताहार फल एइ पाइलाङ ॥५७॥
सत्य कहि पण्डित तोमार दरशने । परानन्द सुख जेन पाइ अनुक्षणे ॥५८॥
यदवधि तोमा देखियाछि नदियाय । तदवधि चित्ते आर किछु नाहि भाय ॥५९॥
सत्य एइ कहि इथे किछु अन्य नाइ । कृष्ण-दरशन-सुख तोमा देखि पाइ ॥६०॥
शुनि प्रिय ईश्वर पुरीर सत्य वाक्य । हासिया बोलेन प्रभु 'मोर बड़भाग्य' ॥६१॥
एइ मत कत आर कौतुक सम्भास । जत हैल ताहा वर्णिवेन वेदव्यास ॥६२॥
तवे प्रभु तान स्थाने अनुमति लैया । तीर्थ श्राद्ध करिवारे वसिला आसिया ॥६३॥

श्रीईश्वरपुरी ने भी श्रीगौरचन्द्र को देखकर परम हर्षित हो उन्हें आलिङ्गन प्रदान किया ॥ ४७ ॥ प्रेमानन्द कौतूहल वश दोनों के प्रेमाश्रु जल से दोनों के शरीर सिञ्चत हो रहे थे ॥ ४८ ॥ प्रभू कहने लगे–जिस समय से आपके चरण दर्शन किये हैं उसी समय से मेरी गया यात्रा सफल हो गई ॥ ४९ ॥ तीर्थ में पिण्ड दान करने से पितृ-गण निस्तार पाते हैं, परन्तु जिस पितृ के लिये पिण्ड दिया जाता है वही तरता है ॥ ५० ॥ किन्तु आपके दर्शन मात्र से ही करोड़ों पितृ-गण तत्काल सब बन्धनों से छुटकारा पा गये ॥ ५१ ॥ अतएव तीर्थ आपके समान नहीं हैं आप तीर्थ से भी परम प्रधान मङ्गलकारी हैं ॥ ५२ ॥ हे प्रभो ! आप संसार समुद्र से मेरा उद्धार कीजिये । मैं अपनी यह देह आपको समर्पण करता हूँ ॥५३॥ आप मुझको कृष्ण-कमल-चरणों का अमृत रस पान कराइये, मैं केवल यही दान चाहता हूँ ॥ ५४ ॥ तब श्रीईश्वरपुरी जी उत्तर देते हैं कि-हे पण्डित ! सुनो, यह बात अति सुनिश्चित है कि-तुम ईश्वर-अंश हो ॥ ५५ ॥ जो आपका पाण्डित्य एवं चरित्र है, वह ईश्वर-अंश बिना अन्य किसी का हो सकता है ? ॥ ५६ ॥ मैंने जो आज शुभ स्वप्न देखा था उसका साक्षात् फल यही पा लिया ॥ ५७ ॥हे पण्डित ! हम सत्य कहते हैं कि–तुम्हारे दर्शनों से हम मानो निरन्तर एक परमानन्द सुख अनुभव करते हैं ॥ ५८ ॥ जब से मैंने नवद्वीप में तुम्हारे दर्शन किये हैं तब से मेरे चित्त को और कुछ अच्छा नहीं लगता ॥ ५९ ॥ मैं यह सत्य कहता हूँ, इसमें कुछ अन्यथा नहीं है कि-तुम्हें देखकर मैं कृष्ण-दर्शन का सुख पाता हूँ ॥ ६० ॥ श्रीईश्वरपुरी के प्रिय सत्य वचनों को सुनकर प्रभु हँसकर बोले कि–'वह मेरे बड़े भाग्य हैं' ॥ ६१ ॥ इसी प्रकार से और कितना ही जो आनन्दमय वार्त्तालाप हुआ उसे श्रीवेदव्यास जी की शक्ति से सम्पन्न होकर महत् पुरुष वर्णन करेंगे ॥ ६२ ॥ तब प्रभु उनसे अनु-

फल्गुतीर्थे करि बालुकार पिण्डदान । तबे गेला गिरिश्रृङ्गे प्रेतगया स्थान ॥६४॥
प्रेतगया-श्राद्ध करि श्री शचीनन्दन । दक्षिणाये वाक्ये तुषिलेन विप्रगण ॥६५॥
तबे उद्धारिया पितृ गण सन्तर्पिया । दक्षिण मानसे चलिलेन हर्ष हैया ॥६६॥
तबे चलिलेन प्रभु श्री राम गयाय । राम अवतारे श्राद्ध करिला जथाय ॥६७॥
एहो अवतारे सेइ स्थाने श्राद्धकरि । तबे युधिष्ठिर गया गेला गौर हरि ॥६८॥
पूर्व्वे युधिष्ठिर पिण्ड दिलेन तथाय । सेइ प्रीते तथा श्राद्धकैला गौरराय ॥६९॥
चतुर्दिगे प्रभुरे वेढ़िया विप्र गण । श्राद्ध करायेन सभे पढ़ान वचन ॥७०॥
श्राद्ध करि प्रभु पिण्ड फेले जेइ जले । गयालि ब्राह्मण सब धरि धरि गिले ॥७१॥
देखिया हासेन प्रभु श्री शची नन्दन । से सब विप्रेरो जत खण्डिल बन्धन ॥७२॥
उत्तर मानसे प्रभु पिण्ड-दान करि । भीम गया करिलेन गौराङ्ग श्री हरि ॥७३॥
शिव-गया ब्रह्म-गया आदि जत आछे । सब करि षोड़श-गयाय गेला पाछे ॥७४॥
षोड़श गयाय प्रभु षोड़सी करिया । सभारे दिलेन पिण्ड श्रद्धा युक्त हैया ॥७५॥
तबे महा प्रभु ब्रह्म कुण्डे करि स्नान । गया शिरे आसि करिलेन पिण्ड दान ॥७६॥
दिव्य माला चन्दन श्री हस्ते प्रभु लैया । विष्णु पद चिह्न पूजिलेन हर्ष हैया ॥७७॥
एइ मत सर्व्व स्थाने श्राद्धादि करिया । वासाये चलिला विप्र गणे सन्तोषिया ॥७८॥
तबे महा प्रभु कथो क्षणे सुस्थ हैया । रन्धन करिते प्रभु वसिलेन गिया ॥७९॥
रन्धन सम्पूर्ण हैल हेनइ समय । आइलेन ईश्वर पुरी महाशय ॥८०॥

मति लेकर तीर्थ में पितृ-श्राद्ध करने के लिये आकर बैठे ॥६३॥पश्चात् फल्गुतीर्थ में बालुके पिण्ड दान करके गिरि शिखर पर 'प्रेतगया' नामक स्थान पर गये ॥ ६४ ॥ प्रेतगया में श्राद्ध करके श्रीशचीनन्दन ने विप्रों को दक्षिणा से एवं सुवाक्यों से प्रसन्न किया ॥ ६५ ॥ इस प्रकार पित्रों को उद्धार एवं सन्तर्पण करते हुए प्रभु प्रसन्नता पूर्वक दक्षिणा-मानस को गये ॥ ६६ ॥ वहाँ से प्रभु श्रीराम-गया को गये, जहाँ प्रभु श्रीराम-अवतार काल में श्राद्ध किया था ॥ ६७ ॥ इस अवतार में भी उस स्थान पर श्राद्ध करके श्रीगौरहरि युधिष्ठिर गया को गये ॥ ६८ ॥ पूर्व काल में वहाँ पर श्रीयुधिष्ठिर जी ने पिण्ड-दान किये थे, इसी स्नेह के कारण श्रीगौर-चन्द्र ने भी वहाँ पर श्राद्ध किया ॥ ६९ ॥ विप्रगण प्रभु को चारों ओर से घेर कर शास्त्र-विधि के अनुसार वचन बुलवाते हुए श्राद्ध कराते थे॥७०॥प्रभु ज्योंही पिण्डों को ले लेकर जल में छोड़ते जाते थे, त्योंही गयालि ब्राह्मण उन्हें उठा २ कर मुँह में रखते जाते थे ॥ ७१ ॥ यह देखकर प्रभु हँसने लगे; आपकी कृपा से उन सब विप्रों के सम्पूर्ण बन्धन नष्ट हो गये ॥ ७२ ॥ उसके पीछे गौराङ्ग श्रीहरि ने उत्तर मानस तीर्थ में पिण्ड-दान करके भीम-गया में पिण्ड दान किया ॥ ७३ ॥ शिव-गया, ब्रह्म-गया आदि सब गयाओं में श्राद्ध करके प्रभु पीछे षोडश गया को गये ॥ ७४ ॥ षोड़श गया में प्रभु षोडशो कर श्रद्धापूर्वक सब पितृ-गणों को पिण्ड दान किया ॥ ७५ ॥ पश्चात् प्रभु ने ब्रह्म-कुण्ड में स्नान करके गयाशिर पर आकर पिण्ड दान किया ॥ ७६ ॥ श्री-प्रभु ने श्रीहस्तों में दिव्य माला, चन्दन लेकर प्रसन्नता पूवक विष्णु-पद-चिह्नों की पूजा की ॥ ७७ ॥ इसी प्रकार सब स्थानों में श्राद्ध आदि करके एवं विप्रों को प्रसन्न करते हुए प्रभु अपने वास-स्थान पर गये ॥७८॥

प्रेम जोगे कृष्ण नाम बलिते बलिते । आइलेन मत्त प्राय ढुलिते ढुलिते ॥८१॥
रन्धन एडिया प्रभु परम सम्भ्रमे । नमस्करि ताने वसाइलेन आसने ॥८२॥
हासिया बोलेन पुरी 'शुनह पण्डित । भालत समये हइलाङ उपनीत' ॥८३॥
प्रभु बोले 'जवे हैल भाग्येर उदय । एइ अन्न भिक्षा आजि कर महाशय' ॥८४॥
हासिया बोलेन पुरी 'तुमि कि खाइवे' । प्रभु बोले 'आमि अन्न रान्धिवाङ एवे' ॥८५॥
पुरी बोले 'कि कार्य करिवे आर पाक । जे अन्न आछये ताहि कर दुइ भाग' ॥८६॥
हासिया बोलेन प्रभु 'यदि आमा चाओ । जे अन्न हइयाछे ताहा तुमि सब खाओ ॥८७॥
तिलार्द्धेके आर अन्न राधिवाङ आमि । नाकर सङ्कोच किछु भिक्षा कर तुमि' ॥८८॥
तवे प्रभु आपनार अन्न ताने दिया । आर अन्न रान्धिते लागिला हर्ष हैया ॥८९॥
हेन कृपा प्रभुर ईश्वर पुरी-प्रति । पुरीरो नाहिक कृष्ण छाड़ा अन्य मति ॥९०॥
श्री हस्ते आपने प्रभु करे परिवेशन । परानन्द सुखे पुरी करेन भोजन ॥९१॥
सेइ क्षणे रमा देवी अति अलक्षिते । प्रभुर निमित्ते अन्न रान्धिला त्वरिते ॥९२॥
तवे प्रभु आगे ताने भिक्षा कराइया । आपनेओ भोजन करिला हर्ष हैया ॥९३॥
ईश्वर पुरीर सङ्गे प्रभुर भोजन । इहार श्रवणे मिले कृष्ण प्रेम धन ॥९४॥
तवे प्रभु ईश्वर पुरीर सर्व्व अङ्गे । आपने श्री हस्ते लेपिलेन दिव्य गन्धे ॥९५॥
जत प्रीति ईश्वरेर ईश्वर पुरीरे । ताहा वर्णिवारे कोन जन शक्ति धरे ॥९६॥

वहाँ पर श्रीमहाप्रभु जी कुछ देर आराम करके रसोई तैयार करने लगे ॥ ७९ ॥ रसोई तैयार हो चुकी उसी समय श्रीईश्वरपुरी महाशय आ पहुँचे ॥८०॥आप प्रेम-योग में विभोर हो 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहते-कहते मस्तों की भाँति इधर-उधर झूमते हुए आये ॥ ८१ ॥ श्रीप्रभु ने रसोई करना छोड़कर परम सम्भ्रम पूर्वक नमस्कार करके उन्हें आसन पर बिठलाया ॥ ८२ ॥ श्रीपुरी जी हँसकर बोले कि-'हे पण्डित ! सुनो, हम तो भले ही समय पर आये' ॥ ८३ ॥ प्रभु ने कहा कि—'मैं अपना भाग्य जब उदय हुआ जानूँ' जो श्रीमहाशय आज यह अन्न भोजन करें ॥ ८४ ॥ पुरीजी हँसकर बोले-'तुम क्या खाओगे ?' प्रभु ने कहा-'मैं अभी और रसोई करता हूँ' ॥ ८५ ॥ तब पुरीजी बोले कि-'और रसोई क्यों करते हो ? जो अन्न रसोई तैयार है उसी के दो भाग कर लो' ॥ ८६ । श्रीप्रभु ने हँसकर कहा कि—'यदि आप मुझे चाहते हैं तो जो रसोई तैयार हो गई है वह सब आप भोजन कीजिये ॥ ८७ ॥ मैं पल भर में और भोजन तैयार करता हूँ, आप तनिक भी सङ्कोच न कीजिये प्रसन्नता पूर्वक भोजन कीजिये ॥ ८८ ॥ यह कहकर प्रभु अपना भोजन उनको देकर प्रसन्न-चित्त हो और भोजन तैयार करने लगे ॥ ८९ ॥ प्रभु की श्रीईश्वरपुरी के प्रति ऐसी कृपा है। उधर श्रीपुरी जी का भी श्रीकृष्ण को छोड़कर मनमें अन्य भाव नहीं है ॥ ९० ॥ प्रभु स्वयं अपने श्रीहस्तों से परोसते थे और पुरीजी परमानन्द-रस में डूबे हुए भोजन करते थे ॥ ९१ ॥ उसी समय लक्ष्मीदेवी ने अति अलक्षित रूप से श्रीप्रभु के लिये शीघ्र ही रसोई तैयार की ॥ ९२ ॥ तब प्रभु ने पहले उनको भोजन कराया तब पीछे स्वयं भी प्रसन्न होकर भोजन किया ॥ ९३ ॥ 'श्रीईश्वरपुरी के साथ प्रभु की भोजन लीला' सुनने से कृष्ण-प्रेम-धन मिलता है ॥ ९४ ॥ इसके पश्चात् प्रभु ने स्वयं अपने श्रीहस्तों से श्रीईश्वरपुरी के सब श्रीअङ्ग में दिव्य-गन्ध का अनु-

आपने ईश्वर श्री चैतन्य भगवान् । देखिलेन ईश्वर पुरीर जन्म-स्थान ॥६७॥
प्रभु बोले 'कुमार हट्टेरे नमस्कार । श्री ईश्वर पुरीर जे ग्रामे अवतार' ॥६८॥
कान्दिलेन विस्तर चैतन्य सेइ स्थाने । आर शब्द किछु नाइ 'ईश्वर पुरी' बिने ॥६६॥
से स्थानेर मृत्तिका आपने प्रभु तुलि । लइलेन वहिर्वासे बान्धि एक भुलि ॥१००॥
प्रभु बोले 'ईश्वर पुरीर जन्म स्थान । ए मृत्तिका मोहर जीवन धन प्राण' ॥१०१॥
हेन ईश्वरेर प्रीति ईश्वर पुरीरे । भक्तेरे बाढ़ाते प्रभु सब शक्ति धरे ॥१०२॥
प्रभु बोले 'गया करिते जे आइलाङ । सत्य हैल ईश्वर पुरीरे देखिलाङ ॥१०३॥
आर दिने निभृते ईश्वर पुरी स्थाने । मन्त्र दीक्षा चाहिलेन मधुर वचने ॥१०४॥
पुरी बोले 'मन्त्र वा वलिया कोन कथा । प्राण आमि दिते पारि तोमारे सर्व्वथा ॥१०५॥
तवे तान स्थाने शिक्षा गुरु नारायण । करिलेन दशाक्षर मन्त्रेर ग्रहण ॥१०६॥
तवे प्रभु प्रदक्षिण करिया पुरीरे । प्रभु बोले 'देह आमि दिलाङ तोमारे ॥१०७॥
हेन शुभ दृष्टि तुमि करह आमारे । जेन आमि भासि कृष्ण-प्रेमेर सागरे ॥१०८॥
शुनिञा प्रभुर वाक्य श्रीईश्वर पुरी । प्रभुरे दिलेन आलिङ्गन वक्षे धरि ॥१०६॥
दोहार नयन जले दोहार शरीर । सिञ्चित हैल प्रेमे केहो नहे स्थिर ॥११०॥
हेन मते ईश्वर पुरीरे कृपा करि । कथो दिन गयाय रहिला गौर हरि ॥१११॥
आत्म प्रकाशेर आसि हइल समय । दिने दिने वाढ़े प्रेम-भक्तिर विजय ॥११२॥

लेपन किया ॥ ६५ ॥ प्रभु की ईश्वरपुरी जी के प्रति जितनी प्रीति थी, उसके वर्णन करने की किसमें सामर्थ्य है ? ॥ ६६ ॥ स्वयं ईश्वर श्रीचैतन्य भगवान् ने श्रीईश्वरपुरी जी की जन्म-भूमि का दर्शन किया ॥ ६७ ॥ और कहने लगे कि-' कुमार हट्ट को नमस्कार है, जो श्रीईश्वरपुरी जी का जन्म-स्थान है' ॥ ६८ ॥ उसी स्थान पर (खड़े होकर) श्रीचैतन्य प्रभु ने बहुत क्रन्दन किया। 'ईश्वरपुरी' 'ईश्वरपुरी' के अतिरिक्त अन्य कोई शब्द मुख पर नहीं था ॥ ६६ ॥ फिर वहाँ की एक झोलिआ रज स्वयं श्रीप्रभु ने अपने कर-कमलों से उठाकर बहिर्वास में बाँध ली ॥ १०० ॥ प्रभु बोले कि—'श्रीईश्वरपुरी के जन्म-स्थान की यह रज मेरी जीवन-धन प्राण है ॥ १०१ ॥ प्रभु की श्रीईश्वरपुरी के प्रति इस प्रकार की प्रीति थी। प्रभु में अपने भक्तों को बढ़ाने के लिये सब सामर्थ्य है ॥ १०२ ॥ प्रभु बोले कि-'गया' करने के लिये मेरा आना सफल हो गया, जो 'श्रीईश्वर पुरीजी' के दर्शन पाये ॥ १०३ ॥ दूसरे दिन श्रीप्रभु ने एकान्त में श्रीईश्वरपुरी जी से मधुर वचनों में मन्त्र-दीक्षा लेने के लिये प्रार्थना की ॥ १०४ ॥ इस पर पुरी जी कहते हैं कि—'मन्त्र सुनाने की तो क्या बात है, मैं सब प्रकार से तुम्हारे लिये प्राण भी दे सकता हूँ ॥ १०५ ॥ तब स्वयं शिक्षा-गुरु श्रीनारायण ने आपसे 'दशाक्षर-मन्त्र' लिया ॥ १०६ ॥ पश्चात् पुरीजी की परिक्रमा करके प्रभु कहने लगे कि-हे गुरुवर ! मैं अपने को आपके समर्पण करता हूँ ॥ १०७ ॥ आप मेरे ऊपर ऐसी शुभ-दृष्टि कीजिये कि-मैं जिससे निरन्तर कृष्ण-प्रेम के समुद्र का अनुभव करता रहूँ ॥ १०८ ॥ प्रभु के वाक्य सुनकर श्रीपुरी जी ने छाती से लगाकर उनको आलिङ्गन दिया ॥ १०६ ॥ दोनों के नेत्रों के प्रेमाश्रुओं से दोनों का शरीर सिञ्चित हो रहा था। दोनों ही बड़े अधीर हो रहे थे ॥ ११० ॥ इस प्रकार श्रीईश्वरपुरी जी के ऊपर कृपा करके श्रीगौरहरि कुछ दिन

एक दिन महाप्रभु वसिया निभृते । निज इष्ट मन्त्र ध्यान लागिला करिते ॥११३॥
कथोक्षणे महाप्रभु वाह्य प्रकाशिया । करिते लागिला बड़ रोदन डाकिया ॥११४॥
कृष्णरे बापरे मोर जीवन श्रीहरि । कोन दिगे गेला मोर प्राण करि चुरि ॥११५॥
पाइलों ईश्वर मोर कोन दिगे गेला । श्लोक पढ़ि पढ़ि प्रभु कान्दिते लागिला ॥११६॥
प्रेम-भक्ति रसे मग्न हइला ईश्वर । सकल श्रीअङ्ग हैल धूलाय धूसर ॥११७॥
आर्त नाद करि प्रभु डाके उच्च स्वरे । कोथा गेला बाप कृष्ण ! छाड़िया मोहरे ॥११८।
जे प्रभु आछिला अति परम गम्भीर । से प्रभु हइला प्रेमे परम अस्थिर ॥११९॥
गड़ागड़ि जायेन कान्देन उच्च स्वरे । भासिलेन निज भक्ति-विरह सागरे ॥१२०॥
तवे कथो क्षणे आसि सर्व्व शिष्य गणे । सुस्थ करिलेन आसि अशेष जतने ॥१२१॥
प्रभु बोले 'तोमरा सकल जाह घरे । मुञि आर ना जाइमुँ संसार भितरे ॥१२२॥
मथुरा देखिते मुञि चलिब सर्व्वथा । प्राण नाथ मोर कृष्णचन्द्र पाङ जथा ॥१२३॥
नाना-रूपे सर्व्व-शिष्य गणे प्रबोधिया । स्थिर करि राखिलेन सभेइ मिलिया ॥१२४॥
भक्ति रसे मग्न हइ वैकुण्ठेर पति । चित्ते स्वास्थ्य ना पायेन रहिवेन कति ॥१२५॥
काहारे ना बलि प्रभु कथो रात्रि-शेषे । मथुरारे चलिलेन प्रेमेर आवेशे ॥१२६॥
कृष्णरे बापरे मोर ! पाइमुँ कोथाय । एइ मत बलिया जायेन गौर राय ॥१२७॥
कथो दूर जाइते शुनेन दिव्य वाणी । 'ए खने मथुरा ना जाइवा द्विज मणि ॥१२८।

गया में ठहरे ॥ १११ ॥ 'आत्म-प्रकाश' का समय भी आ पहुँचा है । इधर प्रभु की 'प्रेम-भक्ति की गति' भी दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही थी ॥ ११२ ॥ एक दिन श्रीमहाप्रभु जी एकान्त-स्थान में बैठकर निज इष्ट-मन्त्र का ध्यान करते थे ॥ ११३ ॥कुछ समय पश्चात् अर्द्ध वाह्य दशा में आकर बड़े जोर-जोर से चिल्लाकर रोदन करने लगे ॥ ११४ ॥ कृष्ण हे ! बाप हे ! मेरे जीवन श्रीहरि ! मेरे प्राणों को चुराकर आप कहाँ चले गये ? ॥ ११५ ॥ 'मेरे प्राप्त किये हुए प्रभु कहाँ चले गये ?' इस भाव के श्लोक उच्चारण करते हुए प्रभु रुदन करने लगे ॥११६॥ प्रेम भक्ति रस में प्रभु मग्न हो रहे थे । आपका सकल श्रीअङ्ग धूलि-धूसरित हो रहा था ॥११७॥ आप उच्च स्वर के आर्तनाद से टेर लगा रहे थे,यथा—हे बाप कृष्ण ! आप मुझे छोड़कर कहाँ चले गये॥११८॥ पहले जो प्रभु परम गम्भीर थे वही अब प्रेम में परम अस्थिर हो गये ॥ ११९ ॥ प्रभु धूल में लोटते-पोटते थे एवं उच्च-स्वर से क्रन्दन करते थे । इस प्रकार आप अपनी भक्तिके विरह-समुद्र में उतरा(भास)रहे थे॥१२०॥ तब कुछ समय पीछे शिष्य-वृन्द ने आकर बहुत प्रयत्न करके आपको कुछ धीरज धराया ॥ १२१ ॥ प्रभु ने उनसे कहा कि—'तुम सब अपने-अपने घरों को जाओ मैं अब संसार में नहीं जाऊँगा ॥ १२२ ॥ मैं निश्चय ही मथुरा जी दर्शन करने के लिये जाऊँगा जहाँ पर मेरे प्राणनाथ कृष्ण से भेंट होगी ॥१२३॥ तब सब शिष्य वृन्द ने मिलकर अनेक प्रकार से आपको समझाकर कुछ स्थिर किया ॥ १२४ ॥ भक्ति-रस में मग्न होकर वैकुण्ठ-पति चित्त में किसी प्रकार की शान्ति नहीं पाते थे तब फिर वहाँ क्यों ठहरते ॥ १२५ ॥ इसलिये बिना किसी से कहे हुए कुछ रात्रि शेष रहने पर प्रेम के आवेश में आकर श्रीमथुराजी को चलने लगे ॥ १२६ ॥ श्रीगौरसुन्दर 'हे मेरे कृष्ण ! हे मेरे बाप ! मैं आपको कहाँ पाऊँ ? आप मुझको कहाँ मिलोगे ?'

जाइवार काल आछे जाइवा तखने । नवद्वीपे निज गृहे चलह एखने ॥१२९॥
तुमि श्री वैकुण्ठ नाथ लोक निस्तारिते । अवतीर्ण हइयाछ सभार सहिते ॥१३०॥
अनन्त ब्रह्माण्ड मय करिवा कीर्त्तन । जगतेरे बिलाइवा प्रेम-भक्ति-धन ॥१३१॥
ब्रह्मा शिव सनकादि जे रसे विह्वल । महा प्रभु अनन्त गायेन जे मङ्गल ॥१३२॥
ताहा तुमि जगतेरे दिवार कारणे । अवतीर्ण हइयाछ जानह आपने ॥१३३॥
सेवक आमरा तभो चाहि कहिवार । अतएव कहिलाङ चरणे तोमार ॥१३४॥
आपनार विधाता आपनि तुमि प्रभु । तोमार जे इच्छा से लङ्घन नहे कभू ॥१३५॥
अतएव महा प्रभु चल तुमि घर । विलम्बे देखिवा आसि मथुरा नगर ॥१३६॥
शुनिञा आकाश वाणी श्री गौर सुन्दर । निवर्त्त हइला प्रभु हरिष अन्तर ॥१३७॥
बासाय आसिया सर्व्व शिष्येर सहिते । निज गृहे चलिलेन भक्ति प्रकाशिते ॥१३८॥
नवद्वीपे गौरचन्द्र करिला विजय । दिने दिने बाड़े प्रेम-भक्तिर उदय ॥१३९॥
आदि खण्ड कथा परिपूर्ण एइ हैते । मध्य खण्ड कथा एवे शुन भाल मते ॥१४०॥
जेवा शुने ईश्वरेर गयार विजय । गौरचन्द्र प्रभु तारे मिलिव निश्चय ॥१४१॥
कृष्ण-जश शुनिते से कृष्ण सङ्ग पाइ । ईश्वरेर सङ्गे तार कभू त्याग नाइ ॥१४२॥
अन्तर्यामी नित्यानन्द वलिला कौतुके । चैतन्य चरित्र किछु लिखिते पुस्तके ॥१४३॥
ताहान कृपाय लिखि चैतन्येर कथा । स्वतन्त्र इहाते शक्ति नाहिक सर्व्वथा ॥१४४॥

बोलते हुए चले जा रहे थे ॥ १२७ ॥ कुछ दूर जाकर एक दिव्य-आकाश वाणी सुनी कि-'हे द्विजमणि ! इस समय आप मथुरा न जाओ ॥१२८॥ 'जाने का समय आने पर तब जाना । इस समय तुम नवद्वीप में अपने घर जाओ ॥ १२९ ॥ आप श्रीवैकुण्ठनाथ हो । संसार का उद्धार करने के लिये अपने परिकर के सहित श्री-नवद्वीप में अवतीर्ण हुए हो ॥ १३० ॥ आप अनन्त ब्रह्माण्डों में प्रति ध्वनित होने वाला कीर्त्तन करोगे । जगत को प्रेम-भक्ति-धन वितरण करोगे ॥ १३१ ॥ जिस रस में ब्रह्मा, शिव, सनकादि विह्वल हो रहे हैं एवं जिस मङ्गलमय यश को महाप्रभु श्रीअनन्त देव जी निरन्तर गान करते हैं ॥ १३२ ॥ उसको आप संसार में वितरण करने के लिए अवतीर्ण हुए हो, यह सब आप जानते हो ॥ १३३ ॥ हम तो आपके सेवक हैं तब भी कहना उचित था इसलिये आपके चरणों में निवेदन किया ॥ १३४ ॥ हे प्रभो ! आप स्वयं अपने विधाता हो, आपकी इच्छा कभी नहीं मिट सकती ॥ १३५ ॥ अतएव हे महाप्रभो ! अब आप घर जाइये कुछ समय पश्चात् आकर श्रीमथुरा नगर देखना' ॥ १३६ ॥ आकाश-वाणी सुनकर श्रीगौरसुन्दर प्रसन्न-चित्त होकर लौटे ॥ १३७ ॥ सब शिष्यों के साथ प्रथम अपने नियत स्थान पर आकर भक्ति-प्रचार हेतु अपने घर को चल दिये ॥ १३८ ॥ श्रीनवद्वीप में श्रीगौरचन्द्र ने पदार्पण किया इधर प्रेम-भक्ति के विकार भी आपके श्रीअङ्ग में दिन प्रति दिन वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे ॥ १३९ ॥ आदिखण्ड की कथा यहाँ परिपूर्ण हो गई, अब मन लगा-कर मध्य-खण्ड की कथा सुनिये ॥ १४० ॥ जो कोई प्रभु की 'गया-यात्रा' श्रवण करेगा उसको अवश्य श्री-गौरचन्द्र प्रभु मिलेंगे ॥ १४१ ॥ वह श्रीकृष्ण-यश सुनने से श्रीकृष्ण-सङ्ग पाता है, उसको ईश्वर-सङ्ग में विच्छेद कभी नहीं होता ॥ १४२ ॥ अन्तर्यामी श्रीनित्यानन्द प्रभु ने मुझको कुछ 'श्रीचैतन्य-चरित्र' पुस्तक रूप में

काष्ठेर पुतलि जेन कुहके नाचाय। एइ मत गौर चन्द्र मोरे जे बोलाय ॥१४५॥
चैतन्य कथार आदि अन्त नाहि जानि। जे ते मते चैतन्येर जश से वाखानि ॥१४६॥
पक्षी जेन आकाशेर अन्त नाहि पाय। जत दूर शक्ति तत दूर उड़ि जाय ॥१४७॥
एइ मत चैतन्य जशेर अन्त नाञि। जार जत शक्ति कृपा सभे तत गाइ ॥१४८॥

तथाहि भा० १।१८।२३ "नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणस्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः" इति ।(क)

सर्व्व वैष्णवेर पाये मोर नमस्कर। इथे अपराध किछु नहुक आमार ॥१४९॥
संसारेर पार हैया भक्तिर सागरे। जे डूबिब से भजुक् निताइ चान्दरे ॥१५०॥
आमार प्रभुर प्रभु श्री गौर सुन्दर। ए बड़ भरसा चित्ते धरि निरन्तर ॥१५१॥
केहो बोले प्रभु नित्यानन्द बलराम। केहो बोले चैतन्येर महा-प्रिय धाम ॥१५२॥
केहो बोले महा तेजीयान् अधिकारी। केहो बोले कोन रूप बुझिते ना पारि ॥१५३॥
किवा जति नित्यानन्द किवा भक्त ज्ञानी। जार जेन मत इच्छा ना बोलये केनि ॥१५४॥
जे से केने चैतन्येर नित्यानन्द नहे। से चरण-धन मोर रहुक हृदये ॥१५५॥
एत परिहारे ओ जे पापी निन्दा करे। तवे लाथि मारोँ तार शिरेर उपरे ॥१५६॥
जय जय नित्यानन्द चैतन्य जीवन। तोमार चरण मोर हउक शरण ॥१५७॥

लिखने का कौतुक पूर्वक आदेश किया ॥ १४३ ॥ उन्हीं की कृपा से मैं श्रीचैतन्यचन्द्र के चरित्र लिखता हूँ इसमें मेरी किञ्चित् मात्र भी स्वतन्त्र-शक्ति नहीं है ॥ १४४ ॥ काष्ठ की पुतली को जैसे बाजीगर नचाता है, उसी प्रकार श्रीगौरचन्द्र मुझ से जो बुलवा रहे हैं वही बोल रहा हूँ ॥ १४५ ॥ मैं श्रीचैतन्यचन्द्र की कथा का आदि-अन्त नहीं जानता जैसे तैसे श्रीचैतन्यचन्द्र का यश वर्णन कर रहा हूँ ॥ १४६ ॥ जिस प्रकार पक्षी आकाश का अन्त नहीं पाता, वह केवल अपनी शक्ति भर ही उतनी दूर उड़ता है ॥ १४७ ॥ उसी प्रकार श्री-चैतन्यचन्द्र के यश का अन्त नहीं है। कृपा करके प्रभु ने जिसको जितनी शक्ति दी है, वह केवल उतना ही गाते हैं ॥ १४८ ॥ जैसा कि श्रीमद्भागवत् प्रथम स्कन्ध अठारहवें अध्याय के तेईसवें श्लोक से ज्ञात होता है—"जैसे पक्षी-गण अपनी शक्ति-अनुरूप आकाश में उड़ते हैं, किन्तु सम्पूर्ण आकाश का पार नहीं पा सकते हैं। उसी प्रकार पण्डित जन भी श्रीविष्णु भगवान् की लीला कृपा विजृम्भित अपनी मति अनुरूप ही वर्णन करते हैं" ॥ क ॥ हे वैष्णवगण ! आप सबके श्रीचरणों में मेरा नमस्कार है। आपकी कृपा से इसमें मेरा कुछ अपराध न हो ॥ १४९ ॥ जो जन संसार समुद्र से पार होकर भक्ति-समुद्र में डूबने के इच्छुक हों वह श्री-निताइ चाँद का भजन करें ॥ १५० ॥ मैं हर समय अपने चित में यह बड़ा भरोसा रखता हूँ कि मेरे प्रभु के प्रभु श्रीगौरसुन्दर हैं ॥ १५१ ॥ कोई कहता है श्रीनित्यानन्द प्रभु बलराम हैं। कोई कहता है श्रीचैतन्यचन्द्र के महा प्रिय-स्वरूप हैं ॥ १५२ ॥ कोई कहता है—महा तेजस्वी अधिकारी हैं,कोई कहता है 'कैसा स्वरूप है समझ में नहीं आता ?' ॥१५३॥श्रीनित्यानन्द प्रभु को जिसकी जैसी इच्छा हो 'यति अथवा भक्त अथवा ज्ञानी' वह क्यों नहीं कहे ॥१५४॥ और श्रीनित्यानन्द श्रीचैतन्यचन्द्र के चाहे जो कुछ भी क्यों न हों, तब भी मैं तो यही कहता हूँ कि—'वह चरण-धन मेरे हृदय में निवास करें॥१५५॥इतने परिहार करने पर जो पापी निन्दा करे पाँव उनके सिर पर रखता हूँ॥१५६॥श्रीचैतन्य जीवन निधि श्रीनित्यानन्द प्रभु ! आपकी जय हो,जय हो। हे प्रभो !

तोमार हइया जेन गौर चन्द्र गाङ । जन्मे जन्मे जेन तोमा संहति वेडाङ ॥१५८॥
जे शुनये आदि खण्डे चैतन्येर कथा । ताहारे श्री गौर चन्द्र मिलिव सर्व्वथा ॥१५६॥
ईश्वर पुरोर स्थाने हइया विदाय । गृहे आइलेन प्रभु श्री गौराङ्ग राय ॥१६०॥
सुनि सर्व्व नवद्वीप हैल आनन्दित । प्राण आसि देहे जेन हैल उपनीत ॥१६१॥
श्री कृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जाद । वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥१६२॥

आदिखण्डकथा दिव्या ये शृण्वन्ति परात्मनः । सर्वापराधनिर्मुक्तास्ते भवन्ति सुनिश्चितम् ॥ख॥
ये पठन्ति महात्मानो विलिखन्ति परादरैः । प्रलयेऽपि च तेषां वै तिष्ठत्येव हरेः स्मृतिः ॥ ग ॥
जन्मारभ्य गयाभूमिगमने यः कथोदयः । तत्कथ्यते विज्ञजनेनादिखण्डस्य लक्षणम् ॥ घ ॥
कारुण्ये भक्तिदातृत्वे चैतन्यगुणवर्णने । अमायाकथने नास्ति नित्यानन्दसमः प्रभुः ॥ ङ ॥

इति श्रीचैतन्यभागवते आदिखण्डे गयाभूमिगमनवर्णनं नाम

द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

✻ समाप्तश्चायं आदिखण्डः ✻

आपके गण ही मेरे शरण-स्थान हों ॥ १५७ ॥ हे प्रभो ! यह चाहता हूँ कि—मैं आपका होकर श्रीगौरचन्द्र का यश गान करूँ एवं प्रत्येक अवतार में आपके साथ ही साथ फिरता रहूँ ॥ १५८ ॥ जो कोई आदिखण्ड वर्णित श्रीचैतन्यचन्द्र की कथा सुनता है, उसको अवश्य श्रीगौरचन्द्र प्राप्त होंगे ॥ १५६ ॥ प्रभु श्रीगौराङ्गराय श्रीईश्वरपुरी जी से विदा होकर घर आ गये ॥ १६० ॥ यह सुनकर सब नवद्वीप-निवासी ऐसे आनन्दित हुए मानो देह में प्राण लौट आकर उपस्थित हो गये हों ॥ १६१ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को प्रभु जान कर वृन्दावनदास उनके युगल चरणों में कुछ वर्णन करता है॥१६२॥ जो महात्मन् आदिखण्ड की दिव्य-कथा को श्रवण करते हैं, वह सुनिश्चय सब अपराधों से विमुक्त हो जाते हैं ॥ख॥ जो महात्मन् परम आदर पूर्वक इसको पाठ करते हैं और लिखते हैं, प्रलय काल में भी उन सब की श्रीहरि की स्मृति निश्चय रहती है ॥ ग ॥ श्रीविश्वम्भरचन्द्र के 'जन्म से लेकर श्रीगया धाम गमन पर्यन्त' जो मङ्गल कथा है, विज्ञजन उसको आदिखण्ड का लक्षण करके बतलाते हैं ॥ घ ॥ क्या तो करुणा में, क्या भक्ति दातृत्व में, क्या श्रीचैतन्य-चन्द्र के गुण वर्णन में, क्या निष्कपट कथा वर्णन करने में श्रीनित्यानन्द के बराबर कोई प्रभु नहीं है ॥ङ॥

अनुवाद कर्त्ता:—

ब्रज के प्रसिद्ध मान्यगण्य, पूज्य, "वृन्दावनशतका"दि ग्रन्थों के सुमधुर व्याख्या करने वाले, परम प्रेम-परायण, गौरगतप्राण, नित्यधामप्राप्त श्रीयुक्त गौराङ्गदासजी महाराज के अनुगत कृपापात्र, श्रीमान् "पण्डित रामलालजी" "गिडोह" निवासी ।

शुभं भूयात् ।

जय जय जय जग मंगलकारी ।
जन मन मोहन गौर कृष्ण विधु नदिया पूर वर वरज विहारि ॥ध्रु०॥
नित्यानंदचन्द्र हलधर हर कलिकलुष विषम अन्धियारि ।
श्रीअद्वैत परमकरुणानिधि दारुण भव दव दहने उधारि ॥
सुखद गदाधर धरनि विदीत सिरिवासहि प्रेमभकति अधिकारि ।
गरुड गदाधर नरहरि हरिदास स्वरूप प्रिय गुपत मुरारि ॥
सार्वभौम सिरि - वासुदेव विद्यानिधि पुण्डरीक सुखकारि ।
सिरि जगदीश विजय वक्रेश्वर दामोदर वर विपद विदारि ॥
रामानंद मुकुंद सुन्दरानंद नन्दनानन्द प्रचारि ।
श्रीनिधि प्रवोधानन्द गौररसे गरगर हृदय न रहत सम्भारि ॥
रामानन्दराय रससागर परमानंद गूपत धृति धारि ।
राघव रघुपति राम महिवर करन प्रेमधन मुदित विकारि ॥
काशीश्वर परमेश्वर नारायण सुदर्शन नयन फल चारि ।
रूप सनातन रघुनाथ श्रीजीव भक्ति वर रतन उधारि ॥
श्रीगोपालभट्ट रघुनाथ ही लोकनाथ चैतन्य मुरारि ।
वासुघोष माधब गोविन्द सुप्रेम जलधि मधि सतत साँतारि ॥
श्रीधर परमानन्द पुरन्दर पहु गुणे निरत नयने झरु वारि ।
सिरि उद्धारण धनञ्जय सञ्जय गौरिदास यश विसद विथारि ॥
संकर रघुनंदन महेष अभिराम शमन भय भञ्जन कारि ।
श्रीयदु मधु - पण्डित शुक्लाम्बर वृन्दावन वरषत रस भारि ॥
जगदानंद मुकुन्द गानरत पहु रस वस निशि दिवस विसारि ।
कर्णपूर कविलोचन जनलोचन गुणगण गायत नर नारि ॥
सिरि श्रीनिवास नरोत्तम श्यामानंद सगण गुण गनइ ना पारि ।
नरहरि भण मन आस पुरह निज दास करह अति दुखित नेहारि ॥

—गौरकृष्णभावनामृते